नहीं सांझ नहीं भोर

अनुक्रम

1. भक्त का अतंर्जीवन...2
2. प्रश्नोत्तर...26
3. जग माहीं न्यारे रहौ..50
4. प्रश्नोत्तर...68
5. भक्ति की कीमिया...86
6. प्रश्नोत्तर...110
7. गुरु-कृपा-योग..135
8. प्रश्नोत्तर...161
9. मुक्ति का सूत्र...186 10...प्रश्नोत्तर 210

नहीं सांझ नहीं भोर
पहला प्रवचन

भक्त का अतंर्जीवन

अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैय।
प्रेम लगा जगदीश का, कछु और न चैये।।
राव रंक सूं सम गिनै, कछु आसा नाहीं।
आठ पहर सिमिटे रहैं, अपने ही माहीं।।
वैर प्रीत उनके नहीं, नहिं वाद-विवादा।
रूठे-से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा।।
जो बोलैं सौ हरिकथा, नहिं मौनै राखैं।
मिथ्या कडुवा दुरबचन, कबहूं नहिं भाखैं।।
जीव-दया अरू सीलता, नख सिख सूं धारै।
पांचों दूतन बसि करैं, मन सूं नहिं हारैं।
दुख-सुख दोनों के परे, आनंद दरसावैं।
जहां जांहि अस्थल करैं, माया-पवन न जावै।।
हरिजन हरि के लाडिले, कोई लहै न भेवा।
सुकदेव कहीं चरनदास सूं, कर तिनकी सेवा।।

हिरदै माहीं प्रेम जो, नैनों झलके आय।
सोइ छका हरिरस-पगा, वा पग परसौ धाय।।
पीव बिना तो जीवना, जग में भारी जान।
पिया मिलै तो जीवना, नहीं तो छूटै प्रान।।
वह विरहिन बौरी भई, जानत न कोउ भेद।
अगिन बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद।।

राख ही राख है, इस ढेर में क्या रक्खा है खोखली आंखें जहां बहता रहा आबे-हयात
कब से एक गार की मानिन्द पड़ी है वीरां कब्र में सांप का बिल झांक रहा हो जैसे राख ही राख है।
उंगलियां सदियों को लम्हों में बदलने वाली उंगलियां शेर थीं नगमा थीं तरन्नुम थीं कभी उंगलियां जिनमें तेरे लस्म का जादू था कभी अब तो बस सूखी हुई नागफनी हों जैसे
राख ही राख है।
दिलकि था नाचती, गाती हुई परियों का जहां अनगिनत यादों का, अरमानों का इक शीशमहल
तेरी तस्वीर दरीचों पर खड़ी हंसती थी
अब तो पिघले हुए लावे के सिवा कुछ भी नहीं
राख के जलते हुए ढेर में क्या पाओगे
शहर से दूर शमशान कहा जाओगे
राख ही राख है।

यह जिंदगी तो राख है; जितने जल्दी पता चल जाए, उतने भाग्यशाली हो। लेकिन यह जिंदगी राख है, इस बात का अनुभव हम होने नहीं देते। हम तो राख को ही भाग्य बना कर बैठे हैं। हम तो राख की ही पूजा कर रहे हैं। हमने तो राख को ही परमात्मा समझा है। यह सब तो छिन जाएगा। जो छिन जाए, वह परमात्मा नहींऐसी परमात्मा की परिभाषा समझना।
जो छीन जाए, वह परमात्मा नहीं। और जो छिन जाए, वह संपदा भी नहीं। जो न छिने, जिसे कोई छीन न सके; मौत भी जिसे छीन न सके; न तो जिसे कोई दे सके और न

जिसे कोई छीन सके, उसे पा लो तो ही कुछ पाया। उस शाश्वत के साथ संबंध जुड़ जाए, तो ही राख के उपर उठे; तो मृत्यू मिटी और जीवन शुरु हुआ।
जिसे तुम जीवन कहते हो, यह जीवन नहीं। यह तो जीवन का धोखा मात्र है; यह
तो जीवन का आवरण मात्र है। वस्त्रों को तुमने आत्मा समझ लिया है और इस भरोसे के कारण इस झूठे भरोसे के कारण आत्मा पास है और अनजानी पड़ी है। पर्मात्मा पास है और तुम हाथ भी नहीं फैलाते। परमात्मा आने को उत्सुक है, लेकिन तुम्हारे हृदय के द्वार बन्द हैं।
राख ही राख है, इस ढेर में क्या रक्खा है। इस देह में, इस संसार में क्या पाओगे?
राख के ढ़ेर पर बैठे लोग देखे, जो खोजते हैं कि शायद मिल जाए कोई दानासोने का, चांदी का! शायद उन्हें मिल भी जाए। क्योंकि सोना और चांदी भी राख ही हैं; राख के ढेर में मिल भी सकते हैं। लेकिन जिसने देह में परमात्मा को खोजानहीं मिलेगा। और जिसने बाहर अंतरात्मा को खोज उसकी हार सुनिश्चीत है।
राख ही राख है, इस ढेर में क्या रक्खा है
खोखली आंखें जहां बहता रहा आबे-हयात।
जहां कभी जीवन का जल बहता था, सुंदर आंसू बहते थे, वे आंखें एक दिन खोखली पड़ी रह जाएंगी; उनमें जल की एक बूंद भी न बचेगी। वे आंखें सूख जाएंगी और मरूस्थल हो जाएंगी; उनमें से फूल न खिलेंगे और हंसी न लगेगी और उनमें फिर गीतों का जन्म न होगा।
खोखली आंखे जहां बहता रहा आबे-हयात
कब से एक गार की मानिन्द पड़ी है वीरां
कब्र में सांप का बिल झांक रहा हो जैसे।
ऐसी खोखली रह जाएंगी आंखे--अंधेरे, काले, छिद्रों की भांति। भीतर से पक्षी उड़ा कि यह देह लाश है; दुर्गंध के सिवाय और कुछ भी बचता नहीं। भीतर की सुगंध उड़ी कि जिसे तुमने अपना घर समझा था, जिसे तुमने अपना समझा था, उसमें सिवाय कुरूपता के और कीडे-मकोडों के और कुछ भी न जन्मेगा।
राख ही राख है, इस ढेर में क्या रक्खा है
खोखली आंखे जहां बहता रहा आबे-हयात
कब्र से एक गार की मानिन्द पड़ी हैं वीरां
कब्र में सांप का बिल झांक रहा हो जैसे
राख ही राख है।
उंगलियां--सदियों को लम्हों में बदलने वाली।
ये अंगुलियां जो बड़ी जीवंत थीं, जो सदियों को क्षणों में बदल देती थीं। वे अंगुलियां जो बड़ी बोलती थीं, वाचाल थीं; वे
अंगुलियां जो कहती थीं; बड़ी बलशाली थीं...
अंगुलियां--सदियों को लम्हों में बदलने वाली
अंगुलियां--शेर थीं, नगमा थीं, तरन्नुम थीं कभी
बड़ी उनमें लय थी, बड़े गीत थे, बड़े रहस्य थे।
अंगुलियां--शेर थीं, तरन्नुम थीं कभी।
अंगुलियां जिनमें तेरे लम्स का जादू था कभी। और जिनमें जादू था स्पर्श का; जिनके छूते ही प्राणों के नये संचार हो जाते थे। अब तो बस, सुखी हुई नागफनी हों जैसे। राख ही राख है... ।
एक दिन सूखी हुई टहनियां नागफनी कीऐसी तुम्हारी अंगुलियां हो जाएंगी; ऐसी सब अंगुलियां हो जाती हैं। ऐसे ही सब कंठ शब्दों से शून्य हो जाते हैं, गीतों से रिक्त हो जाते हैं। ऐसे ही जहां तुमने जीवन समझा था, वहां जीवन के पद-चिह्न भी खोजे न मिलेंगे। राख ही राख है।
दिलकि था नाचती हुई, गाती हुई परियों का जहां। कितने अरमान, कितनी आशाएं और कितने सपने दिल में संजोए थे!
दिलकि था नाचती, गाती हुई परियों का जहां
अनगनित यादों का अरमानों का शिशमहल
तेरी तस्वीर दरीचों पर खड़ी हंसती थी।

और तुमने जिन्हें चाहा था, जिन सपनों को पूरा करना चाहा था, जिन सपनों
के लिए तुमने ये महल बनाए थे, कालीनें बिछाई थीं, तुम उड़े, तुम जगे कि पाओगे कि सब सपने थे। शीशमहल, अनगनित यादों और अरमानों के, गाती हुई परियों का जहां, सब तुम्हारे ख्याल थे। कहीं कुछ भी न हुआ था। न कोई परी थी न कोई शीशमहल थे। कहीं कुछ भी न मिला था। सब सपने थेकोरे सपने थे।
तेरी तस्वीर दरीचे पर खड़ी हंसती थी
अब तो पिघले हुए लावे के सिवा कुछ भी नहीं
राख के जलते हुए ढेर में क्या पाओगे
शहर से दूर शमशान कहां जाओगे
राख ही राख है।
जिसे ऐसा दिखा, उसके जीवन में परमात्मा की खोज शुरू होती है।
यह व्यर्थ है, तो फिर सार्थकता कहां है? प्रश्न निमिर्त होता है; जिज्ञासा जगती है। और फिर जिज्ञासा सिर्फ जिज्ञासा नहीं रह जाती। जीवन मरण का सवाल है। पल-पल हाथ से खोया जाता है अवसर। तो यह कोई दाशर्निक जिज्ञासा नहीं है कि परमात्मा क्या है। तब तो सारा दांव इसी पर है। जानना ही होगा। जानने में सब गंवाना हो, तो सब गवांना ही होगा। लेकिन जानने से नहीं रूका जा सकता।
उसे जानना ही होगा, जो सदा है, ताकि हम भी सदा के साथ हो जाएं। उसे पहचानना ही होगा, जो शाश्वत है, ताकि हमारी यह क्षणभंगुर लहर की जिंदगी और न तड़पे; और न परेशान हो।
चरणदास उन्नीस वर्ष के थे, तब यह तड़प उठी। बड़ी नई उम्र में तड़प उठी
मेरे पास लोग आते है, वे पूछते हैः क्यों आप युवकों को भी संन्यास दे देते हैं? संन्यास तो वृद्धों के लिए है। शास्त्र तो कहते हैंः पचहत्तर साल के बाद। तो शास्त्र बेईमानों ने लिखे होंगे, जो संन्यास के खिलाफ हैं। तो शास्त्र उन्होंने लिखें होंगे, जो संसार के पक्ष में हैं। क्योंकि सौ में निन्यानबे मौके पर तो पचहत्तर साल के बाद तुम बचोगे ही नहीं। संन्यास कभी होगा ही नहीं; मौत ही होगी। और इस दुनिया में जहां जवान को मौत आ जाती हो, वहां संन्यास को पचहत्तर साल तक कैसे टाला जा सकता है?
इस दुनिया में जहां बच्चे भी मर जाते हों, इस दुनिया में जहां जन्म के बाद बस, एक ही बात निश्चित हैमृत्यु, वहां संन्यास को एक क्षण भी कैसे टाला जा सकता है? इस दुनिया में जो मौत से घिरी है जिस दिन तुम्हें मौत दिख जाएगी, जिस दिन इससे पहचान हो जाएगी, जिस दिन तुम देख लोगेः सब राख ही राख है, उसी दिन संन्यास घटेगा। फिर क्षणभर भी रुकना संभव नहीं। फिर स्थगित नहीं किया जा सकता।
उन्नीस वर्ष की उम्र में चरणदास चले गए जंगलों में रोते, चीखते, पुकारते। सब कुछ दांव पर लगा दिया। और एक अपूर्व घटना घटती है। जब तुम परमात्मा को खोजने निकलते हो, तब गुरु मिलता है। निकलते तुम परमात्मा को खोजने, मिलता गुरु है। क्योंकि परमात्मा का सीधा साक्षात नहीं हो सकता। तुम्हारे बीच और परमात्मा के बीच भूमिका का बड़ा अंतर है। गुरु कहां तुम, कहां परमात्मा? कहां तुम बाहर-बाहर, कहां परमात्मा भीतर-भीतर इन दोनों के बीच कोई सेतु नहीं, कोई संबंध नहीं।
जो भी परमात्मा को खोजने गया है, उसे गुरु मिला है। वह परमात्मा तुम्हारे प्रति सदय हुआ, तुम्हारे भाग्य खुले इसकी खबर है, इसकी सूचना है। मांगो परमात्मा कोमिलता गुरू है। और गुरु मिल जाए, तो समझो कि तुम्हारी प्रार्थना सुनी गई; पहुंची। अब तुम अकेले नहीं हो। सेतु फैला; दोनों किनारे जुड़े।
तुम इस किनारे हो, परमात्मा उस किनारे है; गुरु सेतु हैजो दोनों किनारों को जोड़ देता है। गुरु कुछ तुम जैसा, कुछ परमात्मा जैसा। एक हाथ तुम्हारे हाथ में, एक हाथ परमात्मा के हाथ में। अब इस सहारे तुम जा सकोगे।
अब यह जो झूलता सा पुल है, यह जो लक्षण झूला है इससे तुम जा सकोगे।

दूसरा किनारा तो शायद अभी दिखाई भी नहीं पड़ता, दूसरा किनारा बहुत दूर
है और दूसरे किनारे को देखनेवाली आंखे भी अभी तुम्हारी जन्मी नहीं। तुम्हारी आंखे बहुत धुंघली हैं इस संसार की धुल से।
यह जो राख ही राख है, यह राख सब तरफ उड़ रही है; इसने तुम्हारी आंखों को
भी धूमिल किया है और तुम्हारा दर्पण भी राख से दब गया है। और जन्मों- जन्मों से राख पड़ रही है। तुम भूल ही गए कि तुम्हारे भीतर कहीं दर्पण भी है। ऐसी अवस्था में तुम पुकारोगे परमात्मा को, मिलेगा गुरु। यह थोड़ा समझना।
वास्तविक खोजी परमात्मा को खोजने जाता है और गुरु के चरण मिलते हैं। अगर गुरु के चरण मिल जायें, तो समझ लेनाः तुम्हारी अरजी स्वीकार हो गई; तुम्हारी खबर पहुंच गई। उस किनारे से जुड़ा हुआ कोई मिल गया।
चरणदास के गुरु थे एक अपूर्व संन्यासी सुकदेवदास। बड़ी मीठी कथा है।
चरणदास को जब सुकदेवदास मिले... । तो चरणदास ने कहीं भी नहीं कहा है अपने वचनों में, कि यह कोई और थे। उन्होंने तो यही कहा है कि व्यास के बेटे सुकदेवमुनि थे।
इस पर बड़ी अड़चन है, क्योंकि चरणदास और व्यास के बीच हजारों साल का फासला है। पंडित इससे राजी नहीं हैं; शास्त्रज्ञ इससे राजी नहीं हैं खोज-बीन करने वाले, राख के ढेर में ही तलाश करने वाले इससे राजी नहीं हैं। वियोगी हरि ने यह लिखा हैः खोज के आधार पर यह पाया जाता है कि अपने गुरु को व्यास-पुत्र सुकदेव मुनि कहना तो केवल श्रध्दा-भावना की बात है। असल में उनके गुरु सुकदेवदास नाम के एक महात्मा थे, जो मुजफ्फरनगर के पास सूकरताल गांव में रहते थे।
वियोगी हरि का यह कहना कि अपने गुरु को व्यास-पुत्र सुकदेवमुनि कहना
तो केवल श्रद्धा-भावना की बात है... । केवल श्रद्धा-भावना की! जैसे श्रद्धा-भावना का कोई मूल्य नहीं है। जैसे तुम्हारे मुरदा तथ्य श्रद्धा- भावना से ज्यादा मूल्यवान हैं। जैसे सूकरताल गांव और मुजफ्फरनगर बड़ी मूल्यवान बातें हैं।
खोज के आधार पर... । पंडित इसी तरह की खोज में लगे रहते हैं। पंडित सार
को तो पकड़ ही नहीं पाता, असार की खोज करता है।
श्रद्धा-भावना को केवल कहना! केवल श्रद्धा-भावना की बात है--अच्छे शब्दों में कहना है कि यह सब तो बातचीत है; यह सचाई नहीं है। संतों को समझने का यह रास्ता नहीं, यह ढंग नहीं।
संत इतिहास के हिस्से कम, इतिहास के किनारे-किनारे जो शाश्वत की धारा है, उसके हिस्से ज्यादा हैं।
अगर चरणदास ने कहा है कि मेरे गुरु व्यास-पुत्र सुकदेव थे, तो इस केवल श्रध्दा-भावना की बात कह कर मत टाल देना। सच तो यह है कि जब भी तुम्हें गुरु मिलेगा, तभी परम गुरु मिलेगा। गुरु मिला कि परम गुरु ही मिलता है। न मिले, तो बात अलग। गुरु जब मिलता है, तो वह परम गुरु की प्रतिमा है व्यास-पुत्र सुकदेव तो सिर्फ प्रतिभा हैं परम गुरु की।
जब भी किसी ने गुरु को पाया, तो उसने अपने गुरु में सारे गुरुओं को पा लिया। एक गुरु में जैसे सारे गुरुओं का सिलसिला,शृंखला उपलब्ध हो गई।
यह केवल श्रद्धा-भावना की बात नहीं है। यह जीवन को देखने का एक और ही ढंग है। श्रद्धा तो इसमें है, लेकिन श्रध्दा, कल्पना की पर्यायवाची नहीं है। भावना तो इसमें है, लेकिन भावना का मतलब बे-पर की बातें नहीं होता। यह जीवन को देखने का और ढंग है।
जैसे कोई गुलाब के फूल को देखे और गुलाब के फूल के सौंदर्य से अभिभूत
हो जाए और नाच उठे। और तुम वैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति उसके पास जा कर कहो कि यह क्या कर रहे हो? कहां है सौंदर्य? हां, फूल है सच, और फूल में पदार्थ भी हैसच; और ले चलते हैं इसे विज्ञान की प्रयोगशाला में और जांच-परख कर लेंगे; खंड खंड फूल को तोड़ कर देख लेंगे। और तुम भी पाओगेः और सब पाया जाता है, सौंदर्य नहीं पाया जाता। सौंदर्य तो केवल श्रद्धा-भावना की बात है।

बात सच है। तथ्य के जगत् में यही सच हैः सौंदर्य तो श्रद्धा-भावना की बात है। लेकिन सौंदर्य के बिना फूल का अर्थ ही खो जाता है। तब उसमें कुछ रासायानिक द्रव्य मिलेंगेः जल मिलेगा, मिट्टी मिलेगी, रंग मिलेंगे--सब मिल जाएगा, लेकिन जो मिलने योग्य था, वह तो खो ही गया।
यह ऐसे है, जैसे कोई जीवित बच्चे को काट ले खंड-खंड और खोजने चले कि क्या था इसके भीतर, जो इसे चलाता था, जो इसे जिलाए था? कौन था जो श्वास लेता था? हड्डी-मांस-मज्जा मिलेगी; सब कुछ मिलेगा, लेकिन जो चलाता था, वह नहीं मिलेगा। इसे पाने का यह ढंग नहीं। वह अदृश्य तुम्हारी दृश्य की अतिशय पकड़ में खो जाएगा।
चरणदास जब कहते हैं कि मेरे गुरु व्यास-पुत्र सुकदेव थे, तो स्वभावतः पंडित हैरान होता है, क्योंकि इन दोनों के बीच समय का बड़ा फासला है, हजारों साल का फासला है। सुकदेव मिल कहां जायेंगे चरणदास को? मुजफ्फरपुर के पास सूकरताल गांव के निकट के जंगल में मिल कहां जायेंगे सुकदेवदास?
तो पंडित तथ्य को खोजता है। लेकिन जब चरणदास को गुरु मिले होंगे, तो चरणदास के लिए गुरु का जो औपचारिक रुप है, वह व्यर्थ हो गया। देह अलग होगी; रुप-रंग अलग होगा; लेकिन वह जो अंतर्निहित तत्व है, वह एक है।
सभी गुरूओं में एक ही परम गुरू होता है। इसलिए भारत की यह बात कई लोगों को समझ में नहीं आती। यहां कई किताबे हैं, जो सभी व्यासदेव ने रचीं! दो किताबों के बीच हजारों साल का फासला हो सकता है; दोनों व्यासदेव ने रंची। एक ही आदमी रचता इतनी किताबें?
तो वैज्ञानिक बुद्धि कहती है कि नहीं; या तो बहुत व्यासदेव नाम के आदमी हुआ और या फिर लोगों ने व्यासदेव के नाम से किताबें रच दीं। यह वस्तुतह व्यासदेव की रची नहीं हो सकतीं। लेकिन उन्हें पता नहीं हैं।
जो भी सत्य को उपलब्ध होता है, उसी को हम व्यासदेव कहते हैं। इसलिए तो
जो भी कोई सत्य की प्रतिष्ठा से बोलता है, उसकी पीठ को व्यास-पीठ कहते हैं। वहां बैठते ही, उस पीठ पर बैठते ही, उस प्रतिष्ठा पर बैठते ही उसका जो नाम-धाम थाखो गया; उसका जो औपचारिक पता-ठिकाना था--खो गया। समय की धारा में उसके जो चिन्ह थे, वे खो गए। वह शाश्वत से जुड़ गया। शाश्वत गुरु का नाम है व्यासदेव।
चरणदास को उन अपने गुरु की आंखों में शाश्वत गुरु के दर्शन हुए--इतनी
ही बात है।
यह श्रद्धा-भावना की बात नहीं है; यह सत्य ही है; लेकिन यह सत्य किसी दुसरे तल का है। यह सत्य वस्तुओं के तल का नहीं है; यह सत्य अनुभूतियों के तल का है।
चरणदास को गुरु मिले, उसके पहले चरणदास का नाम रणजीतसिंह था। गुरु ने नाम बदल दिया। दीक्षा दे दी। संन्यास में प्रवेश दिलवा दिया।
नाम की बदलाहट बड़ी महत्वपूर्ण है। रणजीतसिंह आक्रमक, हिंसात्मक, महत्वाकांक्षा से भरा हुआ नाम था। नाम दियाचरणदास। एकदम उलटा कर दिया! कहां रणजीतसिंह और कहां चरणदास! सारी जीवन-दिशा बदल दी!
रणजीतसिंह में हैः आक्रमण, विजय की आकांक्षा, हिसंक महत्वाकांक्षा! इसी हिंसक महत्वाकांक्षा के कारण तो सिंह; रणजीतयुद्ध को जीतने चला हुआ व्यक्ति; विजय की यात्रा। एकदम बदल दिया। प्रत्याहार किया। महावीर जिसको कहते हैंप्रतिक्रमण किया। जो बाहर जाती थी उर्जा, भीतर लौटा दी! कहां जाएगा बाहर? जीत बाहर नहीं है। जीत भीतर है।
और भीतर की जीत का अपूर्व नियम है कि जो हारने को राजी हो, वही जीतता।
जो जीतने चला, वह हार जाता है। यहां जो संकल्प करेगा वह मिटेगा। और यहां जो समर्पण करता है, सभी कुछ उसे उपलब्ध हो जाता है।
चरणदास यानी समर्पण। रणजीतसिंह यानी संकल्प। रणजीतसिंह यानी दूसरों
पर विजय की घोषणा करनी है। और चरणदास यानी अब किसी पर विजय की घोषणा नहीं करनी है। झुक गए, प्रभु के चरण में झुक गए। और जो झुका है, उसने पाया है कि सभी चरण उसके हैं, तो सभी चरणों में झुक गए।

संन्यास के क्षण में नाम का रूपांतरण सिर्फ नाम का रूपांतरण नहीं है।
गुरु इंगित देता है, इशारा देता है, आगे की यात्रा की सारी कथा कह देता है।
इस छोटे से फर्क से सारा फर्क हो गया। इसमें सारा शास्त्र आ गया, सारी साधना, सारा जीवन अनुशासन, सारी जीवन की शैली बदल दी।
चरणदास के पहले मैं उनकी दो शिष्याओं पर बोला--सहजो और दया पर। तुम थोड़े चौकोगे। शिष्यों पर पहले बोला, फिर गुरु पर बोलता हूं। लेकिन चौंकने की बात नहीं है।
कहते हैंः वृक्ष फल से जाना जाता है। सहजी और दया दो फल लग चरणदास पर।
उनका रस तुमने पिया--चखा। उनके रस के बाद ही अब तुम इस वृक्ष-मूल में उतर सकोगे। उस पहचान के बाद ही चरणदास में जाना आसान होगा।
सहजो ने अपने गुरु के संबंध में यह गीत गाया हैः
सखी री आज धन धरती धन देसा।
धन देहरा मेवात मंझारे हरि आए जन भेसा
कि आज का दिन धन्य है, कि आज धरती धन्य है, कि आज देश धन्य है।
सखी री आज धन धरती धन देसा।
धन देहरा मेवात मंझारे हरि आए जन भेसा
मेवात के दोहरा नाम के छोटे से गांव में हरि आए जन भेसा--चरणदास में हरि का अवतरण हुआ है।
धन भादों धन तीज सुधी है, धन मंगलकारी।
धन धूसर कुल बालक जनमई, फुल्लित भए नर नारी
धन-धन माई कुंजी रानी, धन मुरलीधर ताता।
अगले दत्तव अब फल पाए, जिनके सुत भयो ज्ञाता
कहा कि जिनके घर में एक जानने वाला पैदा हो गया है, उस घर में पहले जितने पैदा हुए थे, वे भी सब धन्य हो गए।
एक फल भी अमृत का लग गया, तो उस फल के पीछे का पूरा सिलसिला धन्य हो गया। पूर्णाहुति आ गई; परम शिखर आ गया।
अगले दत्तव अब फल पाए। सदियों-सदियों से यह कुल चेष्टा में रत रहा होगा। कितनों ने आकाक्षाएं बांधी होंगी। कितनों ने पाना चाहा होगा।
कितने असफल बिना पाए विदा हो गए होंगे। लेकिन यह सब ने जो बीज बोए थे, प्रभु को पाने की आकांक्षा के, वे इस चरणदास से पूरे हुए। जिनके सुत भयो ज्ञाता... जिनको घर एक जानने वाला बेटा जनम गया।
सखी री आज धन धरती धन देसा।
धन देहरा मेवात मंझारे हरि आए जन भेसा
सहजो और दया का रस तुमने खूब लिया। वह रस चरणदास की प्रसादी थी। वह रस चरणदास के संपर्क में ही उन्हें लगा। वह रंग, वह ढंग, चरणदास की सोहबत का फल था। सत्संग उन्हें छू गया। और ऐसा दो के साथ ही नहीं हुआ। चरणदास के पास सैकड़ों लोग परम अवस्था को उपलब्ध हुए। चरणदास के चरणों में हजारों लोगों ने प्रभु का स्पर्श पाया, प्रभु का स्वाद पाया।
जंगल में भटकते थे। गुरु का तो कोई ख्याल भी न था। आस तो प्रभु की थी; प्यास तो प्रभु की थी; गुरु का तो ख्याल भी न था; गुरु की तो कोई खोज भी न चल रही थी।
अकसर ऐसा ही होता है। गुरु को खोजने कौन निकलता है? लोग तो प्रभु को ही खोजने निकलते हैं; गुरु मिलता हैयह दूसरी बात है।
खोज गुरु की कोई नहीं करता। गुरु की खोज तुम करोगे भी कैसे? खोज तो आत्यंतिक की है, अंतिम की है। खोज तो परमात्मा की है। लेकिन उसी खोज में धक्के खाते-खाते, रोते-रोते, चीखते-चिल्लाते, प्रार्थना-पूजा करते, ध्यान-प्रेम में रमते एक दिन गुरु से मिलना हो जाता है।
जाना तो उस पार है। अनेक-अनेक तरह से तुम उस पार जाने की चेष्टा करते हो, तब धीरे-धीरे तुम्हें समझ में आता है कि उस पार ऐसे न जा सकोगे; माझी की जरूरत पड़ेगी, नाव की जरूरत पड़ेगी। मगर जिसने बहुत खोज की उस पार जाने की, उसे माझी मिल जाता है।

यह जगत् तुम्हारी हा खोज में सहयोगी है। इस सत्य को तुम हृदय में सम्हाल कर रख लेना।
तुम गलत खोजते हो, तो भी यह जगत सहयोगी है। तुम पाप करने जाते हो, तो भी
यह अस्तित्व तुम्हारा साथ देता है। इस अस्तित्व की अनुकंपा तुम पर अपार है और बेशर्त है।
तुम बुरा भी करने जाते हो, तो अस्तित्व रोक नहीं लेता। तुम बुरा भी करने जाते हो, तो ऐसा नहीं होता कि सांस चलनी बंद हो जाय; कि परमात्मा तुम्हारे जीवन को छीन ले; कि पैर न उठें; कि लकवा लग जाए; कि तुम गिर पड़ो। नहीं, तुम बुरा करने जाते हो, तो भी परमात्मा तुम्हारे भीतर श्वास लेता ही रहता है। तुमसे कहे जाता है भीतर-भीतर; बड़े मंदिम स्वर हैं उसके; फुस-फुसाए जाता है कि रूको, मत करो। लेकिन तुम्हारे जीवन को नहीं छीन लेता; तुम्हारी स्वतंत्रता को नहीं छीन लेता। तुम्हें साथ देता है; बुरे में भी साथ देता है।
तो फिर उसकी तो बात ही क्या कहनी, जब तुम परमात्मा को ही खोजने निकलते हो। तब सब तरफ से तुम्हारे लिए सहयोग मिलता है।
ऐसी दशा रही होगी चरणदास की।
तुम परीशान न हो, बाबे-करम वा न करो।
और कुछ देर पुकारूंगा, चला जाऊंगा
इसी कूचे में जहां चांद उगा करते हैं।
शबे-तारीक गुजारूंगा, चला जाऊंगा
रास्ता भूल गया या वही मंजिल है मेरी।
कोई लाया है कि खुद आया हूं, मालूम नहीं
कहते हैं कि हुस्न की नजरें भी हंसी होती हैं।
मैं भी कुछ लाया हूं, क्या लाया हूं, मालूम नहीं
यूं तो जो कुछ था मेरे पास सब मैं बेच आया।
कहीं इनआम मिला और कहीं कीमत भी नहीं
कुछ तुम्हारे लिए आंखे में छुपा रक्खा है।
देख लो और न देखो तो शिकायत भी नहीं
तुम परीशान न हो, बाबे-करम वा न करो। प्रार्थी कहता है कि अगर तुम्हें कष्ट होता है दरवाजा खोलने में, तो मत खोलो। मैं थोड़ी देर पुकारूंगा और चला जाऊंगा। तुम मेरी बहुत फिक्र न करो। मैं पुकारता हूं, मेरे कारण।
तुम परीशान न हो, बाबे-करम वा न करो। तुम्हारी कृपा मे द्वार के खोलने में अगर तुम्हें झंझट होती हो, तुम्हें मेरे तरफ बरसने में अगर कोई अड़चन आती हो, तो तुम परेशान न हो, बाबे-करम वा न करो; और कुछ देर पुकारूंगा चला जाऊंगा।
इसी कूचे में जहां चांद उगा करते हैं; सबे-तारीक गुजारूंगा चला जाऊंगा। माना कि तेरे कूचे में चांद उगा करते हैं। में अंधेरी रात में ही रह लूंगा और चला जाऊंगा। लेकिन तू तकलीफ न करना। यह सहज हो सके, तो ठीक।
तेरा दर्शन सहज हो सके, तो ठीक।
तुम परीशान न हो, बाबे-करम वा न करो।
और कुछ देर पुकारूंगा, चला जाऊंगा
इसी कूचे में जहां चांद उगा करते हैं।
शबे-तारीक गुजारूंगा, चला जाऊंगा
माना कि तेरी गली में चांद उगते हैं, रोशनी झरती है, पर मेरा भाग्य मैं अधेंरी रात में ही गुजार लूंगा मगर मैं पुकारता हूं, इस कारण तू कष्ट में मत पड़ना।
रास्ता भूल गया या वही मंजिल है मेरी। मुझे यह भी पक्का पता नहीं है
कि मैं रास्ता भूल कर तुझे पुकारने लगा हूं।
लोगों ने सदा ऐसा ही समझा है कि संन्यास की तरफ जाते हुए लोग, परमात्मा को खोजते हुए लोग रास्ता भूल गए हैं। क्योंकि लोगों को भरोसा है कि वे ठीक रास्ते पर हैं। क्योंकि भीड़ उनके साथ है।

संन्यासी अकेला पड़ जाता है; सत्य का खोजी अकेला पड़ जाता है। सारी दुनिया तो धन खोज रही है, पद खोज रही है; सत्य को कौन खोजना चाहता है?
लोग तो सत्य बेचने को तैयार हैं। चांदी के ठीकरे मिलें, तो सत्य बेचने
को तैयार हैं; जिंदगी लुटाने को तैयार हैं। --पद मिले, प्रतिष्ठा मिले। रास्ता भूल गया या वही मंजिल है मेरी।

कोई लाया है कि खुद आया हूं, मालूम नहीं
यह भी कुछ पक्का नहीं कि कैसे इस जंगल में चला आया; कैसे तुझे खोजता हूं? क्यों तुम्हें पुकारता हूं? और तू मंजिल है या कि मैं रास्ता भटक गया हूं!
रास्ता भूल गया या वही मंजिल है मेरी।
कोई लाया है कि खुद आया हूं, मालूम नहीं
कहते हैंः हुश्न की नजरें भी हंसी होती हैं।
मैं भी कुछ लाया हूं, क्या लाया हूं, मालूम नहीं
कुछ भेंट करनी है तुझे और तेरी परम सौंदर्य की आंखों में मेरी भेट का क्या मूल्य!
कहते हैंः हुश्न की नजरें भी हंसी होती हैं। तेरी आंखे भी परम सुंदर होंगी; तू परम सौंदर्य है; मेरी भेंट तेरी नजरों में किसी काम की उतरेगी, न उतरेगी! फिर इसकी भी क्या फिक्र।
कहते हैंः हुश्न की नजरें भी हंसी होती हैं।
मैं भी कुछ लाया हूं, क्या लाया हूं, मालूम नहीं
कुछ चढ़ाना चाहता हूं, कुछ अर्पित करना चाहता हूं, लेकिन क्या--यह मुझे
भी पता नहीं है।
भक्त अज्ञान में रोता है। भक्त का अज्ञान उसकी निर्दोषता है।
यूं तो जो कुछ था मेरे पास मैं सब बेच आया। जिंदगी में सब लुट गया। वह
जो राख ही राख में काफी दिन बिताए... । सब राख हो गया।
यूं तो जो कुछ था मेरे पास मैं सब बेच आया हूं। जिंदगी में जो था, सब लुटा दिया; व्यर्थ कूड़ा-कर्कट में लुटा दिया। कहीं इनआम मिला और कहीं कीमत भी नहीं।
कुछ तुम्हारे लिए आंखों में छुपा रक्खा है। भक्त कहता हैः और तो कुछ नहीं बचा है, सिर्फ आंखों में तुम्हे देख लेने की एक आशा बची है। और तो सब, जो मेरे पास था, सब बेच आया हूं। कहीं इनआम मिला और कहीं कीमत भी नहीं। कुछ तुम्हारे लिए आंखों में छुपा रक्खा है। दर्शन की आशाप्रिय-दर्शन
की आशा बस, उतना ही है मेरे पास। उसको सम्पदा भी क्या कहो! उसको भेंट भी क्या कहो?
एक अपूर्व पिपासा है, एक गहन प्यास है... । कुछ तुम्हारे लिए आंखों में छुपा रक्खा है। देख लो और न देखो तो शिकायत भी नहीं।
भक्त कहता हैः देख लो, तो तुम्हारी अनुकम्पा। और न देखो, तो शिकायत भी क्या। ऐसा कुछ विशेष ले भी कहां आया हूं कि शिकायत करूं। सब गंवा कर आया हूं।
भक्त भगवान की तरफ खुलना शुरू होता है, तो बड़ी दीनता--असीम दीनता की प्रतीति होती है।
जीसस ने कहा हैः धन्यभागी हैं वे, जो दरिद्र हैं, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का होगा। परमात्मा की तरफ जानेवाला आदमी अगर यह ख्याल करे कि मैं कुछ लेकर आया हूंकुछ मूल्यवान--तो परमात्मा की तरफ जा ही न सकेगा। वहां तो हार कर जाना होता है; मिट कर जाना होता है; खो कर जाना होता है। वहां तो भिखारी की झोली ले कर जाना होता है। वहां तो यही कहते जाना होता हैः मेरे पास कुछ है भी नहीं कि तुझे चढ़ा दूं। मगर फिर भी तेरे दर्शन की आशा है। अखियां हरि दर्शन की प्यासी। देख लो और न देखो तो शिकायत भी नहीं। बस, इसी घड़ी में मिलन होता है। और मिलन गुरु से होता है। मिलन परमात्मा से सीधा नहीं हो सकता। परमात्मा प्रत्यक्ष नहीं आता; परोक्ष आता है। परमात्मा सीधे-सीधे नहीं आता; छुपे-छुपे आता है। परमात्मा शोरगुल और

बैड़-बाजे बजाते नहीं आता। परमात्मा ऐसा गुप-चुप आता है, ऐसा सन्नाटे की तरह आता है, कि अगर तुम शांत और चुप न हुए, तो चूक जाओगे।
परमात्मा किसी के वेश में आता है। अगर प्यास सच्ची न हुई, तो तुम पहचान न पाओगे।
प्रार्थना से भरे हुए क्षण में गुरु ेसे मिलन हुआ। लेकिन चरणदास पहचान गए। इसलिए अपने गुरु को सुकदेवमुनि कहा है।
सुकदेवमुनि निर्दोष, निर्विकार, निर्विचार भाव-दशा के साकार प्रतिमा हैं। और जब भी कोई अपने गुरु की आंखों में आंख डाल कर देखेगा, तो उसी एक को पाएगा। गुरु एक ही है; बहुत गुरुओं में प्रकट होता है, यह बात दूसरी है। सूत्रः
अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैये।
प्रेम लगा जगदीश का, कछु और न चैये
राव-रंक सूं सम गिनै कछु आशा नाहीं।
आठ पहर सिमिटे रहैं, अपने ही माहीं।
एक-एक शब्द मूल्यवान है।
अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैये। बड़े भाग्य से मिलती है यह अजब फकीरी।
अजब क्यों? क्योंकि इधर आदमी फकीर होने लगता है, उधर साहब होने लगता है।
अजब फकीरी! इधर दरिद्री होने लगता है; उधर समृद्धि; बरसने लगती है। अजब फकीरी! सब खोने लगता है और सब पाने लगता है। हारता है और विजय आती है; अजब फकीरी!
अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैये। फकीर ही सम्राट हो पाता है। कुछ बचता नहीं हाथ; हृदय खाली हो जाता है; लेकिन उसी शून्य में तो परमात्मा उतरता है। संसार कटा; जगह खाली हुई; स्थान बना; उसी स्थान में परमात्मा अवतरित होता है। अहंकार सिंहासन से उतरा, उसी सिंहासन पर तो परमात्मा विराजमान होता है।
रणजीतसिंह भरे रहे होंगे; चरणदास खाली हुए। रणजीतसिंह संसार की आकांक्षाओं, वासनाओं की भीड़ से घिरे रहे होंगे, चरणदास झुके। अब कोई यात्रा न रही अहंकार की।
अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैये। धन्यभागी हैं वे, जो इस अपूर्व दशा
को पा लेते हैं। बाहर से दिखते हैं फकीर और भीतर से शहेनशाह हो जाते हैं। बाहर कुछ भी नहीं है और भीतर सब कुछ। इससे उलटी दशा भी दुनिया में है। बाहर सब कुछ और भीतर कुछ भी नहीं। तो सम्राट हो सकता है कोई, और भीतर भिखारी हो। और भीतर सम्राट हो सकता है कोई, और बाहर भिखारी हो। इसलिए बाहर से मत तौलना; बाहर से मत जांचना।
और ऐसा भी नहीं है कि भीतर से सम्राट होने के लिए बाहर से भिखारी होना जरूरी ही हो। और ऐसा भी नहीं है कि भीतर से भिखारी रहने के लिए बाहर भी भिखारी होना जरूरी हो।
जिंदगी का गणित बड़ा अतर्क्य है, क्योंकि हमने ऐसे लोग भी देखे हैं-- जनम और कृष्णजो बाहर से सम्राट और भीतर से भी सम्राट। और तुम्हें रास्तों पर चलते हुए भिखारी भी मिल जायेंगे, जो बाहर से भी भिखारी और भीतर से भी भिखारी। लेकिन ये दो अति छोर हैं, अतियां हैं।
अधिकतर तो ऐसा होता है कि बाहर से सब कुछभीतर से कुछ नहीं।
इस रूपांतरण का नाम संन्यास है। बाहर की फिकर न रही, चिंता न रही। बाहर पर पकड़ गई। बाहर से मुट्ठी खुली, तो भीतर की संपदा की वर्षा शुरू हो जाती है। वर्षा तो होती ही थी, तुम बाहर आंखें लगाए थे, सो भीतर देखने से चूके चले जाते थे। अब बाहर से आंखे बंद हो गईं, तो भीतर का अपूर्व बरसता हुआ अमृत तुम्हें दिखाई पड़ने लगा।
अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैये। चरणदास कहते हैंः अजब की बात हो गई, गजब की बात हो गईः सब खो कर सब पा लिया। सब गंवा कर सब पा लिया। जीसस ने कहा हैः जो गंवाएगा, वही पाएगा। और जो बचाएगा, वह गंवा देगा।
अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैये। लेकिन तुम तो सब मिलता है तो कहते होभाग्यशाली। पद मिलता है, तो कहते होभाग्यशाली।

मेरे पास लोग आ जाते हैं; वे कहते हैं कि आपकी कृपा से सब है। मकान है, पत्नी है, बच्चा है, धन-दौलत है; सब सुख से चल रहा है। आपकी कृपा से सब ठीक चल रहा है।
यह भी कोई कृपा हुई! यह जो सब ठीक चल रहा है, यहां राख और राख के सिवाय कुछ भी नहीं। यह राख का ढेर है। और तुम मेरे पास आ कर कह रहे हो कि आपकी कृपा से राख का ढेर बड़ा होता जा रहा है!
यह भाग्य नहीं है। तुम अभागे हो। अभागे हो, क्योंकि इस व्यर्थ की मिट्ठी के ढेर को तुम समझ रहे होसम्पदा। भाग्य तो उस दिन होगा, जिस दिन तुम समझोगेः अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैये। जिस दिन तुम आकर कहोगे कि भाग्यशाली हो कि बाहर से नजर मुड़ी; कि बाहर पर पकड़ न रही; कि बाहर व्यर्थ हुआ, कि अब भीतर चलाता हूं। न पत्नी पत्नी है, न बेटा बेटा है; न धन धन है, न दुनिया दुनिया है। अब तो बस, एक की तलाश करता हूं। अनेक की तलाश में बहुत भटक लिया। जिस दिन तुम आकर कहोगे कि अनेक की तलाश में बहुत-बहुत भटक लिया; अब एक ही तलाश में चलता हूं, उस दिन भाग्य है।
प्रेम लगा जगदीश का, कछु और न चैये। चरणदास कहते हैं: अब कुछ भी नहीं चाहिए। लग गया प्रेम परमात्मा का, रंग गए उसके रंग में। सब मिल गया। उस मिलन में सब मिलन है।
प्रेम लगा जगदीश का, कछु और न चैये। राव-रंक सूं सम गिनै, कछु आशा नाहीं। अब जब कोई वासना न रही, पाने की कोई इच्छा न रही, तो स्वभावतः गरीब और अमीर बराबर हो गए। राव-रंक सूं सम गिनै--यह बात समझना।
तुम्हारे जीवन में जो मूल्य-भेद हैं, वे तुम्हारी वासना की सूचनाएं हैं। एक गरीब आदमी रास्ते पर मिलता है, तो तुम उसे बिना देखे गुजर जाते हो। आदमी जैसा आदमी है, लेकिन गरीब है। तुम ऐसे गुजर जाते हो, जैसे कोई रास्ते पर मिला ही नहीं। वह जयरामजी भी करे, तो तुम्हारे भीतर से उत्तर नहीं आता। तुम देखा अन-देखा कर देते हो। फिर एक धनी आदमी मिलता है, तब तुम्हें दूर से दिखाई पड़ने लगता है। तब तुम झुक-झुक कर नमस्कार करने लगते हो। तब अगर तुम्हें उत्तर मिल जाता है धनी आदमी से, तो तुम अपने को धन्यभागी समझते हो।
दोनों आदमी जैसे आदमी हैं, लेकिन गरीब की तुमने उपेक्षा कीक्यों? अमीर को नमस्कार किया क्यों? कल यह अमीर अगर गरीब हो जाएगा, फिर तुम नमस्कार करोगे? फिर नहीं करोगे। कल यह गरीब अगर अमीर हो जाएगा, तो तुम झुक-झुक कर नमस्कार करोगे क्यों? क्या खबर आती है इससे? इससे खबर आती है कि तुम अमीर होना चाहते हो और गरीब नहीं होना चाहते।
यह जो तुम्हारा मूल्य-भेद है, यह तुम्हारी चित्तदशा, तुम्हारी वासना
की खबर देता है। तुम उसी का आदर करते हो, जो तुम होना चाहते हो।
राजनेता गांव में आ गए; चले तुम भीड़ में; सब काम-धाम छोड़ा। वही राजनेता
जब पद पर नहीं होता और गांव में आता है, तो कोई जाता नहीं। अपना सामान खुद राजनेता को उतार कर रखना पड़ता है। खुद टैक्सी तलाश करनी पड़ती है। गए वे दिन, जब लोगों की भीड़ होती थी और लोगों की भीड़ से बचाने के लिए पुलिस का इंतजाम करना होता था। अब कोई नहीं आता। क्या हो गया?
लोग किसी के लिए नहीं आते। लोग अपनी आकांक्षा, महत्वाकांक्षा के लिए आते हैं। लोग पद ही प्रतिष्ठा करते हैं, क्योंकि पद पर होना चाहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि तुम्हारे मन में तब तक गरीब-अमीर भेद बना ही रहेगा, पदवान और पदहीन का भेद बना ही रहेगा, जब तक तुम्हारे भीतर जरा सी वासना शेष है; तब तक तुम सम-भावी न हो सकोगे। सम्यकत्व तभी आएगा, जब तुम्हारी भीतर की वासना चली जाएगी। फिर क्या फर्क है? फिर कोई फर्क नहीं रह जाता।
एक सम्राट का वजीर संन्यस्त हो गया; राज्य छोड़ कर जंगल में चला गया। उसकी ज्ञान की खबरें गांव तक आने लगीं, राजधानी तक आने लगीं, सम्राट के महल तक आने लगीं। आखिर सम्राट भी उत्सुक हुआ और उसने कहा कि चलो एक दिन उसके दर्शन करें।

जब सम्राट पहुंचा जंगल में, तो वह फकीर एक ढपली बजा रहा था। पैर फैलाए हुए एक वृक्ष के नीचे बैठा था। सम्राट आकर भी खड़ा हो गया, तो फकीर ने खड़े हो कर नमस्कार भी न किया। वह उसका वजीर था। वह अपनी ढपली ही बजाता रहा, जैसे कोई आया ही नहीं। जैसे कुछ हुआ ही नहीं। और वैसे ही पैर पसारे रहा, जो कि बड़ा अशोभन था। सम्राट की तरफ पैर पसारे बैठा रहा; पैर भी न मोड़े!
सम्राट ने कहा कि सुनो, क्या सब शिष्टाचार भी भूल गए? और मैंने तो तुम्हें सदा बड़ा शिष्टाचारवान पाया था; यह क्या हो गया? तुम घुटने तक नहीं मोड़ रहे? ये ढपली भर ठोके जा रहे हो और मैं सामने आकर खड़ा हूं! तुमने नमस्कार भी नहीं किया?
वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा, अब किसलिए घुटने मोड़ें? घुटने मोड़ते थे, क्योंकि जो आप हो, वही होना चाहते थे। अब किसलिए घुटने मोड़ें? अब कौन मेरे घुटने मुड़वा सकता है? और ढपली बजाना क्यों रोकूं? आप भ्रांति में हैं। आप सोचते हैंः वह शिष्टाचार था। वह मेरी महत्वाकांक्षा थी; वह महत्वाकांक्षा को छिपाने की व्यवस्था थी। नहीं तो महत्वाकांक्षा खतरनाक मालूम हो सकती है, तो उस शिष्टाचार में छिपाना होता है।
शिष्टाचार के वस्त्रों में छिप जाती है महत्वाकांक्षा, तो उतनी कुरूप नहीं मालूम होती।
धनी आदमी आता है, राजा आता है, तुम उठ कर खड़े हो जाते हो। गरीब गुजर जाता है, कोई पता नहीं चलता है। तुम्हारा नौकर तुम्हारे कमरे में आता है; तुम स्वीकार ही नहीं करते कि कोई आदमी आया है! नौकर, जैसे आदमी में... ।
तुम्हारा मालिक आता है, तुम तत्क्षण उठ कर खड़े हो जाते हो।
तुम इन भेदों को समझना। इनका कोई संबंध शिष्टाचार से नहीं है। इनका संबंध भीतर गहरी वासना से है।
इसे सूत्र समझोः तुम जो होना चाहते हो, उसका तुम आदर करोगे।
लोग राजनेता का आदर करते हैं, क्योंकि लोग राजनेता ही होना चाहते हैं
इस देश में कभी वे भाग्यशाली दिन भी थे, जब राजनेता का कोई मूल्य नहीं था।
जब मूल्य फकीरों का था, जब मूल्य संन्यासियों का था। धन्यभाग के दिन थे, क्योंकि वे इस बात की खबर थे कि लोग फकीर होना चाहते थे।
तुम जो चाहते हो, उसी को आदर देते हो। तुम्हारा आदर बड़ा सूचक है।
प्रेम लगा जगदीश का कछु और न चैये। अब क्या चाहिए?
राव-रंक सूं सम गिनै, कछु आशा नाहीं। अब कोई वासना न रही, पाने की इच्छा न रही। इसलिए सम्यकत्व।
आठ पहर सिमिटे रहैं, अपने ही माहीं। प्यारा वचन है: आठ पहर सिमिटे रहैं, अपने ही माहीं।
संन्यासी का अर्थ यही होता है कि जो कछुआ बन गया, कच्छप हो गया; जिसने अपनी सारी इन्द्रियों को भीतर सिकोड़ लिया। अब जो अपने में मस्त है। जिसकी सारी मस्ती अपने में है। जो अब मस्ती के लिए भिखारी नहीं है, किसी के सामने हाथ नहीं फैलाता। जो अपनी मस्ती के लिए किसी पर निर्भर नहीं है। जो मस्ती के लिए किसी के द्वार नहीं जाता। जिसकी मस्ती भीतर है। जिसकी मधुशाला अपने भीतर है। आंखे बंद की और डुबकी मार ली। आंख बंद की और रसपान किया। संसारी का अर्थ होता है: जिसकी मस्ती दूसरे में है। पत्नी को छोड़ कर भागने का कुछ अर्थ नहीं है। लेकिन अगर तुम्हारा सुख पत्नी में है, तो तुम संसारी हो। पत्नी पास हो कि दूर--इससे फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारा सुख अगर बेटे पुत्र-पुत्रियों में है, तो तुम छोड़ कर जंगल चले आओ, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी भावदशा तुम्हारे पीछे चलेगी, तुम्हारी छाया की तरह रहेगी। तुम कुछ और नया संसार बना लोगे।
जिसका सुख दूसरे में है, वह दूसरे को इकट्ठा कर लेगा।
इसलिए असली सवाल संसार से भाग जाने का उतना नहीं है, जितना जाग जाने
का है। और जागने का क्या अर्थ है? जागने का अर्थं सीधा-साफ है--मेरा सुख मेरे भीतर। मैं अपने सुख के लिए किसी पर निर्भर नहीं हूं। जिस दिन यह दशा गहरी होने लगेगी--कि मेरा सुख मेरे भीतर है; मेरे सुख का मैं मालिक, उसी दिन तुम पाओगे अब किसी पर निर्भरता न रही। अब किसी की गुलामी न रही।

और जहां निर्भरता है, वहां क्रोध है। इसलिए पति-पत्नी लड़ते हैं, संबंधी लड़ते है, भाई-भाई लड़ते हैं, मित्र-मित्र लड़ते हैं। कलह है। क्यों? क्या कारण होगा?
आखिर पति-पत्नी इतना क्यों लड़ते हैं? यह दुश्मनी बड़ी शाश्वत मालूम पड़ती है! इस लड़ने के पीछे बहुत बुनियादी बात है। बुनियादी बात यह है कि पति अनुभव करता है कि वह निर्भर है पत्नी पर। पत्नी अनुभव करती है कि वह निर्भर है पति पर। जिस पर हम निर्भर हैं, उसके साथ दोस्ती नहीं हो सकती; उस पर क्रोध आता हैं। जिस पर हम निर्भर है, वह हमारी गुलामी है। उसने हमें गुलाम बना लिया। उसके बिना हम नहीं हो सकेंगे, इससे भीतर क्रोध उठता है। स्वतंत्रता मनुष्य का आत्यंतिक मूल्य है, सबसे बड़ा मूल्य है। जहां भी स्वतंत्रता पर बाधा पड़ती है, वहीं क्रोध आता है, वहीं संघर्ष शुरू हो जाता है।
पति-पत्नी लड़ते रहेंगे, भविष्य में भी, क्योंकि उनका सुख एक दूसरे पर निर्भर हो जाता है।
तुमने बच्चों की कहानियां पढ़ी होंगी, जिन कहानियों में यह बात आती है
कि कोई राजा है और उसने अपने को बचाने को अपने प्राण तोते में रख दिए हैं।
अब अगर कोई तोते को मरोड़ दे, तो राजा मर जाता है। अब राजा अपना मालिक नहीं है। अब राजा को अपने से भी ज्यादा फिक्र तोते की है--कि कोई तोते को न मरोड़ दे।
तुमने अगर अपने प्राण तिजोरी में रख दिए, तो तुम्हें अपनी फिकर नहीं।
अब फिकर इतनी है कि कोई तिजोरी को न मरोड़ दे। अब तुम बैठे होसांप बन कर, तिजोरी परफन फैलाए। तुम्हें क्रोध भी आएगा, क्योंकि यह चौबीस घंटे क्या धंधा हो गया! तुम्हें नाराजगी भी होगी। कभी-कभी नाराजगी में तुम साधु-संत के वचन भी सुन आओगेकि धंधे में कुछ नहीं है; धन में कुछ नहीं है। क्षणभर को राहत भी मिलेगी और फिर आ कर फन मार कर अपनी तिजोरी पर बैठ जाओगे। बात भी जंचेगी कि ठीक कहता है संत, कि धन में कुछ नहीं है। लेकिन अब तुम्हारी बड़ी मुश्किल है; तुमने अपने प्राण धन में रख दिए हैं। अब वहां से प्राणों को निकालना बड़ा कठिन मालूम होता है।
तुमने अपने प्राण पत्नी में रख दिए हैं; अब पत्नी भाग जाय, किसी और के प्रेम में पड़ जाय, तो तुम परेशान हो, तुम बेचैन हो। तुम पहरा लगाए बैठे हो। इससे ईर्ष्या पैदा होती है, जलन पैदा होती है, संदेह पैदा होती है, शक-शुबहा पैदा होती है। हजार तरह के विचार मन में उठते हैं। और ये सारे विचार तुम्हारे बीच कलह पैदा करते हैं। और पत्नी भी इसी झंझट में है; उसने अपने प्राण तुम्हारे भीतर रख दिए हैं।
वे कहानियां अधूरी हैं। जिनमें कहा गया है कि राजा ने अपने प्राण तोते में रख दिए। तोते के संबंध में कोई कुछ नहीं कहते। तोते ने भी अपने प्राण राजा में रख दिए हैं। और तोता भी परेशान है कि कोई राजा को न मरोड़ दे अन्यथा हम मारे गए!
हम एक दूसरे में अपने प्राण रख देते हैं, इसको हम प्रेम कहते हैं। यही संसार है। फिर तुमने जितने ज्यादा लोगों में अपने प्राण रख दिए, उतनी ही मुसीबत होगी। मुसीबत बढ़ती जाएगी। क्योंकि जितना ज्यादा फैलाव हो जाएगा प्राण का, उतनी जगह रक्षा करनी होगी।
इसलिए जितना धन होगा, उतनी ही चिंता होगी। जितने संबंध होंगे, उतनी बेचैनी होगी। जितना पद होगा, उतनी परेशानी होगी।
संन्यासी का अर्थ हैः आठ पहर सिमिटे रहैं, अपने ही माहीं। अपने प्राण अपने भीतर, तो अपनी मालकियत अपने हाथ में। इसलिए संन्यासी को स्वामी कहते हैं। स्वामी यानी मालिक अपना मालिक। अपनी मालकियत किसी को नहीं देता। इसका यह मतलब नहीं है कि तुम घर से भाग जाओ। घर से भाग जाने से कुछ न होगा। घर में प्राण मत रखो। पत्नी को छोड़ कर चले जाओ, यह मतलब नहीं है। लेकिन पत्नी में प्राण रखने की जरूरत नहीं है। पत्नी को अपने भीतर सिमटने दो, तुम अपने भीतर सिमटो। रहो साथ-साथ, फिर भी स्वतंत्र--मुक्त।

खलिल जिब्रान ने कहा हैः जहां वास्तविक प्रेम होता है, वहां लोग साथ-साथ होते हैं, लेकिन मुक्त। वे ऐसे होते हैं, जैसे मंदिर के खंभे; एक ही छप्पर को सम्हाले, लेकिन दूर-दूर खड़े होते हैं। पास नहीं आ जाते सब। एक दूसरे में गलबांही नहीं कर देते। नहीं तो मंदिर गिर जाए। मंदिर के खंभे दूर-दूर खड़े होते हैं--एक ही छप्पर को सम्हाले।
लेकिन दूरी रहे, फासला रहे, स्वतंत्रता रहे; तुम अपने मालिक रहो। तुम अगर किसी को प्रेम करते हो, तो उसका एक ही अर्थ हो सकता है कि तुम उसको भी अपना मालिक बनाओ। तुम अपने मालिक बनो, उसको अपना मालिक बनाओ, कोई यहां मालकियत न खोए।
और जब तुम सुख चाहो, तो भीतर जाओ। यह संसारी के विपरीत यात्रा है। संसारी जब भी सुख चाहता है, बाहर जाता है।
तुमने देखाः संसारी को दुख मालूम होता है, वह कहता हैक्या करें? सिगरेट पीएं। रेडिओ चलाएं। क्लब चले जायें? होटल हो आयें। सिनेमा में जा बैठें। वेश्या घर चले जायें। शराब पी लें। क्या करें? बेचैनी मालूम हो रही है।
जब संसारी को बेचैनी मालूम होती है, तो बाहर भागता है। फिर वह बाहर कहां भागता है, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वह चाहे दिल्ली जाए और चाहे जगन्नाथपुरी जाए, कुछ फर्क नहीं पड़ता।
बाहर भागता है संसारी। वह कहता हैः कहीं जाएं, जहां चैन मिले। उसका शरण-स्थल बाहर है।
संन्यासी कौन है? वह जब अनुभव करता है बेचैनी, थकान, तो अपने भीतर चला जाता है।
झेन कथा हैः
एक संन्यासी को निमंत्रित किया है। जापान के एक सात मंजिले भवन में
वे बैठे हैं। शिष्य और संन्यासी भोजन कर रहे हैं। अचानक भूकंप आ गया है। सारा भवन कंपने लगा। लकड़ी का भवन है। भाग-दौड़ मच गई। सारे मेहमान भागे। गृहपति भी भागा-भागा था, तब उसे ख्याल आया कि संन्यासी को बुलाया था, उसका क्या हुआ! लौट कर देखा, तो वह संन्यासी आंख बंद किए बैठा है। कुछ ऐसी अपूर्व शांति थी उस संन्यासी के पास, उस भूकंप में, कुछ ऐसी अपूर्व ऊर्जा थी। उस कंपन के क्षण में, जहां सब तरफ मौत का तांडव हो रहा थाः मकान गिर रहे थे; लोग भाग रहे थे; चीख-पुकार मची थी, वहां वह एक अकेला आदमी ऐसा निर्वात, ऐसा शांत, ऐसा अकप बैठा था कि गृहपति को लगा कि इस क्षण में भाग जाना, मेहमान को छोड़कर, बड़ा अशोभनीय होगा। तो वह भी हिम्मत कर के उसके पास बैठ गया।
कंप रहा है, घबड़ा रहा है, क्योंकि सात मंजिल ऊपर मकान पर बैठे हैं। अगर मकान गया, तो गए। लेकिन हिम्मत कर ली, जोखम उठा ली। उठाने जैसी थी जोखम, कुछ अपूर्व घट रहा था; कुछ अनहोना घट रहा था। इस आदमी को क्या हुआ है! जब सब भाग गए हैं, तो यह चुप यहां बैठा है?

फिर भूकंप चला गया। संन्यासी ने आंख खोली। जहां बात टूट गई थी। भूकंप
के आने से, वहीं से बात शुरू कर दी।
उस मेजवान ने कहाः क्षमा करे; मैं तो भूल ही चुका कि क्या बात पहले होती थी। अब प्रसंग भी याद नहीं है। अब मेरी उत्सुकता भी उस बात में नहीं है। अब तो कुछ और बात पूछनी है। वह यह कि इस भूकंप का क्या हुआ? आप भागे नहीं?
संन्यासी हंसने लगा। उसने कहा, भागे तो हम भी। हम भीतर की तरफ भागे; लोग बाहर की तरफ भागे; बस, इतना फर्क है।
लेकिन लोगों के भीतर तो कुछ है नहीं, जहां वे भाग जायें। वहां उन्होंने शरण-स्थल बनाया ही नहीं।
फिर लोगों का भागना गलत है, वह संन्यासी कहने लगा। क्योंकि भूकंप यहां है, भाग कर कहां जाओगे? वहां भूकंप है। सात मंजिल से छठवीं मंजिल पर जाओगे; पांचवी मंजिल पर जाओगे; भूकंप वहां भी है। बाहर तो भूकंप है ही, भाग

कर कहां जाओगे? मौत सब जगह खड़ी है। आज नहीं कल; कल नहीं परसों, मौत दबोच ही लेगी। मैं ठीक जगह भागा। मैं ऐसी जगह भागा, जहां मौत नहीं है, जहां अमृत का वास है। मैं अपने भीतर सरक गया।
वह संन्यासी कहने लगा, अगर भागना ही हो, तो भीतर भागना। वहां परम सुरक्षा है, क्योंकि वहां परमात्मा है।
आप पहर सिमिटे रहैं, अपने ही माहीं। वैर प्रीत उनके नहीं, नहिं वाद-विवादा।
न तो बैर है, न प्रीत है। वे तो साथ ही साथ चलते हैं। और जब बैर और प्रीत दोनों चले जाते हैं, तो जिसका जन्म होता है, उसको ही प्रेम कहो। उसे बुद्ध ने करुणा कहा। महावीर ने अहिंसा कहा। जीसस ने प्रेम कहा। नाम कुछ भी दो। लेकिन जब बैर और प्रीत दोनों चले जाते हैं, तभी तुम्हारे भीतर जो शेष रहता है, वही प्रेम है।
पर वह प्रेम बड़ा अनूठा है। वह संबंध नहीं है। वह निर्भरता नहीं है। वह किसी तरह की आसक्ति नहीं है, लगाव नहीं है, परिग्रह नहीं है। वह प्रेम तो सिर्फ तुम्हारे भीतर जो अहर्निश नाद बज रहा है, उस नाद को बांटना है। वह प्रेम तो तुम्हारे भीतर जो अमृत बरस रहा है, उस प्रेम में दूसरों को साझीदार बनाना है। वह प्रेम तो तुम्हारे भीतर जो प्रकाश जला है, उनके लिए जो अभी अंधेरे में भटक रहे हैं, राह बताना है। वह प्रेम अनुकम्पा है।
बैर प्रीत उनके नहीं, नहीं वाद-विवादा। और जो भीतर पहुंच कर अपने को जान लिया, उसके जीवन में वाद-विवाद समाप्त हो गया। जान ही लिया, तो अब क्या वाद, क्या विवाद?
सब वाद-विवाद न जानी अवस्था का है। अंधा आदमी पूछता हैः प्रकाश है या नहीं? और वाद-विवाद करता है। बहरा आदमी पूछता है कि ध्वनि होती है या नहीं; और वाद-विवाद करता है। लेकिन जिसमें घ्वनि जान ली, जान ही ली, अनुभव में उतर आई... । और जिसने आंख खोली, जगमगाती रोशनी देख ली, जो उस देदिप्यमान प्रकाश से स्वंय देदिप्यवान हो गया, अब क्या वाद-विवाद है!
संत ने जान ही लिया; अब कोई प्रमाण की जरूरत नहीं है। संत स्वंय प्रमाण है। संत कुछ तर्क नहीं देता ईश्वर के पक्ष में। कोई तर्क हो भी नहीं सकते।
तर्कं के साथ एक खूबी है। तर्क बिल्कुल अंधा होता है। तर्क अज्ञानी में होता है। और तर्क के साथ एक मजा भी है कि जितना तर्क पक्ष में दिया जा सकता है, उतना हो तर्क विपक्ष में दिया जा सकता है। ठीक उतना ही समतुल; इसलिए तर्क से भी कोई बात सिद्ध नहीं होती। तर्क पक्ष में भी उतना ही बोलता है, जितना विपक्ष में बोलता है।
इसलिए तर्क से कुछ भी सिद्ध नहीं होता कि सत्य है या नहीं। सदियां हो गयीं, कितने दार्शनिक चिंतन और विचार और मनन और तर्क और विवाद करते रहे और शास्त्रार्थ करते रहे, कुछ भी सिद्ध नहीं हुआ।
तर्क समान रूप से बलशाली हैं पक्ष और विपक्ष दोनों तरफ। इसलिए तर्क
से कभी कोई निष्पत्ति हाथ नहीं लगती। जैसे दो बराबर शक्ति के लोग मल्ल युद्ध करें, तो कोई कभी जीते नहीं, जीत न सके, ऐसी स्थिती तर्क की है।
एक शिकारी ने खूब ऊंचे उड़ते हुए बगुले को मार गिराया। पास ही खड़े एक बुजुर्ग दार्शनिक यह सब देख रहे थे। बड़े तर्कशास्त्री थे। उन्होंने यह देख कर शिकारी से कहा, तुमने यह गोली यों ही बेकार कर दी।
शिकारी ने गोली मार कर बगुले को गिरा दिया है और तर्कशास्त्री कह रहा है: तुमने यह गोली यूं ही बेकार कर दी!
कैसे? शिकारी ने चौक कर पूछा। बुजुर्ग तार्किक ने कहा, इतनी उंचाई से गिर कर यह बगुला तो वैसे ही मर गया होता। यह एक पहलू!
एक दूसरा शिकारी है। बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई है। क्योंकि उस शिकारी ने बड़ी खबर कर रखी है कि वह बड़ा अदभुत शिकारी है; कभी चुकता ही नहीं। तो पूरा गांव इकट्ठा हो गया है। उसने अपनी बंदुक तानी। गोली छूटी। आवाज हुई। आकाश में कम से कम बीस बगुले उड़ रहे थे, एक भी न गिरा। लोग चौंक कर रह गए। और

मालूम है शिकारी ने क्या कहा! शिकारी ने कहाः अरे, देखो-देखो चमत्कार; मरा हुआ बगुला उड़ रहा है!
यह दूसरा पहलू है। लेकिन तर्क दोनों तरफ काम आ सकता है।
देखो, चमत्कार, मरा हुआ बगुला उड़ रहा है! शिकारी यह मान नहीं सकता है
कि उसकी गोली लगी नहीं है। तर्कशास्त्री यह मान नहीं सकता; तर्कशास्त्री कहता है कि यह तो इतने ऊपर से गिरता तो वैसे ही मर जाता। इसमें गोली की क्या जरूरत थी?
एक आदमी दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर होगा, अपने बेटे को स्कूल में भरती कराने गया। और बेटे को शिक्षा देता था कि सीख मुझसे। तर्क सीख; विचार सीख, विवाद सीख। पहले से ही बेटे को तैयार कर रहा था। जब स्कूल में भरती कराने गया, तो मास्टरजी ने उससे पूछा, क्या यह बच्चा आपका है? जी, आपका ही है, उसने कहा। मास्टरजी ने फिर लड़के से पूछा कि ये पिताजी आपके हैं? लड़के ने कहा, जी, आपके ही हैं। लड़के ने तपाक से उत्तर दिया।
तर्क अंधा है और तर्क अनिर्णायक है। तर्क के जाल में जो पड़ा, वह संसार
से मुक्त नहीं हो पाता। क्योंकि तर्क में निष्पत्ति नहीं है। अनुभव से मुक्ति है।
इसलिए ज्ञानी कहते हैः विचार नहीं; ध्यान। इसलिए ज्ञानी कहते हैः तर्क नहीं; अनुभव। इसलिए ज्ञानी कहते हैः शास्त्रार्थ नहीं; प्रयोग, योग, समाधि।
आठ पहर सिमिटे रहैं, अपने ही माहीं।
बैर प्रीत उसके नहीं, नहीं वाद-विवादा।
रूठे-से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा
यह वचन बड़ा प्यारा है।
रूठे-से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा। रूठे-से--इस पर ख्याल करना उदासीन नहीं कहा है। उदासीन-से इसमें सारी क्रांति भरी है
उदासीन तो वह है, जो भाग गया, जिसने संसार छोड़ दिया। जो यहां टिकता नहीं। जो कहता है: यहां खतरा है; मैं चला। लेकिन खतरे का मतलब ही यह होता है कि अभी आशा है, वासना है, आकांक्षा है।
खतरा क्या है? धन पास रखा है, अगर तुम्हारे भीतर धन की आकांक्षा नहीं,
तो खतरा क्या है? धन पास रखा रहे। तुम धन पर पालथी मार कर बैठे रहो। क्या खतरा है? लेकिन तुम घबड़ा रहे हो। ये सोने-चांदी के ठीकरों से तुम ऐसे घबड़ा रहे हो, जैसे सांप-बिच्छू चल रहे हैं। ये सांप-बिच्छू सोने-चांदी में नहीं हैं। ये सांप-बिच्छू तुम्हारे भीतर हैं। ये तुम्हारी वासनाएं तुम्हें डरा रही हैं कि अगर यहां रहे और मौका मिला, तो कहीं ऐसा न हो कि तुम गठरी बांध लो। अगर लोग देखते न हुए, अगर ऐसा क्षण आया कि पकड़ाने का कोई डर नहीं है, तो तुम्हें पता है कि तुम डोल जाओगे। भय वहां है। भय तुम्हारे भीतर से आ रहा है।
तुम्हारी वासना कंप रही है। तुम्हारी वासना कह रही हैः छोड़ो भी यह बकवास। यह बातें त्याग इत्यादि की; यह फकीरी; और यह अजब की फकीरी; यह मौका न चूको। फिर कर लेना फकीरी। इतना हाथ लगता है, इस पर तो हाथ मार ही लो, इसको तो भोग ही लो। फिर देखेंगे; फकीरी कहां जाती है? कल कर लेना, परसों कर लेना; जल्दी भी क्या है? और कोई देखने वाला नहीं; पकड़े जानेवाले नहीं; कोई पुलिस नहीं दिखाई पड़ती; कोई कानून का डर नहीं है; रही भगवान की बात! माफी मांग लेना। वह तो करूणासागर है। उसने तो बड़े-बड़े पापियों को तरा दिया, तो तुम को भी तरा देगा। और फिर एक छोटी सी भूल! कोई ऐसी बड़ी भूल नहीं कर रहे हो। और फिर इस धन से तुम किसी का नुकसान थोड़े ही करोगे। मंदिर बनाओगे, धर्मशाला बना दोगे। ऐसी वासनाएं उठेंगी। घबड़ाहट आती है। तुम भागते हो।
पत्नी या स्त्री में थोड़े ही डर है; पुरूष में थोड़ ही... पति में थोड़े
ही डर है। तुम्हारे भीतर छिपी वासना है। वासना कहती हैः अगर अवसर मिला तो तुम चूक न सकोगे; तुम डोल जाओगे; तुम उत्तेजित हो जाओगे। इसलिए मौका न दो। दूर रहो। इतने दूर रहो कि मौका भी हो; भीतर वासना भी जगी हो, तो भी स्त्री मौजूद न होगी, तो क्या करोगे। आएगी वासना, चली जाएगी। मगर यह कोई बात नहीं

हुई। यह दमन हुआ। यह पलायन हुआ; इससे कोई सौंदर्य का जन्म न होगा। इससे तुम और रूग्ण और विक्षिप्त हो जाओगे।
इसलिए वचन चरणदास का बड़ा प्यारा है रूठ-से जग में रहैं; रहो तो जग में ही, मगर रूठे-से। रूठ नहीं गए बिल्कुल। एकदम भाग ही नहीं खड़े हुए आंख बंद कर के--कि पीछे लौट कर नहीं देखा। रहो यहीं रूठे-से। कोई रस न रखो। दूर-दूर, जागे-जागे। स्थितियां तो जैसी हैं--रहने दो। तुम अपने को बदलो। परिस्थिति मत बदलो, मनःस्थिति बदलो।
रूठे-से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा। और जब तुम बाहर के प्रति थोड़े रूठे-रूठे रहोगे, अलग-थलग--तब तुम अनहद का नाद सुन सकोगे। क्योंकि दृष्टि भीतर जाएगी; कान भीतर जायेंगे। इंद्रियां जो बाहर उलझी हैं, जब बाहर नहीं उलझी होतीं, तो भीतर जाती हैं।
इंद्रियों के भीतर दो संभावनाएं हैंः बाहर जाना और भीतर जाना चूंकि हमने बाहर जाने का ही उपयोग किया है, हमें उनके भीतर जाने का उपयोग पता नहीं है। इंद्रियां जैसे बाहर को सुन सकती हैं, ऐसे ही बाहर से बंद हो जाएं, भीतर सिकुड़ जायें, तो भीतर को सुनती हैं। और जब भीतर को सुनती हैं, तभी जीवन का आनंद, तभी जीवन का उत्सव... ।
रूठे-से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा। और वहां एक संगीत बह रहा है अनहद; जिसकी कोई हद नहीं, जिसकी कोई सीमा नहीं। वहां एक संगीत बह रहा है सदा से, जिसमें एक डुबकी लग जाए, तो सब मिल गया। जन्मों-जन्मों की प्यास बुझ गई। जिसमें एक डुबकी लग जाए, तो फिर कभी प्यास नहीं लगती। तृप्ति आ गई, संतृप्ति आ गई।
और ऐसा मनुष्य जब कुछ बोलता है: जो बोले सौ हरिकथा। ऐसा मनुष्य कुछ भी बोले, तो हरिकथा हो जाती है। उसके भीतर का नाद... । इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि वह क्या बोलता है। ऐसा मनुष्य कुछ भी बोले, तो हरिकथा हो जाती है। जिसके भीतर अनहद नाद बज रहा है और जो अपने नाद को सुन रहा है, जिसकी दृष्टि बाहर पर अटकी नहीं रह गई, जिसकी दृष्टि बाहर से मुक्त हो गई है, जो अपने घर लौट आया है... ।
रूठे-से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा।
जो बोलैं, सौ हरिकथा नहिं मौनै राखैं
अगर बोलें, तो हरिकथा हो जाती है। अगर न बोलें, तो सत्संग हो जाता है।
बोलें तो प्रभु की तरफ इशारा, न बोलें तो प्रभु की तरफ इशारा।
जो बोलैं सौ हरिकथा, नहिं मौनै राखैं।
मिथ्या कडुवा दुरबचन कबहूं नहीं भाखैं
जीव-दया अरू सीलता, नख सिख सूं धारैं।
समग्रता में उनके जीवन में प्रेम और शील का आगमन हो जाता है। नख सिख सूं धारैं... । ऐसा नहीं कि कहीं खोपड़ी में थोड़ा-सा हिस्सा है, उसमें सोच रहेजीव-दया। ऐसा नहीं कि कोई थोड़ा सा विचार है। आपूर-बाढ़ आ गई; पूरे डूब गए।
जीव-दया अरू सीलता, नख सिख सूं धारैं।
पांचो दूतन बसि करैं, मन सूं नहिं हारैं
और यह जो पांच दूतनें है... । शब्द समझना। प्यारा शब्द उपयोग किया है। शत्रु नहीं कहा है इंद्रियों को; दूत कहा है। ये संसार का भी काम कर देती हैं। और तुम अगर भीतर मुड़ो, तो परमात्मा का भी काम कर देती हैं। ये सिर्फ दूत हैंचिट्ठीरसा। कोई दुश्मनी का पत्र लिखता है, तो वह भी आ कर डाल जाता है। कोई प्रेम काम पत्र लिखता है, वह भी आ कर डाल जाता है।
ये तो सिर्फ दूत हैं; इन पर नाराज मत हो जाना। इन्द्रियों से लड़ने मत लगना। इंद्रियों को काटने मत लगना। इनसे नाराज होने की जरूरत नहीं। ये तो मात्र दूत हैंसंदेश-वाहक। तुम इस संसार में रस रखते हो, तो संसार की खबरें ले आते हैं। तुम संसार में रस नहीं रखते, तुम्हारा रस प्रभु में लगने लगा, तो प्रभु की खबर आने लगती हैं। यही आंखे प्रभु को देख लेती हैं। यही कान प्रभु को सुन लेते हैं। यही हाथ प्रभु के चरण छू लेते हैं। इसलिए दूतशत्रु नहीं, शत्रुभाव नहीं।

पांचो दूतन बसि करैं, मन सूं नहिं हारैं। बस, एक ही ख्याल रखना। अगर चाहते हो कि परमात्मा तुम में जीत जाय, तो मन को न जीतने देना।
मन का अर्थ है: बाहर ले जाने वाली आकांक्षा। मन यानी बहिगर्मन। और कुछ अर्थ नहीं होता। मन वही, जो तुम्हें बाहर ले जाता है। बाहर जाने की सारी आकांक्षाओं की इकट्ठे जोड़ का नाममन। जब तुम बाहर नहीं जा रहे हो, बाहर नहीं जाना चाहते हो, बाहर जाने की आकांक्षा तिरोहित हो गई...
रूठे-से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा। जब तुम भीतर का नाद सुनने लगे,
और बाहर से रूठ-से गए... । ख्याल रखना--रूठे-से। रूठ ही मत जाना। इतना काफी है कि रूठ गए। भागने की कोई जरूरत नहीं है। भागने में भय है। उदासीन होने की जरूरत नहीं है। उदासीनता का अभिनय ही कर देना, तो काफी है। उतने में ही भीतर का नाद सुनाई पड़ने लगेगा।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को भगोड़ा नहीं बनाना चाहता। कहता हूंः जम कर रहना। घर में रहना। धन-दौलत, काम-धामकुछ भी छोड़ना मत। लेकिन उस सब के बीच भी ऐसे रहना कि अछूते। चलना जल में और जल का पैरों का मत छूने देनाकमलवत्। रूठे-से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा।
जैसे ही यह अनहद नाद सुनाई पड़ने लगता है, फिर मन की कोई गती नहीं रह जाती। मन तभी तक शक्तिशाली है, जब तक तुमने सच्चे को नहीं चखा। तो मन झूठे की आशा दिलाए जाता है। जब सच्चे को चख लिया, तो फिर मन का क्या चलेगा?
मन कहता हैः चलो, और धन इकट्ठा कर लें, क्योंकि बड़े निर्धन हैं। जब तुमने भीतर का धन पा लिया, फिर तुम मन की क्या सुनोगे? तुम कहोगे कि पागल हुआ है। निर्धन और मैं?
अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैये। किससे बातें कर रहा है? मन कहता है कि चलो, जरा किसी बड़े पद को पा लें। तुम कहोगे कि क्या बातें कर रहा है? होश; ठिकाने आ। मैं तो परम पद पर बिराजा हूं। परमात्मा मिल गया, अब और कौन पद! इसके आगे और कौन पद?
अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैये।
प्रेम लगा जगदीश का, कछु और न चैये
सुख-दुख दोनों के परे, आनंद दरसावैं।
जहां जांहि अस्थल करैं, माया पवन न जावै
सुख-दुख दोनों के परे, आनंद दरसावैं। आनंद शब्द बहूमूल्य है। उसका अर्थ सुख नहीं होता। उसका अर्थ महासुख भी नहीं होता। क्योंकि सुख में तो दुख सम्मिलित है। सुख में तो दुख पीछे ही लगा है। दुख तो सुख की छाया की तरह पीछे लगा है।
जैसे बड़े पहाड़ों के पास बड़ी खाइयां होती हैं, ऐसे बड़े सुख के पास बड़ा दुख होता है। छोटे सुख के पास छोटा दुख होता है। मात्रा बराबर होती है। मात्रा में कभी भेद नहीं पड़ता। जैसे बड़े वृक्ष को लम्बी जड़ें भेजनी पड़ती हैं। जमीन में, ऐसे ही बड़े सुख को बड़े दुख की तैयारी करनी पड़ती हैं। इसलिए तो तुम गरीब आदमी को ज्यादा दुखी नहीं देखते। और तुम हैरान भी होते हो कि बात क्या है। गरीब आदमी ज्यादा दुखी क्यों नहीं है? अमीर ज्यादा दुखी दिखाई पड़ता है, क्योंकि अमीर ज्यादा सुखी है इसलिए। गरीब कम सुखी है, इसलिए कम दुखी है। मात्रा बराबर रहती है। दोनों में संतुलन रहता है। तुम्हारे पास दस रुपये हैं और खो जाएं, तो तुम्हें कोई करोड़ रुपये खोने का थोड़े ही दुख होगा। दस ही रुपये खोने का दुख होगा। अब जिसके पास करोड़ खो जाए, तो उसे करोड़ खोने का दुख होगा। जितना होगा, उतना खोने का दुख होगा।
तुम्हारे पास एक कुरूप-सी स्त्री है और खो जाए, तो उतना ही दुख होगा, जितना थी।
मुल्ला नसरुद्दीन ने शादी की, तो गांव की सबसे कुरूप स्त्री से शादी
कर ली। कोई उस स्त्री से तैयार ही नहीं था, शादी करने को। लोग बड़े चकित थे। और मुल्ला के पीछे सुंदर स्त्रियां पड़ी थीं और लोगों ने पूछा, तू पागल है मुल्ला! इतनी सुंदर स्त्रियां तेरे पीछे पड़ी हैं। धन है, दौलत हैसब है

तेरे पास। एक नहीं चार विवाह करता; यह कुरूप औरत तूने कैसे खोज ली? इसको तो कोई मिलता ही न था।
मुल्ला ने कहा कि इसके पीछे राज है। अगर यह औरत खो जाय, तो कभी दुख न होगा। खुशी ही होगी; चित्त में बड़ी प्रसन्नता आएगी कि चलो, बचे। मुसलमानों में रिवाज है कि जब पत्नी पहली दफा घर आती है, तो पति से पूछती है कि यह जो बुरखा मैं डाले हूं, यह किन-किन के सामने खोल सकती हूं? तो मुल्ला की पत्नी ने पूछा कि मुल्ला, यह बुरखा मैं किस-किस के सामने खोल सकती हूं? मुल्ला ने कहा, देवी, मुझे छोड़कर तू सबके सामने... ।
लोगों ने कहाः मुल्ला, यह तो तुम झंझट पाले ले रहे हो। मुल्ला ने कहा, इसमें झंझट क्या है। दिन भर तो हम दफ्तर में ही रहते हैं। और पत्नी जब आ जाती है घर में, तो लोग सांझ भी क्लब में बिताने लगते हैं, होटल में बिताने लगते हैं। रात जायेंगे, सो जायेंगे। देखना-दाखना किसको है! कोई उजाला रखकर थोड़े ही सोते हैं। अंधेरे कर के सो जाते हैं। मगर यह पत्नी खो जाए तो दुख न होगा।
तुम्हारे सुख-दुख बराबर होते हैं। जितना सुख चाहोगे, उतने दुख की संभावना, उतना दुख का भय।
आनंद क्या है? आनंद सुख या महासुख नहीं है। आनंद सुख-दुख दोनों से मुक्ति है। आनंद शांति की दशा है, जहां न दुख रहा, न सुख रहा; जहां केवल साक्षी रहा।
सुख में भ्रांति है कि मैं सुखी। दुख में भी भ्रांति है कि मैं दुखी। आनन्द में भ्रांति नहीं है, सिर्फ
साक्षीभाव है। सुख आया, तो साक्षी देखता है कि सुख आया। मैं देखने वाला। दुख आया; साक्षी देखता है कि मैं देखनेवाला। साक्षी दोनों ही स्थिति में दूर खड़ा देखता रहा है।
रूठे-से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा। तब आनंद का जन्म होता है। आनंद
है शांत भावतादात्म्य मुक्त। न सुख, न दुख; न रोशनी, न अंधेरा; न जीवन; न मृत्यु, न अपना, न पराया; न बैर, न प्रीति। आनंद है द्वंद्व से मुक्ति। आनंद है द्वंद्व का अतिक्रमण।
जहां जांहि अस्थल करैं, माया-पवन न जावै। कहते हैं चरणदासः ऐसा व्यक्ति, जो आनंद में विराजा है, जहां जाए, वहीं स्वर्ग है, वहीं तीर्थ। जहां बैठ जाए, वहीं आसन। जहां हो, वहीं मंदिर।
जहां जांहि अस्थल करैं... । जैसा हो, वैसी ही दशा में आसन में, सिद्धासन में विराजमान है। सिद्धासन भीतर लग गया। देह से इसका कोई संबंध नहीं है। वह जो चित्त भीतर शांत होकर साक्षी बन गया है, वहीं असली आसन है। वहां ठहर गए तुम, तो सब ठहर गया।
जहां जांहि अस्थल करैं... । तो फिर कोई पालथी मारकर, झाड़ों के नीचे बैठ
कर कुछ करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि तुम कितनी ही पालथी मारो, और कितने ही पैर दुखाओ, और कितनी ही कमर सीधी रखो, और रीढ़ सीधी रखो भीतर अगर मन दौड़ रहा है, तो संसारी मौजुद है। शरीर बैठा रहेगा मूर्तिवत, और मन भागा रहेगा सारे संसार में; दूर-दूर यात्रा करता रहेगा। शरीर को रोकने की बात नहीं है।
जहां जांहि अस्थल करैं, माया-पवन न जावै। और जिनके भीतर ऐसा साक्षीभाव आ गया, अब वहां हवाएं
नहीं पहुंचतीं माया की, वासना की, कल्पना की, आकांक्षाओं की। वहां ज्योति अब निर्धूम जलती है, निष्कंप जलती है।
हरिजन हरि के लाडिले, कोई लहै न भेवा।
सुकदेव कही चरनदास सूं कर तिनकी सेवा।।
और चरणदास कहते हैं: मेरे गुरु ने कहा हैः हरिजन हरि के लाडिले... ।
जहां कोई मिल जाए हरि का प्यारा, फिर कोई फिकर न करना, कुछ भेद न करना कि हिंदू है, कि मुसलमान है, कि ईसाई है, कि जैन है, कि ब्राह्मण है, कि शुद्र है।

हरिजन हरि के लाडिले, कोई लहै न भेवा। फिर कोई भेद करना ही मत। एक ही बात देख लेना कि हरि विराजमान है? भीतर प्रभु का पदार्पण हुआ है? ज्योति जली है?
सुकदेव कही चरणदास सूं, कर तिनकी सेवा। गुरु ने, चरणदास कहते हैं, इतना ही कहा, बस संतों की सेवा कर। सदगुरुओं के चरण गह ले। उन्हीं के सहारे तिर जाएगा।
हिरदै माहीं प्रेम जो, नैनों झलके आय।
सोइ छका हरिरस-पगा, वा पग परसौ धाय।।
गुरु ने कहा हैः हिरदै माहीं प्रेम जो, नैनों झलके आय। और जब हृदय में प्रेम भरेगा, तो आंसुओं में बहेगा।
भक्ति का मार्ग गीला है, सूखा नहीं। वहां खूब हरियाली है। वहां आंसुओं की बरसा है। इसलिए खूब हरियाली है। खूब फूल खिलते हैं।
हिरदै माहीं प्रेम जो, नैनों झलके आए।
सोइ छका हरिरस-पगा, वा पग परसौ धाए।।
और जहां तुझे कोई मिल जाए, ऐसा प्रभु के प्रेम में दीवाना और मस्त, और प्रभु के प्रेम में आंसू बहाता, और प्रभु के प्रेम में रोता, और गाता और नाचता--सोइ छका... । उस मस्त को छोड़ना मत। वह ऐसा छक गया है, ऐसा भर गया है, ऐसा आकंठ हैकि उसके बाहर भी बहा जा रहा है प्रभु का प्रेम। सोइ छका हरिरस-पगा... । ऐसे हरिरस में पगे, छक गए मस्त को छोड़ना मत। वा पग परसौ धाय। उसके पैरों में पड़ जाना; उसके पैर कभी छोड़ना मत।
पीव बिना तो जीवना, जग में भारी जान।
उस प्यारे के बिना तो जीना बहुत भारी है। याद रख।
पीव बिना तो जीवना, जग में भारी जान।
पिया मिलै तो जीवना, नहीं तो छूटै प्रान
एक कस्त कर ले... । खोज तभी पूरी होती है, जब आखिरी दांव पर कोई अपने प्राण भी लगा देता है; जब कोई कहता है कि अब या तो मिलो या मैं मिटूं। अब मौत भली तुम्हारे बिना। लेकिन तुम्हारे बिना जीवन की अब कोई आकांक्षा नहीं है।
इस तरह गुजरे तेरे प्यार में जो क्षण गुजरे।
तपती दोपहर में जैसे कोई सावन गुजरे।।
वहां-वहां न कोई फूल मुस्कुरा पाया।
जहां-जहां से कि उस शोक से चरण गुजरे।।
गिरे जो उनकी नजर से वह फिर जीए ऐसे।

सरे बाजार में कोई लाश बे-कफन गुजरे।।
आज के दौर में जिंदा हैं इस तरह हम लोग।
जंग के शोर से जैसे कोई भजन गुजरे।।
उस समय याद हमारी भी जरा कर लेना।
फाग गाता हुआ जब द्वार से फागुन गुजरे।।
गम के हर दौर से गुजरे हैं इस तरह नीरज।
अंधेरी राह से जैसे कोई किरण गुजरे।।
इस तरह गुजरे तेरे प्यार में जो क्षण गुजरे।
तपती दोपहर में जैसे कोई सावन गुजरे।।
परमात्मा के बिना आदमी मुरदा-मुरदा है।
गिरे जो उनकी नजर से वह फिर जीए ऐसे।
सरे बाजार में कोई लाश बे-कफन गुजरे।।
परमात्मा के बिना आदमी मुरदा है, लाश है।
गुरु ने कहा है चरणदास कोः
पीव बिना तो जीवना, जग में भारी जान।
पिया मिले तो जीवना, नहीं तो छूटे प्रान।।
ऐसा कस्त, ऐसी कसम, ऐसा दांव, ऐसा जुआ कि या तो मिलो या मिटा दो; जिस घड़ी
भी ऐसा कस्त पूरा हो जाता हैसौ डिग्रीजरा भी हिचकिचाहट नहीं रह जाती, उसी

क्षण क्रांति घट जाती है। सौ डिग्री पर ही जैसे जल भाप बनकर उड़ जाता है, ऐसे ही सौ डिग्री जब दांव कोई लगाता है, तो आदमी खो जाता है और परमात्मा प्रकट हो जाता है।
वह विरहिन बौरी भई, जानत न कोउ भेद। और जब ऐसी सौ डिग्री की क्रांति घटती है... । वह विरहिन बौरी भई, जानत न कोउ भेद। फिर संसार नहीं समझ पाता कि क्या हो गया। संसार की भाषा के बाहर कुछ हो रहा है, संसार समझे भी तो कैसे समझे? संसार तो समझता है कि यह आदमी पागल हुआ। परमहंसों को लोगों ने पागल ही समझा है।
वह विरहिन बौरी भई, जानत न कोउ भेद।
अगिन बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद।।
उस प्यारे की तलाश में अगिन बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद। लेकिन जब कोई इतना दांव पर लगा देता है, तो वर्षा होती है; निश्चित होती है। इतना जो तपता है, इतना जो पुकारता है, तो वर्षा होती है।
वह विरहिन बौरी भई, जानत न कोउ भेद। घटना निश्चित घटती है।
हिरदै माहीं प्रेम जो, नैनों झलके आय।
सोइ छका हरिरस-पगा, वा पग परसौ धाय।
क्रांति तो निश्चित है, सिर्फ तुम तैयार होओ। इधर तुम राजी हुए कि परमात्मा सदा से राजी है; द्वार पर ही खड़ा है, तुम द्वार खोलो।
अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैये।
प्रेम लगा जगदीश का, कछु और न चैये।।
इस अजब फकीरी की खोज में निकलो। सुख-दुख के पार आनंद की तलाश करो।
तारों की रोशनी में
चमकते हुए हैं जर्रे
और चल रही है ठंडी
फिरदौस की हवायें
आओ अब मिल कर गाएं
लज्जत भरे तराने
सहरा की वुसअतों में
आवाज बन कर फैलें
और आरमां को छू लें
हम खूब-खूब बहकें
और खूब-खूब गायें
और खूब-खूब नाचें
तारों की रोशनी में
सहरा की वुसअतों में
दरिया की तेज लहरें
पेड़ों की नम्र छाओं
और हम है और तुम हो
और रेत के जर्रे
चमके हुए सितारे
और रोशनी की वुसअत
और आस्मां की रिकअत
और हम हैं और तुम हो
तारों की रोशनी में
चश्मे उबल रहे हैं
कलियां चटक रही हैं, मौसम बदल रहे हैं
और हम हैं और तुम हो।
जो दांव पर लगाने को राजी है, उसके लिए संसार में बस, परमात्मा और स्वंय का होना ही बचता है। यह सारा जगत् उस प्यारे के रूप में रूपांतरित हो जाता है। तब तुम नाचते हो प्रभु के साथ।

भक्ति का पहला अनुभव विरह; दूसरा अनुभव मिलन। तीसरा अनुभव विसर्जन। पहले रोओ, क्योंकि भटके हो। अभी आंसू उदास होंगे; अभी आंसू दुख, पीड़ा, विरह के होंगे।
अगिन बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद। लेकिन अगर रोए, हृदयपूर्वक रोए,
तो वही है भजन, वही है कीर्तन, वही पूजा, वही अर्चन। अगर रो लिए पूरे, तो जल्दी ही तुम पाओगेः क्रांति घटती है; मिलन शुरू होता है।
वह विरहिन बौरी भई, जानत न कोउ भेद। कोई दुसरा न समझ पाएगा, तुम्हीं जानोगे कि क्या घटा। तुम्हीं जानोगे, तुम्हीं पहचानोगेकि क्या घटा। कोई दूसरा न समझ पाएगा। या वे समझ पाएंगे, जो स्वयं भी वहां हैं।
सोइ छका हरिरस-पगा, वा पग परसौ धाय। इसलिए उनकी तलाश कर लेना। नहीं तो
कई बार ऐसा होता है कि मिलन भी एक क्षण को होता है और तुम वापस भटक जाते हो। क्योंकि सारी दुनिया तुम्हें पागल समझती है।
तो पागलों की जमात चाहिए। इसलिए संघ का मूल्य है। इधर जो मैं ये इतने संन्यासी निर्मित कर रहा हूं, उनका अर्थ है। पागलों की जमात चाहिए, ताकि तुम जब पागल होने लगो, तो कोई तुम्हारा स्वागत कर सके, कोई तुमसे कह सके: अजब फकीरी साहबी, भागन सूं पैये।
प्रेम लगा जगदीश का, कछु और न चैये।।
कि पहुंच गए तुम, कि पहुंचने लगे तुम! धन्यभागी हो तुम।
जमात चाहिए; संगत चाहिए जो कह सके अन्यथा तुम घबड़ा जाओगे। सारा जगत तो पागल कहेगा। कोई सहारा देने वाला चाहिए।
जब तुम्हारी आंखों से धाराएं बहने लगेंगी प्रेम की और मिलन की... । जब
तक विरह के आंसू हैं, तब तक तो कोई चिंता नहीं। संसार भी समझता है कि रो रहे हो। दुख के आंसु संसार भी समझता है। लेकिन जब आनंद के आंसु आने शुरू होते हैं, तब संसार की पकड़ के बाहर हुए।
हिरदैं माहीं प्रेम जो, नैनों झलके आय।
सोइ छका हरिरस-पगा, वा पग परसौ धाय।।
तब तुम उन मित्रों को खोज लेना, संगी-साथियों को खोज लेना, जिनके बीच बैठ क र तुम आनंद के आंसू रोओ और वे तुम्हारे धन्यभाग के गीत गाएं, वे तुम्हारा अभिनंदन करें। वे कह सकेंः बधाइयां।
तो मिलन दूसरा कदम; और तीसरा कदम--विसर्जन। पहले प्रभु से दूर-दूर हम; अंधेरी रात, अकेले। फिर प्रभु के साथ चांदनी रात और नृत्य और रास। और फिर एक घड़ी आती है, जब तुम तुम नहीं, प्रभु प्रभु नहीं; बूंद सागर में गिर गई या सागर बुंद में।
ये तीन कदम हैं भक्ति के। चरणदास के साथ इन कदमों को समझने की कोशिश करना।

आज इतना ही।

नहीं सांझ नहीं भोर
दूसरा प्रवचन

प्रश्नोत्तर

• प्रयास और प्रसाद का मिलन
• आंसुओं की अर्चना
• राख ही राख है
• प्रभु-प्रसाद की कुन्जी

पहला प्रश्नः एक धारणा है कि परमात्मा मनुष्य की देह धर कर अवतरित होता है। और दूसरी धारणा है कि मनुष्य का आत्यंतिक विकास परमात्मा में होता है। इसमें से कौन सी धारणा सत्य के ज्यादा करीब है?

पहली बात, कोई भी धारणा सत्य के करीब नहीं होती। धारणा-मात्रा सत्य से दूर होती है।
सत्य ऐसा है कि किसी धारणा में समाता नहीं; समा जाये, तो सत्य नहीं। धारणा तो छोटा सा आंगन है--और सत्य हैः विराट आकाश। न तो इस आंगन में समाता है; न उस आंगन में समाता है। ऐसा नहीं है कि झोपड़े के आंगन में नहीं समाता; राजमहल के आंगन में भी नहीं समाता। आंगन में ही नहीं समाता। जो समा जायेआकाश ही नहीं; जो न समाये वही आकाश है।
तो पहली तो बातः कोई धारणा सत्य के करीब नहीं होती। सभी धारणाएं सत्य
की तरफ इशारे हैं। जैसे मैं अंगुली से चांद को दिखाऊं; कोई दूसरा किसी और उपाय से चांद को दिखाए; कोई तीसरा किसी और उपाय से चांद को दिखाए। लेकिन सब उपाय चांद से दूर हैं। कोई उपाय चांद नहीं है। मेरी अंगुली चांद नहीं है।
और जो अंगुली को पकड़ लेगा, वह चांद से चूक जायेगा।
शब्द से सावधान रहना। धारणा तो शब्दों में होती है और सत्य मौन में। उनकी यात्रा विपरीत है।
शब्द से परिभाषा हो जाती है; लेकिन जिसे मौन में जाना हो, उसकी परिभाषा शब्द से कैसे होगी? जिसे शब्द को छोड़ कर जाना जाता हो, उसे शब्द में तुम कैसे भरोगे? इसलिए न तो हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन किसी की धारणा सत्य नहीं है। धारणा सत्य होती ही नहीं।
अब तुम पूछते होः कौन सी धारणा करीब है?
इसका मतलब यह हुआ कि कोई चीज सत्य के थोड़े ज्यादा करीब हो सकती है, कोई चीज सत्य से थोड़े ज्यादा दूर हो सकती है। इसका अर्थ हुआ कि कोई झूठ सत्य के ज्यादा करीब हो सकता है; एक झूठ सत्य से ज्यादा दूर हो जाता है। लेकिन तब तो दो झूठों में फर्क हो जाएगा। और झूठों में फर्क नहीं होता। झूठतो झूठ है।
या तो कोई चीज सत्य होती है या नहीं होती; करीब का सवाल ही नहीं है। करीब से करीब भी जो होगा, वह भी तो असत्य ही होगा! और सत्य आंशिक नहीं होता है; जब भी होता हैपूर्ण होता है।
सत्य के टुकड़े नहीं हो सकते। तुम ऐसा नहीं कह सकते कि मेरे पास आधा सत्य है; कि मेरे पास पाव सत्य है; कि मेरे पास तो तोला भर है! सत्य के टुकड़े नहीं होते; सत्य अखंड है। टुकड़े नहीं होते; विभाजन नहीं होते।
तो एक धारणा पास, एक धारणा दूर, तो इसका अर्थ होगाः एक धारणा में सत्य थोड़ा ज्यादा और एक धारणा में सत्य थोड़ा कम है! सत्य के खंड हो जायेंगे। और सत्य के खंड नहीं होते।
तो या तो सत्य होता हैया सत्य नहीं होता।
सभी धारणाएं असत्य हैं; उपयोगी हैं जरूर, लेकिन असत्य हैं। असत्य का
भी उपयोग है। और कभी-कभी समझदार आदमी हो, तो असत्य का उपयोग भी सत्य की तरफ जाने में कर ले सकता है।

जैसे एक सूफी कहानी है। एक आदमी घर लौटा बाजार से थका-मांदा और देखाः उसके घर में आग लग गई है। चार-दीवारी पर आग फैल गई है और उसके बच्चे भीतर खेल रहे हैं। स्वभावतः वह चिल्लायाः बच्चो, बाहर आ जाओ। छोटे बच्चे हैं, कोई पांच साल का, कोई चार साल का, कोई छह साल का। वह चिल्लाया कि बाहर आ जाओ; घर में आग लगी है। लेकिन बच्चे अपने खेल में मस्त हैं। उन्होंने अपने बाप की सुनी-अनसुनी कर दी। बाप भीतर जा भी नहीं सकता; आग खतरनाक है। शायद लौट भी न पाए बाहर। बाहर से ही चिल्ला सकता है।
अब बाप क्या करे? उसे सूझी, उसे ख्याल आया। बच्चों ने उससे कहा था कि
जब बाजार से आओ, तो खिलौना-गाड़ी ले आना। तो वह चिल्लाया कि अरे पागलो, कर क्या रहे हो! खिलौना-गाड़ी मैं ले आया हूं। ऐसा सुनते ही बच्चे भाग कर बाहर आ गए। बाप खिलौना-गाड़ी लाया नहीं है। यह बात सरासर झूठ थी। लेकिन झूठी खिलौना-गाड़ी ने बच्चों को आग से बचा लिया।
ऐसी ही धारणाएं हैं सब।
धारणा कोई भी सत्य नहीं है। जिन्होंने देखा कि तुम्हारे घर में आग लगी हैऔर तुम मशगूल हो खेलों में; और तुम अंधे हो, और तुम्हें आग की लपट दिखाई नहीं पड़तीं; जिन्होंने देखा कि तुम्हारा घर धू-धू कर जल रहा है और तुम्हें पुकारना चाहा और तुम्हें बचाना चाहा, उन्होंने कुछ खिलौनों की बातें कहीं। उन्होंने उन खिलौनों की बातें कहीं, जिनमें तुम्हारा रस है; क्योंकि तुम उन्हीं के कारण बाहर आ सकोगे।
सत्य तो कहा नहीं जा सकता। और सत्य कहा भी जाए, तो तुम समझ न पाओगे। तुम जहां हो, वहां तो झूठ पर ही तुम्हारी सारी पकड़ है। तुम जहां हो, वहां तो झूठ की भाषा ही समझ में आती है! तुमसे तो झूठ ही बोलना होगा।
सारे सदगुरूओं ने अनुकम्पा के कारण तुमसे बहुत सी झूठी बातें कही हैं। जैसे कि उस बाप ने कहा कि खिलौना-गाड़ी ले आया हूं।
फिर तुम ऐसे ना-समझ हो, कि बजाय घर के बाहर निकलने के तुम इस पर विवाद करते हो! बुद्ध ने एक बात कही थी, और महावीर ने दूसरी, और चरणदास ने तीसरी।
और जितने सदगुरु हुए, सब ने अलग-अलग बात कही। ब अलग-अलग बच्चों से बोले।
सभी बच्चों को अलग-अलग भाषा समझ में आती थी।
और तुम घर से तो बाहर नहीं निकलते... । न बुद्ध की सुन कर निकलते; न महावीर की सुन कर निकलते; न चरणदास की। तुम घर से तो बाहर नहीं निकलते। तुमने एक और मजेदार खेल शुरू कर दिया कि इनमें कौन ठीक है? किसकी धारणा ठीक है?
धारणाएं किसी की भी ठीक नहीं हैं। धारणा ठीक होती ही नहीं है। ठीक और धारणा का क्या लेना-देना! इनका कोई मिलन नहीं होता। धारणाएं तो तुम्हें पुकारने को हैं; धारणाएं तो तुम्हें संबोधित करने को हैं; धारणाएं तो तुम्हें मकान के बाहर खींच लेने को हैं। मकान के बाहर आते ही तुम समझ जाओगे कि असली सवाल धारणा के सच होने का नहीं; असली सवाल तुम आग में जले जाते थे तुम्हें बाहर बुला लेने का है।
ऐसा समझो कि तुमने कभी गुलाब के फूल न देखे हों; तुमने कभी कमल खिलते न देखे हों, तुम एक ऐसी दुनिया में रहे हो जहां कमल नहीं होते, जहां फूल नहीं होते, जहां फूल खिलते नहीं। तुमने हीरे-जवाहरात देखे हैं। तुम्हारी भाषा हीरे-जवाहरातों की है। मैं तुम्हें बुलाना चाहता हूं; कमल खिल गया है झील में; और मैं तुम्हें पुकारना चाहता हूं कि बाहर आ जाओ। सूरज निकला है। सुबह की ताजी हवा है। वृक्षों में गीत है। पक्षी उमंग से भरे हैं। मोर नाच रहे हैं। और कमल खिला है। और ऐसा कमल जो कभी-कभी खिलता है। लेकिन कमल शब्द तो तुम समझ न पाओगे। कमल तुम्हारे जीवन में कभी खिला नहीं; तुम्हारे अनुभव में कभी खिला नहीं।
कमल शब्द मैं चिल्लाता रहूं; तुम सुनते भी रहोगेऔर कुछ अर्थ प्रकट न होगा। कमल-कमल चिल्लाने से सिर्फ मेरी ना-समझी प्रकट होगी; तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति घटित न होगी। अगर मुझे तुम्हें बुलाना है, तो मुझे तुम्हारी भाषा बोलनी होगी। मुझे कहना होगा देखो, एक हीरा पड़ा है! और हीरा बिल्कुल नहीं है। लेकिन मुझे तुम्हें बाहर बुलाना हैकि तुम इस कमल को देख

लो; कि तुम इस कमल को देख कर कमल की तरह खिल जाओ; कि ऐसी ही तुम्हारी सुवास हो। कि तुम भी नाच सको--इस खूले सूरज के नीचे। कि तुम्हारे जीवन में भी पक्षियों का कलरव आ जाए। कि तुम्हारे जीवन में भी सौंदर्य हो, संगीत हो, प्रकृति का उल्हास हो। और तुम अपने बंद कमरे में बैठे हीरे-जवाहरात गिन रहे हो! कि चांदी के सिक्कों से अटके हो; कि अपनी तिजोड़ी पर पहरा दे रहे हो। मुझे अगर तुम्हें बुलाना है, तो तुम्हारी भाषा बोलनी होगी। यद्यपि बाहर आ कर तुम समझ जाओगे कि वह तो रही तरकीब; कमल खिला है। लेकिन फिर तुम नाराज न होओगे; तुम यह न बोलोगे कि झूठ क्यों बोले आप? तुम अनुगृहित होओगे।
जब शिष्य जान लेता है, तो जान लेता है कि गुरु जो बोला था, वह केवल उपाय था, विधि थी, धारणा थी; उसमें सत्य बिल्कुल नहीं था। लेकिन गुरु बोला अनुकंपा से। उसकी अनुकंपा सत्य थी। तुम्हें बचाने का उसका भाव सत्य था; लेकिन मजबूरी थी; तुम भाषा और बोलते थे। और उस भाषा में सत्य अंटता नहीं था। इससे धारणाएं पैदा होती हैं।
तो पहली तो बात, कोई धारणा न तो सत्य के करीब होती, न सत्य से दूर होती। धारणा और सत्य का क्या लेना-देना? इशारे हैं। इशारे समझो और बाहर आ जाओ। इस विवाद में मत पड़ो कि कौन द्वार ठीक है। जिस द्वार से निकल सको, निकल आओ। इस झंझट में मत पड़ो कि कौन द्वार ठीक है। बाहर निकल आना ठीक है। द्वार के ठीक होने से क्या होता है!
घर में आग लगी हो, तो तुम सामने के द्वार से निकलो, कि पीछे के द्वार से निकलो, कि खिड़की से छलांग मारो, कि छत से कूद जाओ, कि सीढ़ी लगाओ, कि रस्सी लटकाओ, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। ये सब बातें ठीक हैं; कर लो, जो बन सके। जो पास हो, वही कर लो। जो निकट मिल जाए, वही कर लो। कुरान पड़ी हो पास, तो कुरान से निकल आओ। और वेद पड़ा हो पास, तो वेद से निकल आओ। जो मिल जाये निकटचरणदास मिल जाएं, कि नानक मिल जाएं, कि कबीर, कि मीरा मिल जाए; जो पास मिल जाए, जो उपलब्ध हो चूको मत। उसी को द्वार बना लो। बाहर आ कर तुम पाओगेः एक ही सूरज, है और एक ही हवा है, और एक ही आकाश है। बुद्ध का, और महावीर का, और कृष्ण का, और क्राइस्ट का आकाश अलग-अलग नहीं है, यद्यपि उनकी पुकार अलग-अनग है; उनकी भाषा अलग-अलग है।
दूसरी बात, ये दो धारणाएं हैं; भारत में प्रचलित रही हैं। इन दो धारणाओं के आधार पर भारत में दो संस्कृतियां हैंएक ब्राह्मण और एक श्रमण। ब्राह्मण संस्कृति की धारणा है कि ब्रह्म का अवतरण होता है; कि परमात्मा उतरता है; जैसे कृष्ण उतरे, राम उतरे। अवतार का अर्थ होता हैः अवतरण जो उतरता है, जो ऊपर से नीचे आता है। यह धारणा बड़ी महत्वपूर्ण है। क्योंकि ऊपर और नीचे जुड़े हैं, अलग-अलग नहीं है, कटे-कटे नहीं हैं। जो ऊपर है, वही नीचे है। जो नीचे है, वही ऊपर है।
परमात्मा संसार से संयुक्त है; संसार के हृदय में धड़क रहा है; तुम्हारे श्वासों की श्वास है; दूर नहीं है; पास से भी पास है। और जब तुम पुकारोगे, और जब तुम्हारी पुकार सच होगी, प्रामाणिक होगी, तो उतरेगा। परमात्मा उतरता है। यह ब्राह्मण संस्कृति की धारणा हैकि परमात्मा उतरता है।
श्रवण संस्कृति जैन और बौद्ध उनकी धारणा है कि परमात्मा नीचे नहीं उतरता; आदमी की चेतना ही ऊपर चढ़ती है। ऊर्ध्वगमन होता है अवतरण नहीं। तीर्थकर अवतार नहीं हैं। महावीर कोई ऊपर से उतरे हुए परमात्मा नहीं हैं; नीचे से ऊपर गए, बढ़े विकसित हुए, ऊर्ध्वगामी हुए, खिले। यह जो नीचे से विकास ऊपर की तरफ हो रहा है, यह जो गति नीचे से ऊपर की तरफ हो रही है, उस पर श्रमण-धारणा निर्धारित है।
मतलब वही है कि ऊपर और नीचे भिन्न नहीं हैं। ऊपर नीचे उतर सकता है, तो नीचे जो है, वह ऊपर चढ़ सकता है। जुड़े हैं। एक ही सीढ़ी है। तुम उसी साढ़ी से तो ऊपर जाते हो, उसी से नीचे भी आते हो। दो सीढ़ीयां थोड़े ही रखनी पड़ती हैं! --कि एक ऊपर जाने के लिए और एक नीचे आने के लिए। एक ही सीढ़ी है।

और अगर परमात्मा नीचे आ सकता है, तो मनुष्य ऊपर जा सकता है। परमात्मा नीचे आता ही इसलिए है कि मनुष्य को ऊपर ले जा सके। मनुष्य ऊपर जाता ही इसीलिए है कि बिना ऊपर गए, बिना परमात्मा से मिले को संतोष नहीं है।
यह एक ही सीढ़ी है। और यह विवाद ऐसा ही है, जैसे आधा गिलास भरा रखा हो और तुम विवाद में पड़ जाओ कि आधा गिलास खाली है या आधा गिलास भरा है? दोनों बातें इशारा कर रही हैं। आधा गिलास खाली है ऐसा भी कहो, तो कुछ हर्ज नहीं है। आधा खाली है तब तुम यही तो कह रहे हो कि आधा भरा है। और जब तुम कहते होः आधा भरा है, तब तुम क्या कह रहे हो? तब भी तो तुम यही कह रहे ही कि आधा खाली हैं। इसमें विवाद कहां है?
ऊपर और नीचे दो नहीं हैं। फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि धारणाएं तो धारणाएं हैं। वास्तविक स्थिति इन धारणाओं में प्रगट नहीं होती। हम थोड़ा तीसरा उपाय करें। मैं तुम्हें अपनी धारणा दूं।
मेरी धारणा है कि यह आधी-आधी यात्रा हैः आधा आदमी को ऊपर जाना पड़ता है; आधा परमात्मा नीचे आता है; तब मिलन होता है। यह यात्रा इकतरफा नहीं है। एकतरफा यात्रा की बात मुझे जंचती नहीं।
हिंदुओं की धारणा हैः परमात्मा नीचे आता है। इसमें मनुष्य का अपमान
हो गया। मनुष्य ऊपर नहीं जा सकता, इसमें मनुष्य की बड़ी दीनता हो गई, दुर्गति हो गई। तो मनुष्य केवल भिखारी है, प्रार्थी है; प्रार्थना करता रहे! पुकारता रहे! इसमें मनुष्य की गरिमा न रही। इसमें मनुष्य का अहोभाव न बचा। तुमने मनुष्य के सौंदर्य को नष्ट कर दिया।
जैन और बौद्धों ने मनुष्य की गरिमा को बचा लिया। मनुष्य को तो बचा लिया, मनुष्य की गरिमा को प्रतिष्ठित कर दिया, पर परमात्मा की गरिमा नष्ट हो गई। उन्होंने कहाः मनुष्य ऊपर जा सकता है, यह मनुष्य की संभावना है। यह मनुष्य के भीतर छिपा हुआ बीज हैकि तुम परमात्मा हो सकते हो। यही तो घोषणा है महावीर कीकि आत्मा परमात्मा हो सकती है। कहीं और कोई दूसरा परमात्मा नहीं है। अप्पा सो परमप्पा, यह जो तुम्हारे भीतर छिपा है, यही खल जाए, तो परमात्मा हो जाता है। परमात्मा कोई और नहीं; भिन्न नहीं है।
बीज तुम्हारे भीतर है, अंकुरित हो जाए, वृक्ष बन जाए, फूल खिल जाएयही परमात्मा है। परमात्मा तुम्हारा ही विकसिततम रूप है तुम्हारा आत्यंतिक रूप है। कहीं जाना नहीं है खिलना है प्रफुल्लित होना है, विकसित होना है। तो जैन और बौद्धों ने मनुष्य को तो बहुत गरिमा दे दीपरमात्मा का पद दे दिया। मनुष्य से ऊपर कुछ भी न बचा। चंडीदास ने कहा हैः साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाहीं। सबसे ऊपर सत्य है मनुष्य का, उसके ऊपर कोई और सत्य नहीं। सुंदर है बात, लेकिन परमात्मा की गरिमा नष्ट हो गई।
तुम तो नीचे से ऊपर जाते हो, लेकिन अकेली हो गई यात्रा। कोई ऊपर से नीचे नहीं आता। अस्तित्व की कोई करुणा तुम पर नहीं बरसती। अस्तित्व का तुम्हें कोई सहारा नहीं मिलता। तुम्हारी यात्रा बड़ी अकेली, निर्जन की हो गई। तुम्हारी यात्रा में संग-साथ न रहा; भक्ति की संभावना न रही।
इसलिए जैन और बौद्ध भक्ति-शून्य पंथ हैं। और जहां भक्ति शून्य हो जाती है, वहां से रंग उड़ जाते हैं; सब धूसर-धूसर हो जाता है। वहां गीत पैदा नहीं होते, मृदंग नहीं बजती, वहां झांझ नहीं बजती। वहां घूंघर नहीं बांधे जाते। वहां सौंदर्य तिरोहित हो जाता है।
परमात्मा है ही नहीं; आदमी को अकेला अपना विकास कर लेना है! मिलन की कोई संभावना नहीं है; कहीं मिलने को कोई है ही नहीं। इसलिए प्रेम शून्य हो गया। तो तुम जैन और बौद्ध साधु को, संन्यासी को सूखा पाओगे। उसके हृदय में कोई गुंजन नहीं है। खाली पाओगे, रिक्त पाओगे। मरघट जैसा पाओगे।
तो जैन-धर्म जैसा धर्म सूख गया। इसीलिए फैला नहीं; फैल नहीं सकता। उत्सव का उपाय नहीं है। मिलन नहीं, तो उत्सव कहां? जैन लाख उपाय करें, तो भी रास तो नहीं रचा सकते। कृष्ण और गोपियां नृत्य तो नहीं कर सकती। कृष्ण कोई हैं ही नहीं।

रामकृष्ण से किसी ने पूछा कि ज्ञानी तो कहते हैं कि आदमी ही भगवान् हो जाता है, फिर भक्त क्यों जोर देते हैं कि हे प्रभु, हमें पास तो ले ले, मगर एक ही मत बना लेना।
पता है रामकृष्ण ने क्या कहा? रामकृष्ण ने कहाः ऐसा है मिश्री हो जाना अच्छा है, लेकिन मिश्री का स्वाद उससे भी अच्छा है। मिश्री हो जाना अच्छा है, लेकिन फिर मिश्री का स्वाद न मिलेगा। मिश्री खुद ही हो गए, तो अब स्वाद लेने वाला कहां बचा! तो रामकृष्ण ने कहाः भक्त कहता है हम मिश्री का स्वाद लेंगे; हमें परमात्मा नहीं होना है; हम परमात्मा के चरण पकड़ेंगे। हम मिश्री का स्वाद लेंगे।
तो भक्ति में तो एक संभावना है स्वाद की। ज्ञान बिल्कुल बेस्वाद है। जैन शास्त्र बेस्वाद हो गए; उनसे काव्य खो गया। उनमें गणित तो पूरा है; व्याकरण बहुत है, लेकिन काव्य नहीं है। और जहां काव्य नहीं है, वहां जीवन में फिर रस नहीं रस जाता; रस-धार नहीं बहती।
तो मनुष्य को तो बहुत गरिमा दे दी, लेकिन परमात्मा के खो जाने से मनुष्य के उत्सव की संभावना खो गई। तो मीरा नाच सकती है; महावीर तो नंगे खडे रह जाते हैं; नाच नहीं सकते। नाचें किसलिए! नाचने का कोई उपाय नहीं है। महावीर एकाकी रह जाते हैं; अकेले रह जाते हैं।
यह आकस्मिक नहीं है कि महावीर ने उस परम अवस्था को कैवल्य कहा है।
कैवल्य का अर्थ है--अकेले बिल्कुल अकेले; निपट अकेले; शाश्वत के लिए अकेले। वहां फिर कैसे तो लय उठे; कैसे गीत जगे!
तो मनुष्य को गरिमा दी, लेकिन मनुष्य सूखा छूट गया।
हिंदुओं ने मनुष्य को उतनी गरिमा नहीं दी, परमात्मा को गरिमा दी। मनुष्य अपमानित हुआ; वह बात बुरी हो गई। लेकिन परमात्मा उतरता है; तुम्हें लेने आता है; तुम्हें खोजने आता है। तुम अंधेरे में छोड़ नहीं दिए गए हो; कोई रख वाला है; कोई गड़रिया है, वह तुम्हें अंधेरे में खोजेगा। तुम्हें सिर्फ अपने पर ही निर्भर नहीं होना है; तुम उस पर भी भरोसा कर सकते हो। श्रद्धा का उपाय है। आशा है।
तुम कितने ही पाप में पड़ गए हो, तो भी वह आएगा। जितने ज्यादा पाप में
पड़ गए हो, उतने जल्दी आएगा। इसलिए गीता में कृष्ण कहते हैंः जब धर्म नष्ट हो जाता है, सब तरफ अंधेरी रात हो जाती है, तब मैं आता हूं। संभवामि युगे- युगे। युग-युग में आता रहूंगा। जब भी कठिन होगा, तभी आ जाऊंगा। तुम अकेले नहीं हो; मेरा हाथ बढ़ेगा और तुम्हें खोज लेगा।
जैसा छोटा बच्चा, ऐसा आदमी है। जानता है कि मां कहीं आसपास ही होगी। पुकारूंगा, रोऊंगादौड़ी चली आएगी। एकदम अकेला नहीं हूं; असहाय नहीं हूं। तो यद्यपि मनुष्य को उतनी गरिमा तो नहीं मिली, जितनी जैनों ने दी, लेकिन परमात्मा का आसरा मिला; भरोसा रहा। तुम अकेले नहीं छूट गए। और तुम्हीं परमात्मा को नहीं खोज रहे हो; परमात्मा तुम्हें भी खोज रहा है। आग दोनों तरफ से लगी है। यह तुम्हारा दिल ही उसके लिए नहीं तड़प रहा है; उसका दिल भी तुम्हारे लिए तड़फ रहा है। यह बच्चा ही मां को नहीं पुकार रहा है; मां भी अहर्निश इसकी याद कर रही हैं। गहरी से गहरी नींद में भी सोई होती है, तब भी उसे बच्चे की याद होती है। तूफान आ जाए, आंधियां उठें, बवंडर हो, आकाश में बादल गरजें, बिजलियां चमके, मां की नींद नहीं खुलती। और बच्चा जरा कुनमुनाए और और उसकी नींद खुल जाती है! एक सतत स्मरण बच्चे का बना है। तो याद एक ही तरफ होती तो बड़ी अधूरी होती। वह प्रेम कुछ बहुत मजे का नहीं होता।
तो अवतार की धारणा मनुष्य को उतनी गरिमा नहीं देती निश्चित, लेकिन मुनष्य के जीवन का उत्सव देती है।
मेरे देखे दोनों एक-साथ हो सकते हैं, तो क्यों अधूरा-अधूरा करना! कोई कहता है गिलास आधा खाली है। कोई कहता है गिलास आधा भरा है। मैं कहता हूंः गिलास आधा खाली और आधा भरा है।
आदमी खोजता है; बिना खोजे परमात्मा नहीं मिलता। और आदमी जब खोज लेता है, पा लेता है, तो परमात्मा ही हो जाता है यह भी सच है। लेकिन जिससे हम

जनमें हैं, जिन स्रोत से हम आए हैं, वह भी हमें खोज रहा है। एक कदम तुम चलते हो, एक कदम परमात्मा तुम्हारी तरफ चलता है।
तुम्हारे भीतर परमात्मा तभी उतरता है, जब तुम पात्रता अर्जित कर लेते हो; जब तुम पात्र हो जाते हो।
तो मैं तुमसे कहता हूंः जब तक पात्र न हो जाओ, तब तक श्रमण संस्कृति का सहारा ले कर चलो। बिल्कुल ठीक है जब तक पात्र न हो जाओ। लेकिन जिस दिन पात्र हो जाओ, उस दिन ब्राह्मण हो जाना। उस दिन परमात्मा उतरेगा तुम्हारे भीतर। तो फिर नाचना; तो फिर थाप देना; तो फिर मृदंग उठा लेना। फिर यह मत कहना कि अकेला हूं।
अकेले तुम नहीं हो। सारा अस्तित्व तुम्हारे साथ है। परमात्मा तुम्हारे साथ हैइसका इतना ही अर्थ होता है कि ये वृक्ष, यह चांद, ये तारे, यह सूरज, ये नदी-पहाड़ए सब तुम्हारे साथ हैं। यह हमारा घर है। यहां हम अजनबी नहीं हैं। यहां हम बिना बुलाए मेहमान नहीं हैं। हम इसी अस्तित्व से उठे हैं और एक दिन इसी में लीन हो जायेंगे। हम इसी की तरंगे हैंइसी सागर की। हम इसी की किरण हैं; इसी सूरज की। हम उसी के फूल हैं इसी वृक्ष के। तो जड़ें कितनी ही दूर क्यों न हों... । और फूल को दिखाई भी नहीं पड़ती हैं जड़ें; और फूल खोजनें भी चले, तो शायद पता नहीं लगा पाएगा कि जड़ें कहां हैं। जड़ें तो दूर अंधेरे में छिपी हैं। लेकिन फिर भी, फूल को पता हो या न पता हो, जड़ें ही उसे सम्हाले हैं और प्रतिपल रस-धार बहा रही है। जड़ों में ही उसका जीवन है। अदृश्य जो है, वहीं हमारा जीवन है। उस अदृश्य का नाम परमात्मा है। परमात्मा का कुछ ऐसा मतलब नहीं होता कि कोई आदमी ऊपर बैठा है, जो चला रहा है सारे संसार को। नहीं; यह जो अदृश्य जीवन की जड़ है, यह जो जीवन का अदृश्य स्रोत है, जहां से सब उठता है और जिसमें सब लीन हो जाता है, उसके लिए हमने प्यार का एक नाम खोजा परमात्मा।
दोनों बातों पर मैं जोर देता हूंएक-साथ जोर देता हूं। मैं ब्राह्मण
और श्रमण एक-साथ हूं। और ये दो ही संस्कृतियां हैं दुनिया में। इन दो में ही सब बांटे जा सकते हैं। मुसलमान, ईसाई, यहूदीए सब ब्राह्मण संस्कृतियां हैं, उनमें कुछ भेद नहीं है। वही परमात्मा की धारणा है। वहीं अवतरण का भाव है।
पहले तो तुम्हें पात्र बनना है। पात्र बनने तक तुम यही कोशिश करो कि मैं ऊपर उठूं; तो ही तुम पात्र बन सकोगे। अब खतरे समझो।
जैन और बौद्धों ने मनुष्य को गरिमा तो दे दी, लेकिन खतरा भी हो गया। खतरा क्या हो गया? कि अकेले अपने से जाना है। आशा एकदम मद्दिम हो जाएगी। यह ऐसा ही है, जैसे अपने ही हाथों से अपने जूते के बंध पकड़ कर खुद को उठाने की कोशिश। अपने ही हाथों से जाना है!
और तुम जानते हो कि तुम्हारे हाथों से क्या हुआ है। धन पाना चाहा, वह
भी न मिला; पद पाना चाहा, वह भी न मिला; सब तरह हार लिखी है, विषाद लिखा है; और इतनी बड़ी मंजिलपरमात्मा को पाना है! जहां गए, वहीं हारे; जो चाहा, वही नहीं हुआ; अब अचानक तुम परमात्मा होने की सोच रहे हो! इतनी हार ले कर मन में, इतना विषाद, इतनी असफलता लेकर हिम्मत जुटा सकोगे परमात्मा को खोजने की, सत्य खोजने की? जिसका न कुछ अता, न कुछ पता। है भी या नहीं भी है? खोज सकोगे? कठिन दिखता है। और अकेले; और कोई सहारा नहीं! और महावीर कहते हैः अशरण भाव किसी की शरण जाना मत, क्योंकि शरण कहां है! अपने को स्वंय उठाना हैस्वावलंबन।
मगर इतना भरोसा है तुम्हें अपने पर? क्षुद्र भी तो पूरा नहीं हुआ, विराट को कैसे पूरा करोगे? यह खतराएक।
दूसरा खतराः अगर तुम उन विरले लोगों में एक हो, जिद्दियों में एक हो,
कि हठियों में एक हो कि लग ही गए कुछ भी हो; और कोशिश करते रहे, करते रहे; निखारते रहे जीवन को, आचरण को और धीरे-धीरे जीवन में संतत्व की गंध आने लगी। लंबे संघर्ष से आएगी। खूब पीसे जाओगे, तब सुगंध उठेगी। अगर लगे रहे... ।

लंबी यात्रा है; और अकेले! कोई मार्गदर्शक भी नहीं; कोई ऊपर से बुलाने वाला भी नहीं; ऊपर से कोई हाथ नहीं, जिसके सहारे तुम बढ़ जाओ। कोई तुम्हारी प्रतीक्षा नहीं कर रहा है वहां; तुम अकेले ही जा रहे होअंधेरे में, अनजान में, अपरिचित में बिना नक्शे के, बिना सहारे के। अस्तित्व के विपरीत जा रहे हो; संघर्ष कर रहे हो; सहारा नहीं मांग रहे हो। अगर कभी विरला कोई आदमी इस तरह के संतत्व की स्थिति को उपलब्ध हो जाता है, तो दूसरा खतराः अहंकार का जन्म होता है। इसलिए तुम जैन मुनियों को जितना अहंकारी पाओगे, उतना मुसलमान फकीरों को नहीं।
जैन मुनि में बड़ी अकड़ होगी। दूसरा खतरा। अपने ही से किया है; किसी का सहारा नहीं लिया है, तो अहंकार जन्मता है।
तो महावीर ने गरिमा तो दे दी, लेकिन साथ ही खतरे आ गए।
ब्राह्मण के खतरे भी समझ लो। इस बात का सहारा है कि परमात्मा है।
लेकिन खतरा यह है कि तुम आलसी हो जाओ। करना क्या है! जब उसकी मरजी होगी, उठा लेगा। जब चाहेगा, तभी होगा। उसकी बिना मरजी मे तो पत्ता भी नहीं हिलता, तो तुम्हारे किए क्या होना है! अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम; दास मलूका कहि गए, सबके दाता राम।
तो ब्राह्मण संस्कृति का खतरा है कि तुम आलसी हो जाओ। यह हिंदुस्तान ऐसे ही आलसी नहीं हो गया है; इसमें हिंदुओं का हाथ है। ये हिंदू ऐसे ही गरीब नहीं रह गए हैं; इसमें हिंदू-विचार की छाया है।
यह आकस्मिक नहीं हैकि जैन सब धनी हो गए और हिंदू गरीब रह गए हैं। वही पकड़खुद ही करना है। परमात्मा को भी पाना है, तो खुद पाना है। और धन पाना है, तो भी खुद पाना है। इसलिए जैन धन की दौड़ में हिंदू से आगे निकल गया। भरोसा किसी का करना नहीं है; भाग्य कुछ साथ देने वाला नहीं है; तकदीर कुछ काम आएगी नतदबीर।
हिंदू कहता हैः जब परमात्मा तक भाग्य से मिलता है, प्रसाद से मिलता है, तो और सब भी प्रसाद से मिलेगा। तो हिंदू को धन भी खोजना हो, तो वह जाता है, किसी साधु का आशीर्वाद लेने; ज्योतिषी को देखता है; हाथ दिखलाता है; जन्म-कुंडली पढ़वाता है; चेष्टा में नहीं लगता।
तो बड़ी कीमत की बात थी कि परमात्मा का सहारा है; लेकिन खतरे समझ लेना। खतरा यह है कि आलसी हो जाओ।
खोजे-खोजे नहीं मिलता, तो बिना खोजे कैसे मिलेगा! खोजे-खोजे हार जाता
है आदमी, और तुम बैठे हो--अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम तुम कहते होः जब उसकी मरजी होगी; जब होगी, तब होगा। हमारे किए क्या होगा? हम क्षुद्र क्या कर पायेंगे!
तो एक खतरा तो आलस्य। और आलस्य हो, तो पहुंच ही न पाओ। और दूसरा खतराकि
जब भी कुछ गलत हो, तब परमात्मा का जिम्मेवार ठहराओ; क्योंकि उसकी बिना मरजी के कुछ होता नहीं। अच्छा हो, तो उसकी मरजी से होता है; बुरा हो तो उसकी मरजी से होता है। बुराई भी होती रहे, तो हिंदू-मन उसे बदलने को तैयार नहीं होता। परमात्मा ही कर रहा है, तो हम क्या करेंगे! बीमारी है, तो ठीक है। मौत है, तो ठीक है। बच्चे पैदा होते जा रहे हैं, संख्या बढ़ती जा रही है, तो हम क्या करें! परमात्मा की ही मरजी है, तो हो रहा है!
युद्ध हो, तो ठीक है। जो हो, ठीक है। और जिम्मेदारी ईश्वर की है। तो एक तरह का अनुत्तरदायित्व पैदा होता है। पहला दोषः आलस्य। दूसरा दोषः उत्तरदायित्व की हीनता। ऐसा नहीं लगता कि हम जिम्मेवार हैं। हम क्या करें!
एक आदमी मेरे पास आया और बोला कि कुछ मेरा इंतजाम करवाइए। आपके इतने भक्त हैं, किसी को भी कह दीजिए, तो मेरा इंतजाम हो जाए। अब मैं क्या करूंमेरे बारह बच्चे हैं!
यह तुझसे कहा किसने? इन लोगों ने तो कहा नहीं था कि तुम बाहर बच्चे पैदा करो। और तेरहवां क्यों नहीं है?
उसने कहाः तेरहवां आ रहा है। अब मैं बिल्कुल गरीब हूं। मरा जा रहा हूं।

मगर उसको जरा भी यह भाव नहीं है कि मेरा कोई इसमें उत्तरदायित्व है।
वह बोला, मैं इसमें क्या कर सकता हूं! प्रभु की मरजी। जब परमात्मा दे रहा है, तो मैं क्या करूं?
जब वही देने वाला है, तो सारी जिम्मेवारी उसकी है; तुम बिल्कुल गैर-जिम्मेवाराना तरीके से जी सकते हो।
अभी तुमने देखाः इंदिरा गांधी की हार में असली कारण सिवाय नसबंदी के
और कुछ भी नहीं है। बाकी सब झूठी बकवास है। असली कारण सिर्फ इतना ही है कि हिंदू-मन को बड़ी चोट लग गई; मुसलमान-मन को बड़ी चोट लग गईकि बच्चों पर नियंत्रण करना होगा बच्चे, जो कि परमात्मा भेजता है! बच्चे, जो कि कभी नहीं रोके गए, उनको रोकना पड़ेगा?
असली चोट... संतति-नियमन के लिए इंदिरा ने जो मेहनत की, उसका फल भोगा। उसको यह बात समझ में न आई की हिंदू-मन इसे बरदाश्त नहीं कर सकेगा। और जो सत्ता में आ गए हैं, वे बहुत मौलिक रूप से हिंदू हैं, जनसंघी हैं, संघी हैं। न तो यह चुनाव तय करता है कि इंदिरा की अधिनायकशाही के खिलाफ वोट दिए। लोगों को अधिनायकशाही इत्यादि से कोई मतलब नहीं है। लोगों को सिर्फ एक बात पर चोट पड़ गई कि हजारों साल की उनकी धारणा थी कि परमात्मा देनेवाला है, वही फिकर करता है; उस धारणा को चोट पड़ गई।
और मजे की बात यह है कि इन तीन वर्षों में अगर कोई एकाध बात इस देश में राज्य ने ठीक की थी, तो वह नसबंदी थी। उसी की वजह से इंदिरा मात खाई। तुम चौंकोगे यह जान करः कुछ ठीक करने की कोशिश में मात खाई; कुछ ठीक करने की हिम्मत में मात खाई।
अब समझ लो कि तीस-चालीस साल तक कोई दूसरा आदमी ठीक करने की कोशिश नहीं
कर सकेगा। अब तीस-चालीस साल के लिए कोई आदमी हिम्मत नहीं कर सकेगा कि कुछ ठीक करे।
एक ठीक बात थी कि लोग उत्तरदायी बनें। और लोग सदियों से अनुत्तरदायी रहे हैं, तो आसान नहीं है उत्तरदायी बनाना; उनके दिल को चोट लगेगी। उनको लगेगाउनके साथ जबरदस्ती की जा रही है; उनकी स्वतंत्रता छीनी जा रही है। एक संभावना थी संतति-नियमन के द्वाराकि इस देश की गरीबी थोड़ी कम हो जाएगी। वह संभावना समाप्त हो गई। और जिनके हाथ में राज्य चला गया है, अब वे तो हिम्मत कर नहीं सकते हैं क्योंकि जिस वजह से राज्य उनके हाथ में आया है, अब वही तो हिम्मत वे कर नहीं सकते; वह भूल तो अब हो नहीं सकती; उसी भूल का तो उन्होंने फायदा उठाया है। इसलिए देश को भयंकर हानि उठानी पड़ेगी। पछताएगा यह देश कभी।
कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि लोकमत गलत से इतना आग्रहग्रस्त होता है कि उसे बदलने की कोशिश में लोकमत विरोध में हो जाता है। अब जिनके हाथ में ताकत गई है, वह प्रतिक्रियावादियों का समूह है, जमात है। अब उनसे कुछ होने को संभावना नहीं है। अब वे कुछ करने का विचार भी नहीं कर सकते।
यह जो ब्राह्मण धारणा है, कि सारा दायित्व परमात्मा का हैयह पहले तो तुम्हें बना देती है आलसी; और दूसराः सारा उत्तरदायित्व उसका है इसलिए उत्तरदायित्वहीन... । यह इसका खतरा है।
मेरी धारणा... । और ख्याल रखना धारणा ही है; उसको सत्य मत मान लेना। मेरा इशारा ऐसा है कि तुम्हें आधी यात्रा तो पात्र बनने में खर्च करनी पड़ेगी। परमात्मा जरूर उतरता है, लेकिन उसी में उतरेगा ना, जो योग्य है। हर किसी में तो नहीं उतरता। राम में उतरता है, कि कृष्ण में उतरता है। हर किसी में तो नहीं उतरता। ऐसे ही अंधाधुंध तो नहीं उतरता।
ऐसा ही समझो कि वर्षा हो रही है और तुम अपना घड़ा उलटा रखे बैठे हो। तो होती रहे वर्षा, बरसता रहे परमात्मा, तुम्हारे घड़े में नहीं आएगा। तुम घड़ा उलटा रखे बैठे हो! कम से कम घड़ा तो सीधा रखो। फिर घड़ा सीधा भी रखा हो और छिद्र वाला हो, तो बरसेगा भी और फिर भी बह जाएगा। और घड़ा छिद्रवाला भी न हो और सीधा भी रखा हो, लेकिन गंदा हो, तो बरसेगा तो शुद्ध न रह जाएगा।
तो कुछ शर्ते तुम्हें पूरी करनी पड़ेंगीः घड़ा सीधा हो तुम्हारी ग्राहकता खुली हो। शिष्यत्व का इतना ही अर्थ होता है कि तुम्हारा घड़ा

सीधा है--ग्राहकता खुली है; तुम्हारे द्वार-दरवाजे बंद नहीं हैं। तुम पक्षपात से दबे नहीं हो। तुम्हारा चित्त शांत है। तुम लेने को तैयार हो; तुम गर्भ-जैसे हो; तो जीवन प्रवेश करता है।
फिर तुममें कोई छिद्र नहीं है। वे जो मन के हजार-हजार छिद्र हैं, मन जो हजार-हजार दिशाओं में दौड़ाता रहता है, वे छिद्र तुमने त्याग दिए हैं; मन निर्विचार हुआ है, तो छिद्र-शून्य हो जाता है। निर्विचार होते ही मन में छेद नहीं रह जाते। फिर जो आएगा, वह तुममें रुकेगा, ठहरेगा, थमेगा-बह नहीं जाएगा।
फिर तीसरी बात, कि तुमने अपनी वासनाओं को समझा है, पहचाना है। समझ और पहचान के कारण तुम्हारी वासनाएं तिरोहित हो गई हैं। नहीं तो वासनाओं की गंदगी भीतर भरी है।
अब अक्सर यहां ऐसा हो जाता है। लोग चौंक जाते हैं कभी। एक मित्र ने आ
कर कहा कि जब भी मैं ध्यान करता हूं, तब बड़ा आनंद आता है और बड़ी ऊर्जा भी जगती हुई मालूम पड़ती है; लेकिन साथ ही कामवासना भी बड़े जोर से जगती है।
यह समझने की बात है। उनकी बेचैनी भी ठीक है। कामवासना को दबा कर बैठे हैं। तो साधारणतः तो दबी रहती है; तो दबी रहती हैं; उसकी छाती पर बैठे हैं! लेकिन जब ध्यान में थोड़े शिथिल होते हैं, विश्राम में होते हैं; सब छोड़ देते हैं नियंत्रण; नृत्य में लीन होते हैं; और परमात्मा की थोड़ी सी ऊर्जा उतरनी शुरू होती है, थोड़ा हलका कंपन आता है, तो इस कंपन का जो स्वाभावकि परिणाम होता हैकि कामवासना प्रगाढ़ हो जाती है। वह कामवासना भीतर पड़ी थी; घड़े में काली स्याही रखी थी; वर्षा से शुद्ध पानी गिरा, स्फटिक मणि जैसा था साफ; तुमने देखा था गिरते और घड़े में भीतर गया और काला रंग हो गया! अब तुम कहते हो यह क्या हुआ! पानी शुद्ध आया था! लेकिन तुम्हारा घड़ा भी शुद्ध था या नहीं?
तो अक्सर हो ऐसा जाएगा कि ध्यान तुम्हारा भीतर जा कर वासना बन जाएगा,
तब तुम चौंकोगे; तुम बेचैन होओगे। क्योंकि यह तो तुम कुछ और करने चले थे; तुम चाहते थे वासना से मुक्त हो जाऊं और यह उलटी वासना बढ़ रही है! यह क्या हुआ! कहां चूक हो गई?
वासना को दबा कर बैठोगे, तो घड़े में पड़ी रहेगी।
मुझसे लोगों ने कई बार आ कर कहा है कि जब से हम ध्यान करने लगे हैं, तब
से हमारा क्रोध ज्यादा हो गया है। चौंकना पड़ता है उनको, क्योंकि वे सोचते रहे सदा कि ध्यान बढ़ेगा, तो क्रोध कम होगा। लेकिन क्रोध अगर तुम भीतर दबाए बैठे हो, तो ध्यान क्या करेगा! ध्यान तो केवल ऊर्जा देता है; ध्यान तो केवल शक्ति देता है। अब क्या शक्ति का तुम्हारे भीतर परिणाम होगा, यह तुम्हारे भीतर की स्थितियों पर निर्भर है। तुमने काला रंग भरा था, तो तुम्हारे घड़े में काली स्याही हो जाएगी। और किसी ने लाल रंग भरा था, तो उसके घड़े मे लाल स्याही हो जाएगी और किसी के घड़े में नीला रंग भरा था, तो उसके घड़े मे नीले रंग की स्याही फैल जाएगी। अलग-अलग रंग लगे थे, तो अलग-अलग रंग हो जाएंगे जल के। उसी घड़े में जल का रंग नहीं बदलेगा, जिसमें कुछ भी दबा नहीं पड़ा है। इसलिए मैं दमन के खिलाफ हूं। इसलिए मैं दमन के खिलाफ हूं। इसलिए मैं कहता हूंः कुछ भूल कर दबाना मत। जी लेना। समझपूर्वक जी लेना।
कामवासना हो, तो उसे जी लोदबाओ मत; उसमें उतर जाओ। साक्षी-भाव से जाओ, ताकि धीरे-धीरे तुम्हें दिखाई पड़ जाए कि व्यर्थ है; कुछ भी नहीं है, राख ही राख है। जिस दिन ऐसा तुम्हारे अनुभव में आ जाएगा कि राख ही राख है, फिर कुछ दबा न रहा। वासना को देख भी लिया, पहचान भी लिया; उसी पहचान में छुटकारा हो गया। ऐसे ही क्रोध, ऐसे ही घृणा, ऐसे ही मोह, मद, मत्सर ऐसे ही जीवन की सारी विकृतियां जाननी हैं; जान कर विसर्जित करनी हैं; तो घड़ा शुद्ध होगा, छिद्रहीन होगा, सीधा होगा।
शिष्यत्व चाहिए; निर्विचार भाव-दशा चाहिए; संगृहीत वासना से छुटकारा चाहिए। इन तीन पात्रताओं के होते ही परमात्मा तुममें उतर आएगा।
आधी यात्रा तुम करो; आधी परमात्मा करता है। तुम पात्र बनो, परमात्मा उसे भर देता है।

तो मेरे हिसाब से तुम तीर्थंकर बनो, तो अवतार तुम्हारे भीतर आ जाता है।
ये दोनों धारणाएं मूल्यवान हैं। और अगर तुम दोनों धारणाओं को एक-साथ
ले लो, तो उनके खतरों से तुम बच जाओगे। इसलिए मैं इन दोनों को जोड़ रहा हूं।
अगर तुम दोनों को एक-साथ ले लो, तो तुम खतरों से बच जाओगे।
अगर आधी यात्रा तुम्हारे बस में है, तो तुम आलस्य से नहीं बैठे रह सकते। कुछ तो तुम्हें करना है। कुछ तुम करोगे, तो कुछ परमात्मा करेगा। शर्त तुम्हें पूरी करनी है। परमात्मा बेशर्त नहीं उतर आएगा। तुमने शर्त पूरी की होगी, तो उतरेगा। तुम अर्जित कर लिए होओगे पात्रता, तो उतरेगा। इसलिए आलस्य नहीं आ सकता। और उत्तरदायित्व तुम परमात्मा पर तब तक नहीं छोड़ सकते, जब तक कि शुद्ध नहीं हो गए हो। और शुद्ध हो जाने के बाद छोड़ने की जरूरत नहीं रह जाती, वह उतर ही आता है। एक क्षण की भी देर नहीं होती; पल का भी अंतर नहीं होता; आंख नहीं झपकती; इतना भी समय नहीं जाता।
और अगर तुम्हें यात्रा करनी है आधे तक, और सिर्फ आधे तक ही तुम्हें यात्रा करनी है, तो तुम्हारे भीतर अहंकार भी पैदा नहीं होगा, जो कि जैन मुनि को पैदा होता है। क्योंकि तुम कहोगे कि आधे तक ही अपनी सामर्थ्य है। यात्रा का आधा हिस्सा ही हम करते हैं; असली तो बात में उसकी कृपा से पूरा होता है, प्रसाद से पूरा होता है। हम तो घड़ा ही साफ करते हैं। घड़ा साफ करने से कोई जल थोड़े ही पैदा होता है। हम तो घड़ा भर साफ करते हैं; वह तो साधारण सी बात है। असली घटना तो प्रसाद से घटती है।
प्रयास से घड़ा साफ होता है वह आधी बात। घड़ा साफ करके बैठे हैं इसमें अकड़ भी क्या है! वर्षा तो उसकी अनुकंपा की होगीतब घड़ा भरेगा, तब प्यास बुझेगी, तब कंठ तृप्त होगा।
तो प्रसाद का भाव बना रहे, तो अहंकार पैदा नहीं होता। और जब घटना घटेगी, तो उत्सव भी जन्मेगा। फिर तुम गुनगुना सकोगे, नाच सकोगे, प्रफुल्लित हो सकोगे। उसके हाथ में हाथ डाल कर आनंदित हो सकोगे। परमात्मा का आलिंगन कर सकोगे। मिलन होगा।
तो तुम्हारा अंतिम क्षणजीवन की उपलब्धि का रूखा-सूखा नहीं रह जाएगा। खूब फूल खिलेंगे; हजार-हजार फूल खिलेंगे।
तो मैं तुमसे कहूंः आधी यात्रा तीर्थंकर-जैसी और आधी यात्रा अवतार-जैसी। क्योंकि पात्र आधा भरा है और आधा खाली है। तुम दोनों मिल कर पूरे हो जाओगे। जहां आत्मा और परमात्मा का मिलन होता है, वहां पूर्णता घटती है।

दूसरा प्रश्नः ध्यान या मौन के क्षणों में मेरे कानों पर नगाड़े जैसी मीठी ध्वनि होने लगती है। कल के प्रवचन में जैसे ही मैने अनाहत और भूकंप शब्द सुने कि मेरे कानों पर वही आवाज बजने लगी और मेरे शरीर में भूकंप आ गया। प्रवचन से निकलते ही मैं दहाड़ मार कर रोने लगा और देर तक यह अवस्था बनी रही।
भगवान, क्या बताने की अनुकंपा करेंगे कि यह क्या है?

बजाय जानने के, इसे जीयो, क्योंकि उसी से जानना आएगा। शुभ हो रहा हैइतना भरोसा रखो। सुंदर हो रहा है ऐसी आस्था रखो। घबड़ाना मत; घबड़ाहट आएगी; क्योंकि कुछ अनहोना घटता है, तो घबड़ाहट आती है।
भले-चंगे बैठे थे; एक शब्द कान में पड़ा अनाहत और कुछ होने लगा! तो डर पैदा होता है कि एक शब्द के पड़ जाने से ऐसा क्या हो सकता है कि मैं कंपूं, कि मैं डोलूं, कि मेरी आंख से आंसू बहने लगें, कि मेरे कानों में कोई नाद गूंजने लगे! कहीं मैं पागल तो नहीं हुआ जा रहा हूं? ऐसा भय पैदा होता है। इस भय को मत लाना।
नाद तो भीतर बज ही रहा है; वह नाद तो निंरतर बज रहा है; सिर्फ हमारे कान बाहर की आवाजों से भरे हैं, इसलिए उस नाद को नहीं सुन पाते हैं।
शुभ हो रहा है कि किसी-किसी घड़ी में तुम अंतर्मुखी हो जाते हो और भीतर
का नाद सुनाई पड़ने लगता है। मीठा है नाद; अमृत का है नाद; उसे सुनो; और जब

उसे सुनोगे, तो बहुत डोलोगे, भी; बड़ा कंप आ जाएगा। क्योंकि सारी ऊर्जा भीतर नाचने लगेगी। उससे भी घबड़ाहट होती है, क्योंकि हमें सिखाया गया है जीवन ऐसा कि जिसमें नृत्य न हो। हमें जीवन सिखाया गया है ऐसा जैसा मुर्दा जड़ आदमी को हो जाना है। हमेशा अपने को नियंत्रण में रखना है। कभी नियंत्रण के बाहर नहीं जाना है। काठ की तरह, लकड़ी की तरह सूखे-सूखे।
तो जब पहली दफा कंपन उठेगा, और तुम्हारी मुर्दा-जैसी देह में, लाश-जैसी देह में फिर प्राणों का संचार होगा, तो भय लगेगा कि यह क्या हो रहा है! जीवन आ रहा है, मगर भय लगेगा कि यह क्या हो रहा है।
भयभीत मत होना। यही मेरे पास होने का अर्थ है कि मैं तुम्हें सहारा दे सकूं; कि मैं तुम्हें भरोसा दे सकूं; कि तुम जब घबड़ाने लगो, तो तुम्हें आश्वस्त कर सकूं।
इस नाद को सुनो; इस नाद में डूबो, इस नाद में लीन हो जाओ। ऐसे डुबकी लगाओ कि नाद ही बचे, तुम न बचो।
और आंसू भी बहेंगे, उससे भी भय मत लेना। क्योंकि उसके साथ भी हमें गलत बातें सिखाई गई हैं। हमारे मन में एक धारणा बैठ गई है कि आंसू आते ही तब हैं, जब कुछ गलत हो रहा हो; दुखी है आदमी; परेशान है आदमी; चिंतित है आदमी; कोई मर गया; कोई विपदा टूट पड़ी; कोई पहाड़ सिर पर आ गिरा! --तो आदमी रोता है। यह भी हमारी गलत धारणा है।
आंसुओं का कोई संबंध अनिवार्य रूप से दुख से नहीं है। आंसू सुख के भी होते हैं। आंसू प्रेम के भी होते हैं। आंसू सुंदर चांद को उगते देख कर भी आ सकते हैं। आंसू एक पक्षी का गीत सुन कर भी बह सकते हैं। आंसू एक बच्चे की खिलखिलाहट सुन कर भी आ सकते हैं। आंसू दुख के भी होते हैं, आंसू सुख के भी होते हैं। आंसू क्रोध में भी आ सकते हैं। आंसू कभी-कभी शांत दशा में भी आ जाते हैं। और आंसू आनंद में भी आते हैं।
तो आंसू बहुत तरह के हैं; आंसू आंसू में भेद हैं। लेकिन एक बात समझ लेने की है कि आंसू तभी आते हैं, जब कोई भाव-दशा इतनी घनी हो जाती है कि तुम उसे सम्हाल नहीं पाते। दुख हो कि क्रोध, कि प्रेम, कि सौंदर्य, कि सुख, कि आनंद, कोई भी चीज जब इतनी हो जाती है कि तुम्हारे हृदय में नहीं समाती, ऊपर से बहने लगती है, बाढ़ आ जाती है, वही बाढ़ आंसुओं से बहती है।
कोई मर गया कोई प्रियजन मर गया; इतना दुख है कि तुम उसे सम्हाल नहीं पाते; आंखें उसे बहा देती हैं। आंसुओं के बाद तुम्हें हलकापन लगेगा। दो- चार दिन रो लेने के बाद तुम स्वस्थ हो जाओगे। रोकना मत; दुख के भी आंसू मत रोकना। क्योंकि रोक लोगे, तो घाव रह जायेंगे; नासूर बन जायेंगे। वे ही नासूर कभी कैंसर में बदल जाते हैं।
जब सौंदर्य को देख कर भी आंसू बहें, तब भी मत रोकना। यह सहज काव्य है,
जो तुम्हारे भीतर पैदा हो रहा है। यह जीवन का महाकाव्य है। और जब सुख की घड़ी इतनी घनी हो जाए कि तुम सम्हाल न सकोउसे भी मत सम्हालना, अन्यथा वह भी बोझिल हो जाएगी। उसे भी बह जाने देगा।
और अंतिम तरह के आंसू तब आते हैं, जब भीतर आनंद घटता है; जब परमात्मा पास-पास मालूम होता है; जब उसकी पग-ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। तब तुम भरोसा ही नहीं कर पाते कि इतना आनंद और मुझे घट सकता है! मुझ अपात्र को! मुझ ना- कुछ को! मुझे पापी को? मुझको घट सकता है! इतना अपूर्व आनंद? संतों को घटा हो; बुद्ध-महावीरों को घटा होघटा हो। मुझको घट सकता है! भरोसा नहीं आता। पुलक इतनी गहन हो जाती है कि सब तरफ से बहने लगती है। उसे घड़ी में भी आंसू आयेंगे।
तो आंसू आंसू में भेद है। इसलिए हमेशा ऐसा मत सोचना कि आंसू आ रहे हैं,
तो कुछ गड़बड़ है, कुछ गलती है, कोई चूक है। और धीरे-धीरे तुम पहचानने लगोगे कि आंसू का स्वाद अलग है। तुम जानोगे कि कब आंसू शांति से बहे, कब आंसू देख से, कब सुख से, कब आनंद से बहे।
जो आंसू तुम्हें बहे, वे आनंद के आंसू है; उनमें बहो; उन्हें बहने दो।
वे आंसू तुम्हें शुद्ध करेंगे, तुम्हें निखारेंगे। वे आंसू तुम्हें नहलाएंगे; वे आंसू तुम्हें पखारेंगे। उन्हीं आंसुओं से धीरे-धीरे

तुम्हारी सारी कलुषता, कलमष बह जाएगा। सारी धूल बहा ले जायेंगे। तुम निर्मल हो जाओगे। उसी निर्मल दशा में परमात्मा अवतरित होता है। उस निर्मल दशा में तुम तीर्थंकर हो गए, तुम उठ गए वहां तक, जहां तक आदमी उठ सकता था। तुम कर लिए, जो आदमी कर सकता था। तुमने अपना सब दांव पर लगा दिया; कुछ छोड़ा नहीं।
ख्याल रखनाः जब तक तुमने कुछ बचा रखा है और दांव पर नहीं लगाया है, तब
तक अवतरण नहीं होता। जब तुमने सब दांव पर लगा दिया और कुछ भी नहीं बचाया, उसी क्षण अवतरण होता है। मनुष्य का प्रयास जहां पूरा हो जाता है, वहीं से प्रसाद की वर्षा है।
तर्कों के सारे अवगुंठन
बन जाते ढाके की मलमल
उठ-उठ बैठूं, देखूं इक टक
चल कर जाऊं, दरवाजे तक
तर्कों के सारे अवगुंठन
बन जाते ढाके की मलमल
भीतर खग-कुल अस्फुट बोले अर्थहीन कुछ कंपन घोले
मन का खोया-सा कोलाहल
उभर गया फैला कर हलचल
सुधियां जागीं, तार हिल गए
संयम बंधन स्वतः खुल गए
तन-मन आकुल, उत्तप्त दिवस
टपके जीवन-हिम पिघल पिघल।
इन आंसुओं को बहने देना।
सुधियां जागीं, तार हिल गए।...
रोकना मत, नियंत्रण मत करना; अन्यथा एक अपूर्व, अमूल्य अवसर आते-आते चूक जाएगा; हाथ आते-आते चूम जाएगा।
सुधियां जागीं, तार हिल गए
संयम बंधन स्वतः खुल गए
तन-मन आकुल, उत्तप्त दिवस
टपके जीवन-हिम पिघल पिघल।
बहने देना। ये तुम्हारे आंसू तुम्हारे जीवन के हिम के पिघलने से आ रहे हैं। यह जीवन ही पिघल पिघल कर टपक रहा है। इससे सुंदर और कोई अर्चना नहीं। प्रभु के चरणों में चढ़ाने को इससे सुंदर और कोई फूल नहीं। जो तुम्हारी आंखों में लगते हैं, वे ही फूल सर्वाधिक सुंदर हैं। उन्हें चढ़ाओ।
भक्त ने रो-रो कर पाया है। मगर रोने में दुख नहीं है। रोने में बड़ी प्रार्थना है, बड़ी पूजा है। भक्त के रोने में बड़ी सुगंध है। बड़ा मनावा है, बुलावा है, प्रतीक्षा है।
सुनो-भीतर जो नाद उठ रहा है। गुनोभीतर जो नाद उठ रहा है। उसमें डूबो।
सुधियां जागीं, तार हिल गए
संयम बंधन स्वतः खुल गए।
जब सुधियां जागने लगें... । यह सोई हुई सुधि है। यह अपने घर की याद है।
यह अपने बिछड़े प्रेमी की याद है। यह परम प्रिय की याद है। यह जो नाद तुम्हारे भीतर तुम्हें सुनाई पड़ता है, ये उसके ही पैरों में बंधे घूंघर हैं।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा राख ही राख है, इस ढेर में क्या रखा है! फिर क्या बात है कि इस राख की ढेर पर ही अरबों लोग अपनी पूरी जिंदगी गुजार देते हैं?

इस आशा में कि शायद राख में कोई हीरा दबा हो, इस आशा में कि जब लाखों लोग इस राख में खोज रहे हैं, तो जरूर वहां कुछ होगा। सभी का यही ख्याल है। तुमने यह कहानी सुनी है न, सम्राट ने अपने द्वार पर एक बड़ी हौज बनवाई
और आज्ञा दी कि राजधानी में सभी लोग एक-एक मटकी दूध ला कर हौज में डाल जाएं। लेकिन दूसरे दिन सुबह जब देखा, तो हौज में पानी भरा था! हजारों मटकियां दूध आना चाहिए था, एक मटकी भी नहीं आया था। पूछा अपने वजीर से कि हुआ क्या? वजीर ने कहाः आदमी का सीधा सा तर्क है; हर आदमी ने सोचाः इतनी हजारों मटकियां दूध में मेरी एक मटकी पानी का क्या पता चलेगा! मगर सभी ने ऐसा सोचा। तो दूध तो आया नहीं, पानी ही पानी आया है।
वजीर ने कहाः अब मैं आपसे क्या छिपाऊं; मैं खुद ही एक मटकी पानी डाल गया हूं!
सम्राट ने कहाः अब तुम कहते ही हो, तो अब तुमसे मैं क्या छिपाऊं; मैंने
भी एक मटकी पानी... !
आदमी के तर्क हैं। बच्चा पैदा होता है; देखता है--सभी लोग अपनी-अपनी राख की ढेर पर बैठे कुरेद रहे हैं! बाप भी, मां भी, प्रियजन-परिजन भी, और समाज-समूहसारी दुनिया राख की ढेर पर बैठी है। सब राख में कुरेद रहे हैं! बच्चा सीखे तो सीखे कहां से? तुमसे ही सीखेगा ना; तुम्हारा ही अनुसरण करेगा न! तुम्हीं तो उसके शिक्षक हो। तुम सबको ढेर पर बैठे देख कर वह भी बैठ जाता है। वह भी अपनी खोज शुरू कर देता है। और उसको भी ख्याल आता है कि जब करोड़ों लोग राख की ढेर पर खोज रहे हैं, तो जरूर संपदा यहां गड़ी होगी। इतने लोग भूल में हो भी कैसे सकते हैं!
भीड़ बड़ी बलशाली मालूम होती है। इतने लोग गलत तो नहीं हो सकते?
अकसर बात उलटी है। इतने लोग सही कैसे हो सकते हैंयह पूछना चाहिए। इतने लोगऔर सही हो सकते हैं? तो फिर सत्य सभी के पास होता। भीड़ कभी सच नहीं हो सकती। सत्य को कभी विरला इक्का-दुक्का आदमी उपलब्ध होता है। भीड़ तो सदा ही गलत होती है।
मगर भीड़ चारों तरफ है। भीड़ से ही संक्रमण होता है--विचारों का। स्कूल हैं, कालेज हैं, विश्वविद्यालय हैं सभी सिखाते हैं कि इसी राख के ढेर में सोना गड़ा हैं, हीरे पड़े हैं, कोहिनूर दबे हैं। खोजो। सब तरफ महत्वाकांक्षा सिखाई जाती है। सब तरफ लोभ सिखाया जाता है। सब तरफ अहंकार की पूजा- प्रतिष्ठा सिखाई जाती है।
मां-बाप सिखा रहे हैं, शिक्षक सिखा रहे हैं। तुम्हारे तथाकथित गुरु, पंडित, पुरोहित, राजनेता सिखा रहे हैं। एक ही स्वर चल रहा है। इसमें आश्चर्य तो यही है कि कभी-कभी कोई इक्का-दुक्का आदमी, कोई कबीर, कोई नानक, कोई चरणदास निकल भागता है। आश्चर्य यही है।
तुम्हें देख कर कुछ आश्चर्य नहीं होता मुझे कि अरबों लोग क्यों राख
की ढेर पर पड़े हैं। आश्चर्य होता है कि चरणदास कैसे भाग गए! उन्नीस वर्ष की उम्र में, यह कैसे संभव हुआ? इसने कैसे अपने को बचा लिया इतने प्रभावों से, दुष्प्रभावों से? यह कैसे निकल गुजरा इस जेलखाने से! --जहां से निकलने की कोई जगह ही नहीं है!
मुझे जिंदगी की दुआ देने वाले
हंसी आ रही है तेरी सादगी पर।
एक दिन तुम्हें ऐसा अनुभव होगा। बुजुर्ग हैं, वे तुम्हें दुआ देते हैं कि सौ साल जीयो। कोई यह फिकर ही नहीं करता कि सौ साल जीने की दुआ किसलिए दे रहे हो! सौ साल जीयो, कि हजार साल जीयो, बस राख की ही ढेर को कुरेदते रहोगे; करोगे क्या!
यह भी कोई दुआ हुई? लंबा जीने से क्या अर्थ है? दुआ ऐसी कुछ होनी चाहिए
कि ऐसे जीयो कि सत्य जान लो। चाहे दो दिन जीयो, चाहे एक दिन जीयो, इससे क्या फर्क पड़ता है। सौ साल राख की ढेर को खोदते रहे, इससे क्या होना है!
एक क्षण जीयो, मगर प्रभु में जीयो।
मुझे जिंदगी की दुआ देनेवाले
हंसी आ रही है तेरी सादगी पर।

लेकिन वे लोग जो तुम्हें जिंदगी की दुआ देते हैं, वे खुद ही जिंदगी के मोह में पड़े हैं। कोई बूढ़ा आदमी कहता है कि बेटे, सौ साल जीयो। असल में वह यह कह रहा है कि जीना हम भी सौ साल चाहते हैं। हम तो नहीं जी पाए; हमारे बुजुर्गों की दुआ तो काम नहीं कर पायी; पर शायद हमारी दुआ काम कर जाए! फिर काम करे या न करे, कम से कम हम अपनी तो शुभाकांक्षा तुम्हें देते हैं।
मगर जिंदगी से क्या होगा? जिंदगी अपने आप में मूल्यवान नहीं है। जिंदगी में क्या उपलब्ध होता है, जिंदगी कहां पहुंचाती है, जिंदगी का सार-निचोड़ क्या है? परमात्मा हाथ लग जाए, तो ही कुछ मिला। परमात्मा हाथ न लगे, तो कितने ही जीयोजीतो रहो; धक्के खा रहे हो। एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर गिरते, चोटें खाते, लहू-लुहान होते गुजरते रहोगे। ऐसे ही जिंदगी चलती रही है।
फिर जब इस राख में खोदते-खोदते तुम्हें कुछ नहीं मिलता... । मिलने को वहां कुछ है नहीं।... तो आदमी एक ढेर से दूसरे ढेर पर जाता है। सोचता हैः इस ढेर में नहीं है। (यह सीधा तर्क है।) इस ढेर में कुछ नहीं है; चलो, दूसरे ढेर पर खोजें।
एक आदमी धन खोजता है; फिर एक दिन धन पा लेता है और पाता है कि कुछ भी नहीं मिला, तो सारा धन लगा कर चुनाव में खड़ा हो जाता हैकि चलो, प्रधानमंत्री हो जाएं; दूसरा ढेर खोजें! जो आदमी प्रधानमंत्री हो गया है, वह प्रधानमंत्री हो कर पाता हैः कुछ नहीं मिला। वह सोचता है कि चलो, दो-तीन साल या जितनी देर का मामला है, जितना बना सको पैसाबना लो। वह दस-पचास करोड़ रुपया इधर-उधर से खींचतान कर उस पर बैठ जाता है।
यह तुम देखते हो; यह रोज हो रहा है। लोग पैसा खर्च कर के सत्ता में जाते हैं; सत्ता में पहुंच कर पैसा इकट्ठा करने लगते हैं! यह बड़ी हैरानी की बात है। पैसा इकट्ठा करना था, तो था ही। उसको खर्च काहे के लिए किया? मगर वह ढेर खोद कर देख लिया; वहां कुछ मिला नहीं। तो सब दांव पर लगा दिया; शायद पद में कुछ हो! फिर पद पा कर देख लिया; वहां कुछ नहीं मिलाः फिर घबड़ाहट में जल्दी से पैसा इकट्ठा कर लिया। या कुछ और करो; कहीं न कहीं खोजते रहो। लोग बदलते रहते हैंपहलू बदलते रहते हैंकरवट बदलते रहते हैं। मगर हर बार जो ढेर तुम्हारे चारों तरफ लगे हैं, वे राख के ही है।
फिर यहां तक भी घटना घट जाती है कि आदमी ने पद देख लिया, धन देख लिया, प्रतिष्ठा देख ली, नाम देख लिया, यश देख लिया सब देख लिया, मगर कहीं कुछ नहीं मिला; अब वह कहता है कि मोक्ष मिल जाए, स्वर्ग मिल जाए। मगर स्वर्ग की आकांक्षा में जरा झांक कर देखना; वहां वही चीजें मांग रहा है, जो यहां मांगता था। स्वर्ग में भी स्वर्ण के महल हों; और स्वर्ग में भी सुंदर अप्सराएं हों हूरें हों, गिलमें हों। और स्वर्ग में भी शराब के चशमे बहते हों!
आदमी का पागलपन सोचते हो... ! यहां जिन चीजों से कुछ नहीं मिला, उनको ही
वह स्वर्ग में भी मांग रहा है। फिर ढेरी पकड़ ली! अब धर्म का नाम हैइस ढेर का नाम धर्म, मंदिर-मस्जिद, पंडित-पुरोहित। मगर कुछ बात इसमें भी होनेवाली नहीं है। तुम फिर भी वही खोज रहे हो। समझ कुछ आयी नहीं।
समझ जिसको आती है, वह बाहर खोजना बंद कर देता है। संसार में ही नहीं, स्वर्ग में भी खोजना व्यर्थ हो गयाबाहर की खोज ही व्यर्थ हो गई। समझ आती है, तो आदमी भीतर लौटता है। वह कहता हैः पहले मैं यह तो जान लूं कि मैं कौन हूं। मैं उसे तृप्त करने चला हूं, जिसका स्वभाव मुझे पता नहीं है। पहले स्वभाव तो पहचान लूं। और मजा ऐसा है कि उस स्वभाव को पहचानते-पहचानते ही तृप्ति हो जाती है।
जिस हीरे को तुम खोज रहे हो, वह तुम्हारे भीतर है; तुम ही होवह हीरा, जिसे तुम खोजने चले हो।
कुज-ए-तहनाई में देता हूं दिलासे क्या-क्या।
दिल-ए-बेताब को मैं और दिल-ए-बेताब मुझे।।

यहां तो तुम दिलासे ही देते रहते हो। एक जगह नहीं मिला, तो फिर दिलासा दिया कि दूसरी जगह मिल जाएगा। इस घर में नहीं मिला, तो दूसरे घर में मिल जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर में एक रात चोर घुसा। मुल्ला जल्दी से लालटेन जला कर उसके पीछे हो लिया। चोर बहुत घबड़ाया। उसने और घरों में चोरी की थी; कई मौके ऐसे खतरे के आ गए थे, जब मालिक जग गया था। मगर लालटेन ले कर कोई उसके साथ हो जाए, और लालटेन बताने लगे... ! वह थोड़ा घबड़ाया। उसने कहा कि नसरुद्दीन, तुम होश में हो? मैं चोर हूं और तुम मुझे लालटेन दिखा रहे हो! अरे, पुलिस को चिल्लाओ। मुल्ला बोला, पुलिस को चिल्लाने से क्या फायदा? एक मौका जिंदगी में मिला है। मैं साल से इस मकान में खोज रहा हूं, कुछ नहीं मिला। शायद तुम्हारे भाग्य से मिल जाए। आधा-आधा कर लेंगे। इसलिए लालटेन ले कर तुम्हारे साथ चल रहा हूं। तुम खोजो। बड़ा स्वागत। आएअच्छा किया। और आते रहना।
खोजते हो, मिलता नहीं है, तो फिर क्या करो? --दिलासे। स्वर्ग में मिलेगायहां नहीं मिला। शायद इस गांव में नहीं मिला, दूसरे गांव में मिलेगा। शायद इस काम में नहीं मिला, दूसरे काम में मिलेगा। शायद इस पत्नी में नहीं मिला, दूसरी पत्नी में मिलेगा। शायद इस बेटे में नहीं मिला, दूसरे बेटे में मिलेगा। मगर कहीं मिलेगा; बाहर मिलेगा।
संसार का अर्थ होता हैः बाहर मिले गाइस बात की भ्रांति।
राख ही राख है; बाहर राख ही राख है। हीरा भीतर है। हीरा तुम हो। हीरा तुम्हारी चेतना है। हीरा तुम्हारा साक्षी-भाव है।
और जितने जल्दी जाग जाओ, उतना अच्छा, क्योंकि कई बार ऐसा हो जाता है कि जीवन हाथ से निकल जाता है और तुम जागते ही नहीं। मौत द्वार पर खड़ी हो जाती है और तुम राख में ही कुरेदते रहते हो!
अभी गैर-दिलचस्प हो जाएंगे हम
अभी तुम कहोगे
कि बेकार है गुफ्तगू का बहाना
अभी मैं कहूंगा
कि बेकार है कारोबारे जमाना।
अभी तुम जबां पर
सलगती हुई रेत का जायका चंद लम्हों में महसूस करने लगोगे अभी मैं जबां पर
कोई खूबसूरत फरिश्ता सिफत नाम तन्हाइयों में नहीं ला सकूंगा अभी जिहन बीमार हो जाएंगे सब
अभी ख्वाब लाचार हो जायेंगे सब
फलक तक पहुंचते हुए हाथ बेकार हो जाएंगे सब
भले या बुरे हम अभी हैं सलामत
अभी टूटने को है, लेकिन कयामत
अगर मर्गे-एहसासे की आरजू आखिरी कद्र ठहरी
अभी गैर-दिलचस्प हो जाएंगे हम।
मौत किसी भी क्षण पकड़ लेगी और तुम्हारे जीवन का सारा राग-रंग खो जाएगा। अभी दिलचस्प बहुत हो तुम। अभी जिंदगी में बड़ा रस है। अभी बड़े रंजित हो। अभी बड़े उत्सुक हो कर खोज में लगे होकि यह पा लूं, कि वह पा लूं।
अभी गैर-दिलचस्प हो जाएंगे हम।
यह ज्यादा देर चलेगी नहीं बात। मौत आएगी और तुम बिल्कुल गैर-दिलचस्प
हो जाओगे। जिनने तुम्हें चाहा था, वे ही तुम्हें मरघट पहुंचा आयेंगे। जिनने तुम्हें सजाया था, वे ही तुम्हें अरथी पर चढ़ा देंगे। जिनने तुम्हें चाहा था हजार चाहतें तुमसे बांधी थीं वे ही तुम्हें चिंता पर चढ़ाने में न झिझकेंगे।
अभी गैर-दिलचस्प हो जाएंगे हम
अभी तुम कहोगे
कि बेकार है गुफ्तगू का बहाना

अभी मैं कहूंगा
कि बेकार है कारोबारे जमाना।
मगर अगर मौत आयी तब तुम्हें यह समझ में आया, तो बहुत देर हो गई। फिर तो आना पड़ेगा, फिर से आना पड़ेगा पाठ लेने; इसी विद्यालय में वापस लौट आना पड़ेगा। फिर जनमोगे; फिर पड़ोगे गर्भ की कारागृह में; फिर नौ महीने गर्भ की गंदगी गर्भ का नरक। फिर बढ़ोगे; फिर महत्वाकांक्षा; फिर राख की ढेरियों पर बैठे हुए लोग; फिर वही शिक्षण; फिर वही लोग; फिर वही दौड़! क्या आशा है कि फिर जागोगे--अगर अभी नहीं जागते? क्योंकि जितनी देर तुम नहीं जागते, उतना ही न जागने की आदत मजबूत होती जा रही है। एक-एक पल बीतता है और तुम्हारी संभावना कम होती है, क्योंकि आदतें मजबूत होती हैं; गलत आदतें मजबूत होती हैं।
अभी तुम जबां पर सुलगती हुई रेत का जायका चंद लम्हों में महसूस करने लगोगे। ज्यादा देर न लगेगी। जल्दी ही तुम पाओगे कि जिस राख की मैं बात कर रहा हूं, कह रहा हूं राख ही राख है, वे तुम्हारे ओंठों पर होगी, वह तुम्हारी जबान पर होगी। जल्दी ही अभी तुम जबां पर सुलगती हुई रेत का जायका चंद लम्हों में महसूस करने लगोगे।
थोड़े ही क्षण हैं हाथ में; जल्दी ही मुंह राख से भर जाएगा। सुलगती हुई रेत का जायका, स्वाद जल्दी ही तुम्हारे प्राणों में फैल जाएगा।
अभी मैं जबां पर कोई खूबसूरत फरिश्ता सिफत नाम तनहाइयों में नहीं ला सकूंगा। और अभी जो इतनी सुंदर तस्वीरें दिखाई पड़ रही हैं, चारों तरफ सुंदर लोग, सुंदर स्त्रियां, सुंदर पुरुष यह सारे जगत का सौंदर्य का सपना, जैसे ही गिरोगे जमीन पर, श्वास रूकेगी, फिर इस सौंदर्य की बात भी न उठा सकोगे। मगर तब बहुत देर हो जाएगी।
अभी बहुत जिहून बीमार हो जाएंगे सब। मौत उसी दिन आ गई, जिस दिन तुम पैदा हुए हो। मौत उसी दिन से चलने लगी तुम्हारे संग-साथ, जिस दिन तुम पैदा हुए हो। मौत तुम्हारी छाया है। अभी जिहून बीमार ही जाएंगे सब। ये दिल दिमाग जल्दी ही बीमार हो जायेंगे।
अभी ख्वाब लाचार हो जायेंगे सब। ये सारी महत्वाकांक्षाएं और सपने ऐसा
हो जाऊं, वैसा हो जाऊं; यह कर लूं, वैसा कर लूंए सब जल्दी ही गिर जाएंगे। अभी ख्वाब लाचार हो जायेंगे सब।
फलक तक पहुंचते हुए हाथ बेकार हो जाएंगे सब। ये छोटे-छोटे हाथ जो तुम आकाश तक फैलाए खड़े हो चांद-तारों को पकड़ने के लिए... फलक तक पहुंचते हुए हाथ बेकार हो जायेंगे सब।
भले या बुरे हम अभी हैं सलामत। अभी जैसे भी हो कम से कम हो। इस होने का उपयोग कर लो। इस जीवन की घड़ी को ऐसा ही मत जाने दो। कल की प्रतीक्षा न करो। कल मौत है; आज ही है जीवन; अभी है जीवन।
भले या बुरे हम अभी हैं सलामत; अभी टूटने को है, लेकिन कयामत। लेकिन मौत टूटेगी, विनाश होगा।
अगर मर्गे-एहसासे की आरजू आखिरी कद्र ठहरी। अगर इस जीवन में आखिरी मूल्य मौत ही हाथ लगता है, तो इस जीवन का क्या मूल्य! इसलिए तुमसे कहता हूंः राख ही राख है सब।
जहां मौत ही आती है अंततः वहां राख ही राख हो सकती है। अंतिम--सबूत है।
मौत निष्पत्ति है जीवन की। तो सारी दौड़-धूप आपा-धापी बस, मौत में ले आती है।
अगर मर्गे-एहसासे की आरजू आखिरी कद्र ठहरी
अभी एक बेजान माजी के सहरा में खो जायेंगे हम।
ज्यादा देर न लगेगी। अभी हम है, अभी अतीत हो जाएंगे। अभी एक बेजान माजी के सहरा में खो जाएंगे हम। अतीत के मरुस्थल में खो जाएंगी हमारी कहानियां, हमारी जीवन-कथाएं।
कितने लोग रहे इस जमीन पर! निशान भी तो नहीं छूट जाते हैं; चिहून भी तो नहीं छूट जाते हैं। समय को रेत पर जो हमारे पैर के चिह्न बनते हैं, बनते ही नहीं मिटने लगते है। कुछ भी तो नहीं रह जाता।

तुम जहां बैठे हो, यहां कितने-कितने लोग नहीं बैठ चुके होंगे--अनंत-अनंत काल में! उनकी कोई याद नहीं, कोई चिह्न नहीं। आज तुम ऐसे बैठे हो, जैसे तुम सदा से यहां बैठे थेकि तुम सदा यहां बैठे रहोगे! जिन घरों में तुम रह रहे हो, उनमें कितने लोग नहीं रह चुके! जमीन का हर टुकड़ा हजारों बार कब्र बन चुका है। बस्तियां बसी हैं और मरघट हो गई हैं। मरघट फिर बस गएऔर बस्तियां हो गईं।
एक सूफी फकीर हुआ, इब्राहीम। पहले तो बादशाह था, लेकिन एक छोटी सी घटना घटी और उतर गया सिंहासन से।
एक फकीर द्वार पर खड़ा था एक दिन, भीख मांगने आया था। भीख भी अजीब सी मांग रहा था। द्वारपाल से कह रहा था कि भोजन भी दे दो और रात मुझे ठहरना भी है, तो इस सराय में ठहर जाने दो। द्वारपाल ने कहाः यह सराय नहीं है महानुभाव! होश में आओ, यह राजा का महल है। अगर राजा को पता चल गया, तो झंझट में पड़ जाओगे। वह आदमी खतरनाक है; उनके मकान को सराय कहना अपमानजनक है। लेकिन वह भिखमंगा बोलाः जा भी जा। मुझे धोखा न दे सकेगा। सराय सराय है।
सम्राट ने सुन लिया यह। जरा हैरान हुआ कि आदमी कैसा है! कहा कि बुलाओ उसे भीतर। नाराज भी हुआ। कहाः इसे तू सराय कह रहा है? धर्मशाला समझ रहा है? यह मेरा निवास है! यह राजमहल है! तुझे दिखाई नहीं पड़ता? अन्धा है? आंख का अंधा है?
वह फकीर मगर एक ही था। उसने आंख में आंख डाल लीं इब्राहीम के और कहाः आंख का अंधा मुझे कहते हो! आंख के अंधे तुम हो। क्योंकि मैं पहले भी आया था और तब मैंने इसी सिंहासन पद इसी अकड़ से दूसरे आदमी को बैठे देखा। उसने कहाः वे मेरे पिता थे। और उस फकीर ने कहाः उसके पहले भी मैं आया था और तब मैंने एक तीसरे आदमी को इसी अकड़ से, इसी अंधेपन से इसी जगह बैठे देखा था! और यही बकवास... ! इब्राहीम ने कहाः वे मेरे दादा थे। वह फकीर पूछने लगाः वे कहां हैं?
इब्राहीम को बड़ी चोट लगी। बात तो साफ हो गई। दो आदमी यहां थे, अब नहीं हैं। वह फकीर कहने लगाः मैं कल जब दुबारा आऊंगा--फिर कभी तुम मिलोगे? इसलिए इसको सराय कहता हूं, नाराज क्यों होते हो! यहां लोग ठहरते हैं चले जाते हैं। सराय का और क्या मतलब होता है? तुम्हारे दादा रहे; वे सोचते थे उनका मकान है। फिर तुम्हारे बाप रहे; वे सोचते थे उनका मकान है। अब तुम रह रहे हो; तुम सोचते हो तुम्हारा मकान है! कल तुम्हारा बेटा यही कहेगाऔर बेटों के बेटे यही कहेंगे। यह सिलसिला कब तक जारी रहेगा? आंख के अंधे तुम हो, कि मैं हूं?
चोट लग गई। इब्राहीम भी अदभुत आदमी रहा होगा; उतर गया सिंहासन से। उसने कहाः तू ठहर सराय में। मैं चला। जब सराय ही है, तो अब यहां रूकना ठीक नहीं।
फकीर तो ठहर गया और सम्राट निकल गया महल से। फिर तो वह गांव के बाहर...
। बल्ख का राजा था वह; बल्ख के गांव के बाहर रहने लगा एक वृक्ष के नीचे। और अकसर ऐसा हो जाता था कि लोग उससे पूछते थे राहगीर-यात्री, कारवां के लोग... । क्योंकि वह जहां, जिस झाड़ के नीचे बैठा था, वहां से दो रास्ते जाते थे। लोग पूछते थेः बस्ती का रास्ता कौन सा है? तो वह बता देता था कि बाएं जाना। भूल कर दाएं मत जाना। दाएं का रास्ता मरघट जाता है। बायां रास्ता बस्ती जाता है। और घंटे, दो घंटे में बाएं रास्ते से लोग लौट कर आते--बड़े नाराज और क्रोधित, क्योंकि वह मरघट का रास्ता था। कभी-कभी तो लोग मारने- पीटने पर उतारू हो जाते थेकि तुम देखने में सीधे-साधे मालूम पड़ते हो, तुम हम अजनबी यात्रियों को परेशान क्यों किए? लेकिन इब्राहीम कहताः तो फिर ऐसा मालूम होता है कि हमारी-तुम्हारी भाषा अलग। क्योंकि तुम जिसको बस्ती कहते हो, उसको मैंने इसलिए छोड़ दिया कि वहां लोग सिर्फ मरते हैं और कुछ नहीं होता। मरघट है। सभी मरने की कतार में खड़े हैं, उसको तुम बस्ती कहते हो? बस्ती कैसे कहना, बसा तो वहां कोई भी नहीं रहेगा!

मेरे गुरु ने इसी तरह मुझे जगाया था; कहा था कि तेरा घर नहीं, सराय है। उसी दिन मैं समझ गया कि बस्ती जिसको लोग कहते हैं, वह बस्ती नहीं, मरघट है। हर आदमी मरने को है! कतार में खड़े हैं लोग। कतार आगे बढ़ रही है। एक मरा कि तुम थोड़े और आगे सरके। दूसरा मराकि तुम थोड़े और आगे सरके। बस मौत के पास पहुंचते जा रहे हो। इसको बस्ती कैसे कहो! बसा कोई भी नहीं है। बस कभी कोई सका नहीं है। इसको बस्ती कैसे कहो? और मरघट को मैं इसलिए बस्ती कहता हूं इब्राहीम कहता, कि वहां जो बस गयासो बस गया। फिर कभी उसको लौटते नहीं देखा। जो समा गया मरघट मेंसमा गया। जो बस गयासो बस गया। वह शाश्वत बस्ती है। ढो हमारी-तुम्हारी भाषा में कुछ भूल हो गई। क्षमा करना।
यह इब्राहीम जो कह रहा है, इसे ध्यान रखो। आज हाथ में है। अभी गैर-दिलचस्प हो जाएंगे हम। ज्यादा देर न लगेगी। उसके पहले जागो। उसके पहले समझो।
चेत सको, तो चेतो। उसी चेतना में रूपांतरण है।

आखिरी प्रश्नः मन कभी-कभी निर्लिप्त सा मालूम देता है, लेकिन क्षण भर। और उस क्षण आनंद और प्रसन्नता का अनुभव होता है। थोड़ी कृपा और करो, ताकि मैं निर्लिप्त हो जाऊं; क्योंकि क्षण भर की निर्लिप्तता स्वप्नवत है।

पहल बात, लोभ से न भरो। ध्यान में लोभ को मत लाओ, नहीं तो ध्यान खो जाएगा; जो क्षणभर मिल रहा है, वह भी खो जाएगा। अगर क्षण भर में मिल रहा है जो, उसे भी गंवाना हो, तो लोभ को ले आना।
यह मैं यहां रोज देखता हूं। जब ध्यान की घटना शुरू होती है, स्वभावतः लोभ जगता है। लोभ तो पड़ा है भीतर। लोभ कोई धन का ही थोड़े होता है, ध्यान का भी होता है। लोभ तो लोभ है; किस चीज का इससे कोई संबंध नहीं है।
लोभ का मतलब हैः और ज्यादा। धन हो, तो और ज्यादा। पद हो, तो और ज्यादा। प्रतिष्ठा हो, तो और ज्यादा। जो भी हो, वह और ज्यादा। यही लोभ पड़ा है तुम्हारी मटकी में। इस लोभ को बाहर विदा करो। अन्यथा जब ध्यान आएगा, यह लोभ कहेगाऔर ज्यादा। क्षणभर में क्या होगा! शाश्वत चाहिए।
अब थोड़ा समझो। एक बार में एक ही क्षण तो मिलता है। दो क्षण तो साथ कभी मिलते नहीं। अगर एक क्षण में भी शांत होना आ गया, तो और क्या चाहिए! सारा जीवन शांत हो जाएगा। एक क्षण में शांत होना आ गया, तो तुम्हारे हाथ में कला आ गई। मगर यह लोभ कहेगा कि एक क्षण की शांति से क्या होता है!
एक-एक कदम चल कर आदमी हजार मील की यात्रा पूरी कर लेता है। कोई हजारों कदम एक साथ तो चल भी नहीं सकता। दो कदम भी एक साथ नहीं चल सकते। चलते तो तब हो, जब एक कदम चलते हो।
एक क्षण मिलता है एक बार में। जब एक चला जाता है हाथ से, तब दूसरा आता है। तुम्हें एक क्षण को ध्यान में रंगने की कला आ गई, धन्यभागी हो। अब लोभ को मत जगाओ, नहीं तो इस क्षण को भी नष्ट कर देगा।
अब तुम कहते होः क्षण भर की निर्लिप्तता स्वप्नवत है। यह तुम्हारा लोभ कह रहा है। तुम्हारी मांग पैदा होने लगी।
जब ध्यान की घटनी शुरू होती है, तो पहले तो क्षण में ही घटेगी; क्षण का
ही द्वार खुलेगा; क्षण के ही झरोखे से पहले झांकोगे।
अब जब क्षण का झरोखा खुले, तो दो बातें संभव हैं। एक तो यह कि तुम धन्यवाद दो परमात्मा कोकि हे प्रभु, मैं इतना भी योग्य न था, तूने क्षण भर को खिड़की खोली, इतना भी बहुत है। मेरी पात्रता इतनी भी न थी। यह तेरे प्रसाद से ही हुआ होगा; यह तेरी अनुकंपा से हुआ होगा, क्योंकि तू रहीम है, रहमान है, इसलिए हुआ होगा। तू करुणावान है, इसलिए हुआ होगा। मेरी योग्यता से तो कुछ भी नहीं हुआ। एक तो यह भाव है। यह भक्त का भाव है।
भक्त कहता है कि नहीं, नहीं, मैं भरोसा नहीं कर पाता कि तू और ध्यान की झलक मुझे देगा! मैं तो पापी; मैं तो दीन-हीन; मैं तो बुरे से बुरा। भला मुझमें क्या है! मैं तो बुरा खोजने जाता हूं, तो मुझसे बुरा मुझे कोई नहीं

मिलता। और भला खोजने जाता हूं, तो सभी मुझसे भले मुझे मिलते हैं। मुझ पर तेरी कृपा! मुझ अंतिम पर तेरी कृपा? जरूर तेरा प्रेम है, तेरी अनुकम्पा है। अकारण तू मुझ पर बरस रहा है।
यह अगर भाव रहे, तो ध्यान बढ़ेगा। गहरा होगा, क्योंकि इसमें लोभ नहीं है। इसमें विनय है; इसमें निर्वासना है। जितना मिला, उसके लिए धन्यवाद है। उतना ही क्या कम है! उसे स्वप्नवत मत कहो।
क्षण भर भी जो ध्यान मिलता है, वह भी स्वप्न नहीं। और सौ वर्ष की भी जो जिंदगी है, वह भी स्वप्न है। ध्यान तो सत्य ही है क्षण भर मिले, कि शाश्वत मिले। और जिंदगी तो स्वप्न ही है क्षण भर रहे, कि सदा रहे; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
समय की मात्रा से सत्य और असत्य का कोई संबंध नहीं है।
अनुग्रह को जगाओ; लोभ को विदा करो।
और दूसरी उपाय की व्यवस्था यह है कि जैसे ही ध्यान आता है, तुम कहते होः और चाहिए; इतने से क्या होगा!
एक सज्जन मेरे पास आए। उन्होंने मुझसे कहा... । पढ़े लिखे हैं; एक राजनेता है। किसी राज्य में मिनिस्टर हैं। मुझसे कहा कि मुझे नींद नहीं आती। मैं सिर्फ इसलिए आया हूं कि मुझे किसी तरह कोई विधि बता दें, जिससे नींद आ जाए। दवाएं ले ले कर मैं थक गया। और दवाएं कोई काम नहीं करतीं; एकाध दो दिन काम करती हैं, फिर उनकी मात्रा बढ़ाओ। फिर अगर ज्यादा दवा ले लेता हूं, तो दिन भर सुस्ती बनी रहती है। तो फिर सुस्ती मिटाने के लिए दवा लेनी पड़ती है! फिर सुस्ती मिटाने की ज्यादा दवा ले लो, तो रात नींद नहीं आती। तो मैं चक्कर में पड़ गया हूं, इससे बाहर निकलना नहीं हो पा रहा है। तो अब मैं क्या करूं?
उन्होंने कहा कि मुझे न परमात्मा में कोई उत्सुकता है, न मैं ध्यान की कोई खोज कर रहा हूं। मुझे सिर्फ नींद आ जाए, बस, इतना आप कर दें।
मैंने उनसे कहा कि आप निश्चिंत हैं कि और तो मांग नहीं करेंगे? सिर्फ नींद आ जाए। उन्होंने कहा कि बिल्कुल लिख कर दे सकता हूं। उन्हें पता भी नहीं था कि कमरे में टेपरिकार्डर पड़ा था और वह सब रिकार्ड होता रहा। उन्होंने कसम खा कर कहा कि मुझे नींद से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिए। उन्हें मैंने ध्यान के कुछ प्रयोग करने को कहे। कहा कि आप एक महीने भर बाद आ कर कहें।
महीने भर बाद वे आए। मैने पूछाः कैसे हैं? वे उदास थे; कहा कि ठीक है; नींद तो आने लगी; और कुछ भी नहीं हुआ! मैंने कहाः आपको याद है, महीने भर पहले आप क्या कह गए थे? बोले, क्या कह गया था?
मैंने टेप बुलवाया। सुना; उनको भरोसा न आया एकदम से कि उन्होंने यह कहा था। फिर याद आया कि कहा तो मैंने ही था। मगर नींद से ही क्या होगा? तुम देखतेः आदमी का मन कैसा है! जो मिल जाए, वही व्यर्थ हो जाता है। न मिले तो सार्थक, मिल जाए तो व्यर्थ हो जाता हैमन की यह तरकीब है। मन हमेशा जिसका अभाव है, उसकी मांग करता है।
अभी तुमको क्षणभर को ध्यान उतरना शुरू हुआ; कितने लोग हैं इस पृथ्वी
पर जिनको क्षण भर भी मिलता है? ध्यान मिलता कहां है! सम्राटों को नहीं मिलता; समृद्धों को नहीं मिलता; तुम्हारे तथाकथित त्यागी, साधु-मुनियों को नहीं मिलता। मुझे न-मालूम कितने साधु और महात्माओं ने कहा है कि ध्यान नहीं लगता!
सब त्याग दिया है; उपवास करते हैं; सब तरह से शरीर को कष्ट देते हैं, तपश्चर्या करते हैंऔर ध्यान नहीं लगता। और तुम्हें क्षण भर को लग गया! तुम कहते हो--स्वप्नवत है। धन्यवाद दो; अहोभाव में जीयो। क्षण बढ़ेगा; अपनेआप बढ़ता जाएगा।
लेकिन अगर तुमने कहाऔर चाहिए, इतने से क्या होगा! इसमें क्या रखा है; क्षणभर को मिला तो क्या रखा है? ...
और मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं कि जब क्षण भर को मिलता है, तो स्वभावतः और पाने की आकांक्षा पैदा होती है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि

अस्वाभावकि है। मगर खतरनाक है यह भाव; खतरनाक है और स्वाभाविक है। बिल्कुल स्वाभावकि है। जिसको स्वाद लगता है, वही तो मांगेगा।
तुम प्यासे थे; पानी कभी मिला नहीं था। तो प्यास का ही पता था। फिर एक बूंद तुम्हारे कंठ में पड़ी। जरा सी तृप्ति उतरी। क्षण भर को तृप्ति लहरा गई कंठ में। अब स्वभावतः तुम कहोगे कि एक बूंद से क्या होगा? इतने से क्या होगा? कम से कम कंठ भर तो मिले! प्यास बुझे ऐसा तो मिले। यह तो प्यास और जग गई!
कभी-कभी तुमने देखा होगाः रात रास्ते से गुजरते हो अंधेरे में। अंधेरा है, लेकिन फिर भी तुम्हें दिखाई पड़ता है; कुछ-कुछ दिखाई पड़ता है। थोड़ी देर अंधेरे में रहते हो, तो अंधेरे में भी दिखाई पड़ता है। फिर एक तेज कार पास से गुजर गई। उसकी प्रकाश की दमदमाती रोशनी तुम्हारी आंखों पर पड़ी और कार गुजर गई। उसके बाद अचानक तुम लड़खड़ा जाते हो। अब कुछ नहीं दिखाई पड़ता। वह जो रोशनी आंख में पड़ गई क्षण भर को, उसकी वजह से अब अंधेरा और अंधेरा मालूम होता है।
तो मैं जानता हूं कि क्षण भर को जब ध्यान उतरता है, तो बिल्कुल स्वाभावकि है, क्योंकि फिर संसार बिल्कुल व्यर्थ मालूम होता है। अभी तक कंकड़-पत्थर बीनते रहे, फिर एक छोटा सा हीरा हाथ लग गया। मगर हीरा न हाथ लगा कि मुश्किल आयी, मुसीबत आई; अब कंकड़-पत्थर बीनने में कुछ रस न रहेगा। अब तो यह होगा कि हीरे ही हीरे मिलें। यह स्वाभाविक है।
फिर वही रात, वीराने-ए-दिल है, मैं हूं
तुम न मिलकर जो बिछुड़तीं तो बहुत आसां था
जीस्त के अजनबी रस्तों से गुजराना मेरा
तुमने बदला जो न होता मेरा मैयारे-नजर
कोई मुश्किल न था, दुनिया में बहलना मेरा
अपनी तन्हाई का दर्द आज कहां से लाऊं किससे फरियाद करूं? किससे मुदावा चाहूं भूल तक भी न सकूं, जिसको भुलाना चाहूं
ऐ मेरी वहशते दिल! तू ही बता क्या चाहूं रंगे-रूखसार, गुलो लाला में कब तक ढूंढूं लब समझ कर तेरे, शोलों को कहां तक चूमूं मरमरी जिस्म के एहसास में खोया खोया चांदनी रातों में बेवजह कहां तक घूमूं तेरे अनफास की खुश्बू से मुअत्तर है जो दिल महकते-लाला-ओ-गुल से वो कहां बहलेगा जिसने कल तक तेरे खिलते हुए लब देखे थे
आज कलियों के चटकने से कहां बहलेगा
एक कौंदा-सा जो लपका था मेरी आंखों में
फिर अंधेरे के सिवा कुछ नजर न आया मुझे
एक सितारा-सा जो टूटा था मेरी रातों में
मौजिजा फिर कोई आंखों ने दिखाया न मुझे
फिर वही रात है, वीरानी-ए-दिल है, मैं हूं।
प्रेम का क्षण अनुभव में आ जाए, तो कठिनाई हो जाती है। तो फिर क्या कहना, प्रार्थना का क्षण जब अनुभव में आता है, कितनी कठिनाई न हो जाएगी! जिसने प्रेम नहीं जाना, उसके जीवन में एक तरह की सुविधा होती है। जिसने प्रेम जाना ही नहीं, उसके जीवन में ज्यादा अड़चन नहीं होती। इसीलिए तो लोगों ने सदियों सेसमझदारों ने--तथाकथित समझदारों ने आदमी के जीवन से प्रेम हटा दिया और विवाह का आयोजन किया। प्रेम का जान लेना खतरनाक हो जाता है। विवाह मद्दिम-मद्दिम बात है; कोई लपट नहीं है। विवाह व्यवस्था है, कोई बिजली की कौंध नहीं है। विवाह में सुविधा है।
पश्चिम ने अभी खतरा मोल ले लिया है प्रेम-विवाह। प्रेम-विवाह खतरनाक बात है। खतरनाक इसलिए कि प्रेम में इतनी ऊंचाइयां दिखाई पड़ जाती हैं कि फिर उनसे नीचे उतरने का मन नहीं होता। और आदमी ज्यादा देर ऊंचाइयों पर रह

नहीं सकता। आदमी का मन इतना अस्थिर है कि वह जो दो-चार दिन की प्रेम में देखी ऊंचाई, फिर वह चाहता है कि ऐसी ऊंचाई रोज रहे। फिर वह मांग करता है कि ऐसी ऊंचाई सदा मिले। उसने जो सौंदर्य की थोड़ी सी झलक देख ली, वह जो हनीमून देख लिया, वह तो सुहागरात थी, उसमें जो उसने मौज देख ली, अब वह मांगता है रोज वैसी सुहागरात हो। हर रात सुहागरात नहीं हो सकती। फिर मन बड़ा बेचैन हो जाता है।
अगर प्रेम आएगा, तो विवाह जाएगा; इसलिए पश्चिम से विवाह जा रहा है। पश्चिम में विवाह बच नहीं सकता। एक तिहाई अनुपात में लोग तलाक कर रहे हैं। विवाह विदा हो रहा है। जो तलाक नहीं कर रहे हैं, उन्होंने भी पीछे के रास्ते खोज लिए हैं। लेकिन विवाह समाप्त है। विवाह का कोई भविष्य नहीं है।
प्रेम आयाकि विवाह गया। क्या खतरा प्रेम ले आता है? प्रेम तुम्हें झलक दिखा देता है आसमान की, फिर जमीन पर चलना मुश्किल हो जाता है। फिर तुम मांग करने लगते हो। और तुम्हारा मन कहता हैः और चाहिए और बड़ा आसमानऔर बड़ी ऊंचाईऔर गहरा अनुभव। फिर वह नहीं मिलता। जब नहीं मिलता, तो खोजो कहीं औरकिसी और स्त्री में; किसी और पुरूष में।
यह गीत ख्याल में रखनाः
फिर वही रात है, वीरानी-ए-दिल है, मैं हूं
तुम न मिल कर जो बिछुड़तीं तो बहुत आसां था
बड़ा आसां था।...
तुम न मिल कर जो बिछुड़तीं तो बहुत आसां था
जीस्त के अजनबी रस्तों से गुजरना मेरा।
जिंदगी के ए अजनबी रास्ते गुजार देता। न जानता सुख को, न दुख की पहचान होती। न जानता प्रेम को, न प्रेम की कमी खलती। न देखे होते फूल, न कांटों की मौजूदगी खलती।
जीस्त के अजनबी रस्तों से गुजरना मेरा
तुम न मिल कर जो बिछुड़तीं तो बहुत आसां था
तुमने बदला जो न होता मेरा मैयारे-नजर...
लेकिन तुमने मेरी दृष्टि बदल दी; मेरा मैयारे-नजर बदल दिया।
तुमने बदला जो न होता मेरा मैयारे-नजर
कोई मुश्किल न था, दुनिया में बहलना मेरा।
बहला लेताधन में, पद में, प्रतिष्ठा में। लेकिन यह प्रेम मुश्किल कर गया। अब ऐसा होता है कि वही पुराना एकाकीपन लौट आए, तो अच्छा।
अपनी तन्हाई का दर्द आज कहां से लाऊं! वहीं अच्छा था; वह दुख अच्छा था,
जब सुख से कोई पहचान न हुई थी। वह संसार अच्छा था, जब संन्यास की कोई झलक न मिली थी। कम से कम बसे तो थे। फिर तो उखड़े-उखड़े हो गए। फिर तो यहां कुछ सार न रहा और जहां सार है, वहां की शर्त यह है कि मांग मत करना, अनुग्रह के भाव से चलना।
किससे फरियाद करूं? किससे मुदावा चाहूं? अब किससे शिकायत करूं, किससे प्रार्थना करूं? और कौन मेरा उपचार करे? --किससे मुदावा चाहूं।
भूल तक भी न सकूं, जिसको भुलाना चांहू।... एक बार हो जाए, तो फिर भुलाना
भी संभव नहीं है।
तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं। वह जो क्षण भर को ध्यान उतारा है, अब तुम भुला न सकोगे। अब तुम्हारी जिंदगी में वही तो सबसे मूल्यवान है। वही शिखर एक प्रकाश स्तंभ की भांति अब तुम्हें आलोकित रखेगा। अब उसकी स्मृति जा न सकेगी।
भूल तक भी न सकूं, जिसको भुलाना चाहूं
ऐ मेरी बहशते दिल तू ही बता क्या चाहूं
रंगे-रूखसार, गुलो लाला में कब तक ढूंढूं।...
और अब जिसने प्रेम की झलक देख ली, अब फूल फीके मालूम पड़ते हैं। जिसने प्यारे की झलक देख ली, अब गुलाब और कमल भी मुकाबला करते नहीं मालूम पड़ते; अब चांद-तारे भी रोशनी मालूम नहीं होते।

रंगे-रूखसार... तेरा चेहरा क्या देख लिया... गुलो लाला में कब तक ढूंढूं। अब फूलों में ढूंढने जाता हूं, लेकिन मिलता नहीं।
लब समझ कर तेरे, शोलों को कहा तक चूमूं। और जब तेरे ओठ जान लिए, तो अब अंगारों पर ओठ रखते हुए जी घबड़ाता है।
मरमरी जिस्म के एहसास में खोया-खोया। और तेरी संगमरमर जैसी बनी देह
को देख लिया, तेरी देह को जाना। मरमरी जिस्म के एहसास में खोंया-खोया; चांदनी रातों में बेवजह कहां तक घूमूं। अब बहुत घूमता हूं चांदनी रातों में, लेकिन अब चांदनी भी मन को भर नहीं पाती।
तेरे अनफास की खुशबू से मुअत्तर है जो दिल। तेरे श्वास की खुशबू भर गई। तेरे अनफास की खुशबू से मुअत्तर है जो दिल; महकते लाला-ओ-गुल से वो कहां बहलेगा।
माना कि फूल खिले हैं बहुत फूल खिले हैं, मगर इनसे अब बहलने वाला नहीं। जिसने कल तक तेरे खिलते हुए लब देखे थे।... जिसने तेरे ओठों के फूल देखे... आज कलियों के चटकने से कहां बहलेगा।
एक कौंदा-सा जो लपका था मेरी आंखों में।... एक बिजली कौंध गई प्रेम की।
एक कौंदा-सा जो लपका था मेरी आंखों
फिर अंधेरे के सिवा कुछ नजर आया न मुझे
इक सितारा-सा जो टूटा था मेरी रातों में
मौजिजा फिर कोई आंखों ने दिखाया न मुझे।
वह एक सितारा जो टूटा था प्रेम का, फिर उसके बाद आंखों ने कोई चमत्कार नहीं देखा और न कोई चमत्कार दिखाया। अब बस, उसी एक याद पर सब अटका रह गया है।
फिर वही रात है, वीराने दिल है, मैं हूं... । और वीरानी पहले से भी ज्यादा होगी; और रात पहले से भी ज्यादा अंधेरी होगी।
इसलिए मैं तुमसे कहना चाहता हूं... । तुम्हारा प्रश्न महत्तवपूर्ण है, सभी के काम का है। जिसने एक बार ध्यान का क्षण जान लिया, क्षण भर को भी, उसकी अड़चन मेरी समझ में है।
इसलिए मैं यह नहीं कहता कि कुछ अप्राकृतिक तुम्हारी मांग है।
स्वाभाविक तुम्हारी मांग है। लेकिन याद रखोः वही मांग बाधा बन जाएगी। तुम्हें प्राकृतिक मांग से ऊपर उठना होगा।
ध्यान प्रकृति के ऊपर का ही नाम है। प्राकृतिक मन कहेगाः और मिले और मिले। और मिले और मिले ऐसा चाहा, तो जो मिला, वह भी खो जाएगा। याद रह जाएगी; धुंधली सी याद रह जाएगी; प्राणों में चुभा एक कांटा सा रह जाएगा; मगर ध्यान खो जाएगा। क्योंकि ध्यान और लोभ का मिलन नहीं होता। वासना और ध्यान का मिलन नहीं होता।
मांगो ही मत। मिला है इसके लिए धन्यवाद दो। जो मिला है इसके लिए अनुग्रह करो, नाचो उत्सव मनाओ। इसलिए मेरी प्रत्येक ध्यान की विधि का अंतिम चरण धन्यवाद है, अनुग्रह का भाव है, अहोभाव है।
उत्सव मनाओ; समारोह करो; नाच कर धन्यवाद दो।
जितना मिला, उतना भी तुम्हारी पात्रता से ज्यादा है; उसमें भी प्रसाद है।
और तुम चकित होओगे--रोज-रोज तुम्हारा प्रसाद बढ़ता जाएगा। जैसे-जैसे तुम्हारा अनुग्रह का भाव बढ़ेगा, वैसे-वैसे तुम पर प्रसाद की वर्षा बढ़ती चली जाएगी।
परमात्मा मांगे से नहीं मिलता; धन्यवाद देने से मिलता है।
चाह का नाम जब आता है, बिगड़ जाते हो।
वह तरीका तो बता दो तुम्हें चाहें क्योंकर।
चाह का नाम आता है, बिगड़ जाते हो। परमात्मा को चाह में मत बांधो।
क्योंकि जिसको तुमने चाह में बांधा, वहीं से दुख पाओगे। चाह दुख लाती है।
परमात्मा को चाह में मत बांधो; परमात्मा को अनुग्रह में मुक्त करो।
चाह के बंधन न फैलाओ। अनुग्रह की आजादी। यही कहो कि इतना दिया, यही बहुत।

और ज्यादा क्या मांग सकता हूं! और ज्यादा क्या चाह सकता हूं! और तुम कल चकित हो कर पाओगेः और ज्यादा मिला है। तब भी ध्यान रखना।
धीरे-धीरे तुम्हें यह राज समझ में आ जाएगा कि कुछ बातें हैं, जो मांगे
से नहीं मिलतीं। कुछ बातें हैं, जो मांगे से खो जाती हैं। जिस दिन तुम यह समझ लोगे, उस दिन तुम्हारे हाथ में कुंजी है। उस कुंजी से परमात्मा का अंतिम द्वार भी खुल जाता है।

आज इतना ही।

नहीं सांझ नहीं भोर
तीसरा प्रवचन

जग माहीं न्यारे रहौ

गुरु कहै सो कीजिए करै सो कीजै नाहिं।
चरनदास की सीख सुन यही राख मन माहिं।।
अब के चूके चूक है फिर पछतावा होय।
जो तुम जक्त न छोड़िहौ जन्म जायगो खोय।।
जग माहीं न्यारे रहौ लगे रहौ हरिध्यान।
पृथिवी पर देही रहै परमेसुर में प्रान।।
सब सूं रख निरवैरता गहो दीनता ध्यान।
अन्त मुक्ति पद पाइहौ जग में होय न हानि।।
क्या नम्रता दीनता छिमा सील सन्तोष।
इनकूं लै सुमिरन करै निश्चय पावै मोष।।
मिटते सूं मत प्रीत करि रहते सूं करि नेह।
झूठे कूं तजि दीजिए सांचे में करि गेह।।
ब्रह्म-सिंध की लहर है तामे न्हाव संजोय।
कलिमल सब छुटि जाहिंगे पातक रहै न कोय।।
का तपस्या नाम बिन जोग जग्य अरु दान।
चरनदास यों कहत हैं सब ही थोथे जान।।
गई सो गई अब राखिलै एहो मूढ़ अयान।
निकेवल हरि कूं रटो सीख गुरु की मान।।

नदी बड़ी गहरी है पता नहीं क्या होगा
सहमे-सहमे लोग खड़े हैं दोनों ओर किनारों पर
कुछ की नजरें नीची-नीची कुछ की चांद-सितारों पर कुछ तैयार खड़े हैं पर मिटने को किन्हीं इशारों पर आंधी कही ठहरो है पता नहीं क्या होगा
कुछ अंधियारा कुछ उजियारा अजब तरह का मौसम है
कांप-कांप उठता सन्नाटा डरी-डरी सी शबनम है
मै किसको आवाज लगाऊं रहा न कोई हमदम है
चांदनी भी बहरी है पता नहीं क्या होगा
नदी बड़ी गहरी है पता नहीं क्या होगा

आदमी जहां है वहां तृप्ति नहीं है। आदमी जहां है वहां दुख और विषाद है। और आदमी को जहां तृप्ति की आशा दिखाई पड़ती है वह दूसरा किनारा बहुत दूर धुंध में छाया मिल भी सकेगा निर्णय करना मुश्किल है। है भी यह भी निश्चय करना मुश्किल है।
इस किनारे पर कोई सुख नहीं है। उस किनारे पर आशा है लेकिन कैसे उस किनारे तक कोई पहुंचे माझी खोजना होगा। किसी ऐसे का साथ चाहिए जो उस पार हो जो उस पार हो आया हो जिसने संतुष्टि का स्वाद जाना हो जो मोक्ष की हवा में जीया हो। किसी मुक्त का सत्संग चाहिए। गुरु का इतना ही अर्थ है।
गुरु का अर्थ हैः इस किनारे होकर भी जो इस किनारे का नहीं। इस किनारे होकर भी जो उस किनारे का सबूत है। इस किनारे होकर भी जो वस्तुत उस किनारे ही रहता है। तुम्हारे बीच है तुम्हारे जैसा है फिर भी तुम्हारे बीच नहीं। फिर भी तुम्हारे जैसा नहीं।
गुरु का अर्थ है जहां कुछ अपूर्व घटा है। जहां बीज अब बीज ही नहीं फूल
बन गए है। जहां संभावना वास्तविक हुई है जहां मनुष्य की अंतिम मंजिल पूरी हुई है जहां मनुष्य अपनी निष्पत्ति को उपलब्ध हुआ है।
गुरु का अर्थ है तुम्हारा भविष्य। गुरु का अर्थ है तुम जो हो सकते हो वैसा कोई हो गया है। उसका हाथ पकड़े बिना यात्रा संभव नहीं है। उसका हाथ पकड़े बिना भटक जाने की संभावना है पहुंचने की नहीं।

आज के सूत्र महत्वपूर्ण हैं--सभी साधकों सभी खोजियों के लिए।
गुरु कहै सो कीजिए करै सो कीजै नाहिं।
चरनदास की सीख सुन यही राख मन माहिं।।
बड़ा अनूठा वचन है और एकदम से समझ में न पड़े ऐसा वचन है। समझ पड़ जाए तो बड़ी संपदा हाथ लग गई।
"गुरु कहै सो कीजिए करै सो कीजै नाहिं।"
उलटा लगता है। साधारणत तो हम सोचेंगे गुरु जैसा करे वैसा करो। लेकिन चरणदास कहते है गुरु जो कहे वैसा करो जो करे वैसा नहीं। क्यों क्योंकि गुरु जो कर रहा है वह तो उसकी आत्मदशा है। गुरु का कृत्य तो उस पार का कृत्य है। गुरु जो कर रहा है जैसा जी रहा है वैसे तो तुम अभी जी न सकोगे। वैसा जीना चाहा तो झंझट में पड़ोगे। या तो पाखंड हो जाएगा प्रारंभ अभिनय होगा क्योंकि जो तुम्हारी अंतर्दशा नहीं है वह तुम्हारा आचरण कैसे बनेगा गुरु जैसा है वैसा करने की कोशिश मत करना। वैसा तो किसी दिन जब होगा
तब होगा।
महावीर नग्न खड़े हैं तुम भी नग्न खड़े हो जाओ। लेकिन तुम्हारी नग्नता में और महावीर की नग्नता में बड़ा भेद होगा जमीन आसमान का भेद होगा। तुम्हारी नग्नता आरोपित नग्नता होगी। तुम्हारी नग्नता एक तरह का नंगापन होगी। महावीर की नग्नता नंगापन नही है। महावीर की नग्नता निर्दोषता है। तुम चेष्टा करोगे वस्त्रों को गिराने की। महावीर के साथ घटना और ही घटी है। छुपाने को कुछ नहीं रहा। वस्त्र गिरा दिए--ऐसा नहीं छुपाने को कुछ नहीं रहा। जैसे छोटा बच्चा हो ऐसे हो गए हैं। निर्वस्त्रता नहीं है यह मात्र यह निर्दोषता का जन्म है।
लेकिन तुम अगर चेष्टा करोगे और महावीर जैसे ही बन कर खड़े हो जाओगे तो तुम सिर्फ निर्वस्त्र होओगे। और इस निर्वस्त्रता में धोखा हो जाएगा। तुम्हे लगेगा हो गया महावीर जैसा।
नहीं महावीर जो कहें वैसा करो जो करें वैसा नहीं। क्योंकि महावीर जो
आज कर रहे हैं वह चेष्टा से नहीं है उनकी सहज स्फुरणा से है। तुम करोगे-- चेष्टा होगी आरोपण होगा जबरदस्ती होगी।
मगर अकसर ऐसा होता है कि लोग गुरु का अनुकरण करने लगते हैं। गुरु जैसा करता है वैसा करने लगते हैं। गुरु जो कहता है उसे तो सुनते नहीं हैं। उसे ही सुनो उसी को करते-करते एक दिन ऐसी घड़ी आएगी उस सहज क्रांति की घड़ी उस समाधि की घड़ी जब तुमसे गुरु जैसा होने लगेगा लेकिन गुरु जैसा करना मत। होगा एक दिन जरूर। किया--चूक जाओगे। गुरु जो कहे वही करना। क्योंकि गुरु जब कहता है तो तुम्हें ध्यान में रखकर कहता है। और गुरु जब करता है तो अपनी सहजता से करता है। इस भेद को समझना।
गुरु जब कहता है तो तुमसे कहता है तो तुम पर न.जर होती है। तुम कहां हो
इस बात पर नजर होती है। तुम्हारे लिए क्या काम का होगा इस बात पर नजर होती है। तुम्हें किससे लाभ मिलेगा इस बात पर नजर होती है। तुम कैसे बदलोगे तुम जहां खड़े हो वहां से कैसे पहला कदम उठेगा--उस तरफ इशारा होता है।
गुरु जो बोलता है वह तुमसे बोलता है। इसलिए तुम्हारा ख्याल रख कर बोलता है। गुरु जो करता है वह अपने स्वभाव से करता है अपनी स्थिति से करता है अपनी समाधि से करता है। गुरु का कृत्य उसके भीतर से आता है। गुरु के शब्द तुम्हारे प्रति अनुकंपा से आते हैं। इस भेद को खूब समझ लेना।
तो गुरु के शब्द ही तुम्हारे लिए सार्थक है--गुरु का कृत्य नहीं। हां, शब्दों को मान कर चलते रहे तो एक दिन गुरु के कृत्य भी तुममें घटित होंगे। वह अपूर्व घड़ी भी आएगी वैसा सूरज तुम्हारे भीतर भी उगेगा। वैसे मेघ तुम्हारे भीतर भी घिरेंगे। वैसा मोर तुम्हारे भीतर भी नाचेगा। वैसी वर्षा निश्चित होनी है। लेकिन अगर तुमने पहले से ही गलत कदम उठाया गलत कदम यानी गुरु ने जैसा किया वैसा किया--तो चूक जाओगे।
और आमतौर से आदमी वही करता है। आदमी कहता है कि गुरु जैसा करता है वैसा ही हम करें तो गुरु जैसे हो जायेंगे। कभी न हो पाओगे। तुम्हारा कृत्य ही तुम्हारे मार्ग में बाधा बन जाएगा।

गुरु को समझो। गुरु के शब्द को खोलो अपने भीतर।
लोभ आदमी में बड़ा है। आदमी सोचता है क्यों लम्बी यात्रा करना गुरु मौजूद है गुरु जैसे ही क्यों न हो जायें गुरु उपवास करे तो उपवास करें।
गुरु मस्ती में डोले तो डोलें। गुरु जैसा उठे-बैठे वैसे उठे-बैठें। और क्या चाहिए और साधारणत तर्क कहेगा कि यही तो शुभ है। गुरु का अनुकरण अर्थात गुरु जैसे बन जाओ। लेकिन चरणदास बड़ी महत्वपूर्ण बात कहते हैं। शायद ही कभी किसी ने इतनी स्पष्टता से और इस भाँति कही है।
"गुरु कहै सो कीजिए करै सो कीजै नाहिं।
कृत्य तुम्हारे लिए नहीं है गुरु का। वक्तव्य तुम्हारे लिए है। अगर तुम न होओ तो कृत्य तो जारी रहेगा वक्तव्य बंद हो जाएगा। गुरु जो करता है वह तो एकान्त में भी करेगा--जब कोई भी न होगा। अगर वह डोल रहा है मस्ती में तो एकांत पर्वत पर गुहा में बैठकर भी डोलेगा। उसका डोलना तुम्हारे प्रसंग में नहीं है तुमसे उसका कोई संदर्भ नहीं है।
गुरु अगर आंख बंद करके बैठता है तो आंख बंद करके बैठेगा कोई हो या न हो। किसी के होने न होने से कोई भेद नहीं पड़ता। गुरु किसी के लिए आंख बंद करके नहीं बैठता है। गुरु अपने लिए आंख बंद करके बैठता है।
तो गुरु का कृत्य तो आत्म-संवाद है। अपने से ही कही गई बात है। लेकिन गुरु का वक्तव्य शिष्य से कही बात है।
एकान्त में गुरु वक्तव्य नहीं देगा। एकांत में समझाएगा नहीं किसी को। फिर ध्यान रखना गुरु ने जो तुमसे कहा हो उसे तो बहुत ध्यानपूर्वक पकड़ लेना। जो तुमने ही कहा हो वह तुम्हारे लिए ही हैं। इसलिए गुरु की समीपता चाहिए सान्निध्य चाहिए व्यक्तिगत संपर्क चाहिए। क्योंकि हर आदमी अलग-अलग जगह खड़ा है। सभी एक जगह नहीं हैं। जन्मों-जन्मों की यात्रा में सब ने अलग-अलग तरह की चित्त-दशाएं उपलब्ध कर ली हैं।
कोई पहली सीढ़ी पर खड़ा है तो गुरु उसे दूसरी सीढ़ी पर चढ़ने को कहेगा। लेकिन कोई तीसरी सीढ़ी पर खड़ा है। अगर उसने भी यह सुन लिया कि दूसरी सीढ़ी पर चलना है तो वह उतर आएगा जहां खड़ा है वहां से नीचे उतर आएगा। उसे दूसरी पर नहीं चलना है दूसरी तो छूट चुकी। उसे चौथी पर चलना है।
और जो सीढ़ी के आखिरी पायदान पर पहुंच गया है गुरु उससे कहेगा सीढ़ी छोड़ दो। यह अगर उसने सुन ली जो अभी चढ़ा ही नहीं था अभी सीढ़ी पर पहला पैर भी नहीं रखा था पहला पायदान भी नहीं पकड़ा था उसने सुन लिया और सोचा कि चलो सीढ़ी छोड़ने की बात गुरु ने कह दी तो चूक जाएगा
किसी से गुरु कहेगा चढ़ो और किसी से कहेगा--आखिरी कदम। और अलग-अलग लोगों से अलग-अलग बात होगी।
गुरु के साथ निजी संबंध है। और गुरु तुमसे जो कहे उसको तो हीरे की तरह सम्हाल लेना वह तुम्हारे लिए है। सत्संग का यही अर्थ हैं।
एक तो वक्तव्य है जो सार्वलौकिक है। जैसे में तुमसे सुबह बोलता यह सार्वलौकिक वक्तव्य है। यह भी सबके लिए है। लेकिन सांझ जब तुम मेरे पास आते--दर्शन में--तब मैं तुमसे ही बोलता। वह वक्तव्य तुम्हारे लिए ही है। वह बिल्कुल निजी है उस पर तुम्हारा पता-ठिकाना है। वह किसी और के लिए नहीं है।
अगर मैंने तुमसे कुछ कहा हो निजीतौर से तो अपनी पत्नी को भी मत कहना
कि यह करने जैसा है। क्योंकि पत्नी कहीं और होगी। अपने बेटे को भी मत कहना। और यह भी हो सकता है कि तुम्हें बहुत आनंद आ रहा हो करने में तो भी अपने प्रियजन को मत कहना कि तुम भी ऐसा करो। क्योंकि प्रियजन की दशा और होगी।
जो तुम्हारे लिए आनंदपूर्ण है वह किसी दूसरे के लिए संताप का कारण बन सकता है। औ जोर तुम्हारे लिए शुभ है किसी के लिए अशुभ हो सकता है।
सुबह के वक्तव्य सार्वलौकिक हैं। वे किसी एक के प्रति नहीं कहे गए हैं। सांझ जो भी मैं कहता हूं वह वैयक्तिक है और एक से ही कहा गया है और उसे भूल कर भी दूसरे के साथ मिश्रित मत करना।

मुझे निरंतर मित्रों को कहना पड़ता है क्योंकि सांझ को दस-बीस मित्र होते है एक से जो मैं कह रहा हूं वह दूसरे भी सुन रहे है उन्हे मुझे सावधान करना होता है। सुन भला लो लेकिन करने मत लगाना। जिससे कहा है वही।
अकसर ऐसा हो जाता है कि एक मित्र प्रश्न पूछता है मैं उसे उत्तर देता हूं उसके बाद दूसरा मित्र आता है वह कहता है मुझे उत्तर मिल गया क्योंकि यही मेरा प्रश्न था। यही तुम्हारा प्रश्न हो ही नहीं सकता। यह आदमी अलग इस आदमी की पूरी जीवन-कथा अलग यह अलग ढंग से जीया है अनेक-अनेक जन्मों में यह अलग रास्तों से गुजरा है। यह अलग लोगों से जन्मा है अलग लोगों से से जुड़ा रहा है। इसके अलग संस्कार हैं। इसके भीतर जो प्रश्न उठा है वह तुम्हारा प्रश्न कभी हो ही नहीं सकता है।
हां, मैं जानता हूं कि शायद प्रश्न के शब्द एक जैसे हों रचना एक जैसी
हो रूप-रंग एक जैसा हो लेकिन फिर भी एक जैसा हो नहीं सकता है। इसका प्रश्न इसका ही होना निजी होगा वैयक्तिक होगा। इसको दिया गया उत्तर भी निजी और वैयक्तिक है।
तो मुझे कहना पड़ता है कि तुम अपना प्रश्न पूछो। तुम इसकी बात में मत पड़ो। इससे जो मैंने कहा है तुमसे नहीं कहा है। और तुम इसको दिए गए उत्तर को अपना उत्तर मत बना लेना।
लेकिन हमारी भ्रांति होती है। तुम भी पूछने वही आए थे शब्दों में इस आदमी ने भी वही पूछा शब्दों में। शब्द समान हैं। लेकिन अर्थ समान नहीं हो सकते। अर्थ तो तुम्हारे व्यक्तित्व से पड़ता है।
ऐसा ही समझो कि एक दर्पण के सामने तुम खड़े हुए। फिर उसी दर्पण के सामने दूसरा खड़ा हुआ। दर्पण तो समान है लेकिन दर्पण में बनने वाली तस्वीर बदल गई। जब तुम खड़े हो तो तुम्हारी तस्वीर बनती है। और जब दूसरा खड़ा है तो दूसरे की तस्वीर बनती है।
दर्पण तो समान है शब्द तो समान है इससे यह मत सोच लेना कि अर्थ समान बनते हैं। शब्द तो समान ही होंगे लेकिन अर्थ भिन्न हो जाते है। तुम जब किसी शब्द का उपयोग करते हो तो वह शब्द तुम्हारे अर्थ से रंजित हो जाता है।
प्रत्येक व्यक्ति को गुरु से अपने लिए आदेश लेना चाहिए। उसके सार्वलौकिक वक्तव्य पृष्ठभूमि का काम करेंगे। तुम्हारी समझ को निखारेंगे साफ करेंगे। लेकिन उसके निजी वक्तव्य तुम्हें गतिमान करेंगे तुम्हारी साधना के सोपान बनेंगे।
"गुरु कहै सो कीजिए। फिर यह भी मत सोचना। यह भी मन में विचार उठते हैं बार-बार कि मुझसे ऐसा कहा लेकिन खुद तो ऐसा करते हैं तो मैं क्या मानूं तुम चिकित्सक के पास गए और चिकित्सक ने तुमसे कहा कि देखो कुछ दिन के लिए मिठाई न खाना। और दूसरे दिन तुमने चिकित्सक को देखा भोजनालय में बैठे मिठाई खाते। स्वभावत द्वंद्व मन में पैदा होता है कि यह क्या बात हुई मुझे कहा--मिठाई मत खाना और खुद मिठाई खा रहे हैं नहीं तुम ऐसा नहीं सोचते। इतने निर्बुद्धि नहीं हो। तुम सोचते हो मैं बीमार हूं तो मुझे जो कहा है वह मुझे कहा है। चिकित्सक बीमार नहीं है। चिकित्सक मिठाई खाए या न खाए यह उसकी मरजी। और चिकित्सक मिठाई खाता मिल भी जाए तो उसने तुमसे जो कहा है मिठाई न खाना उस वक्तव्य का खंडन नहीं होता। लेकिन अक्सर यह बात अड़चन लाती है।
गुरु ने एक बात तुमसे कही और तुमने गुरु के आचरण में उससे विपरीत बात देखी तो स्वभावत तुम आचरण पर ज्यादा भरोसा करोगे--बजाय वक्तव्य के। तुम सोचोगे वक्तव्य का कोई मुल्य नहीं जब गुरु आचरण ऐसा कर रहा है।
तो हम वक्तव्य की सुनें कि व्यक्ति को देखें चरणदास कहते हैं वक्तव्य सुनना। तुम बहुत दूर हो वहां से जहां गुरु है। गुरु के लिए जो सहज स्वाभाविक है वह तुम्हारे लिए नहीं। गुरु अब रुग्ण नहीं है निरोग हो गया है। गुरु अब स्वस्थ हो गया है। अब उसकी कोई बीमारी कोई चिंता कोई समस्या शेष नहीं रह गई। तुम्हारी सब समस्याएं शेष है सब बीमारियों से घिरे हो और

तुम्हें अनेक तरह की औषधियों की जरूरत है तभी तुम समाधि को उपलब्ध हो सकोगे।
गुरु समाधि को उपलब्ध है। अब कोई व्याधि नहीं रही। इसलिए किसी औषधि
का कोई प्रयोजन नहीं। लेकिन अकसर भ्रांति हो जाती है।
और हमें सदा ऐसा समझाया गया है। तथाकथित विचारशील लोग जो बहुत विचारशील नहीं हैं ज्यादा से ज्यादा थोड़े तर्कनिष्ठ हैं उन सब ने यही समझया है कि गुरु का वक्तव्य और व्यक्तित्व एक सा होगा। यह बात गलत है।
गुरु का वक्तव्य और व्यक्तित्व अगर एक सा होगा तो वह व्यक्ति गुरु हो ही नहीं सकता। वह किसी के काम का नहीं होगा।
गुरु का व्यक्तित्व एक होगा और उसके वक्तव्य तो बहुत तरह के होंगे। क्योंकि जितने लोगों को वक्तव्य देगा उतने तरह के होंगे।
अगर कोई वैद्य अपने व्यक्तित्व और वक्तव्य की समानता रखे तो किसी बीमार के काम नहीं आ सकेगा और न मालूम कितने बीमारों की हत्या की जिम्मेवार हो जाएगा। अगर वह वही कहे जो करता है और वही करे जो कहता है तो फिर कठिनाई हो जाएगी। तुम्हारे किस काम का होगा
इसलिए अकसर ऐसा भी जाता है कि व्यक्ति परमज्ञान को उपलब्ध हो जाता है लेकिन गुरु नहीं बन पाता।
गुरु बनने की शर्त सभी ज्ञानी गुरु नहीं होते हैं। सभी गुरु ज्ञानी होते हैं लेकिन सभी ज्ञानी गुरु नहीं होते।
जैन परम्परा में दो शब्दों का उपयोग होता है। केवली--जो केवल-ज्ञान को उपलब्ध हो गया। और तीर्थंकर जो केवल-ज्ञान को उपलब्ध हो गया और साथ ही गुरु भी है।
क्या फर्क है दोनों में इतना ही फर्क है केवली के आचरण और वक्तव्य में भेद नहीं होता। केवली वही कहता है जैसा जीता है। मगर वह किसी के काम का नहीं है। उसके वक्तव्य किसी के अर्थ के नहीं है। उसके वक्तव्य इतने दूर के हैं कि तुम उनका क्या करोगे क्या बनाओगे खाओगे पीओगे ओढोगे उसके वक्तव्य तुम्हारे किसी काम के नहीं। उसके वक्तव्य बड़े दूर आकाश के हैं। शुद्ध लेकिन इस पृथ्वी पर किसी के भी काम न आयेंगे। काव्य होगा उसके वक्तव्य में लेकिन किसी के जीवन में क्रांति उनसे पैदा नहीं होगी।
तीर्थंकर का अर्थ है ज्ञान को उपलब्ध हुआ व्यक्ति अपने ज्ञान से जीता
है लेकिन अनुकम्पा के कारण जो उनके पास आते हैं उन पर ध्यान रखकर उनकी व्याधि की चिंतना करके उनकी व्याधि का निदान करके उनके योग्य पथ्य और औषधि का विवेचन करता है। उनके योग्य वक्तव्य उनको ध्यान में रख कर दिए जाते हैं।
गुरु के लिए चिकित्सक होना पड़ता है। और तुमने देखा जाते हो चिकित्सालय में कितनी औषधियां हैं सभी तुम्हारे लिए नहीं हैं। तुम्हारे लिए कोई एक औषधि होगी और तुम उसे न खोज पाओगे। तुम्हें सारा औषधालय दे दिया जाए--कि खोज लो अपनी औषधि यहीं कहीं होगी इन्ही सब औषधियों में छिपी पड़ी होगी खोज लो खुद। तो बजाय कि तुम बीमारी से मुक्त हो तुम और भी बीमार हो जाओगे। कैसे खोजोगे
गुरु खोजता है औषधि तुम्हारे लिए। गुरु तुम्हारी नब्ज पकड़ता है। गुरु देखता है कहां तुम्हारी समस्या ग्रंथि है। कैसे खुलेगी किस उपाय से खुलेगी उस उपाय की तुमसे बात करता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि उस उपाय का वह खुद भी प्रयोग करेगा।
एक युवक मेरे साथ यात्रा पर गया। उसके पहले वह कभी मेरे साथ कहीं गया नहीं था। आता था शिबिरों में ध्यान करता था सुनता था पर बहुत दिन से मेरे पीछे पड़ा था कि एक बार एक सप्ताह आपके पास रहना है। तो जब मैं यात्रा पर था मैंने उसे बुला लिया। वह मेरे साथ एक सप्ताह था। वह देखता रहा होगा सब--मैं क्या करता हूं क्या नहीं करता हूं। उसे बड़ी हैरानी हुई। दोप्तीन दिन तो वह ध्यान करता रहा चौथे दिन उसने ध्यान छोड़ दिया। मैंने पूछाः क्या हुआ आज ध्यान नहीं किया? कहा कि जब आप ही नहीं करते तो मैं क्यों करूं मैं आपको देख रहा हूं चार दिन से आप कभी ध्यान नहीं करते तो मैं क्यों करूं।

उसकी बात में तर्क है। इसीलिए शायद वह मेरे पास भी आकर रहना चाहता था कुछ दिन कि मुझें देख ले। तो यह तो हानि हुई यह तो लाभ न हुआ।
मैंने उससे कहाः मैं ध्यान नहीं करता; क्योंकि ध्यान तो औषधि है। मन
की बीमारी है तब तक ध्यान की औषधि। मन की बीमारी गई फिर औषधि को पीते रहो तो खतरा है। फिर ध्यान भी नुकसान पहुंचाएगा।
मन गया तो ध्यान गया। ध्यान तो उपाय था। जैसे एक कांटा पैर में लगा था दूसरा कांटा उठाया और पहले कांटे को निकाल लिया। फिर दोनों कांटे फेंक देने पड़ते है। यद्यपि दूसरे कांटे ने बड़ी कृपा की पहले काँटे को निकालने में सहयोगी हुआ। पर उसे धाव में रख थोड़े ही लोगे उसकी पूजा थोड़े ही करोगे ध्यान तो कांटा है मन का कांटा निकाल जाए विचार का कांटा निकल जाए विचार का उत्पात समाप्त हो जाए फिर कोई ध्यान थोड़े ही करता है। फिर तो ध्यान में ही होता है ध्यान करता नहीं। फिर तो उठता है तो ध्यान बैठता है तो ध्यान। लेकिन यह ध्यान तो दिखाई नहीं पड़ेगा। ध्यान तो किया जाए तो ही दिखाई पड़ सकता है।
ध्यान जब सहज दशा हो जाती है तब उसको हम समाधि कहते है। जब तक करना पड़े
तब तक ध्यान। जब बिना किए बरसने लगे तब समाधि। तब उसका मूल गुण बदल गया। अब करना नहीं पड़ता। अब तो बीमारी नहीं रही करने का कोई सवाल नहीं रहा।
भेद करने के लिए कृत्यरूपी ध्यान में और अवस्था रूपी ध्यान में दो शब्दों का प्रयोग होता है ध्यान और समाधि। ध्यान किया जाता है समाधि की नहीं जाती। समाधि तो बस है। जब ध्यान ने मन को निकाल फेंका तब तो शेष रह जाती है दशा वह समाधि है।
मैंने उसने कहाः मैं जो कहता हूं वह करो। मैं जो करता हूं उसकी चिंता तुम मत लो अन्यथा तुम भटकोगे। इसे ध्यान रखना।
गुरु कहै सो कीजिए करै सो कीजै नाहिं।
चरनदास की सीख सुन यही राख मन माहिं।।
सदा ध्यान में रखो क्या कह गया है। उसी को करो उतना ही करो। और जो तुम
से कहा गया है उसे तो बिल्कुल बहुमूल्य सम्पदा की तरह सुरक्षित रखना।
हर आदमी की अलग दशा है।
"भूखे भजन न होहिं गुपाला
यह कबीर से पद की टेक
देह की है भूख एक
कामनी की चाह मन्मथ दाह
तन को है तपाते
ओ लुभाते विषयभोग अनेक
चाहते ऐश्वर्य सुख जन
चाहते स्त्री पुत्र औ धन चाहते चिर प्रणय का अभिषेक देह की है भूख एक
"भूखे भजन न होहिं गुपाला यह कबीर के पद की टेक
देह की है भूख एक
दूसरी रे भूख मन की
चाहता मन आत्म गौरव
चाहता मन कीर्ति सौरभ
ज्ञान मंथन नीति दर्शन
मान पद अधिकार पूजन
मन कला विज्ञान द्वारा
खोलता नित ग्रंथियां जीवन-मरण की दूसरी यह भूख मन की
तीसरी रे भूख आत्मा की गहन इंद्रियों की देह से ज्यों है परे मन मनो जग से परे त्यों आत्मा चिरंतन

जहां मुक्ति विराजती
औ डूब जाता हृदय क्रन्दन वहां सत का बास रहता
वहां चित का लास रहता
वहां चिर उल्लास रहता
यह बताता योग दर्शन
किन्तु ऊपर हो कि भीतर
मनो गोचर या अगोचर
क्या नहीं कोई कहीं ऐसा अमृत धन
जो धरा पर बरस भर दे भव्य जीवन
जाति वर्गों से निखर जन
अमर प्रीति प्रतीति बंध
पुण्य जीवन करें यापन
ओ धरा हो ज्योति पावन

अलग भूखें है अलग तरह की भूखों से भरे हुए लोग हैं। कोई अभी तन की भूख
से भरा है। उसके लिए गुरु अलग औषधि देगा। किसी की तन की भूख तो मर गई मर की भूख जगी है। गुरु उसे अलग औषधि देगा। लेकिन कोई सौभाग्यशाली ऐसा भी कभी आता जिसके मन की भूख भी मर गई है उसकी आत्मा की भूख जगी है। गुरु उसे और ही औषधि देता है।
ये औषधियां अलग-अलग होंगी। ये तुम्हें देख कर दी जाती है। गुरु अपने
को देख कर दे तब तो एक ही चीज देगा सच्चिदानंद बांटता रहेगा। लेकिन वह तुम्हारे काम का नहीं।
तुम रोटी मांगने आए थे और गुरु सच्चिदानंद दें तो तुम नाराज लौटोगे। तुम कहोगे सच्चिदानंद को खायें पीयें पहरें--क्या करें रोटी चाहिए थी। तुम मन की चिंता लेकर आए थे। तुम मन के रोगों से भरे थे। मन विक्षिप्त हुआ जाता था और गुरु ने कहा सच्चिदानंद। तुम कहोगे क्या करें सच्चिदानंद को इधर मन जल रहा इधर मन लपटों से भरा इधर हजार कीड़े मन को कुरेदते हैं इधर हजार वासनाएं मन में सरकती है। सच्चिदानंद इस कहने से क्या होगा
गुरु वही दे जो उसके भीतर हुआ है तो वह किसी के काम का न रह जाएगा। या उनके ही काम का रह जाएगा जिनको कोई जरूरत नहीं है। जो उसी दशा में हैं सच्चिदानंद की दशा में हैं। उनको कोई जरूरत नहीं है।
तुम जहां हो वहीं से यात्रा शुरू करनी होगी। तुम अगर बहुत बालबुद्धि
से भरे हो तो तुम्हे कुछ खिलौने देने होंगे। तुम उनसे खेलो। यह मत सोचना कि गुरु इन खिलौनों से नहीं खेल रहा है तो हम क्यों खेलें ऐसा सोचा तो चूक होगी बड़ी चूक होगी पीछे बहुत पछताओगे।
अब के चूके चूक है फिर पछतावा होय।
जो तुम जक्त न छोड़िहौ जनम जायगो खोय।।
और चरणदास कहते हैं अब के चूके चूक है गुरु मिल गया और चूके तो अब के चूके बड़ी चूक हो गई। गुरु न मिला और चूकते रहे तो क्षम्य है बात। गुरु नहीं था चूकते न तो क्या करते स्वाभाविक था। माझी न मिला नाव न मिली उस तट को जाननेवाला न मिला और तुम इसी तट पर अटके रहे समझ में आती है बात। करते भी तो क्या करते
ऐसे अज्ञात में ऐसे अनजान में अथाह में उतर जान संभव भी तो नहीं था। दूसरा तट दिखाई भी तो नहीं पड़ता था। होगा भी इसका भी तो भरोसा नहीं था। कोई तो ऐसा नहीं मिला था जिसकी आंख में दूसरे तट के दृश्य तुमने देखे होते। कोई तो ऐसा नहीं मिला था जिसके पास तुमने धुन सुनी होती दूसरे तट की। कोई तो ऐसा नहीं मिला था जिसके हाथ में हाथ रख कर तुमने अनुभव किया होता स्पर्श परलोक का। किसी की आंखों में झांक कर देखा होता स्वर्ग देखा होता आनंद सुना होता संगीत अनाहत का नाद ऐसा कोई भी तो न मिला तो तुम अगर अटके रहे इसी किनारे पर खूंटियां बांध कर अगर तुम जोड़ते रहे रुपया-पैसा पद-प्रतिष्ठा तो क्षमायोग्य हो।

चरणदास कहते हैंः लेकिन अगर गुरु मिल गया और फिर भी तुम इस किनारे पर अटके रहे तो फिर क्षमायोग्य भी बात न रही।
"अब के चूके चूक है। इतने दिन तक चूकते रहे चलेगा। लेकिन गुरु मिला और फिर चूके फिर नहीं चलेगा। फिर तो निश्चित ही तुम अपराधी हो। फिर तो तुम बहाने ही कर रहे थे इतने दिन से कि गुरु नहीं है इसलिए कैसे जाएं उस पार। कोई नाव का खेवैया नहीं, कोई पतावर को सम्हालने वाला नहीं कैसे जाएं उस पार तो इतने दिन तक तुम जो बाते कर रहे थे--कैसे जाएं उस पार वे सब झूठी मालूम पड़ती है। तुम जाना नहीं चाहते थे। अब खेवैया मिला अब नाव द्वार पर खड़ी है पतवार तैयार है बस तुम्हारे बैठने की देर है कि नाव छुटे लेकिन तुम नाव में बैठते नहीं।
"अब के चूके चूक है फिर पछतावा होय। और गुरु का मिलन कभी-कभी गुरु का मिलन रोज-रोज की बात नहीं। हो सकता है एक बार मिलना हो गया गुरु से फिर जन्मों-जन्मों तक न हो।
पुरानी बौद्ध कथा है कि संसार ऐसा है जैसे एक राजमहल जिसमें हजार दरवाजे हैं और एक ही दरवाजा खुला है। नौ सौ निन्यानबे दरवाजे बंद हैं। और आदमी ऐसे है इस संसार में जैसे अन्धा उस राजमहल में बंद। वह अंधा टटोलता है। नौ सौ निन्यानबे दरवाजे तो बंद हैं। इसलिए उनसे तो निकलने का उपाय ही नहीं है। वह टटोलता टटोलता लंबी यात्रा के बाद उस दरवाजे के करीब आता है जो खुला है। लेकिन जरा-सी चूक हो गई। एक मक्खी उसके सिर पर आ बैठी तो वह मक्खी को उड़ाता हुआ खुले दरवाजे के सामने से निकल गया फिर टटोलने लगा। अब फिर नौ सौ निन्यानबे दरवाजे फिर न मालूम किस जनम में खुले दरवाजे के पास आएगा और क्या पक्का भरोसा है कि पैर में खुजलाहट न उठ आएगी। क्या पक्का भरोसा है कि फिर कोई बाधा व्यवधान खड़ा न हो जाए। और चूक जाना क्षण में हो जाता है।
वह टटोलता हुआ चल रहा है कोई बाधा आ गई हाथ उलझ गए और बिना टटोले निकल गया। दो कदम बिना टटोले निकल गया कि चूक गया। फिर जन्मों-जन्मों तक
यह कथा प्रीतिकर है। ऐसी दशा है। कभी-कभार ऐसा होता है कि तुम किसी बुद्ध पुरुष के करीब आ जातें हो खोजते-खोजते जन्मों-जन्मों में। लेकिन बुद्ध के करीब आ जाना काफी नहीं है उस द्वार से निकलो। सुनो बुद्ध क्या कहते हैं करो--बुद्ध क्या कहते है। कोई बहाना मत खोज लेना।
और बहाने हजार हैं और बहाने सदा उपलब्ध हैं और बहानों में बड़ा तर्क-बल है। छोटी सी बात चुका दे सकती है। ऐसी ही छोटी बात जैसे मक्खी सिर पर बैठ गई। अंधा मक्खी उड़ाने लगा और चल गया दो कदम खुला दरवाजा चूक गया। आंख तो बंद ही है इसलिए खुला दरवाजा दिखता नहीं। हाथ भी उलझ गए। मक्खी उड़ाने में। अब मक्खी जैसी छोटी सी चीज चुका गई भटका गई। कभी-कभी बहुत छोटी चीजें भटका देती हैं।
ख्याल रखना बहाने हजार हैं भटकने के।
कल एक मित्र ने प्रश्न पूछा है कि संन्यस्त होना चाहता हूं। पूरी श्रद्धा है भावना है। लेकिन थोड़ी अड़चनें है। पूरे गैरिक वस्त्र न पहन सकूँगा। एक वस्त्र पहनूँ तो चलेगा
मक्खी से ज्यादा बड़ी बात नहीं है। क्या अड़चन हो सकती है इस संसार में-- गैरिक वस्त्र पहनने में हां कुछ अड़चन होगी मुझे समझ में आती है। लेकिन मक्खी से ज्यादा बड़ी बात नहीं है। लोग दो-चार दिन हंसेंगे। पत्नी शायद कहेगी कि दिमाग खराब हो गया बच्चे कहेंगे कि पिताजी आप से ऐसी आशा न थी मित्र कहेंगे कि आप जैसा बुद्धिमान और समझदार आदमी किस जाल में पड़ गया। लोग थोड़े हंसेंगे फिर क्या है कितनी देर लोग हँसते हैं लोगों को फुर्सत भी कहाँ है कोई तुम्हारे लिए ही सोचते बैठे रहेंगे।
क्या अड़चन होगी शायद पत्नी एकात दिन नाराज रहेगी। शायद एक-दो दिन चाय ठंडी मिलेगी भोजन बासा मिलेगा। और क्या होने वाला है
अड़चन क्या है अड़चन मूल्यवान तो हो ही नहीं सकती। हो सकता है एक जगह काम करते हो वहां से नौकरी छूट जाए। बड़ी से बड़ी अड़चन यह होगी। तो दूसरी जगह काम मिल जाएगा। कोई जिंदगी एक ही जगह नौकरी से तो अटकी नहीं।

हो सकता है पदोन्नति होने वाली थी रुक जाएगी मालिक नाराज हो जाएगा। एकात साल और पदोन्नति रुकी रहेगी। या हो सकता है कि कहीं दूसरी जगह स्थानान्तरण कर दें। इसी तरह की बातें मगर मक्खी से ज्यादा इनका मूल्य नहीं है।
इन बातों के लिए अगर श्रद्धा और भावना को रोका तो दरवाजा खुला है उससे चूक जाओगे।
हिम्मत करनी ही पड़ेगी। इस संसार से मुक्त होने के लिए थोड़ी अड़चनें उठानी ही पड़ेंगी। तुम चाहो कि सब सुविधा-सुविधा में हो जाए अड़चन हो ही ना पैर कांटा न लगे और यात्रा पूरी हो जाए कंकड़ न चुभे और यात्रा पूरी हो जाए पसीना न बहे और मंजिल आ जाए तो नहीं होगा। कुछ श्रम तो उठाना पड़ेगा कुछ असुविधा झेलनी पड़ेगी।
अब मित्र ने यही पूछा है कि एकात मुख्य वस्त्र और उनके प्रश्न को पढ़
कर मुझे ऐसा लगा कि मुख्य वस्त्र से उनका मतलब है एकात अंदर कुछ पहन लेंगे। तो किसी को दिखे भी न किसी की पकड़ में भी न आए। मगर इतने डरे हुए हो अगर संसार से इतने भयभीत तो क्रांति न हो सकेगी।
जहां श्रद्धा हो भावना हो वहां पूरे जीवन को दांव पर लगाने की हिम्मत होनी चाहिए। यह भी कोई दांव है इतना भी साहस नहीं जुटा पाओगे फिर क्या अर्थ रहा श्रद्धा का और भावना का बड़ी लचर नपुंसक श्रद्धा और भावना हुई। कुछ तो कीमत चुकाओ श्रद्धा-भावना मुक्त पाने की कोशिश तो मत करो कुछ तो कीमत चुकाओ कुछ तो अड़चन उठाओ मगर ऐसी ही छोटी-छोटी बातें हैं।
मेरे पास पत्र आते हैं लोगों के। वे कहते है हमें और सब ठीक। आपकी बातें सब ठीक लगती हैं मगर जब से ये गैरिक संन्यासी आपके पास इकट्ठे हुए हैं तब से हमने आना बंद कर दिया। आपकी बातें अच्छी लगती हैं आपकी बातों में सार है।
अब यह बड़े मजे की बात है। अगर मेरी बातों में सार है तो तुम्हें प्रयोजन--कि कौन मेरे पास गैरिक वस्त्र पहनकर आया है कौन संन्यासी है कौन नहीं तुम आए चले जाओ। लेकिन यह बात बाधा बन गई। यह अड़चन हो गई। मक्खी ने अटका दिया। छोटी सी बात। सोचो तो किसी मूल्य की नहीं।
ध्यान रखना,
अब के चूके चूक है फिर पछतावा होय।
जो तुम जक्त न छोड़ि हौ जन्म जायगो खोय।।
इस जगत को इस संसार को थोड़ा-थोड़ा छोड़ने की तैयारी करो और मैं तुमसे एकदम से छोड़ने को भी नहीं कहता हूं एकदम छोड़ने की जल्दबाजी करने को भी नहीं कहता हूं धीरे-धीरे इस मोह को मुक्त करो। रहो यहीं और धीरे-धीरे अलिप्त हो जाओ।
इस संसार में कठिनाइयां हैं इस संसार में विपदाएं हैं इस संसार में हजार तरह की जंजीरे हैं लेकिन अगर तुम थोड़े अतिप्त होने लगो तो अपूव रूपांतरण शुरू होता है। राह के पत्थर सीढ़ियां बन जात हैं। आंधियाँ चुनौतियां बन जाती हैं। बीमारियां ही स्वास्थ्य तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां बन जाती हैं।
जीने के अगर चंद सहारे भी मिले हैं
तो जान से जाने के इशारे भी मिले हैं
हरचंद रहे इश्क के गम सख्त हैं लेकिन
इस राह के कुछ गम हमें--यारे भी मिले हैं
कुछ अपनी वफाओं से उम्मीद भी हमको
कुछ उनकी निगाहों के सहारे भी मिले हैं ऐ राहखे-राहे-जुनूं भूल न जाना
इस राह में जी जान से हारे भी मिल हैं इल्जागे-गाफुल हमें तस्लीम है लेकिन बदले हुए अंदाज तुम्हारे भी मिले हैं क्या कीजिए तदबीर से हारा नहीं जाता गो राह में तकदीर के मारे भी मिले हैं

तूफां में सभी डूब तो जाते नहीं अख्गर
कुछ लोगों को तूफां में किनारे भी मिले हैं।
सब तुम पर निर्भर है। कुछ लोगों का तूफां में किनारे भी मिले हैं। लोग
भी हैं जिन्होंने तुफान को किनारा बना लिया है। और ऐसे अभागे लोग भी हैं जो किनारे पर बैठे-बैठे डूब भी गए हैं जिनके लिए किनारा ही तुफान हो गया है। सब तुम पर निर्भर है।
"हरचंद रहे इश्क के गम सख्त हैं लेकिन इस प्रेम मार्ग की पीड़ाएं बड़ी कठोर हैं। इस राह के कुछ गम हमें-यारे भी मिले हैं। लेकिन ऐसा मत सोचना कि बस इतना ही है। इस राह के कुछ गम हमें--यारे भी मिले हैं। कुछ ऐसे दुख भी हैं इस राह पर कि जो प्रेम की अनंत संभावनाएं बन जाते हैं। देखने की नजर की बात है दृष्टि की बात है।
दुख में उलझ जाओ तो घाव बन जाता है। दुख में जाग जाओ तो दुख ही परमात्मा की तरफ ले जाने वाला द्वार बन जाता है।
ख्याल किया दुख में परमात्मा का स्मरण आता है। द्वार बहुत करीब होता है। समझ हो तो हर
दुख परमात्मा की याद बन जाए। समझ हो तो हर दुख को तुम बड़ी संपदा में बदल लो। और तब तुम ऐसा भी न कहोगे अंत में कि दुख बुरे थे। क्योंकि उन्ही दुखों के सहारे तुम बड़े और परमात्मा तक पहुंचे।
सूफी फकीर हसन अपनी प्रार्थना में कहा करता था प्रभु ऐसा कोई दिन मत देना जिस दिन मुझे कोई दुख न हो। उसके शिष्यों ने पूछा हसन यह भी कोई प्रार्थना है हम भी प्रार्थना करते हैं। हम कहते हैं भगवान कभी तो ऐसा दिन दिखा जब कोई दुख न हो। तुम्हारी प्रार्थना बड़ी उलटी है तुम प्रार्थना करते हो कि प्रभु ऐसा कोई दिन मत देना कि जिस दिन दुख न हो
हसन ने कहा कि मुझे दुखों से इतना मिला है दुखों से ही परमात्मा की याददाश्त मिली। यह
दुखों के सहारे ही मैंने उसे खोजना चाहा है। अगर सब सुख होता तो एक बात पक्की थी हसन परमात्मा की तरफ न जाता। दुखों ने मुझे बहुत दिया है। इसलिए याददाश्त दिलाता हूं उसे कि कही भूल-चूक से ऐसा मत करना कि दुख बिल्कुल ही छीन ले। डरता हूं कि दुख छिन जाए तो कहीं सुख में भटक न जाऊं भूल न जाऊं। सुख की नींद में कही खो न जाऊं सो न जाऊं। दुख जगाए रखता है। और दुख से इतना पाया है
हरचंद रहे इश्क के गम सखत है लेकिन
इस राह के कुछ गम हमें--यारे भी मिले हैं
तूफां में सभी डूब तो जाते सहीं अख्गर
कुछ लोगों को तूफां में किनारे भी मिले हैं।
इस संसार को समझो इस संसार में जागो इस संसार में थोड़े अलिप्त बनो। और भगोड़े नहीं--अलिप्त। भगोड़े हो गए वह भी अलिप्तता से बचने का उपाय है।
चले गए जंगल छोड़ कर सब छोड़-छाड़ कर भाग गए। तो जंगल में तुम्हारे पास कुछ भी न होगा लिप्त होने के लिए कोई साधन न होगा। लेकिन इससे पक्का नहीं होता कि तुम्हारी लिप्तता चली गई। साधन खो गए।
एक आदमी के पास भोजन नहीं है इससे यह सिद्ध नहीं होता कि भूख खो गईं।
या कि इससे सिद्ध होता है भोजन नहीं है इससे भूख तो नहीं खो गई। भूख खो गई-- इसका पता तो तभी चलेगा जब भोजन के ढेर लगे हों तुम्हारे तरफ और तुम अलिप्त मन बैठे हो तुम्हें भोजन का पता ही नहीं कि तुम्हारे चारों तरफ भोजन के ढेर लगे हैं। तभी पता चलेगा कि भूख खो गई।
धन के ढेर लगे हों तुम्हारे चारों तरफ और तुम्हारे मन में धन की कोई चाहत न हो तो अलिप्तता।
भाग गए जंगल तो धन से भाग गए लेकिन अलिप्तता तो नहीं इससे पैदा हो जाएगी। शायद भागने का सारा आधार ही तुम्हारी लिप्तता का भय है।
तुम डरते हो तुम डरते हो कि अगर धन हुआ तो मैं लिप्त निश्चित हो जाऊंगा। अगर स्त्री हुई तो मैं प्रेम में पड़ जाऊंगा। अगर मित्र हुए तो मोह

में बंध जाऊंगा। छोड़ के सब भाग गए हो। लेकिन परिस्थिति से भागने से कहीं मनस्थिति बदली है कभी बदली है कभी नहीं बदली है।
तो ख्याल रखना जो तुम जक्त न छोड़ि हौ जनम जायगो खोय। छोड़ने का अर्थ आगे तुम्हें साफ होगा।
पिछले सूत्र में चरणदास ने कहा है रूठे से जग में रहो रूठे से। जग से भागने की बात नहीं कही है। जग में ही जागने की बात कही है।
जिन्दगी एक लंबी दौ.ैड़ है
व्यर्थ और बेसूद।
थककर बैठ जाने पर भी कुछ हाथ नहीं आता
और मंजिल को पा लेने पर भी कुछ नहीं।
इस पर भी निरंतर चलना ठोकर खाना
गिरना फिर उठ कर भागना ही अच्छा लगता है
क्योंकि चलते रहना जिंदगी के अनुकूल है
और रुक जाना प्रतिकूल
"मौत से पहले मर जाने का जी नहीं होता। लेकिन जो मौत के पहले मर जाए वही संन्यस्त है। जी तो नहीं होता--मौत से पहले मर जाने का। मरने का जी कैसे हो मन तो जिलाए रखना चाहता है कि जीयो दौड़ो भागो। कुछ करो। हालांकि यह भी साफ है कि न कुछ करने से मिलता है न कुछ न करने से मिलता है। अगर कुछ मिलता है तो जीवन के प्रति जागने से मिलता है। लेकिन उस जागने में ही मौत घट जाती है।
अलिप्तता का अर्थ होता हैः संसार में रहो और ऐसे जैसे कि मर गए मृतवत।
"जो तुम जक्त न छोड़िहौ जनम जायगो खोय और जीवन ऐसे ही खो जाएगा जैसे कोई सरिता मरुस्थल में खो जाए। बचा लो कुछ बचा लो।
जग माहीं न्यारे रहौ लगे रहौ हरिध्यान।
पृथ्वी पर देही रहै परमेसुर में प्रान।।
-यारा वचन है जग माहीं न्यारे रहौ यह अर्थ हुआ। रहो तो जग में ही मगर न्यारे अलग-थलग। घिरे--और फिर भी घिरे नहीं। बीच में--और फिर भी पार। रहो बाजार में शोरगुल में लेकिन सम्हाले रखो भीतर की संपदा सम्हाले रखो भीतर की शांति सम्हाले रखो भीतर का मौन। उठने दो शोरगुल बाहर। बाहर के शोरगुल से कोई व्याघात नहीं होता जब तक तुम भी उस बाहर के शोरगुल को पकड़ने न लगो तब तक कोई व्याघात नहीं होता। अगर तुम निशि्ंचत मना शांत भीतर बैठे रहो बाहर उठने दो शोरगुल चलने दो तूफान और तुम चकित हो जाओगे तुफान में ही पा लिया किनारा। बाजार में ही मिल जाता हिमालय। और बाजार में मिले तो ही मजा है। बाजार में शांति मिले तो तुम्हारी हिमालय मर मिले तो हिमालय की। हिमालय से उतरे कि खो जाएगी।
"जग माहीं न्यारे रहौ न्यारे शब्द--यारा है। इसके कई अर्थ होते हैं।
एक अर्थ तो होता है--अनासक्त अलगाव में अलग-थलग। जैसे जल में कमल के पत्ते होते है ऐसे न्यारे। दूसरा अर्थ होता है। निराले भीड़-भाड़ जैसे नहीं।
व्यक्तित्व को जन्माओ आत्मवान बनो। ऐसे भीड़ के साथ अंधे भेड़ की तरह मत चलते रहो। भेड़-चाल छोड़ो। लकीर के फकीर मत रहो न्यारे बनो। थोड़ा अपने जीवन को अपना ढंग दो, अपना रंग दो।
और लोग जैसा कर रहे है ऐसा ही करते रहोगे तो नकली ही रहोगे कभी असली न
हो पाओगे। और ध्यान रखना कि तुम अद्वितीय हो। प्रत्येक अद्वितीय है। प्रत्येक को परमात्मा ने न्यारा बनाया है भिन्न बनाया है। दो व्यक्ति एक जैसे नहीं बनाए। कोई किसी की कार्बनकापी नहीं है। आदमी को तो छोड़ दो दो कंकड़ एक जैसे नहीं पाओगे। दो पत्ते एक जैसे नहीं पाओगे।
यहां प्रत्एक चीज का व्यक्तित्व है। और दुनिया में सब से बड़ी जो हानि
है वह व्यक्तित्व को गंवा देना है। और भीड़ वही मांगती है। भीड़ कहती है तुम व्यक्ति मत रहना। हम जैसे कपड़े पहनते है ऐसे कपड़े पहनो। हम जिस सिनेमा में जाते हैं उस सिनेमा में जाओ। हम जिस क्लब के मेंबर हैं उनके मेंबर बनो। हम जो खाते हैं वह खाओ। हम जो पीते है वह पीओ। हम जो बतियाते हैं वह बतियाओ।

हमारा मंदिर तुम्हारा मंदिर हो हमारी मस्जिद तुम्हारी मस्जिद। तुम अलग-थलग होने की कोशिश मत करना तुम अपनी घोषणा मत करना।
तुम बस चुपचाप नंबर की तरह जीयो आदमी मत बनो। जैसे मिलिटरी में नंबर होते हैं ना एक आदमी मर जाता है वे कहते है ग्यारह नंबर गिर गया। नंबर गिरता है आदमी नहीं मरता वहां। और ग्यारह नंबर मर गया तो कोई अड़चन नहीं आती। किसी भी आदमी को ग्यारह नंबर दे दिया। फिर ग्यारह नंबर ख.ड़ा हो गया। अब यह जरा सोचने जैसा है।
एक आदमी मरता हो तो उसकी जगह को भरने का कोई उपाय नहीं है। नंबर मरता
हो तो भरेने में कोई दिक्कत ही नहीं। एक आदमी मरता है तो कैसे उसकी जगह भरोगे क्योंकि उस जैसा कोई आदमी कभी हुआ ही नहीं। न पहले कभी हुआ है न अभी है न आगे कभी होगा। उसकी जगह तो सदा के लिए खाली हो गई सदा-सदा के लिए रिक्त हो गई। वह कितना ही दीन-हीन रहा हो कितना ही साधारण रहा हो कितना ही सामान्य रहा हो चाहे उसमें कोई भी विशिष्ठता न रही हो फिर भी वह विशिष्ट था। परमात्मा ने उसे अलग ही बनया था न्यारा बनाया था। उस जैसा फिर दूसरा नहीं बनाया था।
आदमी मशीन नहीं है। मशीनें एक जैसी बहुत हो सकती हैं। रास्ते पर तुम देख सकते हो एक-सी फियट कार सैकड़ों हो सकती है हजारों-लाखों हो सकती हैं। लेकिन एक जैसे दो आदमी तुमने कभी देखे दो जुड़वाँ भाई भी बिल्कुल एक जैसे नहीं होते। उनमें भी भेद होते हैं उनमें भी व्यक्तित्व की भिन्नताएं होती है। उनमें से एक कवि बन जाएगा दूसरा इंजीनियर बन जाएगा। उनमें से एक संन्यस्त हो जाएगा दूसरा राजनीतिज्ञ हो जाएगा। उनमें भी भिन्नताएं होती हैं। दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते।
मिलिटरी में नंबर रखते हैं नंबर रखने से सुविधा होती है। एक आदमी गया नंबर गिरा नंबर बदल दो। दूसरे आदमी को ग्यारह नंबर दिया वह आदमी उसकी जगह आ गया। सब खेल नंबर का है। और ऐसी ही हालत समाज में है।
समाज तुम्हें नंबर बना कर जिलाना चाहता है। तुम नम्बर बनकर जीयो न्यारे मत बनना। इसलिए तुम जब भी जरा थोड़े भिन्न होओगे तभी तुम पाओगे अड़चन शुरू हुई।
यही तो जिन मित्र ने कल पूछा कि थोड़ी अड़चनें हैं गैरिक वस्त्र में। यही अड़चनें हैं। न्यारे होने की अड़चनें हैं। लोग बरदाश्त नहीं करते किसी आदमी का व्यक्तित्व ग्रहण करना। कोई आदमी अपनी धुन से जीने लगे लोग नाराज होते है। लोक कहते है तो हमारे घेरे के बाहर जाते हो तो अपने को विशिष्ट बतलाते हो तो लोग इसका बदला लेंगे। लोग तुम्हें तकलीफ देंगे। लोग इतनी आसानी से तुम्हें छोड़ नहीं देंगे।
ऐसा ही समझो कि भेड़ों का एक झुंड चल रहा है और एक भेड़ अलग-थलग चलने लगे सारी भेड़े नाराज हो जाएंगी। यह बात ठीक नहीं। यह जमात के अनुकूल नहीं। उस भेड़ को कष्ट देंगी बाकी भेड़ें। भेड़ें कहेंगी वापस लौट आओ भीड़ में। ऐसे अगर हमने लोगों को अलग-अलग चलने दिया तो धीरे-धीरे जमात टूट जाएगी समाज टूट जाएगा।
समाज बरदाश्त नहीं करता व्यक्तियों को। व्यक्तियों को पोंछता है मिटाता है। समाज चाहता है निर्व्यक्ति की तरह तुम रहो व्यक्तिशून्य आंकड़े।
तो न्यारे शब्द का यह भी अर्थ होता है जग माहीं न्यारे रहौ। अपने ढंग
से रहो। यह जिन्दगी मिली इस जिंदगी को कुछ अपना ढंग दो। इस जिंदगी में अपना गीत गाओ अपनी वीणा बजाओ। कुछ भी हो कीमत मूल्य कुछ भी चुकाना पड़े। जो आदमी विद्रोह में जीता है वही आदमी जीता है। जो आदमी बुनियादी रूप
से बगावती है वही आदमी है और उसी को मैं धार्मिक कहता हूं।
धार्मिक व्यक्ति साम्प्रदायिक नहीं होता। धार्मिक व्यक्ति निजी होता है नियम व्यवस्था इन्हें तोड़ कर अपनी जागरूकता और अपनी स्वतंत्रता में जीने की चेष्टा करता है। उसी स्वतंत्रता पर चढ़ते-चढ़ते तुम एक दिन परम स्वतंत्रता, मोक्ष को उपलब्ध होओगे। उससे अन्यथा कोई उपाय नहीं।

धीरे-धीरे हिम्मत जुटाओ। धीरे-धीरे जंजीरे तोड़ो। और मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम एकदम सब तोड़ दो क्योंकि वे जंजीरे तुम्हारी इतनी पुरानी आदत हो गई हैं कि उनके बिना तुम जी न सकोगे। मगर धीरे-धीरे तोड़ना तो शुरू करो। एक-एक सींकचा काटते-काटते एक दिन तुम पाओगे द्वार खुल गया है अब तुम बाहर उड़ सकते हो।
और ख्याल रखना आकाश में उड़ता हुआ पक्षी और पिंजड़े में बंद हुए पक्षी में बड़ा फर्क है। पिंजड़े में बैठे पक्षी में और आकाश में उड़ते पक्षी में बड़ा फर्क है। वे दोनों एक ही जैसे नहीं हैं। और यह भी हो सकता है कि पिंजड़े में बैठा पक्षी बड़ी सुविधा में हो। न भोजन की फिक्र वक्त पर मिल जाता है। शायद यह भी सोचता हो कि नौकर-चाकर मेरे लगे हैं। जब देखो ठीक वक्त पर भोजन ले आते हैं स्नान करवा
देते हैं पिंजड़ा साफ कर देते हैं। यह भी हो सकता है कि पिंजड़ा सोने का
हो हीरे-जवाहरात जड़ा हो और पक्षी भीतर बैठ कर अकड़ता हो कि ऐसा पिंजड़ा किसके पास।
ऐसे ही तुम्हारे राष्ट्रपति प्रधानमंत्री अकड़ते हैं ऐसा पिंजड़ा किसके पास है। सोने-चांदी का है कोई साधारण पिंजड़ा नहीं है। मगर अब पंख कट जाते हैं। पंख कटने की कीमत पर मिलता है पिंजड़ा।
उड़ता हुआ आकाश का पंछी न सोना-चांदी है न हीरे-जवाहरात हैं। मगर क्या तुम पसंद करोगे सोने का पिंजड़ा चुन लेना--सुविधा सुरक्षा व्यवस्था या कि तुम स्वतंत्रता पसंद करोगे यही भेद है। यही निर्णायक बात है।
संन्यास उसी के जीवन में फलित होता है जो आकाश का खतरा झेलने को तैयार
है जो मुक्त हवाओं के साथ खेलना चाहता है जो दूर-दूर आकाश के अनजान कोनों में यात्रा करना चाहता है। जो सूरज की तरफ उड़ान भरना चाहता है वही संन्यासी है।
गृहस्थ यानी पिंजड़े में बंद। गृहस्थ का अर्थ हैः सुविधा सुरक्षा सम्मान प्रतिष्ठा लोग क्या कहेंगे लोग किस बात को ठीक मानते हैं वही करना लोग जैसा कहें वैसा ही करना क्योंकि इन्ही लोगों से
आदर लेना है। अगर इनको नाराज कर दिया तो ये आदर न देंगे।
इन लोगों ने कभी भी आकाश में उड़ते पक्षियों को कोई आदर नहीं दिया। जीसस को सूली दी। बुद्ध को पत्थर मारे। महावीर के कानों में खीले ठोंके।
सुकरात को जहर पिलाया। मन्सूर के हाथ-पैर काट डाले।
जब भी कोई आदमी उड़ा आकाश में तभी इन पिंजड़े में बंद लोगों ने बरदाश्त नहीं किया। उससे इन्हें चोट लगती है अड़चन पड़ती है। क्योंकि उससे इन्हें अपनी दशा का ख्याल आता है। तुलना पैदा होती है कि हम पिंजड़े में बंद।
कोई न उड़े आकाश में कोई पक्षी न उड़े आकाश में तो पिंजड़े में बंद पक्षियों को सुविधा होती है। याद ही भूल जाती है आकाश की। आकाश है भी इसकी भी मानने की कोई जरूरत नहीं रहती। पंख होते भी हैं इसका भी कोई सवाल नहीं रहता। पंख एक तरह का आभूषण हो जाता हैं--फड़-फड़ाने के लिए उड़ने के लिए नहीं। पंख एक तरह की सजावट हो जाते हैं। उनका कोई उपयोग नहीं रह जाता। और जब कोई भी नहीं उड़ता तो चुनौती नहीं मिलती।
लोग नाराज क्यों होते हैं जीसस से नाराज इसलिए होते हैं कि हम में पिंजड़ों बंद हैं और तुम आकाश में उड़ने की हिम्मत बतला रहे हो तुम हमारे अहंकार को चोट पहुंचाते हो। तुम हमें चुनौती देते हो हम बरदाश्त न करेंगे। अगर तुम सही हो तो हम सब गलत हैं। और यह बात बड़ी चोट पहुंचाती है। हम तुम्हें समाप्त करेंगे। हम तुम्हें समाप्त करके ही निश्चित हो सकेंगे फिर हम अपने पिंजड़ो में सो जाएंगे। फिर हम पिंजड़ों में शांति की नींद लेंगे। हमारी सुरक्षा फिर अछूती हो जाएगी।
तो न्यारे का अर्थ होता है--निराले। न्यारे का अर्थ होता है--संन्यास। यहाँ सारे लोग गृहस्थ हैं। सब अपने-अपने पिंजड़ों में बंद हैं। सब ने अपनी-अपनी सुरक्षा-सुविधा बना ली है। उस सुरक्षा-सुविधा को पाने के लिए सबने अपनी आत्माएं खो दी हैं। और ध्यान रखना तुम आत्मा खोकर संसार भी पा

लो पूरा तो भी कुछ नहीं पाया। और सारा संसार खो जाए और आत्मा पा लो निजता पा लो न्यारापन पा लो तो सब पा लिया।
न्यारेपन को ही लेकर तुम परमात्मा के पास जा सकोगे। नहीं तो किस मुंह
से खड़े होओगे उसके सामने। नम्बर की तरह आंकड़े की तरह हिंदू की तरह मुसलमान की तरह ईसाई की तरह या अपनी तरह
अपनी तरह खड़े होओगे तो हो तुम खड़े हो सकोगे। तो ही तुम आंख से आंख मिला
कर देख सकोगे परमात्मा को। क्योंकि तुमने जो उसने चाहा था उसे पूरा किया। जो फूल उसने तुम में बनाना चाहा था तुम बन कर आए हो। वही फूल उसके चरणों में अर्पित किया जा सकता है।
"जग माहीं न्यारे रहौ लगे रहौ हरि-ध्यान। और तरकीब क्या है जगत में न्यारे होने की लगे रहौ हरि-ध्यान--परमात्मा की स्मृति में लगे रहो तुम न्यारे हो जाओगे।
धन की याद करोगे भीड़ के हिस्से हो जाओगे। पद को याद करोगे भीड़ में खो जाओगे। परमात्मा की याद करोगे अलग-थलग हो जाओगे न्यारे हो जाओगे। समझना कारण इसका।
परमात्मा की याददाश्त तो एकांत में की जाती है। तुम्हारे अत्यंत एकांत में ही प्रभु को स्मरण किया जाता है। परमात्मा को संग-साथ में याद करने का कोई उपाय नहीं।
अगर दस लोग भी शांत बैठ कर परमात्मा का स्मरण करें तो भी स्मरण अकेले में ही होता है। जब दसों अपने-अपने भीतर चले जाएंगे जब दसों अकेले हो जाएंगे बाकी नौ की कोई याद न रह जाएगी जब अपना ही होना एकमात्र होना बचेगा तब प्रभु की याद। अगर नौ की याद बनी रहे तो प्रभु की याद नहीं होती।
तो इस जगत में एक ही चीज है तो नितांत वैयक्तिक है वह है प्रभु-स्मरण
वह है--प्रभु-प्रेम जहां दूसरे की जरूतर नहीं होती। यही प्रार्थना और प्रेम का फर्क है।
साधारण प्रेम में दूसरे की जरूरत होती है। स्त्री चाहिए पुरुष चाहिए बेटा चाहिए मां चाहिए भाई चाहिए--कोई चाहिए दूसरा चाहिएं। साधारण प्रेम में दूसरे की जरूरत होती है। प्रार्थना में किसी दूसरे की जरूरत नही होती। तुम अकेले काफी हो। अपने में डुबकी मार जाते हो। अपने भीतर सरक जाते हो। अकेले काफी हो। उस अकेले एकांत में हरि-स्मरण।
ईसा-ए-अश्क ने चमकाई है पलकों की सलीब
-यार ने दर्द की अंजील को दोहराया है
फिर किसी याद का जलता हुआ पागल झोंका
मेरे सुखे हुए होंठों के करीब आया है
आज फिर आंख की बदनाम गुजरगाहों पर
रुक गया है कोई चलते हुए जल्वों का शराब आंख अब ख्वाब की जुम्बिश भी नहीं सह सकती अब कोई वजहे-कल्लुफ न कोई रस्मे-हिजाब दिल कि एक कांच की चूड़ी से भी नाजुक ठहरा किस तरह इतनी बड़ी चोट को सह सकता है
जो कभी अर्शे मुहब्बत से न नीचे उतरा किस तरह मौत के तहखाने में रह सकता है ये अंधेरा ये पिघलता हुआ शब-रंग सुकूत मेरे एहसास की हर मौज में ढल जाने दे आखिरी सांस की तलवार भी चल जाने दे मुझको इस हिर्स की बस्ती से निकल जाने दे वही संगम वही तकदीर का पहला संगम
तुम जहां मुझसे मिले थे मैं वही जाऊंगा यह जुदाई तो फकत है सांस का इक वक्फा मेरे महबूब न घबड़ाओ मैं फिर आऊंगा।

हरि-स्मरण का अर्थ क्या है उस स्रोत की खोज जिससे हम आए हैं। उस महबूब
की खोज उस यारे की खोज जिससे हम आए और जिसमें वापस जाना है। हरि-स्मरण का अर्थ हैः अपने वास्तविक घर की खोज।
वही संगम वही तकदीर का पहला संगम
तुम जहां मुझसे मिले थे मैं वही जाऊंगा
यह जुदाई तो फकत सांस का इक वक्फा है
मेरे महबूब न घबड़ाओ मैं फिर आऊंगा।
हरि-स्मरण का अर्थ इतना ही है कि मेरे यारे में आता हूं कि म आ रहा हूं
कि मेरी तेरी जुदाई तो बस एक छोटी सी श्वास के बीच पड़ गया विराम है। यह कोई वास्तविक जुदाई नहीं है। यह तो सिर्फ एक विस्मरण है। मैं फिर तुझे याद करता हूं। मैं फिर तुझे पुकारता हूं
हरि-स्मरण वस्तुत किसी आकाश में बैठे परमात्मा का स्मरण नहीं है बल्कि तुम्हारे ही भीतर छिपी हुई तुम्हारी आत्मा का स्मरण है। तुम्हारे ही भीतर जो आत्यंतिक आखिरी तुम्हारे केंद्र पर बैठा हुआ दीया है जहां से सब रोशनी फैली है जहां से तुम अभी भी रोशनी लेते हो जीवन लेते हो जहां से तुम अभी भी जीते हो उसी दीये का स्मरण।
और मजा यह है कि वह दीया एक ही है मेरा और तुम्हारा अलग-अलग नहीं है। तुम्हारा और वृक्षों का अलग-अलग नहीं है। तुम्हारा और पहाड़ों और चांद-तारों का अलग-अलग नहीं है। हम परिधि पर ही भिन्न है केंद्र पर हम एक में ही डुबे हैं एक में ही जुड़े हैं। जैसे वृक्ष की शाखायें अलग-अलग पत्ते अलग-अलग लेकिन जड़ में सब एक है ऐसे परमात्मा में हम सब एक हैं।
तो पहले न्यारे बनो भीड़ से क्योंकि भीड़ परमात्मा तक नहीं जाती। पहले
तो अलग-थलग बनो और फिर अंतर की यात्रा पर निकलो। प्रभु की खोज में चलो। प्रभु की खोज काशी और काबा में नहीं होती। प्रभु की खोज मक्का और मदिना में नहीं होती। मक्का-मदीना काशी-काबा गिरनार--सब भीतर के प्रतीक हैं। जाओ भीतर। एक ही हज है एक ही तीर्थ-यात्रा है--जाओ भीतर। और सब यात्राएं हैं तीर्थ-यात्रा एक ही है--कि जाओ भीतर।
जग माहीं न्यारे रहौ लगे रहौ हरि-ध्यान।
पृथ्वी पर देही रहै परमेसुर में प्रान।।
रहो तो पृथ्वी पर याद परमात्मा की रहे। प्राण परमेश्वर में रहें--रहो पृथ्वी पर। यही मेरे संन्यास का अर्थ है। रहो बाजार में रहो संसार में रहो घर-द्वार में लेकिन एक क्षण को भी उस-यारे की खोज रुके ना एक क्षण को भी प्राण उसे बिसारें ना। एक क्षण को भी भीतर अवरोध न आए। श्वास-श्वास में उसकी याद हो हृदयकी धड़कन-धड़कन में उसकी याद हो जिक्र रहे स्मरण रहे सुरति बनी रहे।
"सब सूं रख निरबैरता गहो दीनता ध्यान। कहते हैं चरणदास अगर परमात्मा
को खोजना हो तो जगत में बैर मत बनाना। क्योंकि बैर बनाया तो बाहर उलझन खड़ी होती है। उलझन खड़ी होती है तो फिर भीतर जाना कठिन जो जाता है।
"सब सूं रख निरबैरता गहो दीनता ध्यान। और निरबैरता करनी हो तो अहंकार
की घोषणा मत करना--कि मैं कुछ विशिष्ठ हूं कि मैं कुछ खास हूं। मैं की घोषणा मत करना। क्योंकि मैं की घोषणा की तो बैर खड़ा हुआ।
सब बैर अहंकार से पैदा होता है। दो अहंकारों में टक्कर हो जाती है बैर पैदा हो जाता है। अगर बैर न करना हो तो अहंकार की घोषणा ही मत करना। दीन होकर रह जाना--ना-कुछ मैं कुछ भी नहीं--शून्यमात्र--ऐसे शून्यमात्र होकर रह जाओ तो बैर पैदा नहीं होगा। बैर पैदा नहीं होगा तो बाहर उलझन खड़ी नहीं होगी। बाहर उलझन ख.ड़ी नहीं होगी तो तुम्हारी चेतना भीतर जाने को मुक्त होगी परमात्मा की खोज करने में समर्थ होगी।
"अंत मुक्तिपद पाइहौ जग में होय न हानि। और अगर प्रभु का स्मरण जारी रहे बाहर की व्यर्थ उलझनों में न उलझो अहंकार की यात्राओं पर न निकलो तो एक दिन अंतत वह परम मुक्ति मिलेगी। उड़ोगे पंख फैला कर आकाश में। वह परम आनंद अमृत मिलेगा। और जग में होय न हानि और जग में कुछ भी हानि न होगी। कुछ नुकसान किसी का न होगा। यह सोचना।

मैं चरणदास से ज्यादा राजी हूं--बजाय बुद्ध और महावीर के। क्योंकि उनकी वाणी का परिणाम जगत में बहुत हानि भी हुई। लोगों को लाभ हुआ लेकिन जगत में हानि हुई। कोई पति भाग गया--घर छोड़ कर। तो उसे लाभ हुआ। लेकिन पत्नी बच्चे भिखारी हो गए दर-दर के भिखारी हो गए। जिम्मेवारी से भाग गया आदमी। बच्चे पैदा किए थे पत्नी को विवाह कर लाया था कुछ जिम्मेवारी थी। यह तो धोखा हो गया। यह ईमानदारी न हुई। इसकी कोई जरूरत न थी। यह पत्नी जीते-जी विधवा हो गई बच्चे बाप के रहते अनाथ हो गए।
हजारो-लाखो लोग संन्यस्त हुए हैं अतीत में और हजारो-लाखो घर बरबाद हुए हैं।
चरणदास कहेंगे जग में कुछ हानि करने की जरूरत नहीं है। जग का काम सम्हाले चले जाना। पृथ्वी पर बसे रहना प्राण परमेश्वर में बसा देना। "दया नम्रता दीनता छिमा सील संतोष। वे कह रहे हैं ये गुण होने चाहिए संन्यस्त के--दया नम्रता दीनता क्षमा शील संतोष। ये छह जिसने सम्हाल लिए उसके जीवन में व्यर्थ की विपदायें और व्यर्थ की समस्यायें खड़ी नहीं होतीं। उसके जीवन में समस्याओं का सतत आवर्तन नहीं होता।
दया--तो क्रोध से छुटकारा हो जाता है। जब तुम क्रोध नहीं करते तो दूसरे की तरफ से क्रोध नहीं आता। जब तुम दया से भरे होते हो तो सारा अस्तित्व तुम्हारे प्रति दयापूर्ण हो जाता है। इसे याद रखना।
यह अस्तित्व हमारी प्रतिध्वनि है। हम जैसे हैं वही हमें वापस मिलता है। तुम नाराज तो नाराजगी। तुम क्रुद्ध तो क्रोध। तुम रोष से भरे तो रोष तुम पर लौट आएगा। तुम गालियां दो तो गालियां ही तुम पर बरसेगी। और तुम प्रेम बरसाओ तो प्रेम तुम पर बरसेगा।
दया नम्रता। नम्रता यानी निरहंकार भाव। दीनता। महत्वाकांक्षा से शून्य। न पद न प्रतिष्ठा न धन की कोई दौड़। क्षमा फिर भी किसी से भूल-चूक हो जाए तो उस भूल-चूक को बहुत-बहुत खींचते न रहना। क्षमा करने की क्षमता। शील। शील उस आचरण का नाम है जो ऊपर से आरोपित नहीं किया जाता वरन ध्यान और प्रभु-स्मरण के कारण धीरे-धीरे तुम्हारे जीवन में अपने आप प्रकट होना शुरू होता है। शील वास्तविक आचरण का नाम है।
एक तो आचरण होता है पाखंडी का--ऊपर से थोप लिया। क्योंकि उसमें लाभ मालूम होता है।
दिखावा किया। भीतर कुछ रहे बाहर कुछ। और एक आचरण होता है--सहज तुम्हारे भीतर जो उमगा जैसे फूल से बास आई जैसे दीये से ज्योति निकली ऐसे तुम्हारे भीतर से उमगा। जैसे भीतर--वैसे बाहर।
और संतोष और जो मिल जाए उसमें तृप्ति। मिल जाए तो तृप्ति न मिले तो तृप्ति। संतोष को अंतिम गुण कहा चरणदास ने। संतोषी ही सत्य पा सकेगा। साधारणत हमारा मन सतत असंतोष में है। हम फेहरिश्त ही बनाते रहते हैं
कि क्या नहीं मिला क्या मिलना चाहिए था हम निरंतर यही शिकायत करते रहते हैं भीतर--कि हे प्रभु मुझे यह क्यों नहीं मिला दूसरे को क्यों मिल गया यहां सब मजे में दिखाई पड़ते हैं। मैं ही दुखी हूं। यह शिकायत से भरा हुआ मन प्रार्थना से चूक जाता है हरि का ध्यान नहीं कर पाता। शिकायत बाधा है। कोई शिकायत नहीं अनुग्रह का भाव।
"इनकूं लै सुमिरन करै निश्चय पावै मोष। जो इन छह को साथ में लेकर प्रभु का स्मरण करेगा उसकी मुक्ति निश्चित है।
"मिटते सूं मत प्रीत करि रहते सूं करि नेह।
झूठे कूं तजि दीजिए सांचे में करि गेह।।
अमूल्य वचन है याद रखना।
"मिटने सूं मत प्रीत करि। जो मिट जाएगा उससे प्रेम मत बनाओ क्योंकि वह प्रेम दुख लाएगा। मिट ही जानेवाला है जो उससे प्रेम बनाया तो दुख पैदा होगा। मिटते सूं मत प्रीत करि रहते सूं करि नेह। जो सदा रहेगा जो सदा है-- शाश्वत नित्य--उससे ही प्रेम को लगाओ।
"झूठे कूं तजि दीजिए सांचे में करि गेह। और जो मिट जाता है अभी है और अभी खो गया वही झूठ है पानी का बुलबुला।

जो कभी नहीं मिटता न जन्मता है न मरता है वही सच है। शाश्वतता अर्थात सत्य।
बह्म-सिंध की लहर है तामें न्हाव संजोय।
कलिमल सब छुटि जाहिंगे पातक रहै न कोय।।
कहते हे कि ब्रह्म तो ऐसे ही आता रहता है तुम्हारे पास जैसे सागर की लहरें तट की तरफ आती हैं। आता ही रहता है। तुम भी अगर बैठ जाओ सागर के तट पर। कुछ और नहीं करना पड़ता सिर्फ बैठना पड़ता है सागर के तट पर। लहर आती है धुला जाती है।
आदमी को कुछ और नहीं करना है शांत होकर बैठना सीख जाए। इतना ही ध्यान है--कि कभी घड़ी भर को चौबीस घड़ियों में तुम शांत होकर बैठ गए। कुछ नहीं करना है मौन हो रहे। कुछ किया ही नहीं। अक्रिया में डूब गए।
यह प्रतीक बड़ा प्यारा चुना है। ब्रह्म-सिंध की लहर है। भगवान ऐसे है जैसे सागर की बड़ी उत्तुंग लहर। कहीं जाना नहीं रेत पर ही बैठ गए आंख बंद करके। लहर आएगी नहला जाएगी। डुबा लेगी तुम्हें अपने में और चली जाएगी तुम ताजे हो उठोगे। ऐसा ही ध्यान है।
ध्यान में जब तुम करते हो कुछ। क्या करते हो करने को क्या है ध्यान में अक्रिया में डूब जाते हो। बैठ गए मौन होकर--चुप--सन्नाटा हो गया। जैसे ही सन्नाटा सघन होगा तुम पाओगे आती है एक विराट लहर वही विराट लहर परमात्मा है और तुम्हें नहला जाती है। तुम्हारा रोआं-रोआं पुलकित कर जाती है। तुम्हारी सब धूल-धवांस झाड़ जाती है। तुम्हें ताजा तरोताजा कर जाती है। तुम्हें फिर नया नितनूतन कर जाती है। तुम्हें नया जन्म दे जाती है। "ब्रह्म-सिंध की लहर है तामें न्हाव संजोय। बस इतना ही करना है कि तुम्हें एक संयोग बनाना है तांकि लहर तुम पर आ जाए। तुम्हें लहर लानी नहीं है। तुम्हें सिर्फ बैठने की कला सीख लेनी है।
"कलिमल सब छुटि जाहिंगे पातक रहै न कोय। सब छूट जाएगी कलुषता कोई पाप
न रह जाएगा।
का तपस्या नाम बिन जोग जग्य अरु दान।
चरनदास यों कहत हैं सभी थोथे जान।।
कहते हैं चरणदास कि तपस्या परमात्मा के नाम के बिना किसी अर्थ की नहीं। वह भी एक अहंकार ही है फिर। जिसे हरि का स्मरण नहीं है वह तपस्या कर के भी अपने अहंकार को ही बढ़ाएगा--कि मैं तपस्वी कि त्यागी कि मुनि कि यति। "का तपस्या नाम बिन जोग जग्य अरु दान। और तुम योग करो तो भी अहंकार बढ़ेगा। यज्ञ करो तो भी अहंकार बढ़ेगा। दान करो तो भी अहंकार बढ़ेगा। सिर्फ एक ही चीज है जो तुम्हारे अहंकार को पोंछ जाएगी वह है--ब्रह्म-सिंध की लहर। तुम उस परमात्मा का स्मरण करो। तुम अपने से विराट को पुकारो। ताकि तुम्हारी क्षुद्रता उसमें खो जाए। तुम महान को पुकारो ताकि तुम्हारी यह अणु जैसी छोटी सी अहंकार की दशा उसमें लीन हो जाए। यह तुम्हारी बूंद उसके सागर में गिर जाए तो ही। अन्यथा तुम्हारा दान व्रत नियम उपवास यज्ञ योग-- सब व्यर्थ हैं। चरनदास यों कहत हैं सब ही थोथे जान।
गई सो गई अब राखिं लै एहो मूढ अयान।
निकेवल हरि कूं रटो सीख गुरु की मान।।
"गई सो गई अब राखि लै। चरणदास कहते हैं जो गया सो गया जो बीत गया सो बीत गया उसकी अब फिक्र न करो। अब बैठकर हिसाब मत लगाओ कि कितना गंवा दिया।
क्योंकि उसके हिसाब में भी समय और गँवाया जाएगा।
"गई सो गई उसकी कोई फिकर न लो। अब राखि लै। अभी-अभी सब हो सकता है। समय
ही खोया है तुम नहीं खो गए हो। अभी भी समय है अभी भी तुम जीवित हो। एक क्षण में भी यह क्रांति घट सकती है। अगर त्वरा हो तीव्रता हो सघनता हो समग्रता हो तो अभी और यहीं घट सकती है।
"गई सो गई अब राखि लै। जो गया उसके हिसाब में मत पड़ो।
मेरे पास लोग आ जाते हैं वे कहते हैं जन्मों-जन्मों का पाप कैसे कटेगा तुम कहां के हिसाब लगाने बैठे हो पाप में समय गंवाया अब हिसाब लगा रहे हो अब खाते-वही लिए बैठे हो जन्मों-जन्मों का पाप अब कैसे कटेगा गई सो गई।

वह सब सपना था जो तुमने देखा। पाप का देखा तो भी सपना था पुण्य का देखा
तो भी सपना था। तुमने जो अछें कृत्य किए अतीत में वह भी व्यर्थ और तुमने जो बुरे किए वे भी व्यर्थ। सिर्फ एक ही बात सार्थक है प्रभु का स्मरण। वही सत्य है बाकी सब झूठ है। बाकी सब आता है चला जाता है।
मिटते सूं मत प्रीत करि रहते सूं करि नेह।
झूठे कूं तजि दीजिए सांचे में करि गेह।।
अब घर बना ली सत्य में।
यह अभी हो सकता है।
"गई सो गई अब राखि लै एहो मूढ अयान। कहते हैं हे अज्ञानी हे मूढ़ जो गया
अब उसकी चिंता में मत पड़। अभी भी सब हो सकता है। अभी भी कुछ गया नहीं है।
सुबह का भूला सांझ को भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहाता। तुम जब लौट आओ तभी ठीक घड़ी है।
तीन तरह के मूढ़ संतों ने कहे हैं। मूढ़ नंबर एक मानता है कि मैं मूढ़ हूं। थोड़ी संभावना है क्योंकि मानता है कि मैं मूढ़ हूं तो थो.ड़ी बुद्धिमत्ता की झलक है।
मूढ़ नंबर दो मानता है कि मैं और मूढ़ मैं कभी मूढ़ नही। बड़ी मुश्किल है।
अब दरवाजा खोलना कठिन होगा। लेकिन कठिन है खुल सकता है क्योंकि इतना ही कहता है कि मैं मूढ़ नहीं हूं।
मूढ़ नंबर तीन असंभव है। वह कहता है मैं बुद्धिमान हूं मैं ज्ञानी हूं। उसने असंभव कर दी बात।
अगर तुम मूढ़ नंबर तीन हो तो कम से कम दो पर खिसको। अगर दो हो तो एक पर खिसको। एक से द्वार है।
जिस आदमी ने ऐसा समझ लिया कि मैं अज्ञानी हूं ज्ञान की शुरुआत हो गई।
पहली किरण तो उतरी पहला बोध तो आया कि मैं अज्ञानी हूं। इतना समय तो गंवा दिया अब कुछ करूं। और यह करने की बात कुछ ऐसी है कि इसके लिए बुद्धिमानी चाहिए भी नहीं।
प्रभु का स्मरण करना है इसमें कोई शास्त्र-ज्ञान काम नहीं आएगा। सिद्धांत दर्शनशास्त्र वेद पुराण कुरान काम नहीं आएंगे। प्रभु का स्मरण है यह तो सरल से सरल चित्त व्यक्ति भी कर ले सकता है। वह तो कोई भी कर ले सकता है। इसके लिए बुद्धि की जरूरत नहीं केवल हृदय के जीवंत होने की जरूरत है।
गई सो गई अब राखि लै एहो मूढ़ अयान।
निकेवल हरि कूं रटो सीख गुरु की मान।।
और गुरु की सीख एक ही है कि किसी तरह हरि से जुड़ जाओ। गुरु का काम इतना
ही है कि पहले तुम्हें अपने से जोड़ ले और जब तुम गुरु से जुड़ जाआ तो तुम्हें हरि से जु.ड़ा दे और फिर बीच से हट जाए।
पहले गुरु तुम्हें अपने पास लेता है ताकि तुम्हें हरि के पास पहुंचा सके। फिर एक घड़ी आती है जब गुरु तुम्हारे बीच से हट जाता है ताकि तुम हरि में पूरे लीन हो सको गुरु भी बाधा न रहे।
सद्गुरु उसी को कहा है जो पहले तुम्हें अपने हृदय में समा ले और तुम्हारे हृदय में समा जाए। यह पहला कदम सदगुरु का। दूसरा कदम कि धीरे- धीरे तुम्हारे हृदय से बाहर हट जाए जगह खाली कर दे ताकि परमात्मा समा जाए। पहले तुम्हें बुलाए पास अपने क्योंकि वही एक उपाय तुम्हारे लिए हो सकता है उस पार जाने का। तुम्हें अपनी नाव में बिठा ले और जब तुम दूरसे किनारे पहुंच जाओ तो तुम्हें नाव से उतार दे तुम्हें विदा दे दे।
आदमी दो तरह की गलतियां करते हैं। पहले तो वे गुरु की नाव में सवार नहीं होते। बड़ी जद्दोजहद करते हैं बड़े बचने के उपाय करते है। अगर कभी गुरु की नाव में सवार हो गए तो फिर दूसरे किनारे जाकर उतरते नहीं। फिर वे कहते हैं अब हम न उतरेंगे। अब हमें कहां छोड़ कर जाते हो
तो गुरु को दो काम करने पड़ते हैं। एक दिन तुम्हें नाव में चढ़ाना पड़ता
है एक दिन तुम्हें नाव से उतार देना पड़ता है। ऐसे गुरु को ही सदगुरु कहा है।

सदगुरु की सीख बहुत छोटी सी है। लेकिन उस छोटी सी चिनगारी से अज्ञान
के बड़े से बड़े जंगल जल जाते हैं। वह इतनी ही है जग माहीं न्यारे रहौ लगे रहौ हरि-ध्यान।
और गुरु के पास ख्याल रखना
गुरु कहै सो किजिए करै सो कीजै नाहिं।
चरनदास की सीख सुन यही राख मन माहिं।।
इन सूत्रों पर ध्यान करना। इन सूत्रों से तुम्हारा रास्ता बहुत स्पष्ट हो सकता है। ये सूत्र तुम्हारे लिए मार्ग पर पाथेय का काम देंगे। ये तुम्हारा कलेवा वन जाएंगे। लंबी यात्रा है और कलेवा चाहिए होगा।
संतों ने जो भी कहा है कहने में उन्हें रस नहीं है। वे कोई कवि नहीं हैं। उन्होंने सिर्फ इसीलिए कहा है कि कोई सुने तो जाग सके। जगाने के लिए कहा है। उनके वक्तव्य मात्र वक्तव्य आनंद से नहीं दिए हैं। उनके वक्तव्य व्यवहारिक हैं प्रयोग के लिए हैं। उनके वक्तव्यों में आह्वान है। तुम्हारे लिए संकेत हैं कि अनंत की यात्रा पर कैसे जाया जा सकता है।
रहो पृथ्वी पर परमेश्वर में प्राण को रखो। जैसे-जैसे प्रभु की याद सघन होती जाएगी वैसे-वैसे तुम पाओगे प्रभु तुम्हारे भीतर उतरने लगा तुम प्रभुमय होने लगे।
मेरी गोद में
भूगोल
बाहों में
आकाश
आंखों में
ग्रह-नक्षत्रों की
दौड़ती स्वर्ण-रेखा
आज मैने अपने को
विराट होते देखा।
जिस क्षण प्रभु की याद पूरी हो जाएगी तुम उसी क्षण पाओगे तुम और प्रभु
दो नहीं। तुम अपने को विराट होता पाओगे।
अणु में ब्रह्मांड पाया जाता है। बूंद में सब सागरों का रहस्य छिपा
है ऐसा ही छिपा है तुम में परमात्मा। कला इतनी ही है कि अभी घड़ी भर निष्क्रिय होए बैठ जाओ ताकि आए उसकी सिंध की लहर और तुम्हें तरोताजा कर जाए। तुम्हारे जीवन को पुलकित कर जाए नृत्यमय कर जाए। तुम्हारी उदासी को छीन ले और तुम्हें उत्सव से भर जाए।

आज इतना ही।

नहीं सांझ नहीं भोर
चौथा प्रवचन

प्रश्नोत्तर

• सद्गुरुओं की निन्दा
• ध्यान और साक्षीभाव
• विचारों पर नियंत्रण
• ज्वलन्त प्यास

पहला प्रश्नः आप अक्सर कहते हैं कि यह जगत एक प्रतिध्वनि बिंदु है जहां से हमारे पास वही सब लौट आता है जो हम उसे देते हैं। प्रेम को प्रेम मिलता है और घृणा का घृणा। यदि ऐसा ही है तो क्यों बुद्ध और महावीर को यातनाएं दी गई क्यों ईसा और मंसूर की हत्या की गई और क्यों यहां आपको झूठे लांछन निंदा और गालियां मिल रही हैं और क्या आप जैसों से बढ़ कर भी निश्छल प्रेम और आशीष देने वाले लोग इस जगत को मिल सकते हैं
प्रेम के प्रत्युत्तर में प्रेम और घृणा के प्रत्युत्तर में घृणा यह जगत का सामान्य नियम है। लेकिन सदगुरु सामान्य नियम के भीतर नहीं इसीलिए सदगुरु है। सामान्य नियम के भीतर नहीं है क्योंकि संसार के भीतर नहीं है। संसार में हो कर भी संसार के बाहर है। इसलिए जो नियम सामान्यतया काम करता है वह नियम सदगुरु के लिए काम नहीं करेगा।
इसे समझो। यह महत्वपूर्ण प्रश्न है। सदियों-सदियों में आदमी ने इस पर बहुत सोचा और विचारा है। ऐसा होना तो नहीं चाहिए।
जीसस से ज्यादा प्रेम और कोन देगा और परिणाम में सूली हाथ लगती है। इसका तर्कयुक्त उत्तर साधारण बुद्धि के ख्याल में नहीं आता। लेकिन भूल-चूक इसलिए हो जाती है कि तुम यह विस्मरण कर जाते हो कि सदगुरु किसी और जगत का वासी है यहां अजनबी है। उसके जीने का ढंग उसके होने की शैली इस जगत की व्यवस्था में कहीं भी मेल नहीं खाती।
इस जगत का प्रेम क्या है इस जगत का प्रेम है दूसरे के अहंकार को तृप्त करो। जब तुम किसी स्त्री से कहते हो तुझसे ज्यादा सुंदर और कोई भी नहीं तो स्त्री समझती है कि तुम प्रेम कर रहे हो। और जब कोई स्त्री तुम से कहती है कि तुम जैसा पुरुष न कभी हुआ न कभी होगा तुम बे-मिसाल हो तो पुरुष को लगता है प्रेम। जहा भी तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है वहां तुम्हें लगता है--प्रेम।
सदगुरु के साथ कठिनाई यही है कि तुम्हारे अहंकार को तृप्त नहीं करेगा। तुम्हारे अहंकार को खंडित करेगा तोड़ेगा मिटाएगा नष्ट करेगा। इस जगत में तो घृणा करती है यह काम जो सदगुरु का प्रेम करता है।
इस जगत में तो तुम्हें जो मिटाना चाहे वह दुश्मन है। इस जगत में तो तुम्हे जो पोंछ डालना चाहे वह शत्रु है।
इस जगत में घृणा का यही अर्थ होता है कि कोई तुम्हें मिटाने के पीछे प--ड़ गया है। तुम्हें कोई बनाए तो प्रेम तुम्हें कोई मिटाए तो घृणा।
सदगुरु का प्रेम कुछ ऐसा है कि तुम्हें मिटा कर बनता है। वह अनूठा है।
पहले तुम्हें मिटाता है तुम्हें खंड-खंड तोड़ देगा। तुम्हारे भवन की ईंट-ईंट गिरा देगा। जब तुम बिल्कुल मिट जाओगे तो उसी से उठाएगा तुम्हें पुन तुम्हारा पुनर्जन्म होगा। मृत्यु के माध्यम से तुम्हारा पुनर्जन्म होगा।
तो सदगुरु। समझो बहुत गहरा समझ सको तो ही पहचान पाओगे उसका प्रेम।
थोड़े ही लोग उतना गहरा समझ सकते हैं क्योंकि थोड़े ही लोग उतने गहरे हैं।
अधिक लोक तो समझेंगे यह दुश्मन आ गया।
तो जो तुम व्यवहार दुश्मन के साथ करते हो वही तुम बुद्ध महावीर और जीसस के साथ करोगे वही तुम मेरे साथ करोगे। वही तुमने सदा किया है वही तुम आगे भी करोगे।

और तुम पर नाराजगी भी जाहिर नहीं की जा सकती। तुम क्षम्य हो। तुम इससे अन्यथा कर भी नहीं सकते। तुमने जो प्रेम जाना है उसने सदा तुम्हारे अहंकार को तृप्ति की है। तुमने जिसे घृणा समझा वह वही थी जिसने तुम्हें मिटाना चाहा।
सदगुरु आता है एक उपहार ले कर जो बड़ा अनूठा है। ऐसा प्रेम ले कर आता है
जो तुम्हें घृणा जैसा मालूम पड़ेगा कि यह दुश्मन है। तुम्हें घृणा जैसा मालूम पड़ता है इसलिए उत्तर में तुम घृणा देना शुरू कर देते हो। यह तुम्हारी भ्रांति से पैदा होता है।
लेकिन क्षम्य हो तुम। कसूर है तो सदगुरु का ही है। ऐसी अनूठी चीज लानी नहीं चाहिए इसमें तुम्हारा क्या कसूर है तुम्हारे जीवन-जीवन का अनुभव जिसे प्रेम कहता है जिसे घृणा कहता है सदगुरु कुछ लाता है जो तुम्हारी परिभाषा में नहीं बैठता। उसे तुम प्रेम नहीं कह सकते।
यह कैसा प्रेम कि तुम्हें मिटाने चला कोई उसे तुम घृणा ही कह सकते हो।
और घृणा का उत्तर तुम्हारे जगत के सामान्य नियम में घृणा ही है।
जीसस को सूली ऐसे ही नहीं दे दी। आदमी को जीसस ने बहुत नाराज कर दिया। सूली तो सिर्फ इस बात की सूचना है कि जिन लोगों के बीच जीसस उतरे वे लोग समझ न पाए। वे इस जगत के थे इस भूमि के थे इस किनारे के थे। और जीसस कुछ उस किनारे की बात लाए जो उनकी भाषा में नहीं आती जो उनके अनुभव में मेल नहीं खाती। इसलिए तो जीसस ने मरते वक्त सूली पर कहा हे प्रभु इन सब को माफ कर देना क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।
ये क्षमायोग्य हैं। इन पर नाराज मत हो जाना। इन्हें दंड नहीं मिलना चाहिए। वे वही कर रहे हैं जो उनकी समझ के भीतर है। ये अपनी समझ से ठीक ही कर रहे हैं। अब इनकी समझ ही ठीक नहीं तो ये क्या करें ये अबोध है। अगर इनसे गलती भी हो रही है तो गलती अबोध की है। अदालत भी माफ कर देती है अबोध को। छोटा बच्चा दस साल का बच्चा अगर किसी की हत्या कर दे तो अदालत भी माफ कर देती है क्योंकि अभी अबोध है अभी बालिग नहीं। अभी इस पर जिम्मेवारी भी क्या डालनी
और आदमी बालिग कहां है आदमी की भीड़ अबोध है बच्चों जैसी है बचकानी है। समझ की एक भी किरण नहीं हैं।
तो जो सामान्य नियम है वह बिल्कुल सच है। तुम प्रेम दो प्रेम मिलेगा। तुम घृणा दो घृणा मिलेगी। लेकिन सदगुरु कुछ ऐसा प्रेम लाता है जो बिल्कुल अपरिचित है अनजाना है। दिखाई तो जहर जैसा पड़ता है और है अमृत। पियोगे तब जानोगे कि अमृत है। देखोगे तो लगेगा--जहर है। यही अड़चन है।
देखागे तो लगेगा यह आदमी हमें मिटाने चला यह आदमी हमें पोछने लगा। यह आदमी हमें खंडित कर रहा है। यह आदमी हमें तोड़ डालेगा। यह कहता है छोड़ो अहंकार। यह कहता है छोड़ो ईर्ष्या छोड़ो परिग्रह छोड़ो हिंसा छोड़ो आक्रमण। यह आदमी कहता है इतना ही नहीं छोड़ो विचार छोड़ो मन। अन्मन हो जाओ। यह कुछ ऐसी शिक्षा दे रहा है कि जिसमें तुम बचोगे ही नहीं।
तुम चौकते हो तुम घबड़ाते हो तुम अपनी रक्षा में लग जाते हो। तुम्हारी रक्षा में लगने से ही जीसस की फाँसी मन्सूर की सूली पैदा होती है। ये तुम्हारी रक्षा के उपाय हैं। सच पूछो तो तुम जीसस को मारना चाहते हो ऐसा नहीं। तुम सिर्फ अपने को बचाना चाहते हो।
और तुम्हें कुछ नहीं सूचता कि अगर यह आदमी मौजूद रहा तो हम अपने को कैसे बचायेंगे यह आदमी बलशाली है। इस आदमी में कुछ अपूर्व आकर्षण है जो खींचता है। कोई कशिश है इसे मिटा दो अन्यथा खतरा है कि कहीं अपने विपरीत भी तुम इसकी कशिश में न पड़ जाओ इसके आकर्षण से न खिंच जाओ।
तो तुम हजार तरह की लांछना करोगे निंदा करोगे आरोप लगाओगे। ये आरोप लांछना निंदा ये तुम्हारी आत्म-रक्षा के उपाय हैं। यह तुम अपने चारों तरफ एक दुर्ग बना रहे हो। तुम अपने पास एक व्यवस्था कर रहे हो ताकि मैं कभी इस आदमी के पास न जाऊँ। इसे समझना।

अगर यह आदमी अच्छा है तो फिर जाना पड़ेगा। अगर यह आदमी-यारा है तो फिर जाना पड़ेगा। अगर यह आदमी ईश्वरीय है तो फिर जाना पड़ेगा। और गए तो मिटना पड़ेगा। तो यह आदमी शैतान है। इसकी छाया न पड़े तुम पर।
मगर इसमें आकर्षण है। इसका आकर्षण खींच रहा है। इसका आकर्षण बुलावा
दे रहा है। अगर तुमने बहुत मजबूत चीन की दीवाल अपने चारों तरफ खड़ी न कर ली तो यह आकर्षण किसी अनजान क्षण में तुम को प्रभावित कर ले। किसी कोमल क्षण में तुम खिंच जाओ। कभी द्वार-झरोखा खुला हो और यह आदमी भीतर आ जायें तो फिर लौटने का कोई उपाय न रहेगा। इतके पहले सब तरह से ईंटें चुन दो अपने चारों तरफ। वे ईंटें तुम महावीर को गालियां देकर अपने आस-पास चुनते हो। इतनी गालियां दे डालते हो कि तुम्हारे भीतर फिर जगह ही नहीं रह जाती कि इस आदमी के पास जाने का भाव भी उठे।
इसके आकर्षण को खंडित करने के लिए तोड़ने के लिए तुम गालियों से इंतजाम करते हो। तुम झूठे लांछन लगाते हो। तुम निंदा फैलाते हो।
और तुम्हारे जैसे लोग बहुत है जो तुम्हें साथ देंगे। वे तुमसे यह भी न पूछेंगे क इस लांछन में सचाई कितनी है। वे तुमसे यह भी न पूछेंगे इस निंदा में सचाई कितनी है। वे तत्क्षण तुम्हारी निंदा को स्वीकार कर लेंगे। तुमने यह कभी देखा। अगर तुम प्रशंसा करो तो वे प्रमाण मांगते हैं। अगर तुम निंदा करो तो वे प्रमाण नहीं मांगते। निंदा के लिए तो वे तत्पर हैं हाथ पसारे पलक-पांवड़े बिछाए द्वार खोले अभिनंदन लिखे सुस्वागतम बांधे सदा तैयार हैं।
तुम निंदा करो वे स्वीकार करने को तैयार हैं। एक क्षण को भी संदेह न उठाएंगे। क्यों क्योंकि वे भी चाहते हैं--अपने को बचाना जैसे तुम अपने को बचाना चाहते हो।
निंदा बहुत घनी तुम्हारे आसपास अगर तुमने कर ली किसी के प्रति तो अब तुमने इंतजाम कर लिया। तुमने सेनाएं खड़ी कर लीं। तुमने पहरेदार बिठा दिए। अब तुम निश्चिंत अपने भीतर रह सकते हो। अब आदमी तुम्हारे लिए शैतान हो गया।
अगर आदमी शैतान नहीं है तो फिर कैसे अपने को रोकोगे तुम कैसे अपने को बचाओगे किसी कोमल क्षण में। और वे कोमल क्षण सभी को आते हैं। कठोर से कठोर आदमी को आते हैं। किसी भाव की दशा में। और भाव की दशा सभी को आती है निम्नतम आदमी को भी आती है। कभी-कभी मन आकाश में उड़ा-उड़ा होता है। कभी-कभी यह पृथ्वी बिल्कुल व्यर्थ मालूम पड़ती है कोई नये अर्थ की खोज शुरू होती है। कभी-कभी इस जीवन को देख कर लगता है मैं क्या कर रहा हूं सब असार है बेसुर व्यर्थ। तब कोई जीसस तुम्हें खींच लेगा। तब कोई बुद्ध तुम्हें बुला लेगा। तब तुम किसी सदगुरु के जाल में फंस जाओगे।
तुम्हारे भीतर ये भाव-क्षण आते हैं इन भाव-क्षणों को रोकने के लिए तुम्हें सब तरह की गालियां जीसस को देनी पड़ेगी। तुम्हें अपने तईं एक बात प्रमाणित कर लेनी होगी अपने को सब तरह से तर्कों से समझा लेना होगा कि यह आदमी गलत है भूल कर भी इसके पास मत जाना।
तो यह ख्याल रखो कि आदमी अपनी रक्षा में निंदा करता है। सुकरात को जहर देने के पहले जिस अदालत ने जहर की आज्ञा दी उस अदालत ने यह भी कहा। क्योंकि उन सब को लगता तो था भीतर से।
जीसस को सूली देते वक्त तुम सोचते हो जो लोग खड़े थे सूली देने उनके मन में कोई शंका-शुबहा कोई संदेह न उठा होगा प्रश्न न जगा होगा कि हम क्या कर रहे हैं। यह ठीक है यह उचित है इसमें कहां तक औचित्य है
सुकरात के साथ वही हुआ। जो आदमी न्यायाधीश था उसके मन में बड़ा भाव उठने लगा। क्योंकि यह आदमी अनूठा तो जरूर है भिन्न जरूर है अद्वितीय जरूर है। लेकिन इसकी भ्रांति भूल कहीं मालूम नहीं होती। अदालत में कुछ भी प्रमाणित नहीं हो सका है इसके खिलाफ। सिवाय एक बात के कि सारा एथेंस खिलाफ है। और कुछ प्रमाणित नहीं हुआ है। मगर अगर सभी लोग खिलाफ हैं जूरी खिलाफ हैं मेजिस्ट्रेट खिलाफ हैं सारे नगर के प्रतिष्ठित लोग खिलाफ हैं तो इसे सजा तो देनी ही होगी। न्यायाधीश रातभर सोचता रहा होगा। दूसरे दिन सुबह

उसने सुकरात को जा कर कहा अगर तुम एथेंस छोड़ कर चले जाओ तो मुझे तुम एक अपराध करने से बचा लो। एथेंस में रहोगे तो मौत निश्चित है। मुझे सजा देनी होगी। कोई तुम्हारे पक्ष में नहीं है। एथेंस छोड़ दो।
सुकरात ने कहा सत्य भगौड़ा नहीं होता। मौत आती हो तो मौत ठीक है। लेकिन मैं अपने प्राण बचाने के लिए कहीं भागूंगा नहीं। और प्राण कितने दिन बचेंगे--यह तो मुझे बताओ एक न एक दिन मरूंगा ही ऐसे भी बूढ़ा हो गया हूं। आज आए मौत कल आए मौत परसों मौत तो आने ही वाली है निश्चित ही है तो यह पलायन किस प्रयोजन से मैं तो कहीं जाऊंगा नहीं। जीवन हो तो ठीक जीवन। मौत हो तो मौत। यहीं रहूंगा।
मजिस्ट्रेट को बात समझ में आई कि मौत तो आनी ही है। बात तो सुकरात ठीक
ही कर रहा है। बात तो मौत सामने खड़ी है तो भी ठीक ही कह रहा है। उसने कहाः फिर तुम एक काम करो तुम यहीं रहो लेकिन एक वचन दे दो अदालत को कि तुम लोगों को समझाना बंद कर दोगे। चुप रहो। इतने लोग हैं आखिर गली-कूचे जा-जा कर लोगों को सत्य की शिक्षा देने की क्या जरूरत है अपने घर में रहो। तुम्हारी सत्य की शिक्षा ने ही तुम्हें झंझट में डाला है। लोग झूठे है और तुम्हारा सत्य उन्हें अखरता है। और तुम जिससे बात करते हो उसी को तुम देर-अबेर सिद्ध करवा देते हो कि वह झूठ है। वह झूठ उसे तिलमिला देता है। वह सिद्ध भी नहीं कर सकता कि सच है। तुम्हारी जैसी प्रतिमा नहीं मेधा नहीं। तुम्हारे जैसी क्षमता नहीं तुम्हारे जैसा अनुभव नहीं। वह सिद्ध नहीं कर सकता कि वह सच है। सिद्ध हो जाता है कि झूठ है। लेकिन उसके अहंकार को चोट लगती है वह बदला लेना चाहता हैं। ये ही सारे लोग इकट्ठे हो गए हैं तुम्हारे खिलाफ। और उनकी भीड़ है। उनका बहुमत है। मैं कुछ भी न कर सकूँगा। तो तुम कसम खा लो कल अदालत में कि तुम अब सत्य का प्रचार करना बंद कर दोगे।
सुकरात ने कहा फिर जी कर ही क्या करूंगा फिर जीने से सार क्या क्योंकि मेरे जीने का एक ही अर्थ है कि जो मैने जाना है उसे जना दूं। मेरे जीवन का कुल एक ही प्रयोजन है कि जिनकी आंखें अंधेरे से भरी हैं उनमें थोड़ी सी रोखनी चमका दूं। अगर वही काम मैं नहीं कर सकता हूँ तो फिर मर जाना ही बेहतर है। फिर जीने में कोई सार नहीं। और सुकरात ने कहा मेरे मरने से शायद कुछ लोगों की सूझ आए कुछ को समझ आए। जो जिंदा हालत में मेरे करीब न आ सके शायद मर जाने के बाद मेरे करीब आएं। शायद जो जिंदा हालत में मुझ से न समझ सके क्योंकि उनको बड़ी बेचैनी होती थी सामने आने में मेरे मर जाने के बाद शायद मेरी मृत्यु ही उनमें जिज्ञासा जगा दे। तो तुम मुझे फांसी दो चिंता न करो। लेकिन सुकरात के मन में कोई निंदा नहीं है क्षमा का भाव है।
सुकरात को बात साफ-साफ है कि क्यों लोग नाराज हैं। अहंकार को चोट लगती
है तो लोग नाराज न होंगे तो क्या होंगे और सदगुरु का सारा काम इस पर है कि तुम्हारे अहंकार को चोट दे। इसलिए जो नियम सामान्य है वह नियम सदगुरु पर लागू नहीं होता।
तुमने पूछा हैः आप अक्सर कहते हैं कि जगत एक प्रतिध्वनि बिंदु है जहां से हमारे पास वही सब लौट आता है जो हम उसे देते हैं। प्रेम को प्रेम मिलता है, घृणा को घृणा। यदि ऐसा ही है तो क्यों बुद्ध और महावीर को यातनाएं दी गईं? क्यों ईसा और मंसूर की हत्या की गई? और क्यों यहां निंदा और गालियां मिल रही हैं? ये सब अच्छे संकेत हैं?
ये गालियां, लांछन, ये सब इस बात की खबरें हैं कि खबर लोगों तक पहुंचने लगी। ये इस बात की खबरें हैं कि लोग तिलमिलाने लगे। ये इस बात की खबरें हैं कि लोगों ने सोचना शुरू कर दिया। ये सूचक हैं कि लोग रक्षा का उपाय करने लगे। लोग रक्षा का उपाय ही तब करते हैं जब भयभीत हो जाते हैं नहीं तो नहीं करते।
मुझे जितनी गालियां पड़ेंगी जितने लांछन इतनी झूठी बातें फैलाई जाएंगी उतनी ही खुशी होगी क्योंकि उतना ही काम तबसे बड़ा खतरा तो यह होगा कि लोग उपेक्षा कर जाएं। तो फिर जो मैं तुमसे कहना चाहता हूँ जो करना चाहता हूं वह न हो सकेगा।

या तो तुम मुझ से प्रेम करो तो कुछ हो सकता है। या मुझ से घृणा करो तो कुछ ही सकता है। अगर उपेक्षा की तो कुछ भी न हो सकेगा। क्योंकि घृणा भी एक तरह का संबंध है। प्रेम से विपरीत है माना मगर है तो संबंध।
तुमसे अक्सर देखा होगा प्रेम घृणा में बदल जाता है। घृणा प्रेम में बदल जाती है। वे एक दूसरे से विपरीत होते हुए भी एक दूसरे के बहुत करीब हैं।
किसी को शत्रु बनाना हो तो पहले मित्र बनाना पड़ता है। बिना मित्रता
के शत्रुता पैदा नहीं हो सकती। फिर जो तुम्हारा शत्रु है उससे तुम्हारा संबंध तो बन ही गया--विरोध का संबंध बना। लेकिन संबंध तो संबंध है। नाता तो जुड़ ही गया।
जिस आदमी ने मुझे गालियां देनी शुरू कर दीं वह मुझ में उत्सुक तो हो
ही गया। आज नहीं कल देर-अबेर सुबह नहीं सांझ कभी गालियां देते-देते शायद उसे ख्याल भी आएगा कि इन गालियों में कितनी सचाई है गालियां देते-देते उसे यह भी तो ख्याल आएगा कि मैं यह गालियां क्यों दे रहा हूं इस आदमी ने मेरा कुछ बिगाड़ा नहीं। शायद इस आदमी को कभी मैंने देखा भी नहीं मिला भी नहीं। कोई संबंध पहचान भी नहीं।
झूठ झूठ ही है तुम कितनी ही कुशलता से बोलो तुम चाहे दूसरे को धोखे में भी डाल दो पर अपने को कैसे धोखे में डालोगे और कभी कभी ऐसा होता है कि ज्यादा गाली दे दी ज्यादा झूठ फैला दिया जो कि स्वाभाविक है।
हर चीज बढ़ती है। अगर तुमने झूठ बोलना शुरू किया तो झूठ बढ़ता जाता है।
एक सीमा पर जा कर अति हो जाती है। तुम्हीं इतने झूठ बोल जाते हो कि फिर तुम्हें ही शक होने लगता है कि मैं क्या कर रहा हूं यह बात इतने दूर तक सच भी हो सकती है और जब तुम किसी के खिलाफ बहुत झूठ बोल चुकते हो और बहुत निंदा कर चुकते हो तो तुम्हारे मन में उसके प्रति दया का भाव भी पैदा होता है। ये ब.ड़ी स्वाभाविक प्रक्रियाएं हैं। तुम्हारे मन में उसके प्रति थोड़ी दया भी आनी शुरू होती है कि अरे बेचारा उसी दया से रूपांतरण शुरू होगा। घृणा प्रेम में बदल सकती है। असली खतरा तो उनके लिए है जो उपेक्षा कर जाते हैं। न जिन्हें घृणा है, न कोई प्रेम है, जो कहते हैं हमें कुछ लेना-देना नहीं है। ये निरुत्सुक व्यक्ति न तो जीसस से कभी जुड़ पाएंगे न बुद्ध से न सुकरात से न मुझसे।
जो प्रेम से मुझ से जुड़ गया है वह तो बहुत करीब आ गया है। वह तो इस अमृत
का पूरा लाभ उठा लेगा। जो घृणा से जुड़ गया है उसने भी कुछ कदम तो उठाए। आज घृणा है कल प्रेम हो जाएगा। घृणा से जुड़ गया अर्थात मुझ से बचने की रक्षा करने लगा। मुझसे बचने की रक्षा करने लगा अर्थात उसे डर तो भीतर पैदा हो गया है कि यह आदमी मुझे खींच ले सकता है इससे बचना चाहिए। अब कशमकश होगी। संभावना के बीज पड़ गए।
इसलिए मैं प्रसन्न हूं। जितनी निंदा हो जितनी गालियां दी जाए जितने लांछन किए जाएं जितनी अतिशयोक्ति की जाएं उतना शुभ है उतने ज्यादा लोगों तक खबर पहुंचेगी।
कुछ लोग तो मेरे पास निंदा सुन कर ही आ जाते हैं कि चलो देखें भी। जिस आदमी को इतनी गालियां दी जा रही हैं मामला क्या है इस बहाने ही आ जाते हैं। आ कर रूपांतरित हो जाते हैं। आ कर प्रेम में पड़ जाते हैं। आ कर जिंदगी में क्रांति घट जाती है। इन लोगों को भी धन्यवाद देना चाहिए उनको जिन्होंने गालियां दी अन्यथा वे न आ पाते।
तुम पूछते हो कि बुद्ध महावीर को यातनाएं दी गईं, क्यों?
तो पहली तो बात बुद्ध महावीर ने नहीं समझा ऐसा कि यह यातना है तुम्हारी तरफ से तुम्हें लगता है कि यातनाएं दी गई। बुद्ध और महावीर की तरफ से भी देखो। वहां से कुछ यातना का प्रश्न नहीं है। बुद्ध और महावीर जिस चैतन्य की दशा में जीते हैं वहां कैसी यातना वहां अगर तुम बुद्ध के शरीर को पत्थरों से बिछा देते हो तो भी बुद्ध को जरा भी चोट नहीं लगती। शरीर टूट जाए लहूलुहान हो जाए बुद्ध को चोट नहीं लगती। क्योंकि बुद्ध का बुद्धत्व ही यही है कि शरीर नहीं हूं।

जीसस को तुम सूली पर लटका देते हो। जीसस को सूली नहीं लगती। क्योंकि जीसस का जीसस होना ही यही है कि मैं अमृतधर्मा हूं अमृतस्य पुत्रा--जैसा वेद के ऋषि कहते हैं।
मंसूर के जब हाथ-पैर काटे गए तो मंसूर खिल-खिला कर हंसा। भीड़ जो खड़ी थी
वह भी चौक गई। भीड़ में से किसी ने पूछा कि मंसूर क्या तुम पागल हो हाथ-पैर काटे जा रहे हैं और तुम हंस रहे हो?
तो मंसूर ने कहाः हंसूं न तो क्या करूं, क्योंकि तुम सोच रहे हो तुम मेरे हाथ-पैर काट रहे हो। तुम मुझे छू भी नहीं पा रहे हो। जिस शरीर को तुम काट रहे हो उस शरीर को तो समय हुआ मैं छोड़ चुका। जिस घर को तुम गिरा रहे हो उसमें मंसूर कितने वर्षों से रहा ही नहीं। और तुम सोच रहे हो कि तुम मंसूर को गिरा रहे हो हँसू न तो क्या करूं तुम्हारी ना-समझी पर बड़ी हंसी आती है। और उसके चेहरे पर ऐसे आनंद का भाव था मरते वक्त कि उसका गुरु मंसूर का गुरु भी भीड़ में खड़ा था जुन्नैद। जुन्नैद ने पूछा कि मंसूर तेरे चेहरे पर ऐसे आनंद का भाव कारण तो मंसूर ने कहा यही कि मैं ईश्वर से कह रहा हूं कि तू किसी भी शकल में आ तू मुझे धोखा न दे सकेगा। मैं तुझे पहचान ही लूंगा। आज तू हत्यारे की शकल में आया है मगर तू मुझे धोखा न दे सकेगा। मैं तुझे पहचान ही लूंगा। जब पहचान हो गई तो हो गई। तू किसी भी शकल में आ तुझे पहचान लूंगा। यह तू मेरी आखिरी परीक्षा ले रहा है कि देखें मंसूर पहचान पाता है कि नहीं
फूल में तो पहचान लिया था मंसूर ने गुलाब का फूल खिला था। पक्षियों के गीत में पहचान लिया था बड़े प्यारे थे गीत। आकाश में घूमते हुए शुभ्र बादलों में पहचान लिया था बड़े अनूठे थे बादल। सूरज की किरणों में पहचान लिया था। चांद-तारों में पहचान लिया था। सागर की लहरों में पहचान लिया था। बच्चों की किलकारी में पहचान लिया था। यह तो ठीक था। यह तो प्रभु का सौम्य रूप था। यह रुद्र रूप स्वयं मंसूर को मिटाने ख.ड़ा है प्रभु। इसमें पहचानता है या नहीं तांडव रूप इसमें पहचानता है या नहीं
मंसूर कहता है कि मैं तुझे इसमें भी पहचानता हूं। तू मुझे धोखा न दे सकेगा। तू किसी शकल में आ मैं तुझे पहचान ही लूंगा। क्योंकि मैं तुझे पहचान चुका हूं।
तो पहली तो बात, बुद्ध महावीर मंसूर जीसस सुकरात को कोई यातना नहीं मिली। तुमने दी जरूर। लेकिन तुम्हारे देने से क्या होता है लेने वालों ने ली ही नहीं।
तुम मुझे गाली दे जाओ। तुम्हारी गाली मुझ तक नहीं पहुंचती तब तक जब तक मैं न लूं। तुमने दी तुम्हारी मरजी तुम अपने मालिक हो। तुम अपने होंठों से गाली बनाओ इसका तुम्हें हक है। लेकिन मैं उसे लूं या न लूं अपने हृदय में रखूं या न रखूं इसकी मालकियत मेरी है। मैं तुमसे कह सकता हूं धन्यवाद नहीं लेते। तब तुम्हें अपनी गाली वापस ले जानी पड़ेगी। तब तुम्हारी गाली तुम्हीं पर वापस गिर जाएगी। तब तुम्हीं अपनी गाली के वजन में दब जाओगे। तब तुम्हीं को यह बोझ ढोना पड़ेगा।
तो यातना लोगों ने दी जरूर मगर उन्हें मिली नहीं।
और अंतिम बात उन्होंने इस यातना को भी आनंद में परिणत किया। यह तो कला
है कीमिया है। सदगुरु की सारी कला यही है कि वह जहर को अमृत बना ले वह रात को दिन बना ले अँधेरे को रोशनी बना ले मृत्यु को जीवन बना ले शून्य को पूर्ण बना ले यही तो उसकी सारी कला है।
सदगुरु का अर्थ क्या है?
बढ़ती चली गई उमर हर एक घूंट पर।
हमने पिया है विष भी इतनी कमाल से।।
वह इतने कमाल से जहर को भी पीए कि जहर भी जीवन को बढ़ाने वाला हो जीवन
का सहयोगी हो जाए।
और तुम्हारी यातना देने से कुछ नुकसान नहीं हुआ। जीसस को तुमने सूली
न दी होती तो दुनिया जीसस को कभी का भूल गई होती। सूली की वजह से याद रखना पड़ा। जीसस को दी गई सूली।

आदमियत की छाती में सूली की तरह चुभ गई जीसस को भूलना मुश्किल हो गया। कैसे भूलोगे ये तुम्हारे हाथ खून से सने हैं। इन्हें धोने का कोई उपाय नहीं है। इन पर जीसस का खून है।
जिन लोगों ने जीसस को सूली दी उन्होंने मनुष्य-जाति के इतिहास में एक क्रांति खड़ी कर दी। देखते हो जीसस के नाम से हम तौलते हैं समय को जीसस पूर्व और जीसस-पश्चात्त। जीसस समय को दो हिस्सों में तोड़ देते हैं। जीसस के पहले की बात और जीसस के बाद की बात अलग हो जाती है इतिहास दो हिस्सों में टूट जाता हैं
इस बढ़ई के बेटे में ऐसा कुछ भी न था जिसकी वजह से इतिहास दो हिस्सों में टूटता। इससे बड़े-बड़े ज्ञानी हुए थे मगर इतिहास दों हिस्सों में नहीं टूटा किसी से। आज आधी दुनिया ईसाई है।
काश महावीर को भी तुमने सूली दी होती तो कहानी दूसरी होती। फिर महावीर को भूलना मुश्किल हो जाता। फिर महावीर की याददाश्त तुम्हारा पीछा करती तुम्हारे चारों तरफ डोलती। इतना जघन्य अपराध करने के बाद तुम कैसे अपने को क्षमा कर पाते
जीसस के चरणों में इतने अधिक लोग क्यों झुके तुमने कभी सोचा इसलिए झुके कि अपराध-भाव पैदा हुआ सूली दी इस आदमी को
ऐसे प्यारे आदमी को सूली दी तो कुछ करना होगा। हाथ पर लगे लहू के दाग धोने होंगे। वस्त्रों पर पड़ गए खून के छीटें साफ करने होंगे। झुकना पड़ेगा इस आदमी के चरणों में।
जीसस को दी गई सूली जीसस को यातना नहीं थी पहली बात। और जीसस के काम को पूरा करने में सहयोगी बनी--दूसरी बात। तुमने किसी मरजी से क्या लेना-देना है
जीसस जैसे लोग जहर को भी इस कमाल से पीते हैं कि अमृत बन जाए। सूली मंदिर बन गई। सूली सिंहासन बन गई। जीसस विराजमान हो गए जिस सिंहासन पर उस पर कोई दूसरा विराजमान नहीं हो सका है। और तुमने ही अपने हाथों भूल कर ली। असल में तुम जो भी करोगे भूल ही करोगे।
जीसस का इतना क्रांतिकारी प्रभाव मनुष्य-जाति पर पड़ा।
मुसलमानों ने मंसूर को सूली दे दी और उसी सूली के साथ। बड़े सूफी हुए हैं मुसलमानों में बड़ी ऊंचाई के लोग हुए सब फीके पड़ गए। मंसूर का नाम उभर कर आ गया। मंसूर अलग चमकने लगा आकाश पर। मोहम्मद के बाद अगर किसी का नाम दुनिया जानती है तो मंसूर का। खड़े फकीर हुए बड़े पहुंचे हुए सिद्ध पुरुष हुए लेकिन खो गए।
तुम्हारी सूली ने मंसूर को बचा लिया। तुम्हारी सूली ने लोगों की आंखों में मंसूर को गहरा बिठा दिया लोगों के हृदयों में पहुंचा दिया। मंसूर की आवाज भी अर्थ रखती है। औरों के तो नाम भी खो गए।
तो ऐसी भी कथा है कि जीसस ने खुद अपनी सूली का इंतजाम करवाया। यह कभा महत्वपूर्ण है सिर्फ इसलिए कि जीसस जो संदेश दुनिया को दे जाना चाहते हैं वह सूली के साथ सीलबंद हो जाए। जो संदेश दुनिया को छोड़ जाना चाहते हैं उस पर सील-मोहर लग जाए वह सदा के लिए टिके ऐसा इंतजाम कर जाएं।
तो ऐसी कहानी है फकीरों में कि जीसस ने अपनी सूली का इंतजाम खुद ही करवाया। और जुदास ने जीसस को धोखा नहीं दिया था केवल जीसस की आज्ञा का पालन किया था। उसने जीसस को दुश्मनों के हाथों में दे दिया।
ऐसा भी एक सूत्र है जो कहता है कि जुदास ने जीसस को धोखा नहीं दिया है। जीसस ने जुदास की आखिरी परीक्षा ली समर्पण की कि जीसस ने जुदास को कहा कि आज रात तू दुश्मनों को खबर कर दे कि मैं कहां हूं और मुझे पकड़ा दे अगर तूने सब मुझ पर छोड़ दिया है समर्पण तेरा पूरा है तो तू यह भी करेगा।
गुरु अगर शिष्य से कहे कि मेरी गर्दन उतार दे अगर तेरा समर्पण पूरा है
तो तू यह भी करेगा। अगर तू ना-नुच करे तू कहे यह मैं कैसे कर सकता हूं तो फिर तू अभी शेष है।
जिस रात जीसस ने ऐसा जुदास को कहा होगा जुदास पर क्या गुजरी होगी।
अपने गुरु को दुश्मनों के हाथ में दे दे। बड़ा डांवाडोल हुआ होगा सोचा-

विचारा होगा। लेकिन अंतत पाया होगा कि जब गुरु कहता है तो चाहे यह कितना ही कष्टपूर्ण हो लेकिन करना होगा।
जुदास ने जीसस को दुश्मनों के हाथ में दे दिया।
और तुम्हें पता है ईसाइयों ने जुदास की कथा नहीं लिखी ज्यादा क्योंकि उन्होंने तो एक बात मान ही ली--ऊपर-ऊपर से बात मान ली कि जुदास धोखा दे गया। इसलिए पश्चिम के मुल्कों में जुदास शब्द धोखेबाज और गद्दार का प्रतीक हो गया। उसका अर्थ ही गद्दार हो गया। लेकिन जुदास की कथा खोजने जैसी है।
जिस दिन जीसस को सूली लगी दूसरे दिन जुदास ने फाँसी लगाकर आत्महत्या
कर ली। खोजने जैसी बात है कि क्या हुआ जुदास ने क्यों। अगर उसने धोखा ही दिया था अगर उसने गद्दारी ही की थी तब तो वह प्रसन्न होता। लेकिन उसने आत्मघात क्यों कर लिया संभावना है इस बात की कि उसने केवल गुरु की आज्ञा का पालन किया था--और अपने खिलाफ पालन किया था। और जीसस को सूली पर लटके देख कर उसने सोचा होगा अब मेरे लिए क्या बचा। उसने अपने को मार डाला हो।
इस बात की बहुत संभावना है कि जीसस ने खुद आयोजन किया हो। न भी किया हो खुद आयोजन तो भी इस आयोजन से प्रसन्न तो हुए ही होंगे। इससे काम फैलेगा संदेश टिकेगा हजारों-हजारों वर्ष तक। यह बात लोगों के कान में गूंजती रहेगी।
मौत किसी भी चीज के साथ जुड़ जाए तो महत्त्वपूर्ण हो जाती है बात क्योंकि मौत के पार फिर कुछ भी नहीं मौत आखिरी है और जिस चीज के साथ मौत जुड़ जाए वह भी आखिरी हो जाती है।
तो न तो सदगुरुओं ने समझा है कि उनको यातना मिली न उन्होंने यह समझा
है कि कुछ बुरा हुआ न वे नाराज हैं। मगर सामान्य नियम का अतिक्रमण जरूर सदगुरु के जीवन में होता है।
"सभी सदगुरुओं ने कहा है कि प्रेम दो और प्रेम मिलगा घृणा दो और घृणा मिलेगी। और फिर भी सभी सदगुरुओं को घृणा मिली है। तो यह सूत्र समझ लेना। सदगुरु इस जगत के नियम के बाहर है इस जगत के बाहर है। वह यहां एक नये ढंग के प्रेम को लाता है। वह प्रेम नहीं जो तुम्हारे अहंकार को फुसलाता है। वह प्रेम नहीं जो तुम्हारी बीमारी और तुम्हारे घावों को भी सजाता है। वह प्रेम नहीं जो तुम्हें बदलता ही नहीं तुम जैसे हो वैसा ही तुम्हें रखता है। वह प्रेम नही जो तुम्हें और अंधेरे गड्ढों में गिराता है। बल्कि यह प्रेम जो तुम्हें निखारता है तुम्हारे हृदय में चुभे काँटे को निकालता है। पीड़ा भी होती है तो तुम नाराज भी होते हो। और अंतत अहंकार के कांटे को भी निकाल लेता है। और बड़ी भयंकर पीड़ा से तुम्हें गुजरना होता है। क्योंकि वह मृत्यु की पीड़ा है--असली मृत्यु की।
जिसको तुम मृत्यु कहते हो वह तो छोटी मृत्यु है क्योंकि शरीर ही मरता
है अहंकार जिंदा रहता है फिर पैदा होता है। गुरु के सानिध्य में जो मृत्यु घटती है वह महामृत्यु है क्योंकि फिर तुम्हारे पैदा होने का ही उपाय समाप्त हो गया। फिर तुम्हारा आवागमन न होगा। तुम्हारा अहंकार इस तरह खींच लिया गया है कि आने का सेतु ही टूट गया। फिर तुम इस दुनिया में वापस न लौट सकोगे।
तो जो गुरु तुम्हारे साथ इतना बड़ा आपरेशन करे उससे अगर कभी-कभार तुम नाराज हो जाओ क्रोधित हो जाओ भागो स्वाभाविक है।
तुमने देखा बच्चे के पैर में कांटा गड़ा हो और मां कांटे को निकालना चाहे तो बच्चा चिल्लाता है नाराज होता है मां को मारता है क्योंकि कांटा निकालने में दर्द देता है। और बच्चे को अभी इतनी समझ कहां कि अगर कांटा ज्यादा देर पैर में रह गया तो नासूर बनेगा बीमारी बढ़ जाएगी। इसे निकालना ही होगा। और निकालने में जो पीड़ा होती है वह तो क्षणभर की है फिर सुख ही सुख है। मगर वह पीड़ा तो है।
बच्चे को फोड़ा हुआ हो मवाद भर गई हो और मां उसके मवाद को निकालती है तो बच्चा चीख मारता है रोता-चिल्लाता है। यह मां सदा के लिए दुश्मन मालूम होती है कि इससे कभी ठीक काम नहीं होता। जो भी करेगी परेशान करने का कष्ट देने का काम करेगी।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि कोई बच्चा अपनी मां को माफ नहीं कर पाता। कैसे करे माफ इतनी तकलीफें उसने दी हैं।
सुरजिएफ तो कहता था जब तक तुम अपने मां-बाप को माफ न कर सको मेरे पास आना ही मत। पहले तुम अपने मां-बाप को माफ करो। क्यों उसने अपने दरवाजे पर लिख रखा था कि अगर अपने मां-बाप को माफ ने किया हो तो मेरा दरवाजा तुम्हारे लिए बंद है। क्यों मां-बाप को माफ करने का क्या संबंध तुमने कभी सोचा भी नहीं होगा।
सारी संस्कृतियां सारे समाज लोगों को समझाते है मां-बाप का आदर करो। क्यों क्योंकि ऐसा न समझाया जाए तो बच्चे मां-बाप की हत्या कर देंगे। डर है। स्वभावत जीवन की प्रक्रिया ऐसी है कि मां-बाप को बच्चे को हजार बार नाराज करना होता है। बच्चा सांप से खेलना चाहता है और मां को उसे खींचता होता है। बच्चा आग की तरफ जाना चाहता है और माँ को उसे रोकना होता है। हजार मौके आते है जब बच्चे को इनकार करना इनकार करना इनकार करना बच्चे को बार-बार लगता है कि किन दुश्मनों क हाथ में पड़ गया हूँ। जो भी करना चाहता हूं वही गलत है हर चीज गलत है मेरे मन की किसी भी भावना का कोई सम्मान नहीं। अपमान ही अपमान है।
छोटा बच्चा सोचने लगता है कि ठहरो मुझे बड़ा होने दो। मैं तुम्हें मजा चखाऊंगा। जब मेरे हाथ में ताकत होगी तब मैं तुम्हें बताऊंगा।
और यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जब मां-बाप बूढ़े हो जाते है और बेटे
के हाथ में ताकत होती है तो बेटे अकसर माँ-बाप को सताते हैं। यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है यह बचपन का बदला है अनजाना है।
और इसलिए सारे समाज समझाते है कि मां-बाप का आदर करो। अगर न समझओ तो खतरा होगा। तो इस बात को खूब-खूब बिठालना पड़ता है कि आदर करो। मां-बाप का आदर जगत में सबसे बड़ी बात है। उनके चरण छुओ। यह विपरीत बात बिठालनी प.ड़ती है क्योंकि खतरा भीतर छिपा बैठा है। अगर उसके विपरीत कुछ आयोजन न किया गया तो कठिनाई हो जाएगी।
पश्चिम के मुल्कों में चूंकि आदर का इतना आयोजन नहीं है इसलिए बच्चों में और उनके मां-बाप में कभी अच्छे संबंध नहीं रह पाते। क्योंकि आदर का कोई बहुत इंतजाम नहीं किया गया। बीमारी तो मौजूद है और औषधि बिल्कुल नहीं है।
गुरजिएफ ठीक कहता था। वह कहता था पहले अपने मां-बाप को माफ करो। क्योंकि अगर तुम उन्हीं को माफ नहीं कर पाए और उन्होंने तुम्हारी जिंदगी की छोटी-मोटी तकलीफ तुम्हें दी है तो तुम मुझे कैसे माफ करोगे। क्योंकि मैं जिंदगी को आखिरी तकलीफें तुम्हें देने जा रहा हूँ। तुम पहले मां-बाप को माफ करके आओ।
सबूत दो कि अब तुम्हारे मन में मां-बाप के प्रति कोई विरोध नहीं है। तुमने समझ ली बात कि उनकी मजबूरी थी। वे तुम्हारे हित के लिए ही तुम्हें पीड़ा देते थे। कभी कांटा निकाला था कभी घाव दबा कर मवाद निकाली थी। कभी जबरदस्ती रात सोने को कहा था। कभी सुबह जबरदस्ती नींद से उठाया था। वह सब मजबूरी थी। कभी भोजन तुम करना चाहते थे नहीं करने दिया था। कभी मिठाई खाना चाहते थे और मिठाई छीन ली थी। कभी तुम स्वादिष्ट भोजन करने के दीवाने थे और तुम्हें केवल शाक-सब्जी दी थी। वह सारी की सारी बातें इकट्ठी तुम्हारे भीतर पड़ी हैं। वे छोटे-मोटे काम थे।
गुरुजिएफ ठीक कहता है कि मैं तुम्हारी जिंदगी में आखिरी खतरा लाऊंगा। तुम्हारे अहंकार को छीन लूंगा। अगर तुम मां-बाप को माफ न कर सके तो तुम मुझे कैसे माफ करोगे
इसलिए पूरब में हम कहते है कि मां-बाप का ऋण तो चुकाया भी जा सकता है गुरु का ऋण कैसे चुकाओगे क्योंकि मां-बाप का ऋण छोटा-मोटा है गुरु का ऋण तो चुकाने का कोई भी उपाय नहीं है।
गुरु तुम्हारे जीवन में अमृत की वर्षा लाता है। लेकिन उसके पहले तैयारी करनी होती है। घास-पात उखाड़ना होता है। कंकड़-पत्थर हटाने होते है। भूमि तैयार करनी होती है। उस भूमि के तैयार करने में जो कष्ट होते हैं

उससे लोग नाराज होते हैं। और जो लोग उस कष्ट से गुजरने से डरते हैं वे दूर ही रह कर निंदा लांछन और न मालूम कितने उपायों में उलझ जाते हैं। वे बचाव कर हेर हैं कि इस आदमी के पास हमें न जाना पड़े।
अंतिम बात और क्या आप जैसां से भी बढ़ कर निश्चल प्रेम और आशीष देने वाले लोग इस जगत को मिल सकते हैं
जब भी इस जगत को कोई आशीष देगा तो यह जगत नाराज होगा। जब भी इस जगत को कोई करुणा देगा यह जगत नाराज होगा। जब भी इस जगत में कोई रूपांतरण लाने वाला प्रेम लाएगा क्रांति करने वाला प्रेम लाएगा यह जगत नाराज होगा।
और फिर तुम्हें याद दिला दूं यह स्वाभाविक है। इसलिए सदगुरुओं का उपयोग बहुत थोड़े से लोग कर पाते हैं थोड़े से हिम्मतवर लोग। भीड़-भाड़ उनका उपयोग नहीं कर पाती। बहुत थोड़े से लोग ही सदगुरु की कीमिया से गुजरते हैं रूपांतरित होते हैं। वे थोड़े से चुने हुए लोग ही पृथ्वी के नमक हैं उन्हीं के कारण पृथ्वी में थोड़ी शोभा है। थोड़े फूल खिलते हैं थोड़ी सुवास उठती है।

दूसरा प्रश्नः क्या सतत साक्षीभाव के द्वारा और बिना ध्यान के परम स्थिति को उपलब्ध नहीं हुआ जा सकता है और जब सिर्फ साक्षीभाव रह जाए तो उससे भी कैसे मुक्त हुआ जाए?

पूछते होः क्या सतत साक्षीभाव द्वारा और बिना ध्यान के परम स्थिति को उपलब्ध नहीं हुआ जा सकता है साक्षीभाव ही तो ध्यान है। ध्यान और साक्षीभाव दो नहीं हैं। ध्यान की सारी प्रक्रियाएं साक्षीभाव में ही ले जाने वाले द्वार हैं।
ध्यान के दो अंग समझ लो वहीं कहीं भूल हो रही है।
ध्यान का जो पहला अंग है ध्यान तो है ही नहीं। वह तो नाममात्र को ध्यान है। वह तो सिर्फ तैयारी है ध्यान की।
जैसा मैंने अभी तुमसे कहा कि कोई माली बगीचा बना रहा है। तुमने देखा उसे। वह घास-पात उखाड़ रहा है पत्थर हटा रहा है जमीन खोद रहा है। खाद ला रहा है। जमीन साफ-सुथरी पड़ी है एक पौधा नहीं बचा। एक पौधा नहीं है वहां। और तुम उससे पूछते हो कि क्या कर रहे हो तो माली कहता है कि बगीचा लगा रहा हूँ। तुम कहोगे यह कैसा बगीचा एक पौधा दिखाई नहीं पड़ता बल्कि पहले कुछ थे घास-पात उगा हुआ था वह भी तुमने निकाल दिया। यह कैसा बगीचा लगा रहे हो तो वह कहेगा यह बगीचा लगाने की तैयारी है। अभी बगीचा लगा नहीं। अभी बगीचा लग सके इसमें जो-जो बाधाएं हैं वह अलग कर रहा हूं। मगर बाधाएं अलग करना भी है तो प्रक्रिया का अंग।
ध्यान की जो भी प्रक्रियाएं हैं वह सिर्फ बाधा को अलग करना है जैसे ही बाधा अलग हो गई भूमि तैयार हो गई फिर तो साक्षीभाव ही ध्यान है साक्षीभाव ही वास्तविक ध्यान है।
जैसे तुम सक्रिय ध्यान करते हो। श्वास के द्वारा तुम शरीर की ऊर्जा
को जगाते हो। श्वास के आघात-प्रत्याघात से तुम शरीर में पड़ी हुई ऊर्जा की परतों को सक्रिय करते हो। श्वास के आंदोलन से तुम्हारे शरीर में जो जड़ता छा गई है और शक्ति के प्रवाह अवरुद्ध हो गए हैं उनको तुम तोड़ते हो--अवरोधों को ताकि तुम्हारा पूरा शरीर ऊर्जा की एक ज्वलन्त लपट बन जाए।
जब यह ऊर्जा की लपट घनी बन जाती है तुम्हारे भीतर तो दूसरे चरण में तुम रेचन करते हो। क्योंकि जैसे ही ऊर्जा प्रवाहित होनी शुरू होती है जो- जो ऊर्जा के बीच में बाधा बन रहा है उसे फेंकने की जरूरत आ जाती है उसे अपने से बाहर फेंकना जरूरी है तो रेचन करते हो।
रेचन घास-पात उखाड़ना है। ऊर्जा जगी--रेचन हुआ। फिर तुम हू मंत्र का उच्चार शुरू करते हो। अब शरीर तैयार है शरीर की बाधाएं हट गईं अब मन पर चोट की जा सकती है। अब मन सोया है उसको भी सक्रिय किया जा सकता है। हू ध्वनि के द्वारा या ओम ध्वनि के द्वारा या कोई भी ध्वनि का उपयोग किया जा सकता है। तुम अपने भीतर ध्वनि तरंगें पैदा करते हो। क्योंकि मन ध्वनि का ही एक रूप

है। विचार ध्वनि का ही एक रूप है। ध्वनि की तरंगों से तुम विचारों को फेंकते हो मन को सक्रिय करते हो।
फिर चौथे चरण में तुम शांत मूर्तिवत खड़े रह जाते हो। तीन चरण केवल तैयारी थे चौथे चरण में तुम साक्षीमात्र रह जाते हो।
पहला चरण शरीर पर चोट करता था। दूसरा चरण शरीर और मन के बीच जो बाधाएं
थी उस पर चोट करता था। तीसरा चरण मन पर चोट करता था। चौथे चरण में तुम अपने घर आ गए। सिर्फ आत्मा है सिर्फ बोध है सिर्फ साक्षी हो।
ये चार चरण ध्यान के है और पांचवां चरण तो उत्सव है। वह तो साक्षी क्षण भर को जगा जरा सी देर को झरोखा खुला दूर आकाश दिखा बादल दिखा चांद-तारे दिखे जरा क्षणभर को सौंदर्य की वर्षा हुई तो उसके लिए तो धन्यवाद दोगे न
तो पांचवां चरण तो कोई चरण नहीं है केवल धन्यवाद है केवल अनुग्रह का भाव है अभिनंदन है कि हे प्रभु तेरी कृपा अपार है।
लेकिन इन सारी प्रक्रियाओं के बीच जो ध्यान का मौलिक अर्थ है वह साक्षी है।
और तुम पूछते हो क्या साक्षीभाव के द्वारा और विना ध्यान के। तुम ध्यान से डरे मालूम पड़ते हो। तुम यह कह रहे हो कि क्या बगीचा लगाया जा सकता है--विना घास-पात उखाड़े मुझे कुछ अड़चन नहीं है। लगाओ। लेकिन तुम्हारे गुलाब कभी बहुत बड़े न हो पायेंगे घास-पात उन्हें खा जाएगा। तुम्हारे गुलाबों में फूल बड़े छोटे आयेंगे बड़े गरीब फूल होंगे बड़े दीन फूल होंगे। और जल्दी ही नष्ट हो जायेंगे। क्योंकि घास-पात की बढ़ने की क्षमता अपार है। असत्य बड़ा उत्पादक है। और जहां असत्य की भीड़भाड़ हो वहाँ सत्य खो जाता है।
ऐसा ही समझो कि जैसे बहुत शोरगुल मचा हो वहाँ तुम अपना एकतारा बजा रहे हो। तो उस नकारखाने में तूती की आवाज कहां सुनाई पड़ेगी कोई ऐसी जगह खोजो जहाँ सन्नाटा हो तो वहाँ तुम अपना एकतारा बजाओ। वहां कुछ सुनाई पड़ेगा।
भूमि तैयार करो। ध्यान भूमि की तैयारी है लक्ष्य तो साक्षी ही है। मगर अनेक लोगों को डर है कि कुछ करना पड़ेगा। साक्षीभाव को कई लोग तैयार हो जाते हैं क्योंकि कुछ करना नहीं है।
लेकिन तुमसे साक्षी होगा भी नहीं। तुम बैठे रहोगे आंख बंद कर के और विचार चलते रहेंगे और तुम विचारों में खोए रहोगे। घास-पात उगती रहेगी और गुलाब मुरझाते रहेंगे।
साक्षी की तैयारी तो करो। हर चीज की तैयारी करनी होती है। सम्यकरूपेण तैयारी न हो तो तुम सीधी छलाँग नहीं लगा सकोगे। यद्यपि सिद्धांत यह सही है कि अकेला साक्षी होना काफी है।
अगर तुम सोचते हो कि तुम साक्षी होने में सफल हो जाओगे--बिना ध्यान के--तो मेरा आशीर्वाद। तुम करो।
सिद्धांत यह बात सही है कि साक्षी पर्याप्त है मगर सिद्धांत ही सही
है व्वहारत सही नहीं है। व्यवहारिक रूप से तो अड़चनों-बाधाओं-विरोधों को तोड़ देना अत्यंत आवश्यक है।
मगर उतनी मेहनत तुम्हें करनी नहीं है। मेहनत से लोग डरे हुए हैं। कुछ श्रम नहीं करना चाहते। मुफ्त कुछ मिल जाए तो साक्षीभाव जंचता है कि इसमें कुछ करना नहीं है। बैठ गए आंख बंद करके। और आंख बंद करक कुछ होने वाला नहीं है। आंख बंद करके तुम्हारे सामने वही संसार मौजूद रहेगा जो आंख खोल कर था। कोई फर्क न पड़ेगा। वही तस्वीरें चलेंगी। वहीं वासनाएं उठेंगी। वही विचार आंदोलन देंगे।
कृष्णमूर्ति की सारी शिक्षा साक्षीभाव की है। लेकिन चालीस वर्ष की शिक्षाओं के बाद कितने लोग साक्षीभाव को उपलब्ध हुए लोग सुन-सुन कर कृष्णमूर्ति को बातचीत करने में खूब कुशल हो गए हैं।
मेरे पास लोग आ जाते हैं उनको सुननेवाले वे कहते हैं ध्यान से क्या सार मैं भी उनसे कहता हूं कोई सार नहीं है। साक्षी-भाव काफी है। पर वे कहते है कि सुनते-सुनते हम समझ तो गए लेकिन होता नहीं है तो मैंने कहा अब

तुम्हारी मर्जी। ध्यान में तुम कहते हो क्या सार है। नाचने-कूदने, श्वास लेने, प्राणायाम, प्रत्याहार यम-नियम से क्या होगा--तुम कहते हो। कृष्णमूर्ति को सुन-सुन कर उनको बात बैठ गई कि योग व्यर्थ है कि साधना व्यर्थ है। मगर साक्षीभाव हो तो नहीं रहा है। अगर बात समझ में आ गई तो होनी भी तो चाहिए। वे कहते हैं यह तो हमारी भी मजबूरी है। बौद्धिक रूप से समझ में आ गई है मगर हो नहीं रहा है
यह तो बड़ी अड़चन हो गई। अब अड़चन यह हो गई कि ध्यान करने की उनकी तैयारी
भी नहीं रही। अब तो ध्यान के विपरीत उनका मन है। तर्क उन्होंने सब जुटा लिए--ध्यान के विरोध में। और साक्षी बन नहीं रहा है। यह फांसी लग गई।
अगर उनसे कहो ध्यान करो तो वे सब तरह के तर्क देने को तैयार है कि ध्यान से क्या सार है क्रिया से क्या होगा। असली चीज तो साक्षी है। द्रष्टा मात्र हो जाता है
मैं उनसे कहता हूं कि बिल्कुल ठीक कहते हो तुम। मगर हो क्यों नहीं जाते हो
वही अ.ड़चन है। साक्षी हो नहीं सकते। साक्षी की बात ठीक तर्कयुक्त मालूम होती है। और ध्यान कर नहीं सकते क्योंकि एक बात मन में बैठ गई कि तैयारी की क्या जरूरत है साक्षी तो भीतर बैठा ही है। बस उस तरफ आंख फेरनी है। मगर आंख भी फेरोगे तो गरदन घुमानी पड़ेगी और गरदन में लकवा खा गया है। तो थोड़ी मालिश मसाज थोड़ी औषधि ताकि गरदन थोड़ी मुड़ सके जन्मों-जन्मों से बाहर देख रहे हो तो गर्दन भीतर नहीं मुड़ती। जन्मों-जन्मों से बाहर देख रहे हो तो आँख भीतर नहीं जाती।
यह बात तो बिल्कुल सीधी सी है कि भीतर चले जाओ। सब वहां है। मगर भीतर चलै कैसे जाओ बाहर रहने की आदत हो गई है। बाहर ही रहना जीवन का अर्थ हो गया है। भीतर जाने का
दरवाजा भी भूल गया है। भीतर की तरफ आंख भी नहीं मुड़ती हाथ भी नहीं फैलते।
तो मैं तुमसे यह कहूंगा साक्षी से सधता हो तो शुभ। लेकिन व्यर्थ की सैद्धांतिक बातों में मत उलझ जाना। व्यावहारिक यहीं है कि तुम क्रम से चलो।
क्रिया से शुरू करो--और अक्रिया में जाओ। ध्यान से शुरू करो--और समाधि में जाओ। उथले-उथले जल से शुरू करो फिर धीरे-धीरे गहराई में जाओ। फिर अतल गहराइयों में जाओ। जल्दी मत करो। आहिस्ता-आहिस्ता क्रम क्रम से।
मगर तुम जल्दी में मालूम पड़ते हो। प्रश्न बड़ा अदभुत है क्या सतत साक्षीभाव के द्वारा और बिना ध्यान के परम स्थिति को उपलब्ध नहीं हुआ जा सकता है और उसके बाद पूछा है कि और जब सिर्फ साक्षीभाव रह जाए तो उससे भी कैसे मुक्त हुआ जाए बड़ी जल्दी है। अभी साक्षीभाव हुआ भी नहीं। अभी हुआ ध्यान भी नहीं है। अभी ध्यान हुआ नहीं है सैद्धान्तिक रूप से मन में यह ख्याल बैठ गया है कि साक्षीभाव सध जाए--बिना ही ध्यान के तो अच्छा। सध जाता तो तुम प्रश्न पूछे नहीं होते। सधा नहीं है। मगर आगे जा रही है बात और। "फिर साक्षीभाव अगर सध जाए--बिना ध्यान के--तो उससे कैसे मुक्त हुआ जाए इतनी जल्दबाजी नहीं। ऐसी छलाँग लोगे तो हाथ-पैर तोड़ लोगे। ऐसी छलाँगों का परिणाम अकसर पागलपन होता है।
क्रम से चलो। व्यवस्था से चलो। जल्द कुछ है भी नहीं धैर्य से चलो। प्रतीक्षा से चलो।
धैर्य और प्रतीक्षा श्रद्धा के अनिवार्य अंग हैं। यह अधैर्य है। और
यह लोभ है। और बिना कुछ किए पा लेने की आकांक्षा बेईमानी है। पहले ध्यान नहीं करना वह छोड़ा। अब साक्षी हो गया अभी हुआ नहीं है मगर मन में ख्याल कर लिया कि साक्षी हो गया अब इससे कैसे छुटे
साक्षी से छुटने की जरूरत पड़ती ही नहीं। जिस दिन साक्षी परिपूर्ण हो जाता है साक्षी विसर्जित हो जाता है--अपने आप। करने की बात वहां नहीं है। करने की बात साक्षी के पहले है। इसलिए ध्यान किया जा सकता है।

ध्यान करने का अंतिम निचोड़ होता है साक्षी। फिर साक्षी के बाद कर्ता बचता ही नहीं साक्षी का मतलब ही यह होता है कि अब द्रष्टा ही बचा कर्ता बचा नहीं। इसलिए तुम यह कैसे पूछ सकते हो संगतरूप से कि अब हम क्या करें कि साक्षी से छुटकारा हो जाए कर्ता तो गया तभी तो साक्षी आया। अब तो कृत्य का कोई उपाय नहीं है। लेकिन साक्षी अपने से चला जाता है। उसके पीछे राज है। जैसे दीया तुमने जलाया तो पहले तो तेल जलता है। फिर जब तेल जल जाएगा
तो वाती जलने लगती है। फिर जब वाती पूरी जल जाएगी तो ज्योति बुझ जाएगी। बुझानी नहीं पड़ेगी। क्या जरूरत बुझाने की अपने से हो जाएगा। हां, अगर तेल हो तो बुझानी पड़ेगी। अगर तेल भरा है तो ज्योति अपने से नहीं बुझेगी क्योंकि तेल ज्योति को जलाए जाएगा। तो तुम्हें बुझाने की प्रक्रिया करनी पड़ेगी।
लेकिन तेल जल गया अब बाती बची। अब बाती कितनी देर जल सकती है तेल तो बचा नहीं इसलिए अब बाती अपने आप जलने लगेंगी। जिस अग्नि ने तेल को जला दिया वह अग्नि अब बाती को जला देगी। और आखिरी घटना वहीं अग्नि अब अपना आत्मघात कर लेगी। जब बाती भी जल गई तो अग्नि तिरोहित हो जाएगी।
ध्यान से तेल जलता है। साक्षी की अवस्था बाती की अवस्था है। तो तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता एक दिन तुम पाते हो साक्षी का आविर्भाव हुआ।
बड़ी शांति उतरती है अपूर्व शांति उतरती है। बड़ा सुख बरसता है--महा सुख।
स्वर्ग तुम्हारे चारों तरफ निर्मित हो जाता है। तुम्हारे जीवन में पुण्य की गंध आ जाती है। पाप तिरोहित हो गया वह तेल के साथ गया। संसार नहीं बचा। अब तुम एक स्वर्गीय दशा में होते हो।
पर जब तेल नहीं बचा तो बाती कितनी देर बचेगी थोड़ी ही देर में तुम पाओगे एक लपट उठीं। साक्षी का भाव खूब गहन हुआ। जैसे कि बुझने के पहले बाती में लपक उठती है और मरने के पहले आदमी में लपक उठती है ऐसे ही तुम्हारे भीतर अहंकार के बिल्कुल बुझ जाने के पहले एक लपक उठती है--आखिरी झलक। खूब गहन साक्षी हो जाएगा। सारी बाती जलने लगी। तेल तो बचा नहीं अब बाती पूरी जल रही है। रोशनी एकदम फैल जाएगी। तुम भीतर बड़ा सुख बड़ा स्वर्ग पाओगे। तब बाती भी गई।
नरक चला गया तेल के साथ स्वर्ग चला जाएगा बाती के साथ। पाप गया तेल के साथ पुण्य चला जाएगा बाती के साथ। फिर जो बचता है उसको हमने मोक्ष कहा है। इसलिए नया शब्द खोजा उसके लिए। स्वर्ग नहीं कहा। स्वर्ग उसको क्या कहना पहले दुख गया सुख बचा। फिर सुख भी गया। और जब सुख दुख दोनों चले जाते हैं तो बच जाता है जो उसी को हमने आनंद कहा है। वह तीसरी दशा है।
आनंद जैसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। मोक्ष जैसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। स्वर्ग और नरक अरबी में हैं, अंग्रजी में हैं, फ्रेंच में हैं, इटालियन, जर्मन में हैं। लेकिन मोक्ष जैसा कोई शब्द नहीं है। निर्वाण जैसा कोई शब्द नहीं है।
तीसरा शब्द हमारे पास है। क्योंकि हमने आत्यंतिक दशा भी जानी। मिट जाने की वह आखिरी दशा भी जानी।
इसलिए ईसाई फकीर जब खोज करता है तो स्वर्ग की खोज करता है। लेकिन अगर तुम पूर्वीय मनीषी से पूछोगे तो वह कहेगा स्वर्ग को क्या खोज खोज ही करनी हो तो मोक्ष की करो--जहां स्वर्ग भी न रहे। समझना।
जब तक सुख है तब तक दुख छाया की तरह मौजूद रहेगा। जब तक रोशनी है तब तक अँधेरा रोशनी की परिभाषा करेगा। दीया जल रहा है तो मिटना ही चाहिए रोशनी भी मिट जानी चाहिए। दुख तो मिटना ही चाहिए सुख भी मिट जाना चाहिए। उस दशा को हमने परम-दशा कहा है परमात्म-दशा कहा है। वही स्थिति है--भगतत्ता की भगवान की।
उसी व्यक्ति को हमने भगवान कहा है जिसका दुख गया सुख गया। जिसका द्वंद्व गया। जो द्वंद्वातीत हुआ।
तो तुम्हें कुछ करना ही है अभी तो ध्यान करो। तुम विचार कर रहे हो साक्षी कैसे छोड़े। करने का काम पहले निपटा लो। वह तुमने नहीं निपटाया तो पीछे तुम्हें दिक्कत देगा। वह बची रहेगी वासना--करने की। वह अभी बची है।

अब तुम पूछ रहे हो कि साक्षी रह जाएगा फिर क्या करें उससे छुटकारा कैसे हो यह करने की वासना मत बचाए रखो। यह तेल मत बचाए रखो। यह तेल जाने दो। यह ध्यान में ही निपटा लो। जितना उछलना-कूदना है--उछल लो कूद लो। करने का जो भाव है उसे ध्यान में पूरा कर लो। करने की जरा भी वासना न रह जाए। जरा भी वासना रह गई तेल बचा रहा तो फिर बाती अपने से न बुझेगी।
और ख्याल रखना अगर तुमने बाती बुझाई तो फिर लौट कर आना पड़ेगा क्योंकि बुझाते समय तुम तो बचोगे ना बुझाने वाला बचेगा। जब बाती अपने से बुझती है तो फिर लौट कर नहीं आती। उसको बुद्ध ने कहा है वैसी चेतना अनागामी हो जाती है उसके लौट कर आने का उपाय नहीं बचा। उसका आवागमन समाप्त हो जाता है। तुमने बुझाया तो तुम्हारी वासना अभी बची है। नहीं तो तुम किसलिए बुझा रहे हो बुझाने की जरूरत क्या है जब बुझेगी--बुझ जाएगी।
लेकिन तुम्हारे मन में वासना करने की है और रहेगी जब तक तुम ध्यान में उसका निकास न कर लो।
इसलिए मैं कहता हूं, ध्यान को जितना सक्रिय बना सको उतना अच्छा।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आप सक्रिय-ध्यान की इतनी ज्यादा प्रस्तावना क्यों करते हैं? मैं इसलिए करता हूं कि सक्रियता निकल जाए। क्योंकि साक्षी तो निष्क्रिय होगा।
अगर तुम ध्यान में निष्क्रिय हो कर बैठ गए तो तुम्हारी सक्रियता लपटी रहेगी भीतर तुम्हारी चेतना में तेल की तरह मौजूद रहेगी और उस परम घटना को न घटने देगी उस अपूर्व सौंदर्य से तुम वंचित रह जाओगे। वह जो ज्योति का अपने आप बुझ जाना है बिना बुझाने वाले को बुलाए बिना किसी कृत्य के बिना किसी कर्ता के बिना किसी आकांक्षा के वह जो ज्योति का शून्य में लीन हो जाना है--अपने से--अपने आप--उस घटना से तुम वंचित हो जाओगे। और वही घटना निर्वाण है।
इसलिए बुद्ध ने निर्वाण शब्द दिया। निर्वाण शब्द का अर्थ ही होता है ज्योति का बुझ जाना। दीये के बुझ जाने का नाम निर्वाण है।
इसलिए मेरा जोर है कि तुम जितनी सक्रियता से ध्यान कर सको उतना अच्छा ताकि सक्रियता की कर्ता की वासना क्षीण हो जाए। साक्षी बचे कर्ता का भाव जरा भी न बचे। कर लिया जो करना था। दौड़ चुके जितना दौड़ना था।
थका लो--अपने को तो साक्षी में तुम शांत होकर बैठ जाओगे। और साक्षी में तुम पूर्ण शांत होकर बैठ गए जरा भी कर्म की वासना न रही--कि यह करूं ऐसा करूं वैसा करूं तो तेल गया। फिर तुम निशि्ंचत रहो। यह बाती अपने से जल जाएगी।
और जिस दिन बाती अपने से जल कर तिरोहित होती है शून्य में उस दिन परम घटना है उस दिन सच्चिदानंद घटता है उस दिन--समाधि।

तीसरा प्रश्नः विचारों पर नियंत्रण कैसे हो?

नियंत्रण की जरूरत क्या है नियंता बनना अहंकार ही है। विचार तुम्हारे नहीं है तुम उनके मालिक क्यों बनता चाहते हो
विचार आते हैं चले जाते हैं। ठहरते हैं क्षण भर तुम में विदा हो जाते हैं। तुम सराय हो विचार अतिथि हैं मेहमान हैं। तुम मेजबान हो। मेहमानों की गरदन पकड़ कर नियंत्रण करने की जरूरत क्या है नियंत्रण करने की चेष्टा में ही लोग विक्षिप्त हो जाते हैं।
विचार के तुम मालिक न बन सकोगे। हां, एक मालकियत आती है जरूर लेकिन वह विचार की मालकियत नहीं है। वह मालकियत इस सत्य को जान लेने से पैदा होती है कि विचार से मेरा क्या लेना-देना। आए--गए। राह पर चलती हुई भीड़ है। यह ट्रेन की आवाज यह उड़ता हवाई जहाज यह रास्ते पर कार का हॉर्न यह बच्चे का चिल्लाना यह कुत्ते का भोंकना जैसे ये सारी चीजें घट रही हैं वैसा ही विचार भी घट रहा है--मुझ से बाहर।

विचार तुम्हारे भीतर नहीं है। तुम्हारे सिर में जरूर है लेकिन तुम्हारे भीतर नहीं है। क्योंकि तुम तो सिर के भीतर हो। तुम विचार के पीछे हो। विचार तुम्हारी आंख के सामने घूम रहा है। आँख बंद करो तुम
देखोगे विचार को घूमते। तो तुम तो विचार से अलग और पृथक हो। तुम तो साक्षी हो। नियंत्रण क्या करना है अनेक लोगों को यह भ्रांति सवार होती है--और तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी यही समझाते रहते हैं कि मन पर नियंत्रण करो मन पर काबू करो।
मन पर काबू करना ऐसे ही पागलपन है जैसे कोई पारे पर मुट्ठी बांधे। और पारा छितर जाए और सारे फर्श पर फैल जाए। और जितना तुम पकड़ने जाओ उतना पारा टूटने लगे। और जितना तुम झपटो उतनी मुश्किल में पड़ो।
विचार पर नियंत्रण करने की व्यर्थता में मत पड़ना। मैं नहीं सिखाता-- विचार पर नियंत्रण। मैं तो विचार का जागरण विचार के प्रति जागरण। अबाबीलों से मेरे आवारा विचार
न जाने किस प्रदेशां से आते हैं
मेरी छत के शहतीरों में तिनके सजाते हैं।
मैं चाहता हूं वे यहीं बस जाएं
मैं उन्हें पाल लूं मन के पींजरे में सहेज सम्हाल लूं
जब चाहूं--वहां से उतार लूं
अपने कुछ एकांत क्षण उनके साथ गुजार लूं।
पर वे नहीं रुकते उड़ जाते है।
सिर्फ उनकी आमद के मटमैले निशान
उनकी याद दिलाते हैं।
मन को और भी उदास बनाते हैं।
अबाबीलों से मेरे आवारा विचार
ये न जाने किधर से आते हैं।
और कहां उड़ जाते हैं
ये उड़ते हुए पक्षी हैं आकाश के ये तरंगे हैं आकाश में घूमती हुई इन्हें आने दो जाने दो। इनके जाने से उदास मत बनो। इनके आने से परेशान मत होओ। तटस्थ भाव से इनका आना-जाना देखो।
जैसे कोई नदी के किनारे बैठा हो और नदी का बहना देखे ऐसे तुम विचार की सरिता को बहते
देखो--किनारे बैठ कर।
बुद्ध के जीवन में बड़ी--यारी कथा है। मुझे उसमें सदा रस रहा है। बुद्ध
एक जंगल से गुजरते हैं। उन्हें यास लग आई है। बूढ़े हो गए है बुद्ध। आखिरी दिनों की बात है मरने के कुछ छ महिने पहले की।
बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं आनंद से कहते हैं आनंद मुझे बड़ी-- यास लगी है। मुझसे और चला न जा सकेगा। पीछे हम एक झरना छोड़ आए हैं तू वापस जा यह मेरा भिक्षा-पात्र ले जा और जल भर ला।
आनंद पीछे लौट कर गया। लेकिन जो झरना वे पीछे छो.ड़ आए थे वह बिल्कुल गंदा-मटमैला हो गया था। अभी-अभी बैल-गाड़ियां उससे गुजर गई थी। तो सारा कीचड़-कवाड़ पत्ते--ऊपर उठ आए थे। पानी बिल्कुल गंदा हो गया था। पीने योग्य तो बिल्कुल ही नहीं था। और बुद्ध के लिए यह गंदा पानी आनंद ले जाए यह संभव नहीं था। वह वापस लौट आया। उसने कहा कि मैं आगे जाता हूं। कोई नदी खोजूंगा। वह झरना तो बड़ा गंदा हो गया। उससे आदमी निकल गए बैल-गाड़ियां निकल गईं। बैलों नें पानी पीया घोड़ों ने पानी पीया। वह तो बिल्कुल गंदा हो गया।
वह पानी आपके लायक नहीं। बुद्ध ने कहा तू व्यर्थ परेशान न हो। फिर से जा।
वही पानी ले आ।
बुद्ध कहें तो इनकार भी न कर सका आनंद। फिर गया और बड़ा हैरान हुआ।
पानी फिर स्वच्छ हो गया था। पत्ते फिर वह गए थे। धूल-धवांस नीचे बैठ गई थी।
बुद्ध ने आनंद से इतना ही कहा था कि अगर अब भी पानी गंदा हो तो तू किनारे बैठ जाना थोड़ी प्रतीक्षा करना।

आनंद बैठ गया किनारे। थोड़े बहुत आखिरी कण धूल के तैरते होंगे वे भी बैठ गए। पानी एकदम स्फटिक जैसा शुद्ध-साफ हो गया। तब वह जल भर कर आया।
वह नाचता हुआ आया। उसने बुद्ध के चरणों में सिर रखा और उसने कहा आपने बड़ा गहरा
संदेश दे दिया। आज मुझे सूत्र हाथ लग गया। यही सूत्र मैं मन के साथ भी उपयोग कर लूंगा। आज मेरे मन में एक बड़ी बात साफ हो गई। आपकी बड़ी अनुकंपा जो आपने मुझे वापस भेजा। मैं जाने को तैयार भी नहीं था। लेकिन क्रांति हो गई है--उस तट पर बैठे-बैठे।
"उस झरने के पास बैठे-बैठे एक बात समझ में आ गई कि अगर मैं उतर जाऊं जल में। अगर आपने न कहा होता तो मैंने उतर कर शुद्ध करने की कोशिश की होती और उसी में सब अशुद्ध हो गया होता। मेरे उतरते ही से और कीचड़ उठ आई होती। आपने ठीक कह दिया था कि किनारे बैठ जाना और प्रतिक्षा करना। कुछ करना मत बस देखते रहना। अपने से झरना शुद्ध हो जाएगा। ऐसा ही मैं अपने मन के साथ भी कर लूंगा। मन में भी मैं उतर-उतर जाता हूं। मन को भी नियंत्रण में लाने की कोशिश करने लगता हूं। उसी कोशिश में मन मेरे हाथ से छिटक-छिटक जाता है। आज जैसे यह जल का झरना शांत हो गया निर्मल हो गया ऐसे ही मेरे मन का झरना भी मैं शांत और निर्मल कर लूंगा।
बुद्ध ने कहा इसीलिए तुझे वापस भेजा था। सदगुरु प्रत्येक स्थिति का उपयोग कर लेते है। यही जागरण तुझे आ जाए यही बोध यही बीज तेरे भीतर अंकुरित हो जाए इसीलिए तुझे वापस भेजा था। ठीक किया आनंद। शुभ किया आनंद। तू समझ गया। तू ने समझदारी की। यही राज है।
मन पर नियंत्रण करने का सोचो ही मत। मन के किनारे बैठना सीखो। क्या लेना-देना है अच्छे विचार आते हों तो भी तुम्हारा कुछ नहीं है। और बुरे विचार आते हों तो भी तुम्हारा कुछ नहीं है। बुरों को भी आने दो अच्छों को भी आने दो। बुरों को भी जाने दो अच्छों को भी जाने दो। अपने से आते हैं अपने से चले जाते हैं। तुम्हारा क्या ले जाते हैं। तुम बैठो। तुम जाग कर देखते रहो।
तुम सिर्फ देखो तुम निर्णय न करो। तुम मुल्यांकन न करो। तुम न्यायाधीश न बनो। न तो कहो अच्छा न कहो बुरा। न तो कहो अच्छे को पकड़ कर रख लूं--संजो लूं संवार लूं। न बुरे को धक्का दो। तुम इस धक्का-मुक्की में पड़ो ही मत।
इसलिए समस्त ज्ञानियों ने यह सूत्र कहा है। विचारों का निर्णय मत करो
कि कौन अच्छा कौन बुरा। और विचारों में चुनाव मत करो कि कौन पकड़ने जैसा और कौन छोड़ देने जैसा। यही साक्षी का अर्थ है।
अंतिम प्रश्न आपके पास जो नहीं आता वह तो क्षमा का पात्र है क्योंकि
वह नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है। किंतु आपके पास होकर भी मेरे अनुभव में आपको बातें नहीं उतर रही हैं। आपकी बातें मन के तल पर तो पकड़ में आती हैं लेकिन अनुभव में नहीं उतरतीं। यही मेरी पीड़ा है। कृपया मार्ग-दर्शन करें।
मैं जो कहता हूं उसे सुन लेने मात्र से तो अनुभव में नहीं उतरना होगा। कुछ करो। मैं जो कहता हूँ उसके अनुसार कुछ चलो। मैं जो कहता हूँ उसको केवल बौद्धिक सम्पदा मत बताओ। नहीं तो कैसे अनुभव से संबंध जुड़ेगा
मैं गीत गाता हूं--सरिताओं के सरोवरों के। तुम सुन लेते हो। तुम गीत
भी कंठस्थ कर लेते हो। तुम कहते हो गीत बड़े प्यारे हैं। तुम भी गीत गुनगुनाने लगते हो--सरिताओं के सरोवरों के। लेकिन इससे प्यास तो न बुझेगी।
गीतों के सरिता-सरोवर प्यास को बुझा नहीं सकते। और ऐसा भी नहीं कि गीतों के सरिता-सरोवर बिल्कुल व्यर्थ हैं। उनकी सार्थकता यहीं है कि वे तुम्हारी प्यास को और भड़काएं ताकि तुम असली सरोवरों की खोज में निकलो। मैं यह जो गीत गाता हूं--सरिता-सरोवरों के--वह इसीलिए ताकि तुम्हारे हृदय में श्रद्धा उमगे कि हां, सरिता-सरोवर हैं पाए जा सकते हैं। ताकि तुम मेरी आंख में आंख डाल कर देख सको कि हां सरिता-सरोवर हैं ताकि तुम मेरा हाथ

हाथ में लेकर देख सको कि हां कोई संभावना है कि हम भी तृप्त हो जाएं कि तृप्ति घटती है कि ऐसी भी दशा है परितोष की जहां कुछ पाने को नहीं रहता कहीं जाने को नहीं रहता। ऐसा भी होता है ऐसा चमत्कार भी होता है जगत में-- कि आदमी निर्वासना होता है। और उसी निर्वासना में मोक्ष की वर्षा होती है।
मैं गीत गाता हूं--सरिता-सरोवर के इसलिए नहीं कि तुम गीत कंठस्थ कर लो
और तुम भी उन्हें गुनगुनाओ। बल्कि इसलिए ताकि तुम्हें भरोसा आए तुम्हारे पैर में बल आए तुम खोज पर निकल सको।
लंबी यात्रा है। जंगल-पहाड़ों से गुजरना होगा। हजार तरह के पत्थर-पहाड़ पार करना होगा। और हजार तरह की बाधाएं तुम्हारे भीतर हैं जो तुम्हें तोड़नी होंगी। यात्रा दुर्गम है। मगर अगर भरोसा हो कि सरोवर है तो तुम यात्रा पूरी कर लोगे। अगर भरोसा न हो कि सरोवर है तो तुम चलोगे कैसे पहला ही कदम कैसे उठाओगे गीतों का अर्थ इतना ही है कि तुम्हें भरोसा आ जाए कि सरोवर हैं।
और भरोसा काफी नहीं है। भरोसा सरोवर नहीं बन सकता। सरोवर खोजना होगा।
तो मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं। तुम कहते हो आपके पास जो नहीं आता वह क्षमा का पात्र है। क्योंकि वह नहीं जानता है कि वह क्या कर रहा है। किंतु आपके पास होकर भी आपका संन्यासी होकर भी मेरे अनुभव में आपकी बातें नहीं उतर रही हैं। आपकी बातें मन के तल पर तो पकड़ में आती हैं लेकिन अनुभव में नहीं उतरतीं। यही मेरी पीड़ा है।
बात सुन कर ही अनुभव कैसे होगा बात सुन कर आकांक्षा जग सकती है प्यास
जग सकती है।
वही है तुम्हारी पीड़ा। उस पीड़ा को तुम दुख मत समझो। यही मैं चाहता हूं
कि मेरी बात सुन-सुन कर तुम्हारे भीतर ऐसी पीड़ा जगे ऐसा स्पष्ट होने लगे-- कि बात सुनने से क्या होगा। धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर एक बवंडर उठे एक आंधी उठे कि अब कुछ करना होगा अब कहीं जाना होगा।
यही है पीड़ा और मैं इस पीड़ा को शांत करने की जरा भी चेष्टा न करूंगा। क्योंकि यह पीड़ा शांत हो गई तो तुम फिर वहीं के वहीं रह जाओगे--जहां तुम हो।
यह पीड़ा तो बलवती हो यह पीड़ा तो घनी हो यह पीड़ा तो दंश बने यह तो तुम्हारी छाती में चुभा हुआ छुरा हो जाए। यह तो तुम जब तक सरोवर पर न पहुंच जाओ तब तक बढ़ती ही रहे--आग की लपट बन जाए। तुम्हें जलाए। तुम्हें भस्म कर दे।
इसलिए तो मैंने कहा कि सदगुरु से लोग नाराज होते हैं। तुम जाते हो सांत्वना को तलाश में और सदगुरु सत्य देना चाहता है--सांत्वना नहीं।
अब जिन मित्र ने पूछा है उसकी आकांक्षा यह भी हो सकती है कि मैं कुछ सांत्वना दूं कि मैं कहूं घबड़ाओ मत सुनते-सुनते सब हो जाएगा। कि घबड़ाओ मत जब समय आएगा तब सब हो जाएगा। कि घबड़ाओ मत हर चीज का मौसम है। जल्दी घड़ी आती है। प्रभु-प्रसाद से सब हो जाएगा। कि मेरे आशीर्वाद से सब हो जाएगा घबड़ाओ मत।
अगर तुम सांत्वना खोजते हो तो मैं तुम्हें सांत्वना नहीं दे सकता हूं। तो तुम गलत आदमी के पास आ गए। तो तुम्हारी मलहम-पट्टी नहीं करूंगा। मैं तुम्हारे घाव को और उघाडूंगा और कुरेदूंगा। मैं तुम्हारे घाव को और गहरा करूंगा--कि घाव गहरा होते-होते तुम्हारे हृदय तक पहुंच जाए कि घाव इतनी पीड़ा
देने लगे कि तुम्हें उठना ही पड़े कि तुम्हें खोजना ही पड़े। कि घाव की पीड़ा इतनी बड़ी हो जाय कि पहाड़-पर्वतों को लांघने की पीड़ा इतनी बड़ी न मालूम पड़े तभी यात्रा शुरू होगी।
प्यास की पीड़ा इतनी हो जाए कि अगर पूरा मरुस्थल भी पार करना हो तो भी तुम पार करने की तैयारी दिखाओ। तुम्हारे पास जो कुछ है सब देने की भी जरूरत पड़ जाए तो तुम दे दो। जिस दिन पीड़ा इतनी हो जाए।

सिकंदर भारत आया उसने एक फकीर से पूछा कि मैं दुनिया का सम्राट हूं मैं मस्त रहूं यह तो बात समझ में आती है। तुम किसलिए मस्त हो रहे हो
वह फकीर नाच रहा था नदी के किनारे। नग्न था। खंजीरा बजा रहा था। उसकी मस्ती देख कर सिकंदर ईर्ष्या से भर गया होगा। ऐसी मस्ती तो सिकंदर में भी न थी हालाकि सारे जगत का राज्य उसका था। और इस आदमी के पास कुछ भी न था। शायद यह खंजरी भी इसकी अपनी न हो। इसके पास एक भिक्षापात्र भी नहीं था। मगर इसके चेहरे पर एक रौनक थी। इसकी आंखों में एक ज्योति थी। कोई दीया जल रहा था इसके भीतर। वह बिल्कुल साफ था। वह अंधे को भी दिख जाए ऐसा साफ था। तभी तो सिकंदर को दिख सका। सिकंदर से बड़ा अंधा और कहां खोजोगे
वह संगीत कुछ ऐसा था कि बहरे को भी सुनाई पड़ जाए। तब तो सिकंदर को सुनाई पड़ सका। सिकंदर से बड़ा बहरा कहां खोजोगे।
सिकंदर ने पूछाः तू किसलिए आनंदित हो रहा है तू मुझे ईर्ष्या से भरता है। तेरे पास कुछ भी नहीं है आनंद का कारण ही क्या है मेरे पास सब है और मैं आनंदित नहीं हूं।
उस फकीर ने कहाः तुम्हारे पास सब बड़ी बेबूझ बात करते हो उलटबांसी कहते हो। मैं तुम से यह पूछता हूं सिकंदर अगर तुम मरुस्थल में खो जाओ और घनी प्यास लगे और मौत करीब मालूम होने लगे और तुम गिर जाओ और घसिटने लगो और मैं तुम्हारे पास खड़ा हो जाऊं आकर। एक गिलास के पानी के लिए मैं तुमसे कहूँ क्या कीमत चुका सकते हो तुम कितना दोगे
सिकंदर ने कहा एक गिलास। उस हालत में आधा साम्राज्य दे दूंगा। फकीर
ने कहाः हम ऐसे सस्ते में बेचने वाले नहीं हैं। तुम और क्या दे सकोगे? सिकंदर ने कहाः अगर मजबूरी की ऐसी हालत आ जाए तो मैं पूरा सामाज्य दे दूंगा। अगर मर रहा हूं मरुस्थल में पानी के बिना तो पूरा साम्राज्य दे दूंगा।
तो उस फकीर ने कहाः यह तो बड़ा अजीब सा साम्राज्य हुआ एक गिलास पानी में चला जाए। इसलिए हमने इसको नहीं खोजा। जो एक गिलास पानी में चला जाए वह हमने नहीं खोजा हमने तो सरोवर खोजा। अनंत सरोवर खोजा--कि पियो और पिलाओ और कभी खाली न हो।
"यह भी कोई बात है। तेरे पास कुछ भी नहीं सिकंदर। यह तुने कूड़ा-कर्कट इकट्ठा कर लिया है।
उस फकीर की बात उसके हृदय में चुभी रह गई। और सिकंदर ऐसी ही हालत में मरा। संयोग की बात ऐसी ही हालत में मरा। जैसे एक गिलास पानी को कोई तड़फ जाए मरुस्थल में।
लौटता था जब हिंदुस्थान से वापस तो अपनी राजधानी से केवल चौबीस घंटे
के फासले पर रह गया था और भयंकर रूप से बीमार हो गया। और चिकित्सकों ने कह दिया कि बचने का कोई उपाय नहीं है। उसने कहा कि मैं अपना सब देने को तैयार हूं मगर चौबीस घंटे मुझे बचा लो--सिर्फ चौबीस घंटे क्योंकि मैंने अपनी मां को वचन दिया है। जब मैं घर से आ रहा था तो उसने कहा था लौट आना। मैंने वचन दिया है और मैं अपने वचन का धनी हूं। मैं अपना वचन पूरा करना चाहता हूं। मैं जाकर घर मर जाऊं कोई फिकर नहीं। लेकिन एक दफा घर पहुंच जाऊं। मेरी मां मुझे देख ले कि मैं लौट आया। मैंने वचन दिया है कि मैं लौट कर आऊंगा। हर हालत में लौठ कर आऊंगा।
पर उसके चिकित्सकों ने कहाः हम मजबूर हैं। हम क्या कर सकते हैं, घर पहुंचना हो नहीं सकता। आप पल दो पल के मेहमान हैं।
तब सिकंदर को अगर उस फकीर की बात याद आई हो तो कुछ आश्चर्य तो नहीं। उसने कहा था एक गिलास पानी के लिए सारा सब चला जाएगा। चौबीस घंटे के लिए सब देने को तैयार था। और इसी राज्य क लिए सारी जिंदगी गंवा दी जरा सोचो हिसाब कैसा है इसी राज्य के लिए सारी जिंदगी गंवा दी और वह राज्य चौबीस घंटे नहीं खरीद सकता इससे बड़ी और मूढ़ता क्या होगी तो मैं तुम्हारी पीड़ा को सांत्वना की मलहम-पट्टी नहीं दूंगा। यहां जो सांत्वना में सोए पड़े हैं वे अभागे हैं। यहां तो धन्यभाग हैं वे ही जिनको भीतर पीड़ा उठ रही है और जिनको

यह बात समझ में आ रही है कि यहां सब असार है। राख ही राख है। जिनको यह दिखाई पड़ने लगा है। यहां क्या रक्खा है राख ही राख है।
तुम्हारी पीड़ा को मैं सुलगाऊंगा तुम्हारी पीड़ा इतनी बड़ी हो कि तुम उस पीड़ा के कारण बड़े से बड़े पहाड़ भी लांघने को तैयार हो जाओ तो ही पहुंच सकोगे। नहीं तो पहुंचना असंभव है।
और मेरी बातें सुन-सुन कर अगर पहुंचना होता तब तो बड़ी सस्ती बात होती।
किसकी बात सुन कर कौन कब पहुंचा है कुछ करो। कुछ चलो। उठो। पैर बढ़ाओ। परमात्मा संभव है लेकिन तुम चलोगे तो ही। और परमात्मा भी तुम्हारी तरफ बढ़ेगा लेकिन तुम चलोगे तो ही। तुम पुकारोगे तो ही वह आएगा।
मिलन होता है लेकिन मिलन उन्हीं का होता है जो उसे खोजते हुए दर-दर भटकते हैं। असली दरवाजे पर आने के पहले हजारों गलत दरवाजों पर चोट करनी पड़ती है। ठीक जगह खोजने के पहले हजारों बार गड्ढों में गिरना पड़ता है।
जो चलते है उनसे भूल-चूक होती है। जो चलते हैं वे भटकते भी हैं। जो चलते हैं उनको कांटे भी गड़ते हैं। जो चलते हैं वे चोट भी खाते हैं।
चलना अगर मुफ्त में होता होता सुविधा से होता होता तो सभी लोग चलते।
चूंकि चलना सुविधा से नहीं होता इसलिए अधिक लोग अपने-अपने घरों में बैठे हैं कोई चल नहीं रहा है।
लेकिन गति के बिना उस परम की उपलब्धि नहीं है।
और मजा यह है कि तुम क्षुद्र बातों के लिए खूब चल रहे हो। अगर दिल्ली जाना हो तो तुम कितनी ही यात्रा करने को तैयार हो कैसी ही यात्रा करनी पड़े कितनी ही मुसीबतें हों तुम दिल्ली जाने को तैयार हो। हर हालत में दिल्ली जाने को तैयार हो। अगर एक बड़ा मकान बनाना हो तो तुम सब कुछ करने को तैयार हो। व्यर्थ को करने के लिए तुम्हारी कितनी आतुरता है और सार्थक को सार्थक तो तुम कहते हो--सुन कर मिल जाए तो अच्छा। लोग कहते हैं सुन कर ही।
मेरे पास एक मित्र आते हैं। वर्षों से मुझे सुनते हैं। ध्यान नहीं करते। मैंने उनसे पूछाः ध्यान कब करोगे? वे कहते हैं, आपको सुन कर ही इतना आनंद मिलता है आपको सुन सुन कर ही हो जाएगा। फिर आपका आशीर्वाद है और क्या चाहिए।
अब यह आदमी अपने को धोखा दे रहा है। निश्चित सुनने का एक आनंद हो सकता है। शब्द में भी एक रस हो सकता है एक संगीत हो सकता है एक लय हो सकती है। पर जरा यह तो सोचो कि जब शब्द में इतना रस है तो जिस आत्म-दशा से वे शब्द आते हैं उसमें कितना रस न होगा।
हां, कभी-कभी शब्द में भी स्वाद होता है। कोई नीबू का नाम ले दे तो तुम्हारे मुंह में लार बहने लगती है। कभी-कभी शग्द में भी रस होता है। मगर वह लार नीबू का असली स्वाद तो नहीं है। कल्पना मात्र है। भ्रांति मात्र है।
परमात्मा का असली स्वाद लेने के लिए उठो और चलो। ध्यान करो। यात्री बनो। दांव पर लगाना होना। जुआरी हुए बिना कुछ भी नहीं हो सकता है।
मैं तुमसे कह रहा हूं
कहना शुरू कर दिया है
तौला नहीं है इसका छंद
सिर्फ खोल कर हवा में प्राण भर दिया है
मैं कह रहा हूं
तुम्हें सूनना चाहिए
फूल जो तुम्हारे लिए खिलाए जा रहे हैं उनमें से तुम्हें
कुछ न कुछ चुनना चाहिए
आओ सुनो
और चुनो
मैं तुमसे
कह रहा हूं।

लेकिन यह फूल चुनोगे नहीं इनमें से कुछ तो चुनो। इनमें से कुछ तो जीवन बनाओ इनमें से कुछ तुम्हारा आचरण बने कुछ श्वासों में तैर जाएं तुम्हारे प्राणों में उतर जाएं कुछ तुम्हारे हृदय की धड़कन बन जाएं तो ही तो ही पीड़ा से एक दिन मुक्ति होगी।
अभी तो पीड़ा बढ़ेगी सुन-सुन कर पीड़ा बढ़ेगी। जितना सुनोगे उतनी पीड़ा बढ़ेगी। और उस पीड़ा को धन्यवाद समझो कि वह बढ़ती जाए। एक दिन ऐसी घ.ड़ी आ जाएगी कि पीड़ा इतनी होगी कि तुम बैठे न रह सकोगे। कुछ करना अनिवार्य हो जाएगा।
तुम सुनते हो। संन्यासी भी हो गए हो। साफ है--खोज की आकांक्षा है।
थोड़ा और दांव लगाओ। मेरे आशीष से ही हो जाएगा--ऐसा सोच कर मत बैठे रहना।
आशीर्वाद बड़े सहयोगी हैं मगर सहयोगी हैं।
तुम कुछ करोगे तो आशीर्वाद तुम्हारे लिए साथी हो जाते हैं। तुम कुछ न करोगे तो आशीर्वाद व्यर्थ हैं।
बीज हो भूमि पर तो खाद सहयोगी है। बीज ही न हो भूमि में तो खाद क्या करेगी
आशीर्वाद तो खाद की तरह हैं। बीज तुम्हारे चाहिए मेरा आशीर्वाद तुम्हें सदा उपलब्ध है। लेकिन बीज तो तुम्हारा ही चाहिए। बुद्ध पुरुष राह दिखाते हैं चलना तो तुम्हें ही पड़ता है।

आज इतना ही।

नहीं सांझ नहीं भोर
पांचवां प्रवचन

भक्ति की कीमिया

जागै न पिछलै पहर, ताके मुखड़े धूल।
सुमिरै न करतार कूं, सभी गवाधै मूल।।
पिछले पहरे जागि करि, भजन करै चित लाय।
चरनदास वा जीव की, निस्चै गति ह्नै जाय।।
पहिले पहरे सब जगैं, दूजे भोगी मान।
तीजे पहरे चोर ही, चौथे जोगी जान।।
जो कोई विरही नाम के, तिनकूं कैसी नींद।
सस्तर लागा नेह का, गया हिए कूं बींध।।
सोए हैं संसार सूं, जागे हरि की और।
तिनकूं इकरस ही सदा, नहीं सांझ नहीं भोर।।
सोवन जागन भेद की, कोइक जानत बात।
साधूजन जगत तहां, जहां सबन की रात।।
जो जागै हरि-भक्ति में, सोई उतरै पार।
जो जागै संसार में, भव-सागर में ख्वार।।
सतगुरु से मांगूं यही, मोहि गरीबी देहु।
दूर बड़प्पन कीजिए, नान्हा ही कर लेहु।।
आदि पुरुष किरपा करौ, सब औगुन छुटि जाहिं।
साध होन लच्छन मिलैं, चरनकमल ही छाहिं।।
हिय हुलसो आनन्द भयो, रोम-रोम भयो चैन।
भए पवितर कान ये, मुनि सुनि तुम्हरे बैन।।

सुबह न आई शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई।
जिस दिन तड़पे प्राण न उस दिन
देह लगी मिट्टी की ढेरी,
जिस दिन सिसकी सांस न उस दिन उम्र हो गई कुछ कम मेरी, बरसी जिस दिन आंख न, उस दिन
गीत न बोले, अधर न डोले,
हंसी बिकाई, खुशी बिकाई, जिस दिन तेरी याद न आई। सुबह न आई शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई। धुँधलाया सूरज का दर्पण,
कजलाई चंदा की बेंदी
मूक हुई दुपहर की पायल,
रूठ गई संध्या की मेहंदी,
दिवस रात सब लगे पराए,
लुटे-लुटाए स्वप्न-सितारे,
छटा न छाई, घटा न छाई, जिस दिन तेरी याद न आई। सुबह न आई शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई। फिरते रहे नयन बौराए,
कनी भवन में कभी भुवन में,
रही सिसकती पीड़ा कोई,
इस क्षण मन में, उस क्षण तन में
जग-जग कर काजल अलसाया
चल-चल कर आंचल थक आया,
हाट न पाई, बाट न पाई, जिस दिन तेरी याद न आई। सुबह न आई शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई। गुम-सुम बैठी रही देहरी,
ठठका-ठिठका आंगन द्वारा
सेज लगी कांटों की साड़ी,

और अटारी कज्जल-कारा,
अगरु-गंध हिम लहर हो गई,
चंदन लेप ताप तक्षक का,
धूप न भाई छांह न आई, जिस दिन तेरी याद न आई।
सुबह न आई शाम न आई, जिस दिन तेरी याद न आई।

भक्ति का सारा शास्त्र प्रभु-स्मरण का शास्त्र है। एक ही सूत्र है भक्ति का, वह है--प्रभु की याद।
हमारा मन और हजार बातों की याद से भरा है, सिर्फ प्रभु का कोई स्मरण नहीं है। हमारे मन में न मालूम कितनी चाहतें है, न मालूम कितनी वासनाएं हैं--अनगिनत। सिर्फ एक चाह अनुपस्थित हैः सिर्फ प्रभु को पाने की अभीप्सा नहीं है।
और तुम सब भी पा लो, प्रभु न मिले, तो सब मिला न-मिला हो जाएगा। सब कमाई, गंवाई हो जाती है। और तुम प्रभु पा लो, और कुछ भी न मिले, तो भी सब पा लिया। उसक पाने में ही पाना है; उसके खोने में ही खोना है।
प्रभु की याद का क्या अर्थ? क्या राम-राम की रटन से याद हो जाएगी? तब
तो तोते भी भवसागर पार हो गए होते! लेकिन तोतों को कोई भक्त नहीं कहता है। ऐसी थोथी याद से कुछ भी न होगा। ऐसी थोथी याद में उलझ गया आदमी तो, और
भी झंझट में पड़ जाता है। हृदय की गहराई में तो संसार की याद चलती है; ओंठों पर राम का नाम चलता है।
ओंठों में थोड़े ही तुम्हारी आत्मा है। ओंठों से दोहरा लेने से कुछ भी
न होगा। वहां चलना होगा, जहाँ तुम्हारे प्राण हैं। उस गहराई से उठनी चाहिए सुरति, सुमिरन। उस गहराई से, जहां तुम कर्ता भी नहीं होते हो; जहां तुम साक्षी मात्र होते हो।
ऐसा नहीं कि तुम राम का स्मरण करते हो, बल्कि तुम देखते हो कि राम का स्मरण उठ रहा है। तुम अपने भीतर एक चमत्कार होते देखते हो।
लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूं कि होंठ से पुकारा गया नाम किसी काम में नहीं आ सकता। ओठ से पुकारा गया नाम उस अंतिम स्मरण के लिए सीढ़ी बन सकता है; पर सीढ़ी पर रुक मत जाना।
प्रभु के स्मरण को भक्तों ने चार हिस्सों में बांटा है। पहला कहते हैं--ओंठ से स्मरण। वह ऐसे ही है, जैसे छोटा बच्चा स्कूल में सीखता है--ग गणेश का, ग गणेश का, ग गणेश का। ग का गणेश से क्या लेना-देना है? एक बार समझ जाएगा, फिर जिंदगी में दुबारा ऐसा नहीं पढ़ेगा कि ग गणेश का। जहां भी ग आएगा, तो नहीं कहेगा ग गणेश का। वह केवल निमित्त मात्र था।
बच्चे को कठिन है ग को समझाना। ग अपने आप में बच्चे के लिए बेबूझ है। गणेश के चित्र से ग जल्दी जुड़ जाता है।
बच्चा चित्र समझता है, शब्द नहीं समझता। शब्द समझाने के लिए चित्र से जोड़ देते हैं; जो बच्चा समझता है, उससे जोड़ देते हैं उसे, जो वह अभी नहीं समझता। इसलिए बच्चों की किताबों में रंगीन चित्र होते हैं।
अ आम का--यह अ तो छोटे में लिखा हो, लेकिन बड़ा आम का चित्र होता है। बच्चा चित्र को देखकर आम को जानता है। आम का स्वाद भी उसे मालूम है। आम उसने चखा है। यह आम शब्द उसके लिए बिल्कुल व्यर्थ है। इसमें न कोई स्वाद है, न कोई गंध है, न कोई रंग है। न इसे हाथ में उठा सकता, न इसके साथ खेल सकता। यह बिल्कुल कोरा है। तो अ आम का; ग गणेश का।
धीरे-धीरे बच्चे को याद बनने लगती है। गणेश के साथ ग जुड़ जाता है। बच्चे के लिए रास्ता मिल जाता है। लेकिन फिर यहीं अगर कोई रुक जाय और जिंदगी भर ग गणेश का और अ आम का
पढ़ता रहे और ऐसी कभी घड़ी न आए, जब विना चित्रों के समझ सके। तो भूल हो गयी। तो सीढ़ी सीढ़ी न रही; मार्ग का अवरोध हो गयी।
भक्ति के जगत में ऐसा बहुत लोगों के लिए हो गया। ओंठ से पुकारा गया नाम--ग गणेश का है। पहला पाठ, उनके लिए जिन्हें अभी कोई भक्ति का अनुभव

नहीं है। लेकिन वहाँ से आगे जाना है। वह शुरुआत है जरूर, लेकिन अंत नहीं।
फिर ओठ से थोड़े गहरे जाना है--कंठ।
तो भक्त कहते है, दूसरी सीढ़ी; कंठ। ओठ चुप हो जाएं; कंठ में गूंज उठे।
भीतर रहे गूंज, बाहर न आए।
बाहर किसको दिखलाना है? प्रभु है, तो तुम्हारे भीतर जो है उसे देख लेगा। और प्रभु नहीं है, तो तुम कितना ही चिल्लाओ, लाख चिल्लाआ, बैंडबाजे बजाओ, उससे कुछ न होगा। और तुम्हारे भीतर है, तो ही सार्थक है।
तुम्हारे मौन को भी प्रभु सुन लेगा। सच तो यह है कि मौन को ही सुनेगा।
तो धीरे-धीरे शब्द से मौन की तरफ जाना है। शब्द से शुरू करो, फिर निशब्द में डुबकी मारते जाओ।
पहले ओंठ--फिर कंठ। फिर कंठ से और नीचे चलो--तो हृदय। और हृदय से नीचे चलो--तो साक्षी।
जब चौथी जगह पहुँच जाओ, साक्षी की जगह पहुंच जाओ, जब तुम देखने लगो अपने भीतर राम का गुंजन उठते हुए, सुनने लगो; तुम करने वाले न रह जाओ, तब समझना कि याद हुई।
फिर वैसी याद सतत बनी रहती है--उठते-बैठते, सोते जागते, खाते-पीते; तुम कुछ भी करो, फिर वह याद नहीं जाती। और जब याद ऐसी सतत हो जाती है--अखंड, अविच्छिन्न, गंगा की धारा जैसी तुम्हारे भीतर बहने लगती है, तभी पहुंचे; तभी जानना पहुंचे। उस घड़ी ही स्मरण शुरू हुआ।
आज के सूत्र बड़े अमूल्य हैं। भक्ति के मार्ग पर चलने वाले के लिए जो
भी महत्वपूर्ण है, इन सूत्रों में आ गया है।
जागै न पिछले पहर ताके मुखड़े धूल।
सुमरै न करतार कूं, सभी गवावै मूल।।
"जागै न पिछले पहर... ।" भक्तों ने रात को चार पहरों में बांटा है। पहला पहर सभी जागे होते हैं। असल में पहले पहर में सोना मुश्किल है। रोज घर-घर में यह घटना घटती है। मां जबरदस्ती कर रही है बच्चे को कि "सो जा; अब नौ बज गए, अब सोने का समय हो गया।" और बच्चा सोना नहीं चाहता।
पहले पहर में सोना मुश्किल। पहले पहर में जागना सुगम। क्योंकि दिन भर जागे हैं, तो जाग सब तरफ छा गयी है। दिन भर सोचा है, विचारा है, काम किए हैं, उनकी धुन गूंजती रह गई है।
इसलिए पहले पहर में सोना मुश्किल। दिन भर की ध्वनियां आवाजें, शोरगुल, मन को शांत नहीं होने देते; शिथिल नहीं होने देते।
जितना तुम्हारा जीवन कार्य-कलाप से भरा होगा, उतना ही जल्दी सोना मुश्किल हो जाएगा। बिस्तर पर पड़े रहोगे और नींद न आएगी।
नींद कहां से आए? दिन पीछा नहीं छोड़ता। वह दिवस भर की धूल उड़ती ही चली जाती है। किसी से झगड़ लिए थे, वह झगड़ा अभी भी चल रहा है। किसी ने सम्मान किया था, वह गुदगुदी अभी भी बाकी है। कहीं झंझट में पड़ गए थे, वह झंझट पीछा नहीं छोड़ती।
दिन भर में बहुत से जाल फैलाए; दूसरों को फंसाने को फैलाए होंगे, अब उन जालों में खुद फंसे हो। दिन भर अभ्यास किया, अपने साथ जबरदस्ती की; तनाव पाले; बेचैनियां इकट्ठी कीं; अब उस ढेरी पर बैठे हो; अब नींद नहीं आती।
तो जितने कार्य-कलाप से भरा दिन होगा, उतनी ही निद्रा मुश्किल हो जाएगी--पहले पहर में।
जैसे-जैसे सभ्यता जटिल होती है, संस्कृति जटिल होती है, वैसे-वैसे लोगों की नींद खोने लगती है। पहले पहर में क्या, दूसरे पहर में भी नींद नहीं आती। रातें जगावन हो जाती हैं; निद्रा सपना हो जाती है।
करवटें बदलते हैं लोग बिस्तर पर; सोना चाहते हैं और नहीं सो सकते। सोना चाहते है थोड़ी देर को अंधकार में; लीन हो जाना चाहते हैं थोड़ी देर को अहंकार के बाहर; थोड़ी देर भूल जाना चाहते हैं संसार; लेकिन संसार इतना ज्यादा है... संसार के कारण नहीं, तुम्हारे ही कारण।
संसार ने तुम्हें नहीं पकड़ा है, तुमने ही संसार को पकड़ा है। लेकिन दिन
भर अभ्यास करते हो पकड़ने का; एकदम से छोड़ोगे कैसे? दफ्तर घर आ जाता है।

फाईलें सिर में चली आती हैं। खाते-बही साथ बैठे रहते हैं। तुम तो दिन भर करते हो, वही चलता रहता है--चलता जाता है। उसकी एक अनवरत धारा है।
जैसे भक्त को भगवान का नाम चलता भीतर, ऐसे तुम्हें संसार की याददाश्त चलती भीतर। जैसे तुम संसार की याददाश्त के मात्र साक्षी रह जाते हो; तुम्हारे किए कुछ नहीं होता; ऐसे ही भक्त परमात्मा की
याददाश्त का साक्षी रह जाता है। अच्छा है, संसार से समझोगे तो तुम्हें समझ में आ जाएगी बात।
जैसे संसार भुलाए नहीं भूलता, ऐसे भक्त को भगवान भुलाए नहीं भूलता।
और जैसे तुम्हें भगवान याद किए-किए नहीं आता, छुटक-छुटक जाता है; फिसल-फिसल जाते हो; वैसे भक्त को संसार याद किए-किए भी नहीं आता; छूट-छूट जाता है; भूल-भूल जाता है।
भक्त तुम से बिल्कुल विपरीत दशा में है।
यह जो रात्रि का पहला पहर है, इसमें सभी सामान्यतया जागते हैं। इसमें जागना विशिष्टता नहीं है। इसमें सो जाना विशिष्टता है। इसमें वही सो सकता है, जो निर्दोष है। इसमें वही सो सकता है, जिसकी संसार के ऊपर कोई बहुत आसक्ति, पकड़ नहीं; संसार का रोग जिसे नहीं है। इसमें भक्त ही सो सकता है। इसमें वही आदमी सो सकता है, जिसको मैं संन्यस्त कहता हूं।
संन्यस्त कभी भी सो सकता है और कभी भी जाग सकता है। जागने और सोने में संन्यासी को कोई बाधा नहीं है। जब चाहा, जैसा चाहा, वैसा हो जाएगा। आंख बंद की, तो सो जाएगा; आंख खोली, तो उठ आएगा। न तो उठते वक्त कोई बाधा अनुभव होगी, न सोते वक्त कोई बाधा अनुभव होगी।
निर्बाध जिसका चित्त हो गया, वही पहले पहर में सो पाएगा। छोटे बच्चे
सो जाते है; आदिवासी जंगल के सो जाते हैं; या साधु-संत सो जाते हैं। नहीं तो पहले पहर में सोना बहुत मुश्किल है।
फिर दूसरा पहर है। दूसरे पहर में भोगी जागता। दूसरे पहर में वासनाग्रस्त जागता। इसलिए जो संस्कृति बहुत भोगपूर्ण होती है, दूसरा पहर रात का राग-रंग का हो जाता है। जैसे पश्चिम में नाइट-क्लब हैं, नाच-गान है, होटल हैं, खाना-पीना है, पार्टी-उत्सव है। वह सब रात्रि के दूसरे पहर में।
सांझ को जल्दी सो जाने की बात, आदिम मालूम पड़ती है। असली जीवन तो रात में ही शुरू होता है। तो दूसरे पहर में भोगी जागता है।
इस तरह हम और भीतर चलेंगे इसमें, तो समझ में आएगा कि क्या प्रयोजन है। तीसरे पहर में चोर जागता है। चोर की तो तभी बनती है, जब सब सो गए हों। चोर के जागने का मतलब है कि जिनसे चुराना है, वे अब सो गए होंगे। दूसरे पहर में भोगी जागे होते हैं और उन्हीं के पास पैसा-लत्ता है; जो कुछ भी है, उन्हीं के पास है। पहले पहर में तो साधु सो सकते हैं। उनके पास कुछ है नहीं। चोर जाग कर भी क्या करे? साधु के पास कुछ है नहीं, चोर चुराएगा भी क्या! या साधु के पास जो है, उसमें चोर को उत्सुकता नहीं है।
एक झेन फकीर के घर एक चोर ने प्रवेश किया। फकीर अपना कंबल ओढ़ कर सोया था। यह देख कर कि चोर इतनी दूर से आया है... । अंधेरी रात, अभी चाँद उगने को ही है। इस फकीर की झोपड़ी खोजता हुआ, टटोलता हुआ जंगल में आ गया है।
फकीर बड़ा बेचैन होने लगा और घर में कुछ है नहीं। और जो है घर में, वह तो चोर चाहेगा नहीं। फकीर उंडेल सकता है अपनी समाधि; फकीर दे सकता है अपना अमृत; मगर उसके लिए तो चोर का पात्र तैयार नहीं है। और चोर उस लिए आया भी नहीं है। और बिन मांगे जो मिले, उसको हम समझ भी नहीं पाते।
अब यह बड़ा फकीर था, बुद्धत्व का क्या करे? चोर के हाथ तो जेब तक जाते हैं, हृदय तक नहीं।
और घर में कुछ है नहीं; फकीर बेचैन होने लगा कि बेचारा, इतनी दूर आया! कुछ और उपाय न
देख कर जब चोर जाने लगा, तो उसने कहाः "रुक भाई! मुझे क्षमा कर। पहले खबर की होती तो मैं कुछ इंतजाम कर लेता। तू इतनी दूर आए खाली हाथ जाए, हमें बड़ा दुख हो जाएगा। यह कम्बल लेता जा; यही मेरे पास है।"
फकीर नंगा था और कम्बल था।

चोर बड़ा झिझका, बड़ा घबड़ाया। ऐसे तो किसी आदमी के घर में कभी चोरी करने गया भी नहीं था, जो अपने से दे दे। और देखा कि फकीर नंगा है और ठंडी रात है; चांद उगने लगा था, तो फकीर दिखाई पड़ने लगा था कि फकीर नंगा है। खिड़की से चांद झांक रहा था। लेकिन चोर इतना डर गया कि कुछ कह न सका; जल्दी से कंबल ले कर जाने लगा। बाहर दरवाजे के निकला था कि फकीर ने कहाः "सुन, धन्यवाद तो दे दे! ऐसी जल्दी क्या? और कंबल तो थोड़े दिन काम आएगा, धन्यवाद बहुत दिन काम आएगा। धन्यवाद तो दे ही दे।"
चोर ने घबड़ाहट में धन्यवाद भी दे दिया; भाग गया। वर्षों बाद पकड़ा गया।
और चोरियां थी उसके नाम पर, उसी में यह कंबल भी पकड़ा गया। यह कम्बल प्रसिद्ध कम्बल था उस फकीर का। तो मजिस्ट्रेट पहचान गया। वह फकीर भी बुलाया गया।
मजिस्ट्रेट ने कहाः "अगर तुम कह दो कि इस आदमी ने चोरी की तुम्हारे घर,
तो हमें किसी और चोरी का प्रमाण खोजने की जरूरत नहीं रह जाएगी। यह काफी है।" लेकिन फकीर बोला, "नहीं, यह
आदमी और चोर! यह आदमी चोर जरा भी नहीं है। मैंने कंबल भेंट किया था। इसने धन्यवाद दे दिया था, बात खतम हो गयी थी। चोरी? नहीं, इस आदमी ने चोरी जरा भी नहीं की।"
चोर छूटा तो सीधा फकीर के घर पहूंचा। चरणों में गिर पड़ा और कहा, "उस दिन तो चूक गया, क्योंकि मेरी कोई दृष्टि न थी, लेकिन तुम उस रात से मेरे पीछे लगे रहे हो। यह तुम्हारा कंबल क्या है! यह तुम्हारी याद दिलाता रहा। वह तुम्हारा शांत चेहरा; वह चाँद की रोशनी में तुम्हारा नग्न खड़ा होना; वह तुम्हारा पुकारना और कम्बल भेंट देना! और वह तुम्हारा कहना कि धन्यवाद दे जा। कंबल तो थोड़े बहुत दिन में खत्म हो जाएगा; धन्यवाद आगे तक काम आएगा। वह फिर मेरा पीछा करता रहा। वे तुम्हारी आंखें मैं भूल न सका। वह तुम्हारी आवाज, वह तुम्हारी करुणा मैं भूल न सका। आज सच में ही चोरी करने आया हॅूँ। लेकिन आज वही, जो तुम्हारे पास है--दो। अब तुम्हारा हो कर आया हूँ।"
फकीर के पास जाओगे, तो चुराने योग्य तो बहुत है। ईजिप्त में कहावत है
कि जब तक शिष्य चुराने में कुशल न हो, गुरु से कुछ पा न सकेगा। महत्वपूर्ण कहावत है।
गुरु के पास बहुत कुछ है, लेकिन पहले तो उसे देखने की दृष्टि चाहिए, उसकी चाहत चाहिए। और फिर गुरु तुम्हें दे नहीं सकता। क्योंकि कुछ बातें ऐसी हैं जो दी नहीं जा सकती, सिर्फ ली जा सकती हैं। तुम चाहो तो ले लो, तुम न चाहो तो कोई तुम्हें दे नहीं सकता।
गुरु तो बहती गंगा है। तुम चाहो पी लो, तुम न चाहो तो किनारे पर खड़े प्यासे रह जाओ। और गंगा से तुम जब पीते हो, तब चोरी ही है। क्योंकि गंगा से आज्ञा भी कहां लेते हो? और आज्ञा लेने का उपाय भी कहाँ है? ऐसी ही चैतन्य की धारा है। लेकिन तुम्हें जब चाहत होगी तब... ।
तो पहले जो सो जाते हैं, उनके पास तो चोरों को चुराने को कुछ है नहीं।
और दूसरे पहर जिनके पास है, वे तो जागे ही रहते हैं, पहले पहर, दूसरे दूसरे पहर जागे ही रहते हैं। जब भोगी सो जाते हैं, तब चोर की घड़ी आती है। रात का तीसरा पहर चोर जागता है। और रात के चौथै पहर साधु जागता है, संन्यासी जागता है।
चौथा पहर सब से कठिन पहर है जागने के लिए। पहला पहर सब से सरल पहर है जागने के लिए। सभी जागते हैं। सिर्फ साधु ही सो सकते हैं।
चौथा पहर सबसे कठिन है, जागने के लिए, क्योंकि नींद सबसे गहरी होती है चौथे पहर में। सभी सोते है, सिर्फ साधु ही जाग सकता है।
अब इस बात को भी ठीक से समझ लो। हमने चार अवस्थाएं बांटी हैं चेतना की। पहली अवस्था को कहते हैंः जाग्रत। तथाकथित जाग्रत; जिसमें हम जागे हुए हैं। तथाकथित इसलिए कि यह कोई असली जागरण नहीं है। बस, आंखें खुली हैं। जागे क्या खाक!

बुद्ध जागते हैं। फिर तो आंख भी बंद हो, तो भी जागे रहते हैं। और तुम
तो आंख भी खुली हो, तो भी सोए ही हुए हो। लेकिन जागते से लगते हो--जागे-जागे लगते हो, इसलिए तथाकथित जागरण। पहली घड़ी; पहला भेद--चेतना का।
दूसराः स्वप्न। जब तुम सोए हो, लेकिन एकदम सोए भी नहीं, सपने चल रहे हैं। तुम्हारा जागरण भी जागरण नहीं, तुम्हारा सोना भी सोना नहीं। सांसारिक आदमी बड़ी उलझन है। जागते में सोया रहता है, सोते में जागता रहता है। सोन में भी पूरा नहीं होता; सपने चल रहे हैं!
और सपने क्या हैं? तुम्हारे दैनंदिन जीवन का ही प्रतिफलन हैं। वे ही आवाजें, वे ही रंग, वे ही ढंग, फिर-फिर नये रूप लेते हैं। मन उन्हीं-उन्हीं में बार-बार लौट जाता है। अब वस्तुएं नहीं हैं, तो विचार ही काफी है। संसार बंद हो गया है, क्योंकि आंख बंद है। तो तुम अपना ही संसार फैला लेते हो। चल-चित्र देखने जाने की जरूरत नहीं है। इतना तो देखते हो रोज तुम चल-चित्र! मन के परदे पर कितने चित्र देखते हो? तो दूसरी अवस्था हैः स्वप्न।"
तीसरी अवस्था हैः सुषुप्ति। ऐसे सो गए कि स्वप्न भी न रहा। लेकिन स्वप्न के साथ ही साथ तुम भी चले गए; तुम भी न बचे। सुषुप्ति का अर्थ हैः न स्वप्न रहा, न सोने वाला रहा। तुम्हें अपनी याद भी न रही।
तुम्हें अपनी थोड़ी-थोड़ी याद तभी रहती है, जब कुछ अड़चन होती रहे। बाहर कुछ अड़चन हो, तो तुम्हें कुछ याद रहती है। भीतर कुछ अड़चन हो, तो तुम्हें थोड़ी याद रहती है। अड़चन में ही तुम्हें याद रहती है। काँटा चुभता रहे, तो तुम्हें थोड़ी याद रहती है। कांटा बिल्कुल न चुभे, तो तुम बिल्कुल बेहोश हो जाते हो; फिर तुम्हें कुछ होश रहता ही नहीं।
संस्कृत में प्यारा शब्द है--वेदना। वेदना के दो अर्थ होते हैंः दुख
और बोध। वेदना उसी धातु से बना है, जिससे वेद; जिससे विद्वान, बोध, होश।
यह बड़े मजे का शब्द है--वेदना। और इसके दो अर्थ हैं, जिनमें कोई ताल-मेल नहीं दिखाई पड़ता। एक अर्थ हैः दुख; और एक अर्थ हैः जागरण। मगर ताल-मेल है। जिसने भी यह शब्द गढ़ा होगा, वह भाषा-शास्त्री ही नहीं रहा होगा। उसने जीवन के शास्त्र को समझा होगा--कि तुम्हारा जो बोध है तथाकथित, तुम्हारा जो वेद है, वह तुम्हारे दुख पर निर्भर है। इधर दुख गया कि उधर बोध गया। जागे रहते हो, तो बाहर का दुख हैः यह हवाई जहाज जा रहा है, यह ट्रेन जा रही है, चह रास्ते पर शोरगुल हो रहा है, यह बच्चा चिल्ला रहा, है; कोई रो रहा है; कोई झगड़ रहा है। यह सब उपद्रव चल रहा है। इस उपद्रव के कांटे चुभे रहे हैं, तो तुम्हें थोड़ी सी याद बनी रहती है, धीमी-धीमी, कि मैं हूं। यह भी बहुत धीमी-धीमी, बहुत भीनी-भीनी। किसी काम आ जाए, ऐसी नहीं। बस, जरा सी एक झलक बनी रहती है, एक टिमटिमाती सी ज्योति बनी रहती है कि मैं हूं। लेकिन इसमें होने के लिए सब उपद्रव चलता रहता है। तो इसकी चोट पड़े, तो तुम्हें याद रहती है।
रात सपने में भी तुम्हें याद रहती है। पहाड़ से फेके जा रहे हो और एक चट्टान तुम्हारी छाती पर गिर रही है, तो तुम्हें याद रहता है। कोई बेचैनी बनी रहती है सपने में, तो याद रहती है।
सुषुप्ति का अर्थ हैः न तो बाहर को कोई बेचैनी रही, न भीतर को कोई बेचैनी रही। लेकिन जैसे हो चैन आया, वैसे ही तुम गए। सुषुप्ति में तुम मूर्च्छितहो जाते हो। सुषुप्ति यानी मूर्च्छना!
ये तीन सामान्य दशाएं हैं। चौथी दशा का नाम है--तुरीय। तुरीय का अर्थ होता है सिर्फ--चौथी दशा। शब्द का अर्थ होता है--चौथा। उसको कोई नाम नहीं दिया है; क्योंकि हमारे पास कोई नाम देने योग्य शब्द नहीं है। तो उसको सिर्फ चौथी दशा कहां है--तुरीय।
तुरीय का अर्थ होता हैः बेचैनी जरा भी न रही--न बाहर की, न भीतर की; मगर होश पूरा है।
वेदना तो न रही, वेद पूरा है। अब होश के लिए किसी चोट की जरूरत नहीं है। अब बिना चोट के होश है।
यह जो तुरीय की अवस्था है, यह जागरण की, यह वास्तविक जागरण की अवस्था है। और यह बड़ी अनूठी अवस्था है। यह ऐसी अनूठी अवस्था है कि शरीर सो जाता

है, मगर तुरीय की अवस्था में जो व्यक्ति है, वह जागा रहता है। शरीर ही सोता है फिर, अंतस-चेतना कभी नहीं सोती। अंतसचेतना जागी ही रहती है। वह दीया जलता ही रहता है। वह अखंड जलता है।
यें चार अवस्थाएँ हैं। इन्ही चार के आधार पर रात को भी ज्ञानियां ने चार अवस्थाओं में बाँट दिया है।
पहली साधारण अवस्था हैः जागरण की--तथाकथित जागरण की। सभी जागे रहते हैं। दूसरी अवस्था हैः स्वप्न जैसी--भोग की। भोग यानी स्वप्न। भोग का अर्थ होता है--सपना। कोई धन का सपना देख रहा की इतना धन हो जाए, तो मजे में हो जाऊंगा। कोई देख रहा हैः ऐसी सुंदर स्त्री मिल जाए, ऐसा सुंदर पुरुष मिल जाए; ऐसा पद मिल जाए, ऐसा कुछ हो जाए--तो सपना है। भोग यानी सपना।
दूसरी अवस्था सपनों से भरे हुए लोगों की। और तीसरी अवस्था पाप की, चोरी की, हत्या की, घृणा की, क्रोध की। वह सुषुप्ति की अवस्था है। सब होश खो गया। उतना भी होश न रहा, जितना सामान्य आदमी को होता है; वह भी गया। तो तीसरी अवस्था चोर की, हत्यारे की, अपराधी की।
और चौथा जो रात का पहर है, वह समानातर है तुरीय के। अगर चौथे में जाग गए, तो तुरीय में जाग गए। अब यह जो चौथा पहर है, यह एक तरफ से और भी समझ लेना।
नींद, वैज्ञानिकों के हिसाब से, रात के अंतिम पहर में सर्वाधिक गहरी होती है। तीन से पांच या चार से छह। प्रत्येक व्यक्ति को थोड़ा-थोड़ा भेद होता है, लेकिन दो घंटे जो अंतिम हैं, वे सर्वाधिक गहरे होते हैं। स्वप्न भी नहीं रह जाता। तो परम शांति होती है। यद्यापि तुम भी नहीं रह जाते, लेकिन फिर भी शांति होती है।
जिस आदमी को रोज दो घंटे सुषुप्ति के मिल जाते है।, वह तरोताजा हो कर उठता है। सुबह उसके जीवन में तुम लहर ताजगी की देखोगे। थकान गई, थका- मांदापन गया। फिर जीवन का उल्हास, फिर उत्साह, फिर उत्सव। रात ने चिंताएं छीन लीं। रात ने सब दर्द छीन लिए। रात मलहम-पट्टी कर गई। रात सब घाव भर गयीं। वह जो दो घंटे तुम खो गए थे बिल्कुल, उन खो गए दो घंटो में प्रकृति ने बहुत सा काम कर दिया। जो-जो तुमने खराब कर लिया था पिछले दिन, प्रकृति सब ठीक जमा गयी; सब व्यवस्था बिठा गयी। तार ढीले पड़ गए थे वीणा के; कस गई। तार ज्यादा कस गए थे, तो ढीले कर गयी। लेकिन संतुलन बिठा गई; साज ठीक कर गयी। इसलिए सुबह तुम साज की अवस्था में होते हो।
तुम सुबह देखते हो? तुम सुबह और ही ढंग के आदमी होते हो, अगर रात ठीक
से सो लिए। तुम ज्यादा प्रेमपूर्ण होते हो; ज्यादा दयापूर्ण होते हो; ज्यादा करुणापूर्ण होते हो। तुम्हें वृक्ष ज्यादा हरे दिखाई पड़ते है; फूल ज्यादा सुर्ख दिखाई पड़ते हैं, पक्षियों के गीत तुम्हारे कानों में स्पष्ट सुनाई पड़ती है। सूरज, सूरज की रोशनी, आकाश की नीलिमा--सब आकर्षित करती है। सुबह फिर तुम ऐसे हो जैसे छोटा बच्चा होता है। थोड़ी देर को ही सही, शायद क्षण भर का, दो क्षण को, कुछ पलों को, मगर तुम सुबह बड़े ताजे होते हो।
सुबह तुम से कोई कहे चोरी करो, तो तुम शायद न कर पाओ। सुबह तुमसे कोई कहे कि किसी का कुछ छीन लो, तो शायद तुम न छीन पाओ।
सुबह देना सरल है, छीनना कठिन है। देना आसान है, छी-झपट मुश्किल है।
सुबह प्रार्थना सरलता से हो सकती है। यही प्रार्थना सांझ होते-होते मुश्किल हो जाएगी। सुबह तुम आदमी पर भरोसा कर सकते हो, क्योंकि अपने पर भरोसा है। सांझ आते-आते तो आदमी पर अविश्वास हो जाता है, क्योंकि अपने पर अविश्वास हो जाता है। सांझ तक तो तुम हार चुके, दौड़ चुके, गिर चुके, धूल-धूसरित हो चुके। सब चेष्टा कर ली और विषाद हाथ लगा; अब कैसा भरोसा।
सुबह तुममें ताजगी होती है, आत्मविश्वास होता है, भरोसा होता है। वह
दो घंटे जो गहरी नींद आ जाती है... । वैज्ञानिक हिसाब से... ।
और वैज्ञानिक हिसाब भक्तों और योगियों के हिसाब से बिल्कुल मेल खा रहा है। वैज्ञानिक हिसाब से दो घंटे आदमी के शरीर का तापमान दो डिग्री नीचे गिर जाता है। सुबह-सुबह... रात के जाते-जाते वह तुम्हें जो थोड़ी हलकी- हलकी सरदी, मीठी-मीठी सरदी लगती है और एक कम्बल और खींच लेने का मन होता है,

उसका कारण इतना ही नहीं कि सुबह ठंडी होती है। उसका असली कारण यह है कि तुम्हारे शरीर का तापमान दो डिग्री नीचे गिर जाता है। तुम थोड़े ठंडे हो गए होते हो। तुम थोड़े शीतल हो गए हो। वह जो मन में चलती हुई उधेड़बुन थी, जो तुम्हें गर्म रखती थी, वह जो भीतर चलता हुआ ज्वर था मन का; वह जो तुम्हें पूरा का पूरा उत्तप्त रखता था, वह चला गया। शोरगुल बंद हुआ; बाजार समाप्त हुआ; सपने भी जा चुके। तुम सब भाँति शीतल हो गए। उस शीतलता के कारण, उस मन की शीतलता के कारण तुम्हारी देह भी शीतल हो जाती है। दो डिग्री वस्तुतः तापमान नीचे गिर जाती है। और यही दो घंटे सर्वाधिक गहरी नींद के घंटे है। ये दो घंटे अगर तुम सो लिए ठीक से, तो सुबह तुम ताजे अनुभव करोगे। स्वस्थ मन हो जाएगा, स्वस्थ तन हो जाएगा।
ये दो घंटे अगर तुम्हें कोई जगा दे, इन दो घंटो में अगर कोई बाधा डाल दे, तो तुम दिन भर चिड़-चिड़े और परेशान रहोगे। छह घंटे सो लिए हो रात, वे छः घंटे काम नहीं आएंगे। ये दो घंटे खराब हो गए तो, बस, अड़चन हो जाएगी। ये दो घंटे भी सो लो रात में और तुम रात भर जागते रहो, तो भी काम चल जाएगा।
ये दो घंटे, वैज्ञानिक कहते हैं, अत्यंत आवश्यक हैं, क्योंकि इन्हीं
दो घंटों में तुम्हारी सारी चेतना विलुप्त हो जाती है अंधकार में। अहंकार खो जाता है। बोध सो जाता है। जब तुम नहीं होते, तभी परमात्मा तुम पर काम कर सकता है, प्रकृति तुम पर काम कर सकती है; क्योंकि तुम बाधा नहीं देते। इसलिए तो जब कोई आदमी बीमार होता है, तो डाक्टर की पहली फिकर होती है
कि उसे नींद आ जाए। क्योंकि नींद में ही प्रकृति उसको स्वस्थ कर पाएगी। अगर नींद न आयी, तो वह स्वस्थ हो ही न सकेगा। दवाएं कुछ भी न कर सकेंगी।
इसलिए नींद की दवाएं देते हैं मरीज को। वह सो जाए, तो परमात्मा के कुशल हाथ से उसे फिर से ठीक कर जायें, साज को फिर बिठा दें। इसने तो सब खराब कर लिया है; अब परमात्मा का ही सहयोग मिले, तो ठीक हो सकता है।
नींद में चुपचाप तुम्हारे भीतर प्रकृति काम करती है।
तो वैज्ञानिक कहते हैंः ये दो घंटे नींद के लिए बड़े अनिवार्य हैं।
लेकिन अब तुम थोड़े हैरान होओगे। संतों ने सदा से कहा है, ये दो घंटे याद के लिए हैं। ऊपर से तो दिखाई पड़ेगा कि यह तो विपरीत बात हो गयी, क्योंकि अगर दो घंटे याद करना है, तो जागना पड़ेगा। और जागना पड़ा, तो फिर दिन भर चिड़चिड़ापन रहेगा और प्रकृति को मौका न मिलेगा। यह ऊपर की ही बात है। संतों ने कहा, उसके पीछे कारण है।
ये दो घंटे सर्वाधिक गहरी नींद क हैं, ये सर्वाधिक गहराई के भी हैं।
इन दो घंटों में तुम अपने हृदय से भी नीचे की गहराई में उतर जाते हो।
पहले पहर में सिर में भटकते रहते हो। दूसरे पहर में कंठ में आ जाते हो। तीसरे पहर में हृदय में आ जाते हो। चौथे पहर में हृदय से नीचे उतर जाते हो; अपने अंतसचेतन में डूब जाते हो।
तो संतों ने कहा कि ये दों घंटे जैसे नींद के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं, सुषुप्ति के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं, वैसे ही जागरण के लिए भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। क्योंकि वहीं से जागरण लाना है। उसी चौथे तल से, उसी तुरीय की अवस्था से, जागरण को खींचना है।
लेकिन अगर तुम संतों के ढंग से जागो, तो नुकसान न होगा; चिड़चिड़ापन नहीं आएगा। क्यों? क्योंकि संतत्व का पहला सूत्र ही यह है कि अहंभाव न हो। अगर अहंभाव न हो और तुम जाग जाओ इन दो घंटो में, तो जो लाभ नींद से होना था, वह तो हो ही जाएगा, क्योंकि वह अहंभाव के न होने के कारण होता था। और जो लाभ जागरण से होना है, परम लाभ, वह भी हो जाएगा।
और ये दो घंटे सर्वाधिक महत्वपूर्ण घंटे हैं तुम्हारे चौबीस घंटे में। यह चौबीस घंटे का जो वर्तुल है, इसमें ये दो घंटे सर्वाधिक मूल्यवान हैं। यहाँ तुम परमात्मा के निकटतम होते हो। अगर तुम सो गए गहरे, तो परमात्मा को मौका मिलता है कि तुम्हें ठीक कर दे। और अगर जाग गए गहरे, तो परमात्मा, से मिलन हो जाता है। क्योंकि परमात्मा करीब होता है। सो गए तो भी लाभ होता है, क्योंकि परमात्मा का हाथ तुम्हारे भीतर जा कर काम कर देता है। जाग गए, तब तो कहना ही क्या! हाथ में हाथ पकड़ लेते हो। जाग गए, तो

परमात्मा को रंगे-हाथ पकड़ लेते हो। जाग गए तो मिलन हो जाता, मुलाकात हो जाती। और एक बार मुलाकात हो जाए, तो यह मुलाकात फिर चौबीस घंटे जारी रहती है। नहीं सांझ नहीं भोर... । फिर सुबह-सांझ का कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर दिन-रात कहां? फिर तो सब एक सा हो जाता है।
एक दफे उसका हाथ पकड़ में आ जाए, एक दफे पहचान हो जाए, तब तो तुम उसे जगह-जगह पा लोगे, पत्नी में भी पा लोगे, बेटे में भी पा लोगे, वृक्ष में, पहाड़-पर्वत में भी पा लोगे। तब तो उसके सिवाय कोई है ही नहीं। एक दफे पहचान ही होने की बात है। प्रत्यभिज्ञा हो जाए, एक बार आंख में आंख जुड़ जाए, नजर से नजर मिल जाएं, फिर तुम सब जगह पहचान लोगे।
यह जो चौथा पहर है, निश्चित ही बहुमूल्य है। लेकिन संत कहते हैं, जागने का ढंग है उस चौथे पहर में। ऐसे ही जाग जाओगे, तो चिड़चिड़े हो जाओगे। प्रभु-स्मरण में जागो, प्रार्थना में जागो, ध्यान में जागो।
उस चौथे पहर को रात का ध्यान बना लो। उस समय ध्यान जितनी सुगमता से हो जाएगा, फिर कभी न हो पाएगा। इसलिए पतंजलि ने कहा है--समाधि, सुषुप्ति के बहुत करीब है।
पतंजलि ने तो बड़ी हिम्मत की घोषणा की है कि समाधि और सुषुप्ति एक जैसी हैं, जरा-सा फर्क है। जरा सा कहो या बहुत बड़ा कहो--एक ही बात है। फर्क इतना है कि सुषुप्ति में होश नहीं होता और समाधि में होश होता है; बाकी सब एक जैसा है।
सुषुप्ति में भी तुम नहीं होते, समाधि में भी तुम नहीं होते। सुषुप्ति में भी सब शीतल हो गया होता है; समाधि में भी सब शीतल हो गया होता है। सुषुप्ति में सारा जगत खो गया और समाधि में भी सारा जगत खो गया। सुषुप्ति में विचार न रहे, स्वप्न न रहे कोई अंतर्वस्तु न रही; सिर्फ चैतन्य मात्र रहा। और वैसा ही समाधि में। लेकिन सुषुप्ति में चेतना सोई हुई होती है; समाधि में जागी हुई होती है। बस, इतना ही फर्क है।
सुषुप्ति से समाधि निकटतम है। सुषुप्ति द्वार है समाधि का--अगर समझ हो।
इसलिए चौथे पहर में जागने की बात संतों ने सदा से कही है। और इसी देश में नहीं कही है। क्योंकि इसका देश से कोई संबंध नहीं है। यह मनुष्य की अंतर्प्रकृति के समझने के कारण है।
चाहे चीन, और चाहे इजराइल और चाहे भारत, दुनिया के किसी भी कोने में जब
भी लोगों ने परमात्मा की खोज की है, उनको यह बात समझ में आ गयी कि चौबीस घंटे में ये दो घंटे जितनी सरलता से प्रवाह होता है परमात्मा में, फिर कभी नहीं होता। इनसे विपरीत घंटे भी हैं। एक वर्तुल है चौबीस घंटे का।
जैसे समझो कि सुबह चार से छह बजे तक अगर तुम्हारा तापमान दो डिग्री नीचे गिर जाता है और तुम सुषुप्ति में खो जाते हो; तो जैसे चार से छह सुबह परमात्मा सर्वाधिक निकट होगा; चार से छह शाम परमात्मा सर्वाधिक दूर होगा। वह दूसरा विपरीत बिंदु है।
तो जिसने ठीक से यह खोज लिया कि कब परमात्मा मेरे निकटतम है, उसे यह भी पता चल जाएगा कि कब मैं परमात्मा से दूरतम होता हूं।
और तब एक सूत्र और तुम्हें याद दिला दूं। अगर तुम्हें यह पक्का पता चल गया की चार से छह... । उदाहरण के लिए कह रहा हूं। किसी का होगाः तीन से पांच, किसी का होगाः दो से चार; किसी का होगाः चार से छह। मगर कहीं चार के आस-पास--इस तरफ या उस तरफ। दो घंटे उस तरफ, तो दो से चार; दो घंटे इस तरफ, तो चार से छह। दो बजे रात और छह बजे सुबह के बीच कभी वे दो घंटे होते हैं।
अगर तुम्हें उन दो घंटों का पता चल गया, तो एक तो यह बात समझ में आ गई
कि वे दो घंटे पूरे के पूरे प्रभु-स्मरण में जाने चाहिए। क्योंकि जब सब से करीब हो, तभी कर लो बातचीत; तभी कर लो गुफ्तगू; तभी कुछ कह लो, कुछ सुन लो। कुछ निवेदन करना हो, तो निवेदन कर दो। इस समय संबंध बहुत स्पष्ट है। आमना- सामना हो रहा है; कही गई बात पहुंच जाएगी। जो संदेश देना चाहते हो--सुन लिया जाएगा। और उस तरफ से अगर कोई उत्तर आया, तो भी पहुंच जाएगा। अन्यथा तुम्हारी प्रार्थना पहले तो पहुंच नहीं सकती, अगर बहुत दूर से पुकारो।

अगर पहुंच भी जाए और वहां से उत्तर आए, तो तुम न सुन पाओंगे; दूरी बहुत होगी। बीच में हजार बाधाएं होंगी--एक।
और दूसरी बातः ठीक उससे विपरीत; अगर चार से छह सुबह तुम्हारा समय है-- चौथा पहर, तो शाम चार से छह तुम्हारा समय है, जब तुम परमात्मा से सर्वाधिक दूर होओगे। तब भी होश रखना। क्योंकि यह चार से छः, यह जो शाम का समय है, यही तुम्हारे पाप का समय होगा। इसको तुम सावधानी से बचाना। इस समय ही तुम से भूल-चूक होगी। इस समय ही तुमसे गलतियां हो जायेंगी, जिनके लिए जीवन भर पछतावा होगा। क्योंकि इस समय तुम सर्वाधिक दूर रहोगे परमात्मा से। इसी समय तुमसे अपराध हो सकता है; इसी समय तुम से क्रोध हो सकता है, घृणा हो सकती है, ईर्ष्या हो सकती है। इस समय तुम सबसे ज्यादा खिन्न रहोगे। इस समय तुम सब से ज्यादा उत्तप्त रहोगे। इसी समय तुम्हारा सिर विक्षिप्त रहेगा। अगर अपना सूत्र साफ हो गया, तो सुबह के दो घंटे परमात्मा की याद में बिता देना; और ये सांझ के दो घंटे भी परमात्मा की याद में बिताना। हालांकि परमात्मा तक आवाज पहुंच नहीं पाएगी। मगर बिताना परमात्मा की याद में ये दो घंटे भी, ताकि कुछ और करने को उपद्रव सुविधा न रहे। कम से कम द्वार-दरवाजे बंद कर के शांत बैठने की कोशिश करना।
और तीसरी बात इस संबंध मेंः जिस दिन इन दो घंटो में जो सब से दूर हैं, तुम्हें ऐसा हो अनुभव होने लगे, जैसा सुबह के दो घंटों में होता है, तो समझना की पहुंच गए। अब कोई फर्क नहीं पड़ेगा--नहीं सांझ नहीं भोर... ।
जब सर्वाधिक दूर थे, तब भी अगर ऐसा अनुभव में आने लगे कि उतने ही करीब, जितने सुबह, तो क्रांति घट गयी। इसी दिन असली भक्त का जन्म होता है।
सुनो ये शब्दः "जागै न पिछले पहर, ताके मुखड़े धूल।" जो सुबह के ब्रह्ममुहुर्त मे न जागे, जो उस अपूर्व समय का उपयोग न कर ले, अगौरव हाथ लगेगा; अपमान हाथ लगेगा, अप्रतिष्ठा हाथ लगेगी। "ताके मुखड़े धूल।" मृत्यु ही हाथ लगेगी, अमृत हाथ न लगेगा। तो धूल में धूल एक दिन गिर जाएगी और सारा अवसर खो गया।
इस धूल से फूल भी पैदा हो सकता था, लेकिन तुमने गँवा दिया अवसर। धूल ही
थे और धूल ही रहे। इसके पहले की धूल धूल में गिर जाए, फूल को पैदा कर लो। इस अवसर का उपयोग कर लो।
इसके पहले कि वीणा टूटे, उसमें छिपे संगीत को मुक्त कर लो। इसके पहले
की कंठ नष्ट हो जाए, प्रभु का गीत गुनगुना लो। इसके पहले की हृदय की धड़कन बंद हो, धड़कन-धड़कन में उसके सुमिरन को गुंजा लो।
वीणा है यह देह और यह वीणा एक हो प्रयोजन से है कि इसमें परमात्मा का गीत उठ सके। इसमें दिव्य गीत उठ सके।
जागै न पिछले पहर, ताके मुखड़े धूल।
सुमरे न करतार कूं, सभी गवावै मूल।।
ब्याज की तो बात ही क्या करो, उसका मूल भी खो जाता है, सभी कुछ खो जाता है। जिसने करतार को याद न किया, जिसने अपने बनाने वाले को याद न किया, जिसने अपने मूल-स्रोत की स्मृति न की... ।
"पिछले पहरे जागि करि, भजन करै चित लाय।" वह जो पिछला पहर है, जाग जाओ, भजन करो। और भजन यांत्रिक न हो; चित ला कर करो।
नहीं तो यांत्रिक भजन करने वाले भी हैं। उनको मैं जानता हूँ। उठ कर भी बैठ जाते हैं; झपकी भी खा रहे हें, राम-राम भी दोहराए चले जाते हैं! राम-राम ऐसे ही दोहराए चले जाते हैं--यंत्रवत! नहीं कुछ अर्थ है उसमें, नहीं प्राणों का कोई संबंध है। बस, ओठ तक की बात है। ऐसा मत करना इससे तो गहरी नींद सो लेना--वही अच्छा। नहीं तो दिन भर चिड़-चिड़े रहोगे!
तुमने देखा? सुबह जल्दी उठ आने वाले लोग, धार्मिक कहलाने वाले तथाकथित लोग, दिन भर तुम उन्हें चिड़-चिड़ा पाओगे। अगर तुम्हारे घर में एकात बूढ़े-बूढ़िया को यह झंझट हो जाए सुबह जगने की, ब्रह्ममुहुर्त में याद करने की, तो तुम पाओगेः वह दिन भर बदला लेता है। जैसे तुम्हारा कुछ कसूर है। वह चिड़चिड़ा रहेगा, नाराज रहेगा; हर छोटी-छोटी बात में क्रोध से भर जाएगा। बहाने खोजेगा। रोष से भर जाने के लिए तैयारी ही दिखाता रहेगा। हर चीज में

भूलें खोज लेगा। वह दिन भर चिड़चिड़ापन बताएगा। घर में एक आदमी धार्मिक हो जाए, तो घर भर की मुसीबत हो जाती है।
मेरे एक पड़ोस में रहने वाली एक महिला ने एक बार मुझे आ कर कहा कि "मेरे पति आपके पास आते हैं। आप उनको समझा दें। वे आपका ही मानेंगे, किसी का मान भी नहीं सकते। वे किसी को गिनते ही नहीं। हम तो परेशान हो गए हैं। अभी बच्चों की परीक्षा पास आ रही है और वे सुबह से उठ आते हैं। सुबह नहीं, आधी रात--दो बजे--और जपजी का पाठ करते हैं!"
सरदारजी थे। मजबूत आदमी; वे मोहल्ले भर को जगा देते थे। उनकी पत्नी ने कहा, "मोहल्ला भर भी नाराज है। कोई जपजी सुनना नहीं चाहता--दो बजे रात! कोई कुछ कहता भी नहीं, क्योंकि अब किसी के धर्म में क्या बाधा देनी? लेकिन लोग मुझे आ कर कहते हैं कि समझाओ अपने पति को। और अब तो बच्चां कि परीक्षा आ रही है, तो बच्चे बहुत परेशान हैं। न वे पढ़ सकते हैं, न सो सकते हैं। और यह आधी रात का उपद्रव... । और वह किसी की सुनते नहीं, क्योंकि वे कहते हैंः धर्म में बाधा! तो उनके सामने तो कोई कह नहीं सकता।"
वे आए तो मैंने उनसे पूछा। वे आते थे मेरे पास। मैंने पूछा, "चरणसिंह! मामला क्या है? आधी रात उठ आते हो? वे बोले, आधी रात नहीं, ब्रह्ममुहुर्त में उठता हूं; दो बजे सुबह उठता हूं।" मैंने कहाः "दो बजे सुबह? सारी दुनिया उसको आधी रात मानती हैं। और करते क्या हो?" उन्होने कहाः "कुछ नहीं करता; जपजी का पाठ करता हूं। आपसे किसने शिकायत की? मेरी पत्नी आयी थी? उसकी नहीं सुहाता। धार्मिक नहीं है। संस्कार नहीं हैं। नहीं तो आह्लादित होती कि जपजी का पाठ बिना किए सुनने मिल रहा है।"
मैंने उनसे पूछा कि "मुझे यह बताओ कि दिन भर तुम्हारी क्या दशा रहती है? क्योंकि वह कसौटी है।" तो उन्होंने कहा, "चिड़चिड़ापन रहता है; नाराजगी रहती है। हर चीज पर क्रोध रहता हैं। उसी को मिटाने के लिए तो दो बजे उठ कर जपजी का पाठ करता हूँ। उसी को मिटाने के लिए!" मैंने कहा, "उसी की वजह से यह हो रहा है। यह तुम छोड़ो।"
उनको तो भरोसा न आया। उन्होंने कहा, "आप और कहते हैं छोड़ो?" मैंने कहा, "इससे न तुम्हें लाभ हो रहा है, न किसी और को लाभ हो रहा है" तुम जिद्द में पड़े हो। दिन में नींद आती है; दिन भर नींद आती है। आएगी ही। अब दो बजे रात से उठ जाओगे... । सोते कब हो?" बोले कि "ग्यारह साढ़े ग्यारह। बस, इससे ज्यादा देर नहीं।"
मगर ग्यारह, साढ़े ग्यारह, बारह बजे सोओगे और दो बजे उठ जाओगे, तो परेशानी रहेगी। मैंने उनके दफ्तर में भी पूछ-ताछ करवाई। मिलिटरी में थे वे। उनके कैप्टन भी मेरे पास आते थे। उनको मैंने पूछा। उन्होंने कहा, "हम भी परेशान हैं। यह आदमी झपकी ही खाता रहता है। यह टेबल पर बैठा है; जरा कोई न
देखे कि बस, सो गया! और हर चीज में भूल-चूक करता है। ऐसे है धार्मिक। टेबल पर भी बैठा-बैठा जपजी... ।
अंततः वे पागल हुए। मैंने उन्हें बहुत समझाया कि ये पागलपन के लक्षण हैं। मगर उन्होंने कहा, "अखंड तो करना चाहिए पाठ।"
तो वे सब काम करते हुए भीतर जपजी करते रहते। एक दिन हालत बिगड़ गई।
रास्ते पर चले आ रहे थे; बस वाले ने हॉर्न बजाया! वे जपजी करते रहे। उनको हॉर्न वगैरह सुनाई न पड़ा। टक्कर खा कर गिर पड़े। फिर पागलपन का दौर शुरू हुआ। फिर कोई दो साल लगे उन्हें खींच लेने में बाहर वापस, उनके पागलपन से। और यह सारा खुद ने आयोजित कर लिया।
सुबह का जो जागरण है, वह जागरण खतरनाक हो सकता है, अगर जबरदस्ती किया जाए। और अगर उस जागरण में भजन हृदयपूर्वक न हो, और केवल औपचारिक हो, शाब्दिक हो, यांत्रिक हो, लोभ के कारण हो, तो तुम अपनी जिंदगी खराब कर लोगे। वैसे भजन में मत पड़ना।
तो कुछ सूचनाएं तुम्हें दे दूं, नहीं तो सुन कर, कई ना-समझ होंगे यहाँ,
वे कल से हो ब्रह्म-मुहुर्त, दो बजे शुरू कर दें।

पहली बातः अगर सुबह ब्रह्ममुहुर्त में उठना हो, तो कम से कम नौ बजे सोने चले जाना। और जिसे नौ बजे सोने जाना हो, उसे दफ्तर दफ्तर में छोड आना चाहिए। नौ बजे आने के पहले तक उसे सारे संसार से अपने को बाहर हटा लेना चाहिए--रूठे से... । रूठ जाना चाहिए, संसार से। उदासीन हो जाना चाहिए। दफ्तर से चलते वक्त बहुत होशपूर्वक दफ्तर को नमस्कार कर लेना चाहिए। दुकान छोड़ते वक्त कह देना चाहिएः अब कल आयेंगे; कल तक विदा। फिर भूल कर भी उसका विचार नहीं करना। पुरानी आदत होगी; कुछ दिन आयेंगी। लेकिन धीरे-धीरे होश सम्हालना और उसको विदा कर देना। घर आ गए; दफ्तर भूल जाना चाहिए। दुकान-बाजार भूल जाना चाहिए।
अगर नौ बजे सोने जाना हो, तो सात बजे से तैयारी करने लगना--सोने की। क्योंकि नींद एकदम से नहीं आ सकती। और पहले पहर में सबसे ज्यादा कठिन है। स्नान कर लेना; शांत बैठना; अब कोई जरूरत नहीं कि अखबार पढ़ो। क्योंकि अखबार इस जगत के पागलपन सूचना देता है। इस जगत के पागलपन की खबरें हैं उसमेंः कहीं हत्या हो गई; कहीं चोरी हो गई; कहीं कोई मार डाला गया; कहीं कोई बम गिरा--युद्ध हो गया; कहीं कुछ, कहीं कुछ। सब उपद्रव की खबरें हैं।
सांझ का वक्त उपद्रव की खबरें अगर पढ़ोगे, तो रात दुख-स्वप्न देखोगे। पढ़ोगे तो यहीं कि इंदिरा गांधी कब जेल जानेवाली है। लेकि न रात जेल चले जाओगे। क्योंकि वही गूंजता रहता है खोपड़ी में। उसकी तरंगे बनी रहती हैं।
रेडिओ मत सुनना; अखबार मत पढ़ना; टेलिविजन मत देखना। सच तो यह है कि अगर
नौ बजे रात सोने चले जाना हो, तो तेज रोशनी में भी मत बैठना। पढ़ना भी मत। शिथिल करना अपने को, लेट जाना--बॉथटब में; घड़ी भर वहां पड़े रहना ज्यादा अच्छा होगा; गरम जल में डूबे रहना; शिथिल हो जाना।
हलका भोजन करना। ज्यादा भोजन मत कर लेना। क्योंकि जितना ज्यादा भोजन
कर लोगे, उतना चौथे पहर में जागना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि उतनी ही ज्यादा दे शरीर को पचाने में लग जाएगी। अगर हलका भोजन किया, तो तुम अचानक पाओगे कि तीन बजने के करीब आते-आते नींद अपने से जाने लगी। क्योंकि शरीर को जरूरत नहीं रही। जितना भारो भोजन कर लोगे, जितना ठूंस-ठूंस कर पेट में भर दोगे, उतना ही शरीर को पचाने में लंबा समय लग जाता है। और जब तक शरीर का भोजन न पच जाए तब तक जागरण नहीं आता।
ख्याल रखना नींद और भोजन का गहरा संबंध है। इसलिए तो जब कभी तुम उपवास करते हो, तो रात में नींद नहीं आती। क्योंकि बिना भोजन के नींद की जरूरत कम हो जाती है। नींद की सब से बड़ी जरूरत है--भोजन को पचाना। इसलिए तो जब तुम भोजन कर लेते हो, तत्क्षण झपकी आने लगती है। इधर भोजन किया और झपकी आने लगती है। क्यों? क्योंकि जो जीवन ऊर्जा है, जो तुम्हारे मस्तिष्क को ज्वलंत रखती है, ज्योतिर्मय रखती है, वह जीवन ऊर्जा तत्क्षण पेट की तरफ बहने लगती है। क्योंकि पेट में पचाने की जरूरत आ पड़ी। और पचाना पहली जरूरत है। होश इत्यादी तो नम्बर दो की जरूरतें हैं।
शरीर में भोजन आ गया, तो सारी शरीर की ऊर्जा भोजन को पचाने में लग जाती है। इसलिए नींद मालूम होने लगती है।
जब जागना हो ब्रह्ममुहुर्त में, तो हलका भोजन करना; कि तीन बजे, चार बजे तक आते-आते भोजन का काम पूरा हो जाय। शरीर को तुम अपने से जागता पाओगे।
तुम चार बजे करीब पाओगेः आंख खुल गयी।
अलार्म भर कर मत उठना। क्योंकि वह जबरदस्ती है; उसकी कोई जरूरत नहीं।
अलार्म की जगह एक नई कला सोचना। रात जब सोने लगो, प्रभु का स्मरण करते सोना, और प्रभु को कह कर सोना कि "उठा देना मुझे चार बजे।" तुम कुछ ही दिन में पाओगेः तीन-चार सप्ताह के भीतर यह कला काम करने लगेगी। तुम अचानक पाओगेः जैसे कोई जगा गया।
और प्रभु के द्वारा जगाए जाने का मजा हो और है। जैसे कोई कह गयाः उठो गोपाल। कोई निश्चित कह जाएगा। अगर तुमने चार बजे कहा, तो चार बजे ही यह घटना हो जाएगी।

लेकिन रात जब सोने लगो, तो प्रार्थना करते ही सोना। क्योंकि रात तुम
जो स्मरण करते सोते हो, उसकी धुन रात भर बजती रहती है। रुपये गिनते सोए, तो रात भर रुपये गिनोगे।
मुल्ला नसरुद्दीन कपड़े की दुकान करता है। एक रात बीच रात में उठ कर चादर फाड़ डाली। जब चादर फाड़ रहा था, तभी पत्नी ने कहा, "अरे, अरे! यह क्या करते हो?" तो मुल्ला बोला, "चुप रह। तू दुकान पर भी आने लगी?" तब उसे होश आया। वह किसी ग्राहक को सपने में कपड़ा दे रहा था। चादर फाड़ रहा था।
तुम जो सोचते सोओगे स्वभावतः उसकी धुन तुम्हारे भीतर बजती रहेगी।
जो अंतिम विचार होता है सोते समय, वही प्रथम विचार होगा--जागते समय।
यह गणित है। यह शतप्रतिशत सही गणित है। इस में जरा भी भेद नहीं पड़ता।
तो रात भूल कर भी ऐसा विचार कर के मत सोना, जिसे तुम सुबह साक्षात नहीं करना चाहते हो।
रात चिंता लेते सोओगे, सुबह वही चिंता ले कर उठोगे। इसकी तुम परख कर लेना। क्योंकि जो मैं कह रहा हूँ, वह वैज्ञानिक है। इसकी तुम परख कर लेना। दो-चार दिन परख कर के देखो। रात सोते-सोते
देखते रहना कि आखिरी बात कौन सी रही मन में। और तब तुम चौंक जाओगे। सुबह जब जागोगे, तुम अचानक पाओगेः वही बात दरवाजे पर खड़ी है। जो रात अंतिम रही, वही सुबह प्रथम होगी। उसी से मुलाकात होगी। उसी को सोचते-सोचते सो गए थे; वह अधूरी पड़ी रह गयी थी। फिर जब जागोगे, तो उसी से फिर गुजरोगे। फिर उसी से मिलन हो जाएगा। इसलिए भक्तों ने कहा हैः सोने जब जाओ रात, तो प्रभु- स्मरण में रहो।
और प्रभु को कह कर सोना! उससे अच्छा जगाने वाला और कोई भी नहीं। उसको कहना कि तू ही जगा देना। चार बजे उठा देना।
अभी कल मुझे लंदन से एक पत्र मिला--एक संन्यासी की मां का। संन्यासी कुछ तीन महीने यहां था। अभी कोई महीने भर पहले गया। उसको कैंसर था। कोई तीन महीने पहले चिकित्सक उसे सर्जरी के लिए टेबल पर लिटा दिए थे। संयोग की बात... । कभी-कभी संयोग भी बड़े महत्वपूर्ण होते हैं।
उन्होंने यह सोच कर कि शायद वह बचे या न बचे... । क्योंकि खतरनाक आपरेशन था। पूरा पैर उसका काटना पड़ता था। फिर भी बचेगा, इसका पक्का नहीं था। क्योंकि पैर में तो कैन्सर फैला ही गया था; ऊपर भी फैलने की संभावना थी। फैल गया हो; कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन पैर तो अलग करना पड़ेगा, शायद बच जाय, शायद न बचे। तो जिस विश्वविद्यालय में वह युवक... । कैंब्रिज में वह युवक विद्यार्थी था; तो कैंब्रिज के ईसाई पुरोहित को बुला लिया कि वह आ कर कम से कम आपरेशन के पहले उसे कुछ उपदेश दे दे।
यह संयोग की बात थी कि कैंब्रिज का जो पुरोहित था, वह मुझमें उत्सुक था। वे भी आकर अब संन्यस्त हो गए हैं।
तो उस पुरोहित ने जा कर "मस्टर्ड सीड" नाम की मेरी किताब उस युवक को दी
और कहा कि तू इसको पढ़ जा; जितना थोड़ा बहुत पढ़ सके। और मेरा तो सुझाव यह है कि बजाय तू आपरेशन करवाने के, पहले पूना हो आ। अब यह आपरेशन तो होगा। तू बचेगा कि नहीं बचेगा, यह तो दूर बात है। लेकिन थोड़ा ध्यान सीख आ।"
उस युवक को बात जम गई। वह टेबल से उठ आया। उसने कहा, "पहले मैं यह किताब पढ़ँ, फिर मैं निर्णय करूं। किताब पढ़ कर तो वह तीसरे दिन पूना आ गया।
उसकी हालत निश्चित ही खराब थी। चिकित्सकों ने कहा भी था कि यह जाना खतरनाक है, क्योंकि कैन्सर फैल सकता है। मैंने भी उससे कहा कि "तू आ गया है--ऐसी खतरनाक हालत में, तो तीन
दिन यहां रह ले और वापस चला जा। वह तीन दिन रहा। फिर उसने कहा, "अब तो जाने का मन नहीं। मौत ही आएगी, तो आने दें। मरने के पहले थोड़ा शांत हो लूँ, मौत तो आनी ही है। और चूंकि मौत इतने करीब है; मेरे पास समय भी गंवाने को नहीं है।" आप सब के पास तो रामय भी गँवाने को है, उसके पास समय भी गँवाने को नहीं था।
वह तत्क्षण संन्यस्त हुआ। तीन महीने यहां रहा; धीरे-धीरे उसका आनंद बढ़ता गया। कैंसर भी

बढ़ता गया! गांठें उसकी, जब वह यहां से गया, तो उसकी गरदन पर भी आ गयीं। मगर जरा भी चिंता न थी; जरा भी पीड़ा न थी; बड़ा आह्लादित था। उसका चेहरा देखते बनता था। उस पर दया भी आती थी कि वह
दिन दो दिन का मेहमान है।
ऐसे तो भी दिन दो दिन के मेहमान हैं। दया तो सभी पर आती है। पर उसका तो बहुत साफ ही मामला था। और उसकी निशिंचतता देख कर बड़ा आनंद भी आता था। उसका आनंद देख कर बड़ा आनंद भी आता था।
उसके चेहरे पर मुस्कुराहट आ गयी थी; उसके चेहरे पर एक रस आ गया था।
उसकी आंखों में चमक आ गयी थी। तो जब मैंने उससे कहा कि "अब जा भी। अब तीन महीने तू रह लिया; ध्यान भी तूने सीखा; अब जा। यह आपरेशन निपटा ले।
तो उसने कहा, "अब मैं जा सकता हूँ। अब मुझे चिंता नहीं। मौत हो कि जीवन, कुछ फर्क नही पड़ता। मैं प्रभु को याद करते मर सकता हूँ।
कल उसकी मां का पत्र अया कि वह चल बसा। लेकिन चलने के पहले वह "मस्टर्ड सीड" अपनी मां को भेंट कर गया। और चलने के पहले एक अपूर्व घटना हुई। उसी घटना के लिए मैंने यह उल्लेख किया। कोई दो घंटे पहले... तीन बजे होंगे दोहपर के, वह बहोश हो गया। खुश था, आनंदित था। उसकी मां ने लिखा है कि वह मर गया, इसका हमें दुख नहीं है। हमें खुशी इस बात की है कि यह जो पांच-सात दिन वह पूना से लौट कर हमारे पास रहा, इतना आनंदित था... ! हमने इतना आनंदित उसे कभी नहीं देखा था। क्योंकि बचपन से ही तड़प रहा था। वह पैर की खराबी बचपन से थी। और इतना प्रेमपूर्ण भी कभी नहीं
देखा। और मौत इतनी करीब थी। और इतना जीवन्त भी उसे कभी नहीं देखा। तो
हम खुश है, हम प्रसन्न हैं। वह विदा तो हुआ है, लेकिन उसके विदा तो हुआ है, लेकिन उसके विदा होने के बाद घर में एक ऐसी शांति छोड़ गया है, जैसी हमने कभी नहीं जानी।
दो घंटे पहले बेहोश गया और बेहोशी में उसने दो बार बुद-बुदा कर कहा "पांच बजने को पांच!"
पिता और मां दोनों मौजूद थे, डाक्टर मौजूद थे। कुछ समझे नहीं। पांच बजने का पांच, पांच बजने को पांच... ! लेकिन बात तो साफ ही थी कि वह घड़ी की बात कर रहा है। तीन बजे थे! पांच बजने को पांच ज्यादा दूर भी नहीं थे। तो वे प्रतीक्षा करते रहे। घबड़ाए कि शायद कुछ होने वाला है पांच बजने को पांच बजे... । फिर कुछ भी नहीं हुआ, तो निश्चिंत हो गए। लेकिन दूसरे दिन सुबह पांच बजने को ठीक पांच मिनट थों तब उसकी मृत्यु हुई। तब पिता मौजूद थे। जैसे ही वह मरा उन्होंने घड़ी देखी; पांच बजने को पांच!
अगर तुम शांत हो जाओ, तो सुबह कब जागना है, यह तो कोई बात ही नहीं; परमात्मा में कब जाना है, इसका भी बोध हो जाएगा। तुम्हें अपनी मृत्यु की घड़ी भी साफ-साफ प्रकट हो जाएगी। जागने की तो क्या बात है? मौत की घड़ी भी साफ हो जाएगी।
रात सोते समय जल्दी सो जाओ। कम भोजन कर के सोओ; हलका भोजन कर के सोओ। ऐसा जो किसी तरह का बोझ न लाए, जिसका पता ही न चले कि तुम्हारी शरीर पर बोझ है। किया न किया बराबर जैसा लगे।
घड़ी आधा घड़ी गरम जल में पड़े रहो। दिन भर की सारी चिंताओं से छुटकारा
पा लो। उन सबको विदा कर दो। रात भर के लिए द्वार-दरवाजे संसार के बंद कर दो। फिर प्रभु को स्मरण करते सो जाओ। उसी को कह दो कि सुबह उठा देना--जब तेरा मुहूर्त आ जाए। और तुम थोड़े ही दिन में पाओगे कि ठीक मुहूर्त पर उठने लगे।
और जब तुम बिना किसी बाहरी दबाव के... अलार्म के या किसे के द्वारा उठाए जाने के उठोगे, तो तुम पाओगेः दिन भर बड़ी शांति, कोई चिड़चिड़ाहट नहीं। फिर हृदयपूर्वक स्मरण करना।
उठ क स्नान कर लेना, बैठ जाना फव्वारे के नीचे। और स्मरण को ऐसा करो कि
वह सब तरफ से आने लगे। वह तो जलाधार गिरती हो तुम्हारे ऊपर यह उसी की जलधार है। उसी का जल हैः उसी की हवा है; उसी का आकाश है। उसको ही अनुभव करना।

सब तरह से स्वच्छ होकर बैठ जाना, शांत, एक कोने में, धीमा सा दीया जला देना। उदबत्ती या धूप या जो भी तुम्हें प्रीतिकर लगे, उस सुगंध से कमरे की भर लेना। यह जगह जहां तुम प्रार्थना करो, अगर रोज वही हो, एक ही जगह हो, तो अच्छा। और एक ही ढंग से करो, तो अच्छा।
वही स्नान रोज, वही भाव रोज; धीरे-धीरे सघन होता जाता है। धीर-धीरे ऐसी घड़ी आ जाती है कि ब्रह्म-मुहूर्त आते ही तुम्हारे प्राण-प्राण में उसका नाद उठने लगेगा।
ऐसा होता है न। रोज तुम ग्यारह बजे भोजन करते हो, तो ग्यारह बजे भूख उठती है। रोज दस बजे रात सोने जाते हो, तो दस बजे झपकी आने लगती है, जम्हाई आने लगती है। ऐसा हो ठीक प्रार्थना भी होता है।
रोज नियम से करोगे, रोज वहीं करोगे, रोज वैसे ही करोगे, रोज-रोज, रोज-रोज, धीरे-धीरे सघन होते-होते तुम्हारे प्राण-मन सब में उतर जाएगी। तब तुम एक दिन अचानक पाओगेः यह भी भूख है, बड़ी गहरी भूख है। और परमात्मा भोजन है। जब भूख उठ आती है, तो भोजन भी मिलता है। जब प्यास उठ आती है, तो उसकी जल-धार भी बरसती है।
लेकिन सुबह के ये दो घंटे अपूर्व हैं; अगर सहज भाव से उठ सका--तो ही। असहज नहीं, चेष्टा से नहीं--सरलता से। चाहे महीने दो महीने लग जायें सरलता से उठने में, लेकिन उठना सरलता से ही। और ऐसा आयोजन करना।
उन दो घंटों के हिसाब से बाकी बाईस घंटे का आयोजन करना कि वे दो घंटे सरलता से उठ सको--इस तरह से बाईस घंटे जीना। वे दो घंटे तुम्हारे शिखर हो जाएं। उन्हीं पर सब समर्पित हो जाएं। उठो, तो उनके लिए उठना। खाओ, तो उनके लिए खाना। सोओ, तो उनके लिए सोना। बोलो, तो उनके लिए बोलना। कुछ भी करो, तो ख्याल करना कि उन दो घंटों पर क्या असर पड़ेगा।
इस आदमी को गाली देंगे, तो कहीं ऐसा तो न होगा कि मन में क्रोध अटका रह जाएगा। मेरे वे दो घंटे खराब हो जायेंगे? इतना लोभ करूंगा, तो फिर सांझ को बिना लोभ के सो सकूंगा? इतनी धन की चिंता करूँगा, इतनी आकांक्षा अभीप्सा करूंगा धन की, तो क्या फिर सुबह का ब्रह्ममुहूर्त मुझे उपलब्ध होगा? इस ढंग से सोचना।
वे दो घंटे तुम्हारा मंदिर हैं। उनको ही बनाना है। और सारा जीवन उन्हीं दो घंटों के मंदिर को बनाए में ईंट बन जाए। इस तरह चलोगे, तो तुम एक दिन पाओगे चरणदास क्या कर रहे हैं।
पिछले पहरे जागि करि, भजन करै चित लाय।
चरनदास वा जीव की, निश्चय गति ह्वै जाय।।
वह निश्चित परमगति को उपलब्ध हो जाता है; मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है।
इस जगत में उनकी हो गति होती है, जो प्रभु के स्मरण से भर जाते है।
क्योंकि उसके स्मरण के सहारे ही गति है। उसके स्मरण की नौका मिल जाए, तो ही पार जाना हो सकता है, नहीं तो इस पार ही पड़े रहोगे। यही सड़न, यही गलन, यही नरक!
चरनदास वा जीव की निश्चय गति ह्वै जाय।
पहले पहरे सब जगैं, दूजे भोगी मान।
तीजे पहरे चोर ही, चौथे जोगी जान।।
"जो कोई विरही नाम के, तिन कूं कैसी नींद।"--और फिर तो एक ऐसी घड़ी आ जाती हैः "जो कोई विरही नाम के, तिन कूं कैसी नींद।" कि फिर तो कभी नींद लगती ही नहीं। शरीर जरूर सोता है; शरीर की जरूरत है। थकता है, तो सोता है।
लेकिन चेतना थकती ही नहीं; उसके सोने की कोई जरूरत ही नहीं।
शरीर को सोने की जरूरत है, क्योंकि शरीर क्षणभंगुर है यंत्रवत है।
यंत्र थक जाते हैं। तुम्हारी कार भी तुम चलाते रहो आठ दस घंटे, तो रोक देनी पड़ती है। यंत्र थक जाता है।
चेतना यंत्र नहीं है; चेतना शाश्वतता है। कैसी थकन? अनंत काल से चल रही; अनंत काल तक चलती रहेगी। कहीं कोई थकन नहीं।

चेतना कोई यंत्र थोड़े ही है, जो थक जाए। यंत्र होता है, तो घर्षण होता है--यंत्र के अलग-अलग अंगों में, उसी के कारण थकन होती है। चेतना के कोई अंग भी नहीं है। चेतना अखंड है।
शरीर को भूख लगती है, क्योंकि ऊर्जा चली गयी। विश्राम की जरूरत होती है, ताकि फिर ऊर्जा उपलब्ध हो जाए।
लेकिन चेतना तो शाश्वत है, अमृत है। न तो थकान होती है, न भूख लगती है,
न विश्राम की जरूरत होती है। मगर उस चेतना का तुम्हें अभी पता ही नहीं।
अभी तो तुम जिसको चेतना कहते हो, वह चेतना की बहुत दूर की धुन हैः बहुत दूर की प्रतिध्वनि, प्रतिफलन।
जैसे चांद बनता हो झील में और झील में चांद को तुम असली चांद समझ लो।
ऐसे ही तुम्हारी बुद्धि में चेतना का बिंब पड़ रहा है, वह कोई असली चेतना नहीं है। इसलिए कहाः तुम्हारा जागरण औपचारिक है; असली जागरण बुद्धों का।
जो कोई विरही नाम के, तिन कूं कैसी नींद।
सस्तर लागा नेह का, गया हिए कूं बींध।।
शस्त्र जिनके हृदय में बिंध गया प्रेम का, प्रभु-प्रेम का, अब कहां नींद? अब कैसी नींद?
"सोए हैं संसार सूं, जागे हरि ओर।" समझना। तुम संसार में जागे हो, परमात्मा में सोए हो। भक्त परमात्मा में जागता है, संसार में सो जाता है। "साए हैं संसार सूं... ।" संसार की तरफ सो गया जो। "जागे हरी की और।"
ये दो शब्द याद रखोः काम और राम। जो काम की ओर उन्मुख है, वह राम की ओर विमुख। जिसने काम की और मुंह किया, राम की ओर पीठ हो जाती है। और जिसने राम की ओर मुंह किया, उसकी काम की ओर पीठ हो जाती है।
सोए हैं संसार सूं, जागे हरि की ओर।
तिन हूं इकरस ही सदा, नहीं सांझ नहीं भोर।।
फिर न कोई सुबह है, न कोई सांझ है। चौबीस घंटे, अहर्निश वही है। फिर कोई भेद नहीं। जागो तो वह, सोओ तो वह। उठो तो वह, बैठो तो वह। जीओ तो वह, मरो तो वह। हर हालत में वही--और वही; एक स्वर। एक ही स्वाद। "तिनकूं इकरस ही सदा, नहीं सांझ नहीं भोर।"
अब तुम रूठो, रूठे सब संसार, मुझे परवाह नहीं है।
भक्त तो फिर भगवान से भी कह देता हैः "अब औरों की तो क्या कहूं?" भक्त कहता है, "तुम भी रूठ जाओ, तो मुझे परवाह नहीं।" जानता है कि अब तुम से अलग होने का उपाय ही नहीं।
अब तुम रूठो, रूठे सब संसार मुझे परवाह नहीं है
दीप स्वयं बन गया शलभ अब जलते-जलते,
मंजिल ही बन गया मुसाफिर चलते-चलते,
गाते-गाते गेय हो गया गायक ही खुद,
सत्य स्वप्न ही हुआ स्वयं को छलते-छलते,
डूबे जहां कहीं भी तरी वहीं अब तट है।
अब चाहे हर लहर मझधार, मुझे परवाह नहीं है। अब तुम रूठो, सब संसार मुझे परवाह नहीं है। यह बड़े प्रेम का वचन है।
अब पंछी को नहीं बसेरे की है आशा,
और बागबां को न बहारों की अभिलाषा,
अब हर दूरी पास, दूर है हर समीपता,
एक मुझे लगती अब सुख-दुख की परिभाषा,
अब न ओंठ पर हंसी, न आंखों में है आंसू,
अब तुम फेंको मुझ पर रोज अंगार, मुझे परवाह नहीं है। अब तुम रूठो, रूठे सब संसार मुझे परवाह नहीं है। अब मेरी आवाज मुझे टेरा करती है,
अब मेरी दुनिया मेरे पीछे फिरती है,
देखा करती है मेरी तस्वीर मुझे अब
मेरी ही चिर प्यास अमृत मुझ पर झरती है,

अब मैं खुद को पूज, पूज तुमको लेता हूं,
बंद रखो अब तुम मंदिर के द्वार, मुझे परवाह नहीं है।
अब तुम रूठा रूठे सब संसार मुझे परवाह नहीं है।।
सुनते हो?
"दीप, स्वयं बन गया शलभ अब जलते-जलते।" पतंगा जब दीये पर गिर जाता है, फिर कैसी दूरी? "दीप, स्वयं बन गया शलभ अब जलते-जलते।" अब तो पतंगा दीया बन गया; दीया पतंगा बन गया।
एक घड़ी आती है भक्त की जब भगवान में गिर जाता है, जैसे पतंगा दीये पर गिर जाता है। फिर भक्त ही भगवान हो जाता हैं।
दीप, स्वयं बन गया शलभ अब जलते-जलते,
मंजिल ही बन गया मुसाफिर चलते-चलते,
गाते-गाते गेय हो गया गायक ही खुद,
सत्य स्वप्न ही हुआ अब स्वयं को छलते-छलते,
डूबे जहां कहीं भी तरी वहीं अब तट है,
अब चाहे हर लहर बने मंझधार मुझे परवाह नहीं है।
भेद गए, अभेद आया। द्वैत गया, अद्वैत आया। अब प्रेमी अपने प्रिय पात्र
से भिन्न नहीं है।
"अब मेरी आवाज मुझे टेरा करती है।"... वह जो आवाज एक दिन लगती थी, परमात्मा कि आवाज है, कि कहती थीः "उठो गोपाल; कि सुबह हुई।" अब वह आवाज परमात्मा की आवाज नहीं, मेरी ही आवाज है। अपने ही अंतर्तम की आवाज है--अपनी ही अंतरात्मा की।
अब मेरी आवाज मुझे टेरा करती है,
अब मेरी दुनिया मेरे पीछे फिरती है,
देखा करती है मेरी तस्वीर मुझे अब।
भक्त इतना एक हो आता है भगवान से कि अब तस्वीर और भगवान की तस्वीर अलग-अलग मालूम नहीं होती।
मेरी ही चिर प्यास अमृत मुझ पर झरती है,
अब मैं खुद को पूज, पूज तुमको लेता हूँ,
बंद रखो अब तुम मंदिर के द्वार, मुझे परवाह नहीं है।
यह बड़े प्रेम का वचन है।
"अब मैं खुद को पूज, पूज तुमको लेता हूं।" अब भेद ही न रहा। नहीं सांझ नहीं भोर।
"सोवन जागन भेद की कोइक जानत बात।" कोई विरला ही जानता है सोने और जागने का भेद।
"साधूजन जागत तहां, जहां सबन की रात।" साधु वहीं जागता है, जहां सबकी रात है--वह चौथा पहर। जो सबकी गहरी सुषुप्ति, है, वही साधु की जाग्रति है, ध्यान है, समाधि है।
साधुजन जागत तहां, जहां सबन की रात।
जो जागै हरि-भक्ति में, सोई उतरै पार।
जो जागै संसार में, भवसागर में ख्वार।।
और जो संसार में जागा है, वह नष्ट होगा।
जागै न पिछले पहर, ताके मुखड़े धूल।
सुमरै न करतार कूं, सभी गवावै मूल।।
"सतगुरु से मांगू यही, मोहि गरीबी देहु।" गरीबी का अर्थ होता है-- मुझसे ऐसा सब छीन लो, जिसकी याद परमात्मा में बाधा बनती हो। मुझसे वह सब अलग कर लो, जो मेरे और परमात्मा के बीच
दीवाल बनता हो।
सतगुरु से मांगू यही, मोहि गरीबी देहु।
दूर बड़प्पन कीजिए, नाना ही कर लेहु।।
अब मुझे इतना छोटा बना दो, मेरा सारा बड़प्पन ले लो। मगर एक बात भर पूरी
हो जाए। कितना ही छोटा बनाओ, ऐसी कुछ दशा मेरी कर दो कि परमात्मा की कृपा मुझ पर बरस सके।

छोटा बनाने का वही अर्थ होता है।
जब बच्चा छोटा होता है, तो मां उसकी जरा सी आवाज सुन कर भागी आती है।
जैसे-जैसे बड़ा होने लगता है, वैसे-वैसे मां उसकी चिंता छोड़ने लगती है। जब वह जवान हो जाएगा, तो मां को उसकी चिंता की कोई जरूरत न रहेगी।
तुम जितना अपने को बड़ा मानोगे, उतना ही "परमात्मा की तुम्हें जरूरत नहीं" इसकी तुम घोषणा कर रहे हो।
भक्त कहता हैः मुझे छोटा कर दो। मुझे इतना छोटा कर दो कि मैं केवल रोने में समर्थ रह जाऊं। मेरा रोना ही प्रार्थना बन जाएगी।
सतगुरु से मांगू यही, मोहि गरीबी देहु।
दूर बड़प्पन कीजिए, नाना ही कर लेहु।।
मुझे मिटा दो। मैं बचूं न, ताकि परमात्मा ही बचे। मुझे पोंछ दो, मुझे हटा दो।
प्रेम पथ हो न सूना कभी इसलिए,
जिस जगह मैं थकूं, उस जगह तुम चलो
कब्र-सी मौन धरती पड़ी पांव पर,
शीश पर है कफन-सा घिरा आसमां,
मौत की राह में, मौत की छाह में
चल रहा रात दिन सांस का कारवां
जा रहा हूं चला, जा रहा हूं बढ़ा,
पर नहीं ज्ञात है किस जगह शाम हो? किस जगह पग रुके, किस जगह में छुटे किस जगह शीत हो, किस जगह घाम हो, मुसकराए सदा पर धरा इसलिए,
जिस जगह पर मैं, झरूं उस जगह तुम खिलो प्रेम पथ हो न सूना कभी इसलिए,
जिस जगह मैं थकूं, उस जगह तुम चलो प्रेम का पथ सूना अगर हो गया
रह सकेगी बसी कौन सी फिर गली?
यदि खिला प्रेम का ही नहीं फूल तो कौन है जो हंसे फिर चमन में कली प्रेम को ही पग में मिला न मान तो यह धरा, यह भुवन सिर्फ शमशान है, आदमी एक चलती हुई लाश है,
और जीना यहां एक अपमान है,
आदमी प्यार सीखे कभी इसलिए,
रात-दिन मैं ढलूं, रात-दिन तुम ढलो।
प्रेम पथ हो न सूना कभी इसलिए,
जिस जगह मैं थकूं, उस जगह तुम चलो।
आदमी दीन हो जाए, वहीं परमात्मा की शक्ति मिलनी शुरू हो जाती है। जहाँ आदमी गिरता है, वहीं परमात्मा के चरण तुम्हें चलाने लगते है। जहां तुम झरते हो, वहीं परमात्मा खिलता है।
मैं दारिद्र हो जाऊं, दीन हो जाऊं, छोटा हो जाऊं--भक्त की इस अभिलाषा में सिर्फ एक ही घोषणा हैः मेरा अहंकार न बचे। मुझे मिटाओ। अनुकंपा करो।
मुझे जलाओ" मुझे राख कर दो।
आदि पुरुष किरपा करौ, सब औगुन छुटि जाहिं।
साध होत लच्छन मिले, चरनकमल की छाहिं।।
"आदि पुरुष किरपा करो... ।" भक्त कहता हैः मेरे किए जो हो सकता है, वह मैं कर रहा हूँ। लेकिन मेरे किए अंतिम बात नहीं हो सकती। वह तो तेरी कृपा से होगी। अंतिम बात मेरे हाथ में नहीं है।
मैं पुकारूंगाः मैं रोऊंगा; मैं प्रार्थना करूंगा; मैं स्मरण करूंगा; मैं सब करूंगा--जो मैं कर सकता हूँ। लेकिन मेरा सामर्थ्य कितना? मेरे हाथ

कितने बड़े? तेरे आकाश तक नहीं पहुंच सकेंगे। हाथ फैला कर भी खड़ा हो जाऊंगा तो मेरे हाथ छोटे है। मैं तुझे न छू पाऊंगा। तेरी कृपा के बिना न हो सकेगा।
इसलिए कृपा के तत्त्व को ठीक से समझ लेना। भक्ति के मार्ग पर कृपा अनिवार्य तत्त्व है; अंतिम तत्त्व है।
भक्त सब करता है, लेकिन अंततः यही जानता हैः होगा उसकी कृपा से। इसलिए भक्त के मन में अहंकार नहीं उठता।
प्रयास पर भरोसा ही नहीं, तो अहंकार कैसे उठेगा? भक्त जो करता है, जानता हैः उससे पाने में कुछ सहायता नहीं मिलेगी; सिर्फ मैं पाना चाहता हूं--इसको खबर परमात्मा तक पहुंचेगी। मेरी चाह सच्ची है; मेरा ईमान सच्चा है; मैं ऐसे ही नहीं मांग रहा हूं। मांगने के लिए सब कुछ करने को तैयार हूं। लेकिन फिर भी मेरे किए क्या होगा? उसकी कृपा चाहिए।
"आदि पुरुष किरपा करौ, सब औगुन छुटि जाहिं।" मैं तो छुड़ाऊंगा भी अवगुण, तो एक छुड़ाऊंगा, तो दूसरा फंस जाता है। एक से बचता हूं, तो दूसरे में उलझ जाता हूँ।
यहां कांटे ही कांटे है। अगर अहंकार से छुटकारा पाओ, तो विनम्रता की अकड़ आ जाती है। अगर संसार छोड़ दो, तो त्याग की अकड़ आ जाती है। अगर धन को छोड़ दो, इतने धन पर मैंने लात मार
दी--यह अकड़ पैदा हो जाती है। यहाँ तो बड़े उपद्रव हैं। यहां एक चीज हटाओ, दूसरी पकड़ जाती है। यहाँ से बचना दिखाई नहीं पड़ता।
"आदि पुरुष किरपा करौ, सब औगुन छुटि जाहिं।"
"साध होन लच्छन मिलै"... । मैं कोशिश तो करता हूं, साधु होने की, चरणदास कहते हैं, लेकिन हो नहीं पाता। कुछ भी करता हूं, उसी में से असाधुता निकल आती है। साधु बन कर बैठ जाता हूं, तत्क्षण पता चलता है कि अहंकार वहां भी आ गया। तेरी कृपा हो, तो ही साधु होने के लक्षण मिलेंगे, अन्यथा नहीं।
"साधु होन लच्छन मिलै, चरनकमल की छाहिं।" तेरे चरणों की छाया मिले, तो
सब मिल गया। उसी छाया में मेरे हृदय के फूल खिलेंगे; मेरे खिलाएं नहीं खिलेंगे।
तेरी अनुकंपा में, तेरी वर्षा में, तेरे प्रसाद में... । "हिय हुलसो आनंद भयो।"
और तेरे चरणकमल की छांह जब भी मिल जाती है, क्षण भर को भी मिल जाती हैः "हिय हुलसो आनंद भयो"... । तभी हृदय नाचने लगता है। और तभी आनंद हो जाता है।
"रोम-रोम भयो चैन।" और बिना कुछ किए रोआं-रोआं शांत हो जाता है। सब तरफ विश्राम, विराम आ जाता है। सब दौड चली जाती है।
हिय हुलसो आनंद भयो, रोम-रोम भयो चैन।
भए पवितर कान ये, मुनि सनि तुम्हरे बैन।।
परमात्मा मौन है, इसलिए उसका नाम--मुनि। वह बोलता नहीं, फिर भी बोलता है।
उपनिषद कहते हैंः उसके पैर नहीं, फिर भी चलता है; तब तो आता है भक्त तक; नहीं तो कैसे आएगा? पैर तो उसके नहीं हैं। और हाथ नहीं हैं उसके, या हजार हाथ हैं उसके। क्योंकि सभी को सहारा दे देता है। और बोलता नहीं, लेकिन उसके मौन में उपदेश है।
"भवे पवितर कान ये"... । चरणदास कहते हैं कि ये कान मेरे पवित्र हो गए। तुम बोले नहीं, और मेरे कान पवित्र हो गए।
"मुनि सुनि तुम्हरे बैन।" तुम्हारे मौन से जो संदेश मिल गया; तुम्हारे चरणों की छाया में बैठ कर जो संदेश मिल गया; तुम्हारी अनुकंपा में जो आशीर्वाद मिल गया--मेरा हृदय हुलसा, आनंद हुआ।
तुम्हारे मौन में कहे गए शब्द, अनकहे शब्द, मेरी सारी अपवित्रता को लेकर वह गए। तुम्हारे मौन की लहर क्या आयी, मैं नहा गया। ब्रह्म-सिंध की लहर है... ।
बांस के बन में से गुजरती हुई हवा
जैसा बोलती है
या बिल्कुल सबेरे-सबेरे बादल के दलों में किरण

जैसा रंग घोलती है
या जैसे आधी रात के सूने में गहरी होती है सुगंध
या जैसे अलस काले नाग में बंध के रह जाता है
ऐसा परमात्मा चारों तरफ मौन से बोल रहा है।
"बांस के वन में से गुजरती हुई हवा जैसा बोलती है।" तुम्हें सुनना आ जाए, तो तुम इन पक्षियों के नाद में उसी को सुनोगे।
"बांस के बन में से गुजरती हुई हवा जैसा बोलती है।" फिर तो बांस के बन में से गुजरती हुई हवा भी, उसी के होंठ पर रखी बंसी है। बंसी भी बांस से ज्यादा क्या है? कोई बंसी का नाद सुनने के लिए
आदमी के होंठ पर ही होना जरूरी तो नहीं?
बांस के बन में गुजरती हुई हवा
जैसा बोलती है
या बिल्कुल सबेरे बादल के दलों में किरण
जैसा रंग घोलती है।
यह उसी का हाथ है। यह वही चितेरा है, जो सुबह बादलों को रंग जाता है, जो सांझ तारों को सजा जाता है। सब तरफ उसकी कला है। सब तरफ उसके हस्ताक्षर है--पत्ते-पत्ते पर, पत्थर-पत्थर पर।
"या बिल्कुल सबेरे-सबेरे बादल के दलों में किरण जैसा रंग घोलती है।" आंख हो देखने की, कान हो सुनने को, फिर वही है--और केवल वही है।
"या जैसे आधी रात के सूने में गहरी होती है सुगंध।" फिर हर गंध उसकी सुगंध है। फिर सब तरफ से उसी का संकेत आता है।
"या जैसे अलस काले नाग में बंध के रह जाता है छंद।" तुमने देखा: कभी मदारी अपनी बीन बजाता है। इधर मदारी की बीन बजती है, उधर धंद काले नाग में बंध कर रह जाता है।
वैज्ञानिक अपूर्व बात कहते हैं। वे कहते हैं: नाग को कान नहीं होते। इसलिए बड़ी मुश्किल थी। अब यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि मदारी बीन बजाता है और नाग नाचता है; छंदबद्ध हो जाता है।
वैज्ञानिक बड़ी चिंता में रहे वर्षों तक, कि मामला क्या है? क्योंकि नाग को कान होते हीं नहीं, नाग वज्र बहरा है। कान होते ही नहीं। वज्र बहरा कहना भीं ठीक नहीं; बहरे को कम से कम कान तो होते हैं।
दिखाई तो पड़ते हैं; काम न करते हों। लेकिन नाग को कान होते ही नहीं। कान की इंद्रिय ही नाग में नहं है। इसलिए वैज्ञानिक बड़े चिंतित थे। और इस बात को भी झुठलाया नहीं जा सकता। तो वे कई सिद्धांत खोजते थे कि हो सकता है, वह जो मदारी बीन बजा कर डोलने लगता है, उसको देख कर... । लेकिन मदारी दूसरे कमरे में बैठकर बीन बजाए; नाग को दिखाई भी न पड़े, तो भी नाग डोलता है। नाग को पकड़ने की तरकीब ही यह है कि नाग अगर छिपा हो दूर खोह में और मदारी बीन बजाए, तो अपनी गुफा से निकल आता है। तो गुफा में दिखाई तो पड़ता नहीं, इसलिए बात हल नहीं होती।
फिर धीरे-धीरे और विश्लेषण से पता चला कि नाग को कान तो नहीं होते, लेकिन नाग का पूरा शरीर ध्वनी के प्रति संवेदनशील है। पूरा शरीर... । जै हमें कोई छूए, तो हमें स्पर्श का अनुभव होता है, ऐसे ध्वनि की जो तरंग पड़ती है, नाग का पूरा शरीर उसे स्पर्श करता है। पूरा शरीर उसे अनुभव करता है। तो यह कहना ठीक नहीं कि नाग को कान नहीं होते। यह कहना चाहिए कि नाग पूरा का पूरा कान है। इसलिए कान पकड़ में नहीं आते। पूरी देह ही उसकी कान है।
"या जैसे असल काले नाग में बंध के रह जाता है छंद।" ऐसे ही जिस दिन तुम्हें प्रभु की मौन-वाणी सुनाई पड़ेगी, तुम नाग की तरह छंदबद्ध हो जाओगे। ये चरणदास के वचन वैसे ही छंदबद्धता से निकले है। चरणदास कोई कवि नहीं है। यह कविता, कविता नहीं है; यह कविता अनुभव है, स्वानुभव है। यह कुछ तुकबंदी नहीं है--कि व्याकरण, भाषा और मात्रा और छन्द के नियम से इनका निर्माण हुआ हो। नहीं; जो भीतर जाना है, वह तुमसे कह देना चाहा है। और जो भीतर जाना है, वह इतना छंदबद्ध है कि उसके प्रभाव में जो कहा है, वह भी छंदबद्ध हो गया।

बुद्धों के सभी वचन काव्य होते हैं। वे कविता में हो या न हों, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। उनके भीतर जिस महाकाव्य का जन्म हुआ है, उसमें डूब कर आते सभी शब्द संगीतमय हो जाते हैं।
चरणदास के आज के इन वचनों पर खूब ध्यान करता। ऐसे ही जैसेः
बांस के वन में से गुजरती हुई हवा
जैसा बोलती है
या बिल्कुल सबेरे-सबेरे बादल के दलों में किरण
जैसा रंग घोलती है
या जैसे आधी रात के सूने में
गहरी होती है सुगंध
या जैसे अलस काले नाग में बंध के रह जाता हैं छंद।

आज इतना ही।

नहीं सांझ नहीं भोर
छठवां प्रवचन

प्रश्नोत्तर

• पात्रता का अर्जन
• प्रार्थना कैसी हो
• एकरसता यानी परमात्मा
• संन्यासी कौन

पहला प्रश्नः सुनते हैं कि प्रभु की कृपा से ही प्रभु मिलते हैं। तो क्या प्रभु प्राप्ति के लिए मनुष्य का श्रम व्यर्थ है?
हां भी और नहीं भी। अंतिम अर्थो में मनुष्य का श्रम व्यर्थ है। अंतिम अर्थो में तो प्रसाद ही सार्थक है--प्रयास नहीं। क्योंकि अंतिम क्षण में अहंकार भी छोड़ना होगा; और अहंकार में ही चला जाता है श्रम का भाव। मैं कुछ करता हूं--यह "मैं" की ही छाया है।
यात्रा तो शुरू होती है प्रयास से, अन्त होता है प्रसाद पर। लेकिन शुरू, पहला कदम प्रयास से ही होगा। मनुष्य का श्रम उस दृष्टि से सार्थक है।
या ऐसा समझो; पूछते हो तुमः "प्रभु की कृपा से ही प्रभु मिलते हैं, तो क्या प्रभु प्राप्ति के लिए मनुष्य का श्रम व्यर्थ है?"
प्रभु की कृपा मनुष्य के श्रम से मिलती है; प्रभु प्रभु-कृपा से मिलते हैं। लेकिन उनको कृपा भी अर्जित करनी होगी। कृपा भी मुफ्त नहीं है; मुल्य चुकाना होगा। नहीं तो सभी को मिल जाती।
अगर श्रम के बिना परमात्मा मिलता होता, तो सभी को मिलना चाहिए। चरणदास, नानक और कबीर को ही क्यों? मीरा, सहजो और दया को ही क्यों? सभी को मिलना चाहिए।
अगर परमात्मा सिर्फ कृपा से ही मिलता है, तब तो बड़ा अन्याय हो रहा है।
कुछ को मिलता है, कुछ को नहीं मिलता। तो जिनको मिलता है, उनसे कुछ भाई-भतीजावाद है; कुछ राजनीति है। जिनको नहीं मिलता, उनसे कुछ नाराजगी है? तो कृपा दूषित हो जाएगी। कम से कम परमात्मा की कृपा को दूषित मत करो। उस पर दोषारोपण न लगाओ।
उसकी कृपा सभी को उपलब्ध है; जैसे वर्षा हो, जल बरसे। लेकिन तुमने अपनी मटकी उलटी रखी हो, और तुम्हारी मटकी खाली रह जाए, तो तुम कहोः मुझ पर कृपा न हुई।
कृपा तो होती थी। कृपा तो उलटी मटकी पर भी उतनी ही होती थी, जितनी सीधी मटकी पर होती थी। लेकिन सीधी मटकी भर गई और उलटी मटकी खाली रह गई।
इतना श्रम तो करो कि मटकी सीधी कर लो। हालांकि मटकी सीधी करने से ही
भर न जाएगी।
इसीलिए कहता हूंः हां भी और नहीं भी। भरेगी तो तभी, जब वर्षा होगी।
तुम कितनी ही सीधी मटकी रखकर बैठे रहो, वर्षा न होगी तो नहीं भरगी।
मनुष्य का श्रम जरूरी है, अत्यंत जरूरी है--मटकी सीधी करने के लिए।
फिर प्रभु की कृपा बरसती है; वह तो प्रसाद है।
तो मैं ऐसा कहना चाहूंगा कि मनुष्य के श्रम से प्रभु तो नहीं मिलते हैं; लेकिन प्रभु की कृपा मिलती है। और प्रभु-कृपा से प्रभु मिलते हैं। तुम दो में से एक कोई भी चुनने को सदा राजी हो जाते हो। क्योंकि तर्क में बात एक ठीक बैठती है। जैनों ने चुन लिया है--श्रम, इसलिए जैन संस्कृति कहलाती हैः श्रमण संस्कृति। श्रम से मिलेगा; कैसी कृपा? किसकी कृपा? कोई कृपा-निधान नहीं है। न कृपा है, न कृपावान है; आदमी का श्रम सब कुछ है। यह आधी बात है। यह मटकी सीधी रख कर तुम बैठे रहो, बैठे रहो, बैठे रहो, बैठे रहो--जन्मों-जन्मों तक, यह भरेगी नहीं। और जब भरेगी, तो तुम इस भ्रांति में मत पड़ना कि सिर्फ सीधी रखने के कारण भर गई। तब कुछ और उतरा है; आकाश से

अवतरण हुआ है। तब आकाश उतरा है; तब तुम्हारे भीतर शाश्वत की कोई किरण आई है।
हाँ, तुम्हारे श्रम ने इतना किया था कि द्वार खोल रखा था; किरण को अटकाया नहीं; दरवाजे पर रोका नहीं। किरण को आने दिया। तुमने इतना ही किया है कि रोका नहीं। रुकावट नहीं डाली।
मनुष्य का श्रम इतना ही कर सकता है कि प्रभु आए, तो रुकावट न डाले।
खुला हो हृदय। यही मेरा मतलब--मटकी के सीधे होने से है।
स्वागत के लिए तत्पर हो। स्वच्छ हो कि प्रभु को आने योग्य लगे।
मेहमान घर में आता है, तुम घर सजा लेते हो। प्रभु को बुलाओगे, इतना भी न करोगे कि हृदय थोड़ा सजाओ! थोड़ी सुरभि हो। थोड़ा संगीत हो। तुम्हारे हृदय में उसे अंगीकार करने की क्षमता हो, पात्रता हो।
बहुत बार प्रभु आता है और तुम वंचित रह जाते हो। रोज-रोज आता है और तुम वंचित रह जाते हो। क्योंकि तुम उसकी भाषा ही नहीं सीखे। तुमने उसके चेहरे को पहचानने के लिए कोई उपाय ही नहीं जुटाया। तुम उसक पद-चिह्नों को सुनते भी हो, अनसुना कर जाते हो। तुम्हारे कान व्यर्थ के शोरगुल से भरे हैं। तुम उलटी मटकी हो।
तो प्रयास इतना तो जरूरी है। आधी यात्रा तो प्रयास से ही होगी। आधी यात्रा के बाद अपूर्व घटना घटती है। तुम कुछ भी नहीं करते और कुछ होना शुरू हो जाता है।
तुमने ध्यान साध लिया। यह मटकी सीधी हो गई। अब इस ध्यान की सधी हुई अवस्था में बरसता है अनंत; तुम भरते लगते हो; तृप्ति उतरने लगती है।
तो एक तो जैन हैं, जो कहते हैंः सब श्रम से हो जाएगा। मैं उनसे आधी दूर
तक राजी हूं। लेकिन आगे की यात्रा उनसे न हो पाएगी।
दूसरी तरफ भक्त हैं, हिंदू हैं, हिंदुओं के कुछ वर्ग है, जो मानते हैं
कि सिर्फ उसके प्रसाद से, उसकी कृपा से होगा। आधी ही बात है। और अगर इन दोनों आधी बातों में चुनना हो, तो मैं तुमसे कहूंगा कि जैन की बात चुन लेना। क्योंकि वह यात्रा का पहला हिस्सा है। कम से कम आधी यात्रा तो हो जाएगी।
हिंदू विचार यात्रा का अंतिम हिस्सा है; उसको चुना तो यात्रा कभी होने ही वाली नहीं। तुम मटकी कभी सीधी न करोगे; वर्षा होती रहेगी।
तो अगर कोई मुझसे कहें कि इन दोनों से ही चुनाव करना है, तो मैं कहूंगा जैन प्रक्रिया को चुन लेना; योग की प्रक्रिया को चुन लेना; श्रम को चुनना।
तुम अपना काम तो पूरा करो। फिर आधी यात्रा जो शेष है, वह परमात्मा का काम है।
तुम मानो या न मानो, अगर मटकी सीधी हो गई, तो परमात्मा आता ही है। परमात्मा यह थोड़े ही कहेगा कि तेरी मटकी तो सीधी है, लेकिन तेरी धारणा यह है कि प्रयास से ही होगा, तो तेरी धारणा के कारण मैं न आऊँगा। परमात्मा तुम्हारी धारणा की चिंता नहीं करता। तुम्हारी धारणा करने की क्षमता की चिंता करता है।
तुम्हारी कुछ भी धारणा हो। तुमने आम के बीज बोए और तुम्हारी धारणा है
कि ये नीम के बीज हैं। इससे क्या होता है? बीज आम के बोए, आम का वृक्ष निकलेगा। तुम्हारी धारणा के कारण तुम बीज आम के, नीम की बौरियों में न बदल सकोगे। और जब वृक्ष में फल लगेंगे, तो नीम नहीं लगेगी; आम ही लगेंगे। तुमने लाख सिर पटका हो और लाख माना हो, इससे क्या होगा?
इसलिए मैं कहता हूंः अगर हिंदू और जैन में चुनना हो, तो जैन को चुन लेना। हालांकि बात उतनी ही गलत है, जितनी हिंदू की; और उतनी ही सही है, जितनी हिंदू की। पचास-पचास प्रतिशत दोनों बातें सही और दोनों बातें गलत हैं।
लेकिन जैन धारणा में एक सुविधा है कि तुम भला नीम समझ कर बोओ, लेकिन बो
तो आम ही रहे हो। स्वच्छ तो कर ही रहे हो हृदय को। मटकी तो सीधी हो ही रही है। जिस दिन हो जाएगी, जिस दिन तालमेम बैठ जाएगा, उसी दिन वर्षा हो जाएगी।
तुम्हारी धारणा बाधा न डाल सकेगी।

लेकिन हिंदू धारणा खतरनाक हो सकती है। क्योंकि वह यात्रा का आखिरी हिस्सा है। वहां तुम अभी गए नहीं। उलटी मटकी लिए बैठे हो; और सोचते हो; कृपा से होगा!
तुम कृपा के हकदार हो? अधिकारी हो? तुमने कृपा पाने के लिए कुछ किया है? तुमने हाथ-पैर भी नहीं हिलाने।
लेकिन मैं यह कह नहीं रहा हूं कि दो में से एक को चुनना जरूरी है। मैं
तो कहता हूंः दोनों एक साथ चुनों। दो में से एक को चुनना हो, तो मैंने कहा कि जैन विचार ज्यादा कारगर होगा। क्योंकि तुम जहाँ खड़े हो, वहाँ से जैन विचार का संबंध जुड़ जाएगा।
लेकिन दोनों में से चुनने की कोई जरूरत ही नहीं है। चुनाव की जरूरत ही नहीं है। दोनो संयुक्त स्वीकार करो।
थोड़ी दूर तुम चलो, थोड़ी दूर परमात्मा को चलने दो। उतनी दूर तो चलो, जितनी दूर तुम चल सकते हो। जितने दूर तुम चल सकते हो, उतना तो काम पूरा करो।
गुरजिएफ अपने शिष्यों से कहता था कि तुम जितना कर सकते हो, जब तक तुम उसे पूरा न कर लो, तब तक कोई सहायता कहीं से भी न मिलेगी। हां, जब तुम जितना कर सकते थे, उसकी चरम अवस्था आ गई, तुम जो कर सकते थे, कर चुके; तुमने अपनी सारी शक्ति नियोजित कर दी; कुछ भी बचाया नही; तुम बिल्कुल अपने को उंडेल दिए; उसी घड़ी में कोई हाथ बढ़ता है; उसी घड़ी में तुम्हारी जीवन ऊर्जा नया रुख लेती है; नया दौर शुरू होता है। उसी क्षण तुम पाते हो कि अब मैं करने वाला नहीं; अब परमात्मा करने वाला है।
दोनों ही बातें साथ साध सको, तो अच्छा।
जैसा मैंने कहा, जैन विचार में एक सुविधा है कि वह यात्रा का पहला हिस्सा है; तो कम से कम मटकी सीधी करने तक तो ले जाएगा। लेकिन उसमें एक खतरा है; और खतरा है--अहंकार भाव का। इसलिए तुम जैन साधु को हिंदू साधु से ज्यादा पवित्र पाओगे, लेकिन ज्यादा अहंकारी भी।
जैन साधु को हिंदू साधु से ज्यादा अनुशासनबद्ध; ज्यादा नीति-नियम मर्यादा; ज्यादा शुद्ध, ज्यादा पवित्र; सब भाँति निखरा हुआ पाओगे। लेकिन एक खतरा है। इस सारी शुद्धि के बीच अहंकार विराजमान है। जैन साधु को तुम अति अहंकारी पाओगे। हाथ जोड़ कर भी तुम्हें नमस्कार नहीं कर सकता है। कैसे तुम्हें करे; वह साधु है! और तुम साधारण गृहस्थ, संसारी। तुमको हाथ जोड़ कर नमस्कार करे? असंभव है--हाथ जोड़ना उसका।
जैन शास्त्र कहते नहीं कि साधु हाथ जोड़कर नमस्कार करे। वह तुम्हें सिर्फ आशीर्वाद दे सकता है -- नमस्कार नहीं कर सकता। लेकिन जो नमस्कार में न झुक सकता हो, उसके आशीर्वाद दो कौड़ी के हैं। जिसमें इतनी विनम्रता ही न हो, उसका आशीर्वाद कारगर न होगा; व्यर्थ चला जाएगा। वांझ है उसका आशीर्वाद। उसके आशीर्वाद में कोई फूल नहीं खिल सकते।
जैन साधु, साधु है; लेकिन साधु होने का बड़ा अहंकार है। हिंदू साधु साधु नहीं है; लेकिन एक लाभ है वहाँः अहंकार नहीं है।
आधा चुनोगे, तो खतरा भी है, लाभ भी है। जैन साधु अकड़ता चला जाता है। जितना उपवास करता है, जितना व्रत करता है, जितनी तपश्चर्या करता है, उतनी अकड़ गहरी होती जाती है; उतना मैं-भाव प्रगाढ होता चला जाता है।
यह मैं-भाव छोड़ना है एक दिन। इसको अगर बहुत प्रगाढ़ कर लिया, तो छोड़ोगे कैसे? यह मित्र नहीं है, यह शत्रु है--जिसको तुम पोषित कर रहे हो। यह जहर की जड़ों में पानी डाल रहे हो। इसे एक दिन छोड़ना है। यह पहले से ही याद रखो। इसे एक दिन छोड़ना है। लेकिन इसे तुम तभी छोड़ सकते हो, जब कोई चरण हो, जिनमें इसे रख सको। परमात्मा की कोई धारणा हो, उसके प्रसाद का कोई भरोसा हो। नहीं तो खुद को कैसे छोड़ोगे?
रामकृष्ण कहते थेः "तू व्यर्थ ही पतवार उठाता है। पाल क्यों नहीं खोलता? जब उसकी हवाएं तुझे उस पार ले जाने को बिल्कुल तत्पर हैं, तो तू व्यर्थ पतवार उठाता है।" यही फर्क है।
श्रम यानी पतवार। नाव खुद ही खेनी पड़ेगी; पतवार उठा कर चलानी पड़ेगी।

पाल यानी समर्पण; वह ले जाएगा। उसकी हवा ले जाने को तैयार है। खोल दो पाल; पतवार रख लो सामने सम्हाल कर; इसकी कोई जरूरत नहीं है। हवा खुद ही ले जाने को तैयार है--बिना तुम्हारे श्रम के।
मेरी दृष्टि में तुम दोनों का अगर संयोग बना सको, तो सोने में सुगंध है।
साधना इस तरह शुरू करो कि जैसे सभी कुछ तुम्हारे श्रम पर निर्भर है।
और भीतर अंतरधारा यह भी चलती रहे कि मेरे किए क्या होगा? मेरे किए क्षुद्र ही हो सकता है। मेरी क्षमता कितनी? मेरे हाथ की पहुंच कितनी। मेरे किए क्षुद्र ही हो सकता है। तो जो मैं कर सकता हूं, करूंगा। लेकिन इससे अकडूंगा नहीं। जानता यही रहूंगा कि यह सब मैं कर रहा हूं, ताकि तेरी कृपा मिल जाए। क्योंकि असली घटना तो तेरी कृपा से होगी।
मनुष्य का श्रम शुभ प्रारंभ है, लेकिन शुभ अंत नहीं। इसलिए तुम चलो श्रम से, प्रयास से, प्रयत्न से, साधना से; पहुंचो--प्रसाद पर।
बस, तुम्हारा घड़ा सीधा हो जाए, और वर्षा तो हो ही रही है। वर्षा एक क्षण को नहीं रुकती। ऐसा नहीं है कि परमात्मा "कभी" बरसता है। तुम्हें कभी मिलता है, यह दूसरी बात है। बरसता सदा है।
समझोः जब चरणदास हुएतब परमात्मा बरस रहा था। लेकिन चरणदास की मटकी भर गई; तुम्हारी न भरी। तुम उलटी रखे बैठे थे। बुद्ध हुए; परमात्मा बरसता था। बुद्ध की मटकी भर गई। तुम चूक गए। तुम शायद बुद्ध के पास ही बैठे होते, तो भी चूक जाते। वर्षा तो हो रही थी; नहीं तो बुद्ध की मटकी कैसे भरी? लेकिन तुमने ध्यान ही नहीं दिया कि मेरी मटकी उलटी रखी है।
इतनी तैयारी करनी होगीः मटकी सीधी रखो। मटकी को थोड़ा साफ भी करो; उसमें गंदगी न हो, नहीं तो शुद्ध जल भी बरसकर गंदा हो जाएगा। उसमें छिद्र न हो, इसकी फिक्र करो; छिद्र भरो। नहीं तो शुद्ध जल भी बरसेगा, बरसता लगेगा भी, भरता भी लगेगा, लेकिन तुम उपयोग न कर पाओगे। इधर भरा--उधर वह जाएगा। आया-आया हाथ--और खो जाएगा।
ये सभी घटनाए घटती हैं। कुछ लोग उलटी मटकी की तरह हैं; उन पर बरसता रहता है और वे भरते नहीं। उन्हें पता ही नहीं चलता। इनको लोग कहते हैंः "चिकने घड़े"। दूसरे ऐसे हैं, जिनकी मटकी तो सीधी रखी है, लेकिन हजार छेद वाली है। भरता भी लगता है, दिखता भी है कि भर रहा है। लेकिन जब भी पाओगेः खाली की खाली। प्यास कभी तृप्त नहीं होती। प्यास बनी ही रहती है। और कठिनाई हो जाती है।
पानी न मिलता हो और प्यास रहे, तो समझ में आता है। पानी मिलता है, भरता लगता है, फिर भी प्यास नहीं बुझती।
और कुछ ऐसे भी हैं, कि छिद्र भी नहीं हैं घड़े में। घड़े सीधे भी रखे हैं, लेकिन गंदगी से भरे हैं। हजार तरह की व्यर्थ वासनाएं, हजार तरह के रोग व्याधियां, हजार तरह के कीड़े-मकोड़े, जन्मों-जन्मों के कूड़ा-कर्कट से भरे संस्कार--वे सब भरे रखे हैं।
घड़ा सीधा है, छिद्रवाला नहीं है, लेकिन आकंठ भरा है। पहले तो पानी को भीतर जाने का उपाय नहीं; घड़ा भरा ही है। अब और भरने की जगह नहीं।
या कुछ ऐसे लोग भी हैं कि घड़ा पूरा नहीं भरा है, लेकिन गंदगी इतनी घड़े
की दीवालों से लगी पड़ी है, कि पानी चला भी जाता है और भर भी जाता है; लेकिन भरते ही अशुद्ध हो जाता है।
तुमने देखा। सांप को, कहते हैं, दूध पिलाओ, तो जहर हो जाता है। वही दूध बच्चा पीता है जीवन बनता है। वही दूध सांप पीता है और जहर बन जाता है!
हम सब एक सा ही भोजन करते हैं। तुमने ख्याल किया। लेकिन क्रोधी में भोजन क्रोध बन जाता है। प्रेमी में प्रेम बन जाता है। ज्ञानी में ज्ञान बन जाता है। भक्त में भक्ति बन जाता है।
भोजन हम सब एक सा ही करते हैं। कोई चरणदास ने दूसरा भोजन न किया था, जो तुम कर रहे हो। लेकिन परम भक्ति बन कर निकला। किसी में वही भोजन हत्यारा बन जाता है; खुनी बन जाता है।

तो हम लेते तो भीतर एक सी जैसी चीजें हैं, लेकिन भीतर उनमें अंतर हो जाता है। क्योंकि भीतर हमारी कैसी दशा है, वह उन्हें रूपांतरित कर देती है।
जिस बरतन में जहर भरा रहा हो, अब चाहे जहर न भी हो, लेकिन जिसकी दीवालें जहर सोख गई हों, उसमें पानी जाएगा, तो जहर ही हो जाएगा।
क्या तुम्हारे भीतर जाता है, इससे कुछ सिद्ध नहीं होता है। क्या तुम्हारे बाहर आता है, इससे सिद्ध होता है।
जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि तुम क्या अपने भीतर ले जाते हो, उससे कुछ सिद्ध नहीं होता। तुम्हारे बाहर क्या आता है, उससे ही सब प्रमाण मिलते हैं।
भीतर तो सभी लोग शुद्ध हवा ले जाते हैं, लेकिन जब बाहर निकालते हैं, तो किसी के जीवन में सुवास आती है, और किसी में बास आती है; और किसी में दुर्गंध आती है। तुम्हारे भीतर रूपांतरण हो जाता है।
परमात्मा तुम्हारे भीतर भी जाता है, लेकिन अकसर शैतान बन कर प्रकट होता है।
जीवन तो एक ही है। तुम उस जीवन के साथ क्या करोगे, उस पर सब निर्भर है।
मेरी अगर सुनते हो, तो मैं तुमसे कहूंगाः प्रभु प्राप्ति मिलती है-- उसकी कृपा से। लेकिन उसकी कृपा मिलती है--तुम्हारे श्रम से।
साधना के प्राथमिक चरणों में श्रमण बनो। और साधना के अंतिम चरणों में ब्राह्मण बन जाना। और तुम चुकोगे नहीं।
साधना के प्रथम चरणों में ब्राह्मण बन गए--चूक गए। और साधना के अंतिम चरणों में जैन बने रहने की जिद्द की, श्रमण बने रहने की जिद्द की, तो चूके। इस समन्वय को ही में परिपूर्ण धर्म कहता हूँ।
अभी जीवन
कम ज्यादा छंद है
कम ज्यादा सांसों का,
किसी नियम से घटना-बढ़ना
छाती का कम-ज्यादा, मगर धड़कते रहना
बंद भी आंखों का जलना, सपनों में लहर लहर उड़ना विचारों का
हिलना हाथ पांवों का
अभी सब छंद है कम-ज्यादा
जानता हूं संगीत हो जाएगा जीवन
अब शरीर से छूटेगा यह
कंठ से छूटे स्वर की तरह
धड़कनें बदल जाएंगी मूर्च्छना में सांसे हो जाएंगी लय
प्रलय की नदी में
तरंगे पैदा करेंगे, डाले गए हाड़
सरसराते हुए किनारे के वन के साथ
गुंजूंगा मैं वर्षा के तुफान में
अभी जीवन छंद है
जानता हूं
शरीर से छूट कर संगीत हो जाएगा यह।
जब तक तुम अपने से बंधे हो, तब तक छंद बंधा है। तब तक ऐसा समझो कि वीणा में संगीत बंधा है। अभी किसी ने मुक्त नहीं किया। जब तक तुम अपने "मैं" से घिरे हो, तब तक संगीत तारों में पड़ा है। तब तक तुम एक बंद छंद हो। फिर किसी ने तार छेड़े। कोई कुशल अंगुलियां तारों से जूझीं, खेली? रास रचाया। तार में पड़ा हुआ, सोया हुआ छंद जागा, मुक्त हुआ। छंद को पंख लगे। छंद संगीत हुआ। दूर आकाश में व्याप्त हो गया।
अभी तुम्हारा परमात्मा में के पत्थरों के नीचे दबे हुए झरने जैसा है। अहंकार उसे अवरुद्ध किए है। जैसे ही अहंकार छूटा, जैसे ही मैं--भाव गया,

वैसे ही तुम पाओगेः छंद मुक्त हुआ, स्वच्छंद हुआ। अब उसकी कोई सीमा न रही।
ससीम--असीम हुआ। क्षुद्र--विराट हुआ। पदार्थ--परमात्मा हुआ।
अभी जीवन छंद है
जानता हूँ
शरीर से छूटकर संगीत हो जाएगा यह।
प्रयास से तो तुम अपने में ही बंद रहोगे। हां, शुद्ध हो जाओगे। प्रसाद
से कारा टूटेगी। कारागृह की
दीवालें ढहेंगी; कैदी मुक्त होगा। और तब छंद संगीत होगा; तब सीमा नहीं रहेगी। और असीम के बिना कोई शांति नहीं है। असीम में ही शांति है।
दूसरा प्रश्न। भक्ति में नाम-स्मरण को महिमा बहुत है। नाम-स्मरण के प्रसंग में ही यह लोकप्रिय पद हैः "राम नाम रटते रहो, जब लगि घट में प्रान। कबहूं तो दीन-दयाल के भनक पड़ेगी कान।" दीनदयाल
जल्दी क्यों नहीं सुनते हैं?
तुम्हें बहुत बार ऐसा शक होगा कि दीन-दयाल बहरे हैं--वज्र बहरे हैं। ऐसा नहीं है।
पहली तो बातः तुम सुनने-योग्य कुछ कहते नहीं। तुम जो कहते हो, वह सुना जाए, इस योग्य नहीं। तुम कहते ही क्या हो?
तुम जब राम-राम रटते हो, तब राम से तुम्हें क्या लेना-देना? तुम्हारा काम कुछ और ही होता है। राम तो बहाना होता है। किसी को अदालत में मुकदमा जीतना है; किसी को चुनाव लड़ना है। किसी को कुछ... । किसी को दुश्मन को नष्ट करता हैः किसी को किसी स्त्री को प्रेम-पाश में बाँधना है। कोई धन के पीछे दीवाना है। कोई लाटरी में आशा लगाऐ बैठा है।
राम-नाम तुम जपते हो--लेकिन थोथा; मतलब कुछ और है। लॉटरी मिल जाए; नौकरी लग जाए; मुकदमा जीत जाएं; पत्नी बीमार है, ठीक हो जाए। ये तुम्हारे प्रयोजन हैं। ये प्रयोजन ही अटका देते हैं।
परमात्मा बहरा नहीं हैं। कोई चिल्लाने की जरूरत भी नहीं है। तुमने अगर मौन में भी उसका स्मरण किया, तो भी सुन लेगा। पहुंच ही जाएगी बात, क्योंकि तुम्हारे हृदय से जुड़ा ही है। तुम्हारे हृदय में अगर वस्तुतः कुछ बात उठेगी, जरूर पहुंच जाएगी। मगर ये बातें पहुंचाने योग्य भी नहीं हैं। तुम कूड़ा-कर्कट अपनी प्रार्थना में इतना जोड़ देते हो कि प्रार्थना परमात्मा तक नहीं पहुँच पाती। इतनी बोझिल हो जाती है। उड़ने के लिए भार रहितता चाहिए। जब तुम पहाड़ पर चढ़ते हो, तो बोझ कम करना पड़ता है। जितनी ऊंचाई आने लगती है, उतना बोझ कम करना पड़ता है।
जब एडमंड हिलेरी एवरेस्ट पर पहुंचा, तो उसके पास कुछ भी नहीं था। आखिरी घड़ी में उसने अपना कोट भी उतार कर डाल दिया था--कुछ फीट पहले। अपना कैमरा भी छोड़ा। अपना सब सामान धीरे-धीरे छोड़ता गया। क्योंकि जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ती है, वैसे-वैसे छोटा सा बोझ भी भारी होने लगता है। निर्भार ही पहुंच सका एवरेस्ट पर। कैमेरा तक उतार कर रख दिया कुछ क्षणों पहले। वह भी बोझिल हो गया। ऐसी ही यात्रा प्रार्थना की है।
प्रार्थना में अगर कुछ वासना है, तो बोझ है। वासना नहीं है, तो निर्बोझ। निर्वासना प्रार्थना तत्क्षण पहुंच जाती है। जरा भी देर नहीं होती।
तुम प्रबल
मन में भरो सुख विमल चाहो तो
तुम विमल
मन में भरो दुख प्रबल चाहो तो
तुम तरल चाहे तरलता दो
तुम तरल चाहे तरलता दो
सोचकर मेरी जरूरत
दो तुम्हें जो चाहिए
कान मेरी मूढ़ मांगों पर
न देना

मूढ़ मांगों की
खड़ी है एक सेना
तान कर शर
हे प्रखर!
जो जानते हैं, वे कहेंगेः सोचकर मेरी जरूरत,
दो तुम्हें जो चाहिए
और का मेरी मूढ़ मांगो पर
न देना
मूढ़ मांगो की
खड़ी है एक सेना
तान कर शर
हे प्रखर!
प्रार्थना तब पूरी होती है, जब तुम इस बात के प्रति सजग हो जाते हो कि तुम मेरी मांगों के प्रति ध्यान मत देना। मेरी मांगे तो गलत होंगी, क्योंकि मैं गलत हूं।
मैं ठीक मांगूंगा कैसे? अभी मैं ठीक नहीं हूं। मेरे भ्रांत, अज्ञान से भरे हृदय से ठीक मांग उठेगी कैसे? इसलिए प्रभु, वही देना, जो तुम देना चाहो। मेरी मूढ़ मांगो पर ध्यान ही मत देना, क्योंकि मैं तो कुछ गलत मांगता रहूंगा।
जैसे छोटा बच्चा कुछ भी मांगता रहता है। तुम सभी मांगो पर ध्यान तो नहीं देते। बच्चा बीमार है, गला अवरुद्ध है। डिप्थेरिया हुआ है, और आइस्क्रीम मांग रहा है। तो तुम बच्चे की बात पर ध्यान तो नही
देते। तुम समझा-बुझा कर टालते हो कि "अभी आइस्क्रीम कहां! अभी रात आइस्क्रीम कहां मिलेगी? कल सुबह... । रुका कल दोपहर को फिर इंतजाम करेंगे। अच्छी आइस्क्रीम लाएंगे।" हजार बहाने करते हो।
बच्चे की हर मांग तो नहीं मानी जा सकती। बच्चा तो कुछ भी मांग सकता है।
एक मां अपने बेटे से बात कर रही थी। नया बच्चा आने को है; नौ महीने पूरे हो गए हैं। और मां अपने बेटे को तैयार कर रही है। नया अतिथि घर में आएगा, बेटे को तैयार कर लेना जरूरी है। तो उसे वह कह रही हैः "तुम्हें बहुत खुश होना चाहिए। तुम्हारा नया भाई आ रहा है। परमात्मा के घर से नया भाई आ रहा है!"
लेकिन बच्चा कुछ उदास है और कुछ खिन्न है और मां पूछती हैः "बात क्या है? तू खिन्न और
उदास क्यों है? तुझे नये भाई के आने से कोई प्रसन्नता नहीं होती है?"
वह बोला कि "नहीं, क्योंकि मैं रोज प्रार्थना करता हूंः भगवान इस बार भाई न मिले। छोटा घोड़ा भेज। मालूम होता है, मेरी प्रार्थना सुनी नहीं गई। अब भाई-वाई नहीं चाहिए। मुझे एक घोड़ा चाहिए।" और वह अपनी माँ से कहता हैः "अगर ज्यादा तकलीफ न हो, तो घोड़ा ही... ! अभी भी कुछ बन सके, तो कोशिश कर।"
बच्चों की मांग बच्चों की मांग है। हमारी मांगे भी बच्चों से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। और बच्चों की मांगे तो निर्दोष हैं। हमारी मांगे, निर्दोष भी नहीं हैं। बड़ी चालबाज, बड़ी चालाक... । इन मांगो के कारण ही प्रार्थना नहीं पहुंचती। दीन-दयाल बहरे नहीं है।
मांग से मुक्त करो प्रार्थना को।
तुम देखोः "प्रार्थना शब्द को अर्थ ही मांगना हो गया। मांगने वाले को
हम "प्रार्थी" कहने लगे। क्योंकि हम वह प्रार्थना भूल ही गए, जो मांग के बिना होती है, हमारी तो सभी मांगे प्रार्थना में समा जाती हैं। सारी प्रार्थनाएं बस, मांग के ही बहाने होती है। हम तो प्रार्थना करते ही नहीं, जब मांगने को कुछ भी नहीं होता।

एक छोटे बच्चे से उसका पादरी पूछ रहा था कि "तुम रात प्रार्थना कर के सोते हो?" उसने कहा, "हाँ।" और उसने पूछा, "सुबह भी उठ कर प्रार्थना करते हो?" उसने कहा, "नहीं।"
तो पादरी ने पूछाः "बात क्या है? जब रात प्रार्थना करते हो; सुबह क्यों नहीं करते?" तो उसने कहा, "रात अंधेरे में मुझे डर लगता है। सुबह उजाले में मुझे डर लगता ही नहीं। अकारण सुबह किसलिए प्रार्थना करनी? रात का अँधेरा भयभीत करता है।"
एक छोटा बच्चा दूसरे बच्चे से पूछ रहा है कि " तुम भोजन करते समय प्रार्थना करते हो या नहीं? हमारे घर में तो हम प्रार्थना करते है।" दूसरा बच्चा बोला, "नहीं; मेरी मां अच्छा भोजन पकाती है। प्रार्थना करने की कोई जरूरत ही नहीं है।" भोजन के पहले प्रार्थना का मतलब एक ही हो सकता है कि हे प्रभु, बचाओ... !" मगर मेरी मां अच्छा भोजन तैयार करती है। अब तक हमें प्रार्थना करने की जरूरत नहीं पड़ी।"
तुम्हारी प्रार्थनाएं क्या हैं? तुम्हारी शिकायतें हैं कि ऐसा होना चाहिए था और ऐसा क्यों हो गया?
इमरसन का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि "मैंन हजारों आदमियों की प्रार्थनाएं सुनी और जांची और मैंने एक ही बात पाई कि हर आदमी एक ही प्रार्थना करता है, कि हे प्रभु, दो और दो चार क्यों होते हैं?" बड़ा अजीब निष्कर्ष है। इमरसन कहता है कि लोग यही प्रार्थना करते हैं परमात्मा से कि हे प्रभु, दो और दो चार क्यों होते हैं?
तुमने किसी को गाली दी और उसने तुम्हारा अपमान किया। यह दो और दो चार वाला मामला है। और तुम प्रार्थना कर रहे हो कि उसने मेरा अपमान क्यों किया? तुम्हें यह दिखाई नहीं पड़ता कि तुमने गाली दी। तुमने किसी को चोट पहुंचाई, यह तुम्हें दिखाई ही नहीं पड़ता। चोट उत्तर में आई, वही दिखाई पड़ता है। और तुम कहते हो कि ये दो और दो चार क्यों हुए! यह चोट मुझे क्यों मिली? मैंने तो कुछ बुरा नहीं किया; मैं दुख क्यों भोग रहा हूं? लेकिन बिना बुरा किए दुख कभी किसी ने भोगा है?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः "हमने कोई पाप नहीं किया। हम दुख क्यों भोग रहे हैं?" मैं उनसे कहता हूं कि "यह तो सवाल हि नहीं, क्योंकि मुझे तुम्हारे पाप की कथा कुछ भी पता नहीं। तुमसे मैं इतना ही कह सकता हूं कि अगर दुख भोग रहे हो, तो खोज-बीन करना, क्योंकि जरूर कुछ किया होगा। क्योंकि दो और दो चार ही होते हैं। हां, यह हो सकता है कि तुमने उसे पाप न माना हो। तुम्हारे मानने, न-मानने से क्या होता है? यह हो सकता है कि तुमने उसे पुण्य मानकर ही किया हो, वह भी हो सकता है। लेकिन तुम्हारे मानने, न-मानने से क्या होता है? जीवन का गणित अपनी धारा मे रहता है।
जहां तुम दुख पाओ, पाना कि पाप किया गया है। दुख प्रमाण है--पाप का। जहां तुम सुख पाओ, पाना कि पुण्य किया गया है। सुख प्रमाण है--पुण्य का। दो और दो चार।
लेकिन दो और दो चार से हम राजी नहीं है। हम कहते है कि "मैं कितना ही पाप करूं, लेकिन मुझे सुख मिलना चाहिए।
तुमने देखाः लोग अपने लिए और दूसरों के लिए अलग-अलग तर्क रखते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को समझा रहा था। कुछ बात हो रही थी। बेटे
ने पूछा कि "पिताजी फलां आदमी कांग्रेस छोड़कर जनता पार्टी में आ गया है।" (मुल्ला नसरुद्दीन खुद जनतापार्टी में सम्मिलित हो गए हैं।)" उसको आप क्या कहते हैं?" मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "क्या कहते हैं? उस आदमी को समझ आ गई, बुद्धि आ गई। वह आदमी बुद्धिमान है। उसको होश आ गया।" उसके बेटे ने कहा, "और परसों एक आदमी जनता पार्टी छोड़ कर कांग्रेस में सम्मिलित हो गया, तब आप क्या कह रहे थे पिताजी?" मुल्ला ने कहा, "हाँ, वह गद्दार है।"
जब दूसरे की पार्टी से कोई अपनी पार्टी में आता है, तो उसको समझ आ गई;
और जब अपनी पार्टी से कोई दूसरी पार्टी में जाता है, तो वह गद्दार है! हमारे तर्क अपने लिए और दूसरे के लिए अलग हैं।

कोई हिंदू अगर ईसाई हो जाए, तो तुम कहते होः गद्दार। और अगर कोई ईसाई हिंदू हो जाए, तो आर्य-समाज जुलूस निकालता है कि देखो, कितना... !" अपूर्व घटना घटती है। दोनों हालत में एक ही बात हुई।
हिंदू ईसाई हो जाता है, तो ईसाई मिशनरी कहता हैः "तुम अब ठीक रास्ते पर
आ गए।" और ईसाई हिंदू हो जाता है, तो वह कहता हैः तुम भ्रष्ट हुए, पतित हुए। धर्म से पतित हो गए। भटकोगे, सड़ोगे नरक में।" हमारे नियम अलग-अलग हैं। अगर तुम सफल होते हो, तो तुम इसीलिए सफल होते हो कि तुम पात्र हो। और अगर दूसरा सफल होता है, तो चालबाज है।
एक महिला मेरे पास आती थी अपने बेटे को लेकर। और वह कहती थी कि "इस बेटे के पीछे स्कूल के शिक्षक पड़े हैं। हर साल फेल कर देते हैं।" फिर एक साल संयोग से वह पास हो गया। फिर वह नहीं आई, तो मुझे उसके घर जाना पड़ा। मैंने पूछा कि "मामला क्या है? तेरा बेटा और पास हो गया?" उसने कहा, "क्यों न हो।" मैंने कहा, "किसी को रिश्वत खिलाई?" उसने कहा, "आप बात कैसी कर रहे हैं! मेरा बेटा जैसा बेटा खोजना मुश्किल है। वह प्रतिभाशाली है। रिश्वत खिलाने की जरूरत नहीं है।"
इसके पहले वह मुझे यही बताती थी सदा आकर कि "फलाने का बेटा पास हुआ, उसने रिश्वत खिलाई। फलाने का बेटा पास हुआ, वह उसके शिक्षक का रिश्तेदार है।"
तो मैंने कहा कि "कुछ रिश्तेदारी है शिक्षकों से?" उसने कहा, "आप बातें कैसी कर रहे हैं। मेरा बेटा बुद्धिमान है।"
दूसरों के बेटे जब पास होते हैं, तो रिश्वत। जब किसी और को नौकरी लगती है, तो तुम्हें शक होता है कि कुछ दाल में काला है। जब तुम्हारी नौकरी लगती है, तब तो यह होना ही था। सच तो यह है कि तुम्हारे योग्य अभी भी पद तुम्हें नहीं मिला।
ऐसी व्यवस्था है हमारे चित्त की। और इस चित्त के ही आधार पर हमारी प्रार्थनाएं निर्मित होती हैं।
इमरसन ठीक कहता है कि मैंने हजारो प्रार्थनाएं सुनी, और मैंने एक ही निष्कर्ष पाया कि लोग परमात्मा से कह रहे हैं कि "हे प्रभु, दो और दो चार क्यों होते हैं?" वे दो और दो पाँच करना चाहते थे। कि दो और दो तीन करना चाहते थे। वे कुछ और करना चाहते थे, और वैसा नहीं हुआ। तुम्हारे मन में अकसर यह होता है।
अगर तुम धनी हो जाओ, तो तुम कहते होः पुण्यों का फल। और दूसरा धनी हो जाए, तो बेईमान, चोर, बदमाश, लुच्चा, काला-बाजारी, कि तस्करी करनेवाला, कि राजनेता--कुछ न कुछ गड़बड़... कुछ न कुछ डकैत इसमें है।
तुम जब धनी हो जाते हो, तो यह पुण्यों का फल, यह बापदादों की कमाई है।
यह तुम्हें ठीक वही मिल रहा है, जो मिलना ही था।
इसी आधार पर आदमी जीता है। और यह आधार जब तक तुम्हारा है, तब तक परमात्मा तक तुम्हारी आवाज न पहुँचेगी।
उस तक आवाज पहुंचे, इसलिए तुम्हें अपना आधार बदलना होगा। आधार बदलते
ही तुम संयुक्त हो जाओगे। जैसे कभी तुमने देखा कि रेडियों पर तुम स्टेशन लगाते हो। जब तक ठीक-ठीक न लग जाए, तब तक आवाज ठीक-ठीक सुनाई नहीं पड़ती। ठीक जब निर्वासना तुम्हारे भीतर जो जाती है, प्रार्थना वासना से शून्य हो जाती है, तो ठीक जगह सुई आ गई, ठीक तरंग पर आ गई। वहीं से परमात्मा से तुम्हारा संबंध जुड़ता है। उसके पहले न जुड़ सकता है, न जुड़ना उचित है, न जुड़ना चाहिए।
प्रार्थना मांग-शून्य हो। प्रार्थना दिखावा न हो। तुम प्रार्थना भी दिखावे के लिए करते हो। अगर मंदिर में बहुत लोग आए हो, तो तुम्हारी आरती देर तक चलती रहती है। अगर कोई न आया हो, तो मिनटों में तुरत-फरत खत्म हो जाती है प्रार्थना।
प्रार्थना एकांत में हो, दिखावे के लिए न हो; प्रदर्शन न हो।
प्रार्थना ऐसी हो कि परमात्मा को ही सुनाई पड़े; किसी और को सुनाई न पड़े।

किसी और को सुनाने की जरूरत भी नहीं है। यह परमात्मा और तुम्हारे बीच की वार्ता है।
ऐसे करना प्रार्थना को गुप-चुप, कानों-कान खबर न पड़े। लेकिन नहीं; लोग लाउड-स्पीकर लगा कर करते हैं। कहते हैंः अखंड-पाठ कर रहे हैं! कि सत्यनारायण की कथा कर रहे हैं! तुम करो, मगर लाउड-स्पीकर किसलिए लगाए हो? यह मोहल्लेवाले को सताने का क्यों उपाय किया है? इनको नहीं सुनना है राम नाम। तुम क्यों इनको परेशान कर रहे हो? इनको सोने दो। नहीं, लेकिन धर्म लोग मुफ्त बांट रहे हैं। खुद प्रार्थना कर लो। परमात्मा बहरा नहीं है। लाउड-स्पीकर लगाने की जरूरत नहीं है। कबीर ने कहा है--देख कर एक मुसलमान को, जोर से अजान करते--कि क्या तेरा परमात्मा बहरा हुआ है? बहरा हुआ खुदाय?"
लेकिन कबीर को पता नहीं था कि अब हालत और बिगड़ गई है। अब लाउडस्पीकर
भी उपलब्ध है लोगों को। अगर परमात्मा कहीं होगा, तो पगला रहा होगा; पागल हो रहा होगा।
मैंने सुना हैः एक बार एक आदमी मरा, जो बड़ा भक्त था। भक्त जैसे होते हैं--ऐसा भक्त। राम-राम जपता रहता था। माला फेरता रहता था। रामनाम की चदरिया ओढ़े रहता था।
वह मरा तो उसको नरक की तरफ ले जाने लगे--देवदूत। उसने कहा, "यह क्या कर रहे हो?" और उसके दो-चार दिन पहले ही उसके सामने एक आदमी मर गया था; उसके मकान के ही सामने रहता था। कभी मंदिर नहीं गया। कभी राम-नाम नहीं किया। बल्कि यह आदमी जोर-जोर से राम-नाम जपता था, तो वह बाधा डालता था आकर कि "भई, हमको सोने दो; इतने जोर से मत जपो।" तो यह सोचता था कि वह पापी है।
उसने पूछा, "मुझे नरक ले जा रहे हो? उस आदमी का क्या हुआ, जो मेरे सामने मरा? उसको ले गए होते नरक। वह कहां है?" उन्होंने कहा, "वह तो स्वर्ग में है।"
तब तो उसे बहुत परेशानी हो गई। उसने कहा, "फिर मुझे परमात्मा से शिकायत करनी है। अन्याय हो रहा है। हम तो सोचते थे, जमीन पर ही चल रहा है अन्याय; यहां भी चल रहा है! यह तो हद्द हो गई। कुछ भूल-चूक हो गई या तो। दफ्तर की कुछ भूल होगी। मुझे स्वर्ग जाना होगा; तुम उसको ले गए। और उसको नरक ले जाना होगा।"
उसने प्रभु के सामने जाकर कह कि "यह माजरा क्या है?" (वह बड़ा नाराज था।
)" कि मैं जिंदगी भर राम-राम जपा। जागते-सोते, उठते-बैठते धुन लगाए रखा-- अखंड। कई दफा माइक भी लगा कर किया था। पड़ोस के लोगों को भी धर्म को बांटता था। और यह आदमी तो हमेशा धर्म-विरोधी था; यह मुझे रुकावट डालता था; यह पुलिस में तक शिकायत करता था। इसको स्वर्ग?"
परमात्मा ने कहा, "इसीलिए कि तूने मुझे बहुत सताया। तुन मुझे सोने भी
न दिया। आधी रात को भी राम-राम, राम-राम! तुझे ही सोना है? हमको भी सोना है। तू मेरी खोपड़ी खा गया। इसीलिए तुझे नरक। यह आदमी सज्जन है। इसने न माईक लगाई, न अखंड जाप किए। न किसी और को सताया--न मुझे कभी। इससे मुझे कोई शिकायत ही नहीं है। यह आदमी था भी कि नहीं, इसका भी मुझे पता नहीं चलने दिया। यह आदमी गुपचुप जिया है।"
मुझे यह कहानी अर्थपूर्ण मालूम पड़ती है। परमात्मा से जो प्रार्थना है, गुपचुप हो। शोरगुल मचाने की जरूरत नहीं है।
एक बादल पराग का है
तुम्हारा अकेलापन
जो बरसेगा अगर पूरे मन से
तो गन्ध उठेगी वैसी
जैसी जेठ की तपी धरती से उठती है
आषाढ़ के बरसे
रुके रहा प्रार्थना में रत
कि अकेलेपन का यह परागघन धाराहत करे

तुम्हारे मन का तप्त विस्तार
फुटे हरीतिया
उमड़े नदियां
एक बादल पराग का है
तुम्हारा अकेलापन।
यह तुम्हारा अकेलापन सुगंध से भरा हुआ बादल है। "एक बादल पराग का है तुम्हारा अकेलापन।" इसी अकेलेपन में प्रार्थना को गूंजने दो। इस एकान्त मौन में, शब्द की भी जरूरत नहीं है। प्रार्थना भाव है--झुके होने का भाव; उसके चरणों में पड़े होने का भाव।
शब्द की भी जरूरत नहीं है। क्योंकि परमात्मा को शब्द से क्या लेना- देना। तुम्हारी भाषा उसकी समझ में आएगी भी नहीं।
क्या तुम सोचते हो? संस्कृत बोलोगे, तो समझ में आएगी? कि अरबी बोलोगे,
तो समझ में आएगी? कि लेटिन, कि ग्रीक? कौन सी भाषा बोलोगे उससे, जो उसे समझ में आएगी?
तीन सौ भाषाएं है जमीन पर। कौन सी भाषा उसकी भाषा है! हालांकि हर भाषा
का मानने वाला सोचता है कि मेरी भाषा उसकी।
संस्कृत के पंडित कहते हैः संस्कृत देववाणी है, आर्षवाणी है। वही अरबी के मानने वाले कहते हैं; नहीं तो कुरान तो कुरान क्यों उतरती अरबी में। वही हिब्रू के मानने वाले कहते हैं; नहीं तो जीसस के वचन क्यों उतरते हिब्रू में। वही सारी दुनिया के भाषा के बोलनेवाले मानते हैं।
मैंने सुना हैः एक जर्मन और अंग्रेज जनरल दूसरे महायुद्ध के हार जाने
पर बात कर रहे थे। जर्मन जनरल ने अंग्रेज जनरल से पूछा कि "हमारी समझ में नहीं आता है। हमारे पास तुमसे अच्छे साधन थे। जर्मनी के पास ज्यादा यांत्रिक कुशलता थी। हमारे पास तुमसे ज्यादा जबान थे। हमारे पास तुमसे ज्यादा उत्साह था। हमारे पास तुमसे बड़ा नेता था, जादूगर नेता था हमारा; उसमें चमत्कार था। फिर भी हम हार गए?"
अंग्रेज जनरल हँसा। उसने कहा, "इसके पीछे कारण हैं। हम जब भी युद्ध में जाते थे, तो पहले प्रार्थना करते थे। वही हमारा राज है। प्रार्थना के बिना हम कभी गए नहीं युद्ध में।"
जर्मन बोला, "यह तुम क्या कह रहे हो? प्रार्थना तो हम भी करते थे!" अंग्रेज हंसा, उसने कहा, "तुम करते होओगे। लेकिन जर्मन भाषा भगवान समझता भी है?"
अंग्रेज सोचते हैः अंग्रेजी के सिवा कोई भाषा दुनिया में नहीं है।" तुम करते रहे होओगे प्रार्थना, यह मानते हैं हम। लेकिन किसने कब सुना है कि भगवान जर्मन बोलता है? इसीलिए चूक गए।"
सच तो यह है कि भगवान कोई भाषा नहीं बोलता।
भाषा आदमी की ईजाद है; व्यवहारिक है। भाषा का अस्तित्व से कुछ सम्बन्ध नहीं है।
प्रार्थना भाषा में नहीं होती, भाव सें होती है। प्रार्थना तुम्हारे हृदय की दशा है--समर्पण की, झुके होने की, विनम्र होने की। भाषा का सवाल ही नहीं।
कहना क्या है? सच तो यह है कि बड़े प्रार्थना करने वालों ने कहा है कि प्रार्थना में भक्त नहीं बोलता; भगवान बोलता है; भक्त सुनता है।
तुम क्या बोलोगे? उसे बोलते दो। तुम गुप्पी साधो; तुम चुप्पी साधो।
तुम बिल्कुल शांत हो जाओ, ताकि वह बोले; फुसफुसाए भी, तो तुम्हें सुनाई पड़ जाए।
"एक बादल पराग का है तुम्हारा अकेलापन।" एक गंध का बादल है अगर मौका दो, तो तुम्हारा जीवन सुगन्ध से भर जाए।
जो बरसेगा अगर पूरे मन से
तो गंध उठेगी वैसी
जैसी जेठ तपी धरती में उठती है
आषाढ़ के बरसे

रुके रहो प्रार्थना में रत कि अकेलेपन का यह पराग-धन धाराहत करे
तुम्हारे मन का तप्त विस्तार
फूटे हरीतिमा
उमड़े नदियां
एक बादल है पराग का है
तुम्हारा अकेलापन।
पूछते हो तुम कि "भक्ति में नाम-स्मरण की महिमा बहुत है।" निश्चित बड़ी महिमा है, लेकिन नाम-स्मरण शब्द में "नाम" पर बहुत जोर मत देना; "स्मरण" पर जोर देना। "नाम" पर जोर दिया गया; स्मरण की बात ही लोग भूल गए।
राम-राम की रटन्त तुम तोते बन जाओंगे। स्मरण पर जोर देना। स्मरण बात
ही और है। स्मरण भाषा से गहरी बात है।
तुम जब किसी को प्रेम करते हो, तो उसकी एक स्मृति तुम्हारे आसपास छाई रहती है--एक आभा-मंडल की भांति। जैसे वृक्ष के पास एक शीतलता छाई होती है। या फूल के पास गंध छाई होती है। या दीए के पास ज्योति छाई होती है। कुछ करना नहीं होता; कुछ प्रयास नहीं करना होता; उसे बांध-बांध कर लाना नहीं होता। राम-राम, राम-राम रटना नहीं होता। तुम भूलते नहीं--कि प्रभु है। रटने का सवाल नहीं है। भूलते नहीं--कि प्रभु है। कि तुम किसी की आंख में आंख डाल कर देखते हो और तुम्हें प्रभु की याद आ जाती है। कि तुम झरने में झांकते हो, प्रभु की याद आ जाती है। कि तुम आकाश में उगते पहले तारे को देखते हो, और प्रभु की याद आ जाती है।
ऐसा नहीं कि तुम रटन करते हो--राम राम। बल्कि ऐसा--कि तुम जहां भी जाते हो, जो भी करते हो, वहीं तुम्हें अहर्निश उसका भाव उठ आता है।
एक सुंदर स्त्री देखते हो; सौंदर्य "उसकी" याद बन जाता है। अभी भी होता है कुछ। सुंदर स्त्री को देख कर वासना जगती है--प्रार्थना नहीं जगती। फर्क क्या है?
सुंदर स्त्री को देख कर तुम्हें सोचना थोड़े ही पड़ता है, याद थोड़े ही करना पड़ता है कि "स्त्री बहुत सुंदर है। जाग, हे मेरी वासना, जाग। कितनी सुंदर स्त्री जा रही है; तु यहां पड़ी क्या कर रही है--जाग।" ऐसा तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता।
इधर सुंदर स्त्री देखी--कि उधर वासना जगी। देखी नहीं--कि जगी। देखते
ही जगी, तुम्हें कुछ याद नहीं करनी पड़ती। तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ता। यह सुंदर देह गुजरी पास से--कि तुम्हारे भीतर कुछ कँप जाता है।
सुंदर स्त्री को देख कर प्रार्थना भी ऐसे जग सकती है, जैसे वासना जगती है। भक्त को यही होता है।
सुंदर स्त्री को देखता है--वासना से भरा आदमी, तो सौंदर्य तो भूल जाता है, देह याद रह जाती है। भक्त देखता है सौंदर्य को; सौंदर्य तो भूल जाता है, आत्मा याद रह जाती है।
स्त्री सुंदर है--ऐसा सोचते ही तुम्हें केवल स्त्री की देह, और देह की वासना याद में आती है। भक्त को स्त्री सुंदर है--ऐसा देखते ही, ख्याल में आते ही, परमात्मा की सुध आ जाती है। क्योंकि सभी सौंदर्य उसका है।
सत्यम शिवम सुंदरम्। जो भी सत्य है--वही है। और जो भी शिव है--वही है।
और जो भी सुंदर है--वही है।
इस सुन्दर स्त्री को देख कर स्त्री की देह पर तो दृष्टि नहीं जाती; उस परम सौंदर्य की याद आ जाती है। जैसे चांद को झील में देखा हो और चांद की याद आ जाए। ऐसे इस सौंदर्य में भी उसी की झलक है।
सब सौंदर्य उसका है। कुरूप होगा कुछ, तो मनुष्य का होगा। और असत्य होगा कुछ, तो मनुष्य का होगा। तुमने कभी इस पर विचार किया?
अगर पृथ्वी पर मनुष्य जाति एकदम समाप्त हो जाए, या हटा ली जाए, तो पृथ्वी पर सत्य तो इतना ही रहेगा, जितना है; असत्य बिल्कुल नहीं रहेगा। सौंदर्य तो इतना ही रहेगा, जितना है; कुरूपता नहीं रह जाएगी। पुण्य तो ऐसा

ही रहेगा, जैसा है; पाप नहीं रह जाएगा। पक्षी गीत गाएंगे; वृक्षों में फूल खिलेंगे; चांद निकलेगा; सूरज उगेगा--सब ऐसा ही होगा। अपूर्व शांति और अपूर्व सौंदर्य और अपूर्व सत्य होगा। सिर्फ आदमी जो कुरूपता पैदा करता है, वह खो जाएगी। आदमी जो असत्य पैदा करता है, वह खो जाएगा। आदमी जो झूठें बनाता है, वे खो जाएंगी। आदमी के बनाए हुए झूठ विदा हो जाएंगे। आदमी झूठ का आविष्कारक है।
भक्त देखता है सौंदर्य को--चाहे स्त्री में हो, चाहे पुरुष में, चाहे वृक्ष में, चाहे पहाड़ में, चाहे
बादल में। सूरज की किरणों का जाल बुना हो... । जहां सौंदर्य को देखता है, तत्क्षण उसका हृदय गदगद हो जाता है। आंख से आंसू बहने लगते है। यह याद आ गई उसे; सुध आ गई उसे। इसका अर्थ है--स्मरण।
तो नाम-स्मरण में अगर तुमने "नाम" पर जोर दिया, तो भूल हो जाएगी।
"स्मरण" पर जोर देना, तो भूल न होगी।
नाम-स्मरण की महिमा निश्चित है। और यह पद भी प्यारा है।
राम नाम रटते रहो, जब लगि घट में प्रान।
कबहुँ तो दीन-दयाल के, भनक पड़ेगी कान।।
यह राम की सुध बनी रहे--बनी रहे। घबड़ा मत जाना--कि दो-चार दिन याद की, अभी तक कुछ नहीं हुआ! अधैर्य मत करना। अधैर्य किया, तो चूक जाओगे। इसलिए कहते हैः "जब लगि घट में प्रान।" जब तक तुमसे हो सके, जब तक श्वास आती रहे, जाती रहे, तब तक सुध बनी रहे। डूबते-डूबते उसी की याद बनी रहे। उसी की याद में डूबना।
उसी की याद में रात सोना। उसी की याद में सुबह उठना। उसी की याद दिन में बार-बार झरोखे की तरह खुल जाए। उसी की गंध दिन में बार-बार तुम्हारे भीतर बस जाए।
ऐसे जीवन में जीते-जीते, मरते क्षण में भी "जब लगि घट में प्रान" उसी
की याद बनी रहे। इधर तुम मरने लगो, उधर याद से हाथ न छूटे; उसकी सुध और प्रगाढ़ होने लगे। इधर देह छुटने लगे, तो स्वभावतः उसकी याद और घनी होगी। क्योंकि देह के कारण सब धुंधला-धुंधला है। देह के कारण चीजें पारदर्शी नहीं है।
देह में रहते-रहते, तो कभी-कभी झलक मिलती है। ऐसा समझो कि कांच है और
उस पर परदों पर परदे पड़े हैं। कभी-कभी कोई किरण परदों को पार कर के आ जाती है--धुंधली-धुंधल--तुम्हारे अंधकार में। परदे हट जाते हैं, तो रोशन हो जाएगा सब।
जब आदमी मरता है, तो अगर भोगी मरता हो, तो सिर्फ घबड़ाता है, सिर्फ कंपता है, सिर्फ रोता-चिल्लाता है कि बचाओ; कि थोड़ी देर और जी लूं। उसका मोह, उसकी वासना अधूरी रह गई है। वह इस किनारे को जोर से पकड़ लेता है। उसी पकड़ने में मृत्यु का अपूर्व क्षण चूक जाता है।
योगी मरता है--स्वागत से। वह कहता हैः प्रभु लेने आए हैं। इतने दिन दूर रखा, अब पास बुलाते हैं। अब तक कहां परदेश में भटका, अब अपने घर जाता हूं--जहां मैं सम्राट हूं अब तक मैं पदार्थ में उलझा था, अब पदार्थ से मुक्त होता हूं। अब शुद्ध होता हूं।
योगी आह्लादित हो जाता है। और परमात्मा की घनी याद आने लगती है। अब शरीर की बाधा भी न रही। शरीर की बाधा के कारण तो कभी-कभी क्षण भर को झलक मिलती है।
श्लथ पथ पर
तड़ित गति रथ पर
तत्पर तुम दिखे-दिखे
रंग तुम्हें आंके जब तक
लेखनी लिखे-लिखे
तब तक तुम चल गए
सब कुछ बदल गया
श्लथ सूने

पथ के पांवों को छूते ही
चुक गया रंगो का रूप
तड़ित गति रथ के
पीछे पड़ कर
सिहर गई शब्दों की धूप
अनूप कुछ नहीं रहा
सूनेपन के सिवा,
सूने मन के सिवा!
इस शरीर में बंधे-बंधे तो, ऐसा है जैसे आंख पर पत्थर बंधा हो, इसमें तो कभी-कभी पत्थर सरक जाता थोड़ा। तुम्हारे बड़े प्रयास से परदा थोड़ा हिल जाता है और जरा सी झलक मिलती है।
"श्लथ पथ पर, तड़ित गति रथ पर।" जैसे कोई बिजली की कौंध पर सवार हो कर निकल गया हो।
तड़ित गति रथ पर
तत्पर तुम दिखे-दिखे
बस, तुम दिखे ही दिखे थे कि गए। पकड़ भी नहीं पाता। लगता था कि आए-आए; और
ये गए। बस, बिजली की कौंध हो जाता है परमात्मा।
रंग तुम्हें आंके जब तक
लेखनी लिखे-लिखे
तब तक तुम चले गए
सब कुछ बरल गया
जब तक कि लेखनी उठाऊं, बांधू तुम्हें शब्दों में, जब तक कि तूलिका उठाऊं; रंग डालूं तुम्हारा चित्र, तुम्हारा रूप, लेकिन तब तक तो तुम जा चुके।
इसके पहले कि मन समझ पाए, कि क्या हो रहा है, सब बदल जाता है।
श्लथ
सूने पथ के पांवों को छूते ही
चुक गया रंगों का रूप
तड़ित-गति रथ के पीछे पड़ कर
सिहर गई शब्दों की धूप
अनूप कुछ नहीं रहा
सूनेपन के सिवा
सूने मन के सिवा!
और जब भी ऐसी घटना घटेगी, बिजली की कौंध की तरह, परमात्मा एक क्षण भर
को झलकेगा, फिर पीछे बड़ा सूनापन रह जाएगा।
अनूप कुछ नहीं रहा
सूनेपन के सिवा
सूने मन के सिवा!
फिर तुम्हें पहली दफा मालूम होगा कि जीवन कितना सूना है। इसके पहले
तो तुम खोए-खोए थे। कुछ याद न थी। कुछ पहचान न थी। रोशनी जानी न थी, तो अंधेरा अंधेरा है--ऐसा पता भी न चलता था। फिर जरा सी रोशनी देखी। सपने जैसी आई और गई! लेकिन एक बार रोशनी देख लो, तो अब अंधेरा बहुत काटेगा। अब अंधेरा जीना बहुत मुश्किल हो जाएगा।
इधर रोज ऐसा होता है। जिनको भी ध्यान में झलक मिल जाती है, फिर उनकी पीड़ा की यात्रा शुरू होती है। तब उन्हें पता चलता है कि अब तक जिसे जीवन समझा था, जीवन था ही नहीं। और अब तक जिसे रोशनी समझे थे, सब अंधेरा था। और अब तक जिसको समझा था अपना होना, वह मिट्टी की देह थी। राख ही राख है... !
एक बार वह रोशनी की जरा सी झलक क्या आ जाती है, जीवन में तुलना पैदा होती है। फिर बड़ी पीड़ा होती है। उसी को भक्तों ने विरह की पीड़ा कहा है। जानकर ही तो विरह होगा। अनुभव से ही तो विरह होगा। एक बार स्वाद ले लिया, तब तो विरह होगा।

जो आदमी जिंदगी भर गंदी नालियों का पानी ही पीता रहा, उसे कुछ अड़चन न होगी। लेकिन एक बार उसे मानसरोवर का जल मिल जाए, स्वच्छ जल, अभी-अभी पहाड़ों से उतरा, अभी-अभी पिघली बर्फ, अभी-अभी ताजा जल, जिसमें धूल का कण भी नहीं है--ऐसे पहाड़ों से उतरते झरने का जल उसे मिल जाए, फिर अड़चन हो जाएंगी। फिर नाली का जल पीना मुश्किल हो जाएगा। अब उसके पास तुलना का आधार है। अब उसे पता है कि जल कैसा होना चाहिए।
जिसने प्रभु की झलक पा ली--एक क्षण को--बड़ा सूनापन आ जाएगा। जिंदगी एकदम कांटों से भरी दिखाई पड़ने लगेगी। कल तक इन्हीं कांटों को फूल समझा था। फूल जानते नहीं थे, तो समझने में कोई अड़चन न थी। अब फूल जान लिया, अब कांटों को फूल मानना मुश्किल है।
लेकिन शरीर के साथ तो बस, ऐसी झलकें ही मिलती हैं।
मृत्यु के क्षण में जब शरीर छूट रहा होता है, तब पूरा द्वार खुलता है।
किरण नहीं आती, पूरा सूरज तुम्हारे भीतर उतरता है। लेकिन अगर तुम स्मरण से भरे हो, तो ही मृत्यु का यह क्षण अमृत का अनुभव बनेगा।
तुम जीवन में भी चूक जाते हो, फिर मृत्यु में भी चूक जाते हो। भक्त न
तो जीवन में चूकता है, न तो मृत्य में चूकता। भक्त, चूकता ही नहीं।
भक्त ऐसी कुशलता से जीता है, कि यहां भी उसे प्रभु की याद ही बनी रहती है। हर चीज से उसी की याद आती है। और मरते क्षण में तो प्रभु की पूरी वर्षा हो जाती है।
इसलिए यह पद तो ठीक है। याद करते रहो, सुध करते रहो। "जब लगि घट में प्रान"।
"कबहुं तो दीनदयाल के भनक पड़ेगी कान।" और धैर्य रखो। अनंत प्रतीक्षा हो--कि कभी तो पड़ेगी। हम पुकारे चले जाएंगे। हम गुनगुनाए चले जाएंगे। हम नाचते ही रहेंगे। कभी तो होगा? कभी तो तालमेल बैठ जाएगा? कभी तो ऐसी घड़ी होगी हमारी, कि हम जो, जिस भावदशा में पुकारेंगे, वह भावदशा परमात्मा से संबंधित हो सकेगी।
हजार बार करेंगे, एक बार तो तीर ठीक जगह लग जाएगा? अंधेरे में ही तीर फेंके चले जाओ।
टटोलना ही है, संसार में, लेकिन टटोलते-टटोलते द्वार मिल जाता है। और अंधेरे में तीर मारते-मारते भी तीर लग जाता है। तीर लगेगा ही--देर-अबेर की बात हो सकती है। थक कर बैठ मत जाना। अधैर्य में डूब मत जाना।
तो भक्ति का एक अनिवार्य अंग है--प्रतीक्षा की क्षमता।
तीन शब्द याद रखोः प्यास, प्रार्थना, प्रतीक्षा।
परमात्मा केवल शाब्दिक बातचीत न हो--प्यास हो। ऐसी हो कि उसके बिना मर जाएंगे। विरह हो। ऐसी हो कि जीवन-मरण का प्रश्न बने। फिर प्रार्थना मांगरहित, मांग-शून्य। सिर्फ आह्लाद, सिर्फ आनंद का भाव और फिर प्रतीक्षा। और प्रतीक्षा सब से महत्वपूर्ण है, सब से अंतिम है। क्योंकि हमारा मन बड़ी जल्दी मांग करता है।
हमारा मन कहता हैः जल्दी कुछ हो जाए।
यहां मेरे पास लोग आते है, कहते है कि "तीन दिन रुकेंगे; कुछ होगा कि नहीं?"
तीन दिन रुकेंगे! बड़ी कृपा की। "तीन दिन रुकने आए। कुछ होगा कि नहीं।"
तुम सोचते होः तुम क्या कह रहे हो? तुम सोचते होः तुम क्या सोच रहे हो? तुमने परमात्मा को क्या समझा है? तुम जैसे बड़ी कृपा कर रहे हो परमात्मा पर--कि तीन दिन ध्यान करेंगे! ऐसी चित्त की दशा में तो कभी कुछ नहीं होगा। तो मैं ऐसे लोगों से कहता हूंः तुम तीन दिन खराब न करो। वापस जाओ। वहीं संसार में कुछ और चांदी के ठीकरे जोड़ लोगे। तीन दिन खराब न करो। दुकान बंद रखोगे, तो नुकसान होगा और फिर पछताओगे कि हानि कर बैठे। इतनी देर तो अपने व्यवसाय में लगाते, तो कुछ हाथ लगता; कुछ लाभ होता!
यह तो दीवानों का रास्ता है। यह तो जुआरियों की गैल है। और उनका काम है, जो कहते हैंः आज हो, तो ठीक। कल हो, तो ठीक। परसों हो, तो ठीक। इस जनम में हो, तो ठीक। अगले जनम में हो, तो ठीक। कभी हो, तो ठीक। और कभी न हो, तो भी

ठीक। जो कहते हैं कि प्रार्थना में ही इतना आनंद है, अब और क्या चाहिए? ध्यान में ही इतना आनंद है, अब और क्या चाहिए? इतनी ही क्या उसकी कम कृपा है कि हमें ध्यान की तरफ मोड़ दिया? कि म प्रार्थना में संलग्न हो गए हैं! और क्या चाहिए?
ऐसों को जल्दी हो जाता है। तीन दिन की भी जरूरत नहीं लगे। ऐसा भी हो जाता है कि तीन क्षण में हो जाए; कि तीन पल भी न लगे, कि आंख झपके और हो जाए। ऐसी प्रतीक्षा गहन हो, तो इसी क्षण हो सकता है। यह बड़ा विरोधाभासी वक्तव्य होगा।
जितनी जल्दी करोगे, उतनी देर लग जाएगी। और जितनी प्रतीक्षा कर सकोगे, उतनी जल्दी हो जाएगा।

तीसरा प्रश्नः चरणदासजी कहते हैं--सभी ज्ञानी शायद यही कहते हैं--कि परमात्मा एकरस है। वहां न सांझ है, न भोर; न मृत्यु है, न जन्म; न सुख, न दुख। फिर वहां है क्या? यह एकरस क्या है?

जीवन में द्वंद्व है। जीवन में सब जगह द्वंद्व है। प्रेम है, तो घृणा है। पाप है, तो पुण्य है। दिन है, तो रात है। जन्म है, तो मृत्यु है। जीवन में सब जगह द्वंद्व है। जीवन चलता ही द्वंद्व से है। जीवन द्वंद्वात्मक है।
यहां जीवन बिना मृत्यु के नहीं हो सकती; यहां सांझ कैसे होगी--बिना भोर के? यहां भोर कैसे होगी--बिना सांझ के? यहाँ सफलता कैसे होगी, अगर विफलता न होती हो? और अगर दुख न होता, तो सुख कैसे होगा?
यहां सब चीजें विपरीत से बंधी हैं। और इसीलिए यहां कोई कितना ही सुखी
हो जाए, सुखी नहीं हो पाता, क्योंकि दुख उसके पीछे आता है; साथ-साथ आता है। दुख और सुख जुड़वां भाई हैं। और जुड़वां ही नहीं, जुड़े ही हुए हैं। एक ही देह है उनकी। शायद चेहरे दो होंगे, मगर देह एक है।
यहां नाम मिलता है, तो बदनामी मिलती है। यहां प्रतिष्ठा मिलती है, तो अप्रतिष्ठा साथ आ जाती है। यहाँ सिंहासन मिला, तो जल्दी धूल-धूसरित भी होना पड़ेगा।
ऐसा जीवन का सत्य है। इस सत्य को जो साक्षीभाव से देखने में सफल हो जाता है, जो चुनाव नहीं करता, जो निर्विकल्प हो जाता है, जो कहता हैः दुख आए तो ठीक, सुख आए तो ठीक। वे दोनों एक ही हैं, जुड़े ही हैं। चुनना क्या है? ... दुख आता है, तो दुखी नहीं होता जो; और सुख आता है, तो सुखी नहीं होता जो;
उस आदमी के जीवन में एकरसता पैदा होती है। फिर उसको कैसे बांटोगे? दुख में दुखी नहीं होता, सुख में सुखी नहीं होता। सम्मान में सम्मानित नहीं होता, अपमान में अपमानित नहीं होता। इसी को साक्षीभाव कहा है।
यह जो साक्षीभाव है, यह धीरे-धीरे द्वंद्व के बाहर हो जाता है, क्योंकि द्वंद्व में उलझता ही नहीं। जब दुख आता है, तब वह जानता है, कि यह सब सुख का ही दूसरा चेहरा है। और सुख आता है, तब भी जानता है कि यह दुख का दूसरा चेहरा है। न यहां कुछ पकड़ने को है, न यहां कुछ छोड़ने को है। यहां चुनाव करना ही व्यर्थ है।
चुनाव किया कि फंसे। चुनाव किया कि संसार में उतरे। चुनाव संसार है। इसलिए विकल्प में संसार है और निर्विकल्प में समाधि।
निर्विकल्प का अर्थ हैः अब मैं चुनता ही नहीं; देखता रहता हूँ।
सुबह आई--देखते रहे। सांझ आई--देखते रहे। क्या लेना-देना है? सुबह-सांझ की जो लीला चलती है--देखते रहे, देखते-देखते, एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि तुम एकरस हो जाते हो। तुम्हारे भीतर द्वंद्व समाप्त हो जाता है।
उसकी एकरसता में परमात्मा से मिलन है। क्योंकि परमात्मा द्वंद्व के अतीत है।
चरणदास कहते हैं--और सभी ज्ञानी कहते हैं--कि परमात्मा एकरस है।

एकरस का अर्थ होता है; न तो जन्मा है, न कभी मरेगा। एकरस का अर्थ होता हैः न वहां दुख है, न वहां सुख है। इसलिए हमने एक नया शब्द गढ़ा--आनंद। वहां आनंद है।
भूलकर भी आनंद को सुख का पर्यायवाची मत समझना। आनंद में सुख दुख दोनों का अभाव है। आनंद में उत्तेजना नहीं है। आनंद शांतिस्वरूपता है। सब शांत हो गया। सब तरंगे खो गई। कोई तरंग नहीं उठती। मन निस्तरंग हो गया। निस्तरंग होते ही मन नहीं हो गया।
सब दौड़-धूप गई; सब आपा-धापी गई। इस परम विश्रांति की अवस्था को हम ईश्वर की दशा कहते हैं।
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है--कहीं बैठा हुआ। याद रखना। परमात्मा तुम्हारे भीतर छिपी हुई साक्षी की क्षमता है। तुम एकरस हो सकते हो, तुम ऐसी दशा में पहुंच सकते हो, जहां न भोर है, न सांझ। नहीं सांझ नहीं भोर। जहां समय ही नहीं है।
फ्रेच क्रांति के समय एक अपूर्व घटना घटी। और लोग बड़े विचार में रहे। मनोवैज्ञानिक बड़ा चिंतन करते रहे कि यह क्यों हुआ? ऐसा कैसा हुआ? किस कारण हुआ?
क्रांति हुई, तो पेरिस के नगर में बहुत सी घड़ियां भी थी--चर्च के टावर पर, स्कूल कालेज, यूनिवर्सिटी में... । लोगों ने बंदूकें ले-ले कर उन घड़ियों को छेद दिया गोलियों से। और घड़ियां नष्ट कर दीं।
स्वभावतः प्रश्न उठना शुरू हुआ कि लोग घड़ियों के खिलाफ क्यों हैं? आखिर घड़ी से क्या लेना-देना है? सारे पेरिस नगर की घड़ियां क्यों तोड़ डाली? विशेषकर घड़ियां ही क्यों?
और तब एक संदेह मनोवैज्ञानिकों को उठना शुरू हुआ कि शायद लोग समय से पीड़ित हैं। शायद समय की पीड़ा के कारण ही घड़ियां तोड़ दी गई हैं। यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है। समय से लोग निश्चित पीड़ित हैं।
"नहीं सांझ नहीं भोर" का अर्थ होता हैः जहां समय नहीं। घड़ी टूट गई। जहां शाश्वतता है, नित्यता है। जहां न कुछ पैदा होता है, न मरता है। जहाँ अनंत का निवास है--अनादि का, अनंत का। इस दशा का नाम एकरसता है।
असल में ऐसा कहना कि परमात्मा एकरस है, भूल भरा है। अगर तुम मुझसे पूछो, तो मैं कहूंगाः एकरसता का नाम परमात्मा है। या परमात्मा और एकरसता एक ही अवस्था की सूचना देनेवाले शब्द हैं।
एकरत होने लगी और तुम परमात्मा होने लगोगे। द्वंद्व में रहो--और संसारी। और एकरस होने लगो कि संन्यासी।
इसलिए मैं कहता हूंः संन्यासी को कहीं जाने की जरूरत नहीं। अपने ही भीतर जाने की जरूरत है। कोई बहिर्यात्रा नहीं करनी है। तुम्हारे ही अंतस्तल में वह जगह है, जहां सब एकरस हो जाता है। जरा इसका उपयोग करो।
कोई गाली दे जाए, तब शांतभाव से स्वीकार कर लो कि ठीक है। कोई गले में गजरा पहना जाए, उसे भी शांत भाव से स्वीकार कर लो कि ठीक है। न गजरे को बहुत मूल्य दो, न गजरे के कारण बहुत
दीवाने हो जाओ; और न गाली के कारण बहुत विक्षुब्ध।
शुरू-शुरू अड़चन होगी। शुरू-शुरू बेचैनी होगी, क्योंकि पुरानी आदतें हैं। हालांकि गाली से तुम बेचैन नहीं हो रहे हो। गाली अगर किसी और भाषा में दी गई होती, जो तुम नहीं समझते थे, तो जरा भी बेचैन नहीं होते।
तो गाली से तुम बेचैन नहीं हो रहे हो। गाली है--इस भाव से बेचैन हो रहे हो। गाली है; मेरा अपमान किया गया है--इस कारण बेचैन हो रहे हो।
लेकिन मेरा अपमान किया गया है--इससे क्यों बेचैन होते हो? क्योंकि कहीं मान की चाह छिपी है। नहीं तो अपमान से क्या बिगड़ता है।
मान की चाह है और कोई मान नहीं दे रहा है; मान के विपरीत अपमान दे रहा है, तो बेचैनी होती है। गजरे की चाह है, और गाली मिल रही है, तो बेचैनी होती है।
जरा जागो, जरा इन द्वंद्वों को ठीक से देखो। देने दो। गाली देनेवाले
का मन है; अगर उसको गाली

देने में मजा आ रहा है, तो देने दो। तुम्हारा क्या बिगड़ता है! उसके ओठ
एक खास ढंग हिल रहे हैं, कुछ आवाजें कर रहा है; करने दो। क्या तुम्हारा बनता-बिगड़ता है! उसके ओठों के इतने गुलाम क्यों? उसके शब्दों के इतने गुलाम क्यों?
फिर किसी को मौज आ गई; वे गजरा बना लाए। माली होंगे या कुछ फूल मिल गए होंगे। वे तुम्हारे गले में डाल रहे है। उनको मजा आ रहा है। लेने दो मजा। उसको भी देखते रहो।
और दोनों में कोशिश इस बात की रहे कि मैं एकरस रहूं।
शुरू-शुरू में अड़चन होगी। तार मिलाए-मिलाए भी छिटक छिटक जाएंगे। साज बिठाते-बिठाते बैठता है। होते-होते होती है यह बात। लेकिन धीरे-धीरे तुम पाओगेः कुछ-कुछ होने लगी। अब गाली उतनी पीड़ा नहीं देती। और गजरा उतना सुख नहीं देता।
धीरे-धीरे मात्रा बदलती जाएगी, बदलती जाएगी, एक दिन क्रांति घटती है।
एक दिन तुम अचानक पाते होः गाली दे गया कोई--और तुम्हारे भीतर कंपन भी न हुआ। और गजरा पहना गया कोई--और तुम्हारे भीतर अहंकार ने सिर न उठाया बस, उस दिन तुम जानोगे एकरसता क्या है। पहला स्वाद मिला। इसी मार्ग पर आगे बढ़ते- बढ़ते तुम परमात्मा हो जाओगे।
एकरसता परमात्म-भाव है। दो में डूबना--संसार; एक में हो जाना-- परमात्मा। अनेक में भटकना--संसार; एक में डुबकी लगा जाना--परमात्मा।
जैसे ही रात घिरती है
और फिरती है दुहाई तारकेश की
अविशेष हर चीज खूबसूरत हो जाती है
रूप का जादू
सख्त धूप के तख्तों पर
फूंक सी मार देता है
कुछ की कुछ बन जाती है चीजें चांदी की हो जाता है हर कोई पत्ता हर कोई गली पुखराज की
पातहीन डालियां और तने
लगते है शोभा के बने
अच्छा लगता है जी को
कटे-छंटे आकारों का एकाकार हो जाना
आकाश का पहाड़ों में
पहाड़ों का आकाश में खो जाना।
तुमने देखा कभीः जरा से रूपांतरण से कितना रूपांतरण हो जाता है। दिन में दुनिया इतनी सुंदर नहीं लगती। रात उतरती है; चांद उतरता है; तारे भर जाते हैं और देखा तुमनेः कितना अंतर हो जाता है?
वही चट्टान जो दिन में साधारण लगती है, रात में इतनी रूपवान हो जाती है। पूर्णिमा के चांद में, कैसा सौंदर्य--जमा हुआ सौंदर्य हो जाती है! वही पानी का डबरा, जो दिन में सिर्फ गंदगी जैसा मालूम होता था, रात चांद को झलकाने लगता है। चांद की किरणें उस गंदे डबरे पर खेलने लगती है। वह ऐसा लगता है, जैसे स्वर्गीय हो।
साधारण से वृक्ष अपूर्व रूप से भर जाते है। साधारण से स्त्री-पुरुष संगमरमर की मूर्तियां मालूम होने लगते हैं।
जैसे ही रात घिरती है
और फिरती है दुहाई तारकेश की
अविशेष हर चीज खूबसूरत हो जाती है
रूप का जादू
सख्त धूप के तख्तों पर
फूंक सी मार देता है
कुछ की कुछ बन जाती हैं चीजें चाँदी का हो जाता है हर कोई पता

हर कोई गली पुखराज की
पातहीन डालियां और तने
लगते हैं शोभा के बने
अच्छा लगता है जी को
कटे-छंटे आकारों का एकाकार हो जाना
आकाश का पहाड़ों में
पहाड़ों का आकाश में खो जाना।
यह जो चांद के साथ सौंदर्य आता है, इसका राज क्या है? इसका राज क्या है--सीमाएं बिखर जाती हैं। चीजें एक दूसरे से मिलने लगती है--एकाकार हो जाती हैं। थोड़ी एकरसता की झलक उतरती है। सूरज चीजों को कटे-छंटे आकारों में बांट देता है। और कटे-छंटे आकारों को एकाकार में डुबा देता है।
लेकिन वह कुछ भी नहीं है--उस भीतर की एकाकारता की तुलना में, जब तुम्हारी चेतना का चांद उगता है और सारा जगत एकाकार हो जाता है।
अच्छा लगता है जी को
कटे-छंटे आकारों का एकाकार हो जाना
आकाश का पहाड़ों में
पहाड़ों का आकाश में खो जाना।
जब तुम्हारे भीतर एकरस की बाढ़ आती है, कोई सीमाएं शेष नहीं रह जातीं। सभी सीमाएं असीम में लीन हो जाती है, तब तुम जाननाः परमात्मा की पहली झलक मिली। सत्यम सौंदर्य की पहली किरण उतरी।
इस एकरसता को चाहे समाधि कहो, चाहे निर्वाण कहो, चाहे मोक्ष कहो, चाहे परमात्मा कहो--ये सब नामों के भेद हैं।
सारे धर्म एकरसता की ही बात करते हैं। सारे ज्ञानी एकरसता के ही गीत गाते हैं।
इसलिए मैं तुमसे कहूंगा कि परमात्मा, मोक्ष, निर्वाण--इन शब्दों की झंझट में न पड़ कर तुम एकरसता की तलाश में लग जाओ।
और यह तलाश अचुनाव की प्रक्रिया से होती है। जिसकी कृष्णमूर्ति बार-बार कहते हैं--च्वाइसलेस अवेरनेस--चुनावरहित चैतन्य। चुनो मत। बस, जागे रहो। यह तुम्हारे भीतर अभी भी मौजूद है; इस क्षण भी मौजूद है। यही तुम्हारा वास्तविक स्वभाव है; यही तुम्हारा स्वरूप है। द्वंद्व बाहर है; निर्द्वंद्व भीतर है।
आकाश में बादल उठते है, लेकिन बादलों से आकाश छिन्न-भिन्न नहीं होता। आकाश में बादल उठते हैं, तो भी बादल तो अभिन्न, अखंड, जैसा था, वैसा ही बना रहता है। बादल आते है, जाते है, आकाश का रूप नहीं बदलता। ऐसे ही तुम्हारे भीतर की एकरसता है, इसमें विचारों के बादल उठते हैं, वासनाओं के बादल उठते हैं, कामनाओं के बादल उठते हैं; संसार-शरीर, हजार यात्राएं, लेकिन तुम्हारे भीतर एकरसता का आकाश सदा वैसा का वैसा, सदा निर्दोष, सदा कुंवारा, उसके कुंआरेपन में कोई अंतर नहीं पड़ता।
आकाश कभी गंदा होता है? हालांकि कितनी धूल-धवांस उठती है। कितने अंधड़-तूफान उठते हैं! और कितने काले बादल छा जाते हैं कभी, कि सूरज दिखाई नहीं पड़ता और आकाश का कोई पता नहीं चलता। फिर भी आकाश अविच्छिन्न रूप से वैसा बना रहता है।
आकाश को कलुषित करने का कोई उपाय नहीं है।
आसमान खुद हवा बन कर
नहीं बहता जैसे
हवा उसमें बहती है
ऐसे जीवन भी
खुद नहीं बन जाता मौत
मौत उसमें रहती है
कहीं पहले से
और सिर उठाती है फिर
वक्त पाकर

आसमान में चुप पड़ी हुई
हवा की तरह
आसमान खुद
हवा बन कर नहीं बहता।
हवा पलती है, बादल उड़ते हैं, धूल उड़ती है। संसार बनते और बिगड़ते हैं, लेकिन यह सब आसमान के भीतर होता रहता है। और आसमान में कुछ भी नहीं होता। ऐसा ही तुम्हारे भीतर का अंतर-आकाश है। जन्म आता, मृत्यु आती; सब आता, सब होता, फिर भी तुम दूर खड़े साक्षी हो।
इन साक्षीभाव में जगो। यह साक्षीभाव ही तुम्हें एकरसता का अर्थ बताएगा। क्योंकि अर्थ अनुभव के बिना नहीं है।

आखिरी प्रश्नः प्रश्न पूछने की इच्छा भी है और साथ ही आपके द्वारा फटकारे जाने का डर भी। रजनीश का संन्यासी कैसा हो? --हंसता, गाता और नाचता हुआ--या रूठा सा--या जैसा हो, वैसा ही? कृपया साधक व संन्यासी का भेद स्पष्ट करें।

पूछा हैः स्वामी माधव भारती ने।
प्रश्न पूछने की इच्छा हो, तो पूछ ही लेना; फटकारे जाने से भयभीत न होना! और फटकारता तुम्हें तभी हूँ, जब देखता हूं कि तुम्हारे भीतर कुछ संभावना है।
हर किसी को नहीं फटकारता हूँ। उसी को फटकारता हूं, जिसमें दिखाई पड़ता
है कि चोट करने से कुछ झरना बहेगा।
सभी पत्थर मूर्तियों के लिए नहीं चुने जाते। और मुर्ति के लिए जो पत्थर चुना जाता है, उस पर छेनी भी पड़ती है, हथौड़ी भी पड़ती है, कांट-छांट भी करनी होती है।
तो तुम्हें फटकारता तभी हूं, जब लगता है कि कुछ है, जो निखर सकता है।
तो फटकार के कारण तुम न तो भयभीत होना, न दुखी होना। सौभाग्य अनुभव करना कि मैंने तुम्हें फटकारा।
अब तुम नाहक ही डरे हुए हो, क्योंकि तुम्हारे प्रश्न में ऐसी कोई भी बात नहीं, जिसके कारण तुम्हें फटकारा जाए। प्रश्न बहुत साफ-सीधा है। अच्छा है। पूछने जैसा है।
"रजनीश का संन्यासी कैसा हो? हंसता, गाता और नाचता हुआ या रूठा सा जैसा हो, वैसा ही?"
मैं तुम्हें ढांचा नहीं देना चाहता, क्योंकि सभी ढांचे परतंत्रता बन जाते हैं। मैं तुम्हें कोई अनुशासन भी नहीं देना चाहता। क्योंकि सभी अनुशासन अंततः तुम्हारी आत्मा में अवरोध बनेंगे।
मैं चाहता हूँः तुम्हारी आत्मा स्वतंत्रता से जीए, होश से जीए, बोध से जीए।
अगर मैं तुमसे कहूँ कि मेरे संन्यासी को हँसता-गाता ही होना चाहिए, और फिर कभी रोने का क्षण आ जाए, तब क्या करोगे?
अभी ऐसा हुआ। मेरे पुराने जाने-माने परिचित थे--हरिकिशनदास अग्रवाल;
वे चले बसे। उनके साले मेरे संन्यासी हैंः चमनलाल। वे वहां रोए भी, नाचे भी। लोगों ने समझा--पागल हुए। अगर रोते हो, तो नाचते क्यों हो? बहन के पति मर गए हैं; यह कोई नाचने की बात है? और अगर नाचते हो, तो रोते क्यों हो? और अगर रोते हो, तो नाचते क्यों हो?
वे मुझसे आकर पूछने लगे "मैं क्या करता? मुझे दोनों साथ-साथ हो रहे थे! नाच भी रहा था, प्रफुल्लित भी था, आनंदित भी था। क्योंकि आपने समझाया और मेरी समझ में आ गया कि मृत्यु में हम कुछ खोते नहीं। तो वह बात मेरी सुध में थी और फिर भी आंख से आंसू बह रहे थे। क्योंकि देखता अपनी बहन को--विधवा हो गई, अकेली हो गई, तो आंख से आंसू भी आ रहे थे!"

वे मुझसे पूछ रहे थे आकर कि "मैं क्या करता? और लोग कहने लगेः यह विरोधाभासी बात है। अगर नाचना है, हंसना है, तो नाचो और हंसो। अगर रोना है, तो रोओ। यह विरोध क्यों कर रहे हो?"
मैंने उनसे कहा, "तुमने जो किया, वही ठीक था। जो हो--सहजता से--उसे होने देना। जाग कर उसे देखना और होने देना। अगर तुम रोक लेते नाचने को, क्योंकि रोने के साथ संगति बिठानी है, तो कुछ
दमन होता। और दमन बुरा है। अगर तुम नाचने के कारण रोना रोक लेते, क्योंकि नाचने के साथ रोने की संगति नहीं बैठती, तर्कयुक्त नहीं मालूम होता, तो भी दमन होता। वे आंसू अटके रह जाते तुम्हारी आंखों में, उससे तुम्हारी आंखें धुंधली हो जाती; उससे तुम्हारी दृष्टि खराब होती। उससे बात अटक जाती। तुमने बिल्कुल ठीक कियाः आत्मा के लिए नाचे और गाए; शरीर के लिए रोए। और तुमने लोगों की न सुनी, वह अच्छा किया।"
अपने भीतर की सुनो। अपनी सुनो। कोई दूसरा निर्णायक नहीं है।
एक झेन फकीर मरा; उसका प्रमुख शिष्य रोने लगा। प्रमुख शिष्य की बड़ी ख्याति थी। लोग सोचते थे; वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है। उसे रोते देख कर लोगों को भरोसा न आया। उन्होंने कहा, "तुम रोते हो? तुम तो हमें समझाते थे कि शरीर कुछ भी नहीं है। राख ही राख है। और तुम रोते हो? तुम्हें तो पता होना चाहिए कि गुरु मरा, तो कुछ भी नहीं मरा। आत्मा अमर है।
उस फकीर ने कहा, "मुझे पता है कि आत्मा अमर है। लेकिन ना-समझों, आत्मा
के लिए रो कौन रहा है? यह शरीर भी बड़ा प्यारा था। यह परमात्मा ने जो शरीर धारण किया था, फिर दुबारा ऐसा शरीर
देखने न मिलेगा। यह बड़ी स्वर्ण काया थी। यह अपूर्व घटना थी। यह घर भी प्यारा था। इस घर में रहने वाला आदमी भी प्यारा था। घर में रहनेवाला आदमी तो रहेगा, शाश्वत है। लेकिन घर गिर रहा है। मैं घर के लिए रो रहा हूँ।" लोगों ने कहा, "लेकिन लोगों को शक होगा तुम्हारे बुद्धत्व पर! लोग सोचते थेः तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए।" उसने कहा, "छोड़ो लोगों की फिकर। वे जानें। मुझे बुद्ध मानें या न मानें, इससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं उनके बुद्धत्व की धारणा के कारण अस्वाभाविक नहीं हो सकता हूं। जो स्वाभाविक है... ।"
तो मैं तुमसे कहूंगाः हंसो, गाओ--स्वाभाविक हो। नाचो--स्वाभाविक हो।
रोओ--स्वाभाविक हो।
आंसू भी अपूर्व सौंदर्य के प्रतीक हो जाते हैं अगर स्वाभाविक हों। और कभी-कभी रूठे से भी रहो--अगर स्वाभाविक हो।
जैसा होता हो, वैसा ही होने दो। तुम इतना ही स्मरण रखो, तो मेरे संन्यासी हो--कि जैसा होता हो, होने दो। और पीछे खड़े तुम साक्षी रहो, देखते रहो--कि यह हो रहा है। हंसी भी है, आंसू भी है। नाच भी रहा हूँ, रो भी रहा हूं। रूठा सा हूं, संसार में भी खड़ा हूँ।
जो होता हो, उसे जाग कर देखते रहो।
और तुमने पूछा हैः "कृपया साधक व संन्यासी का भेद स्पष्ट करें।"
इस भेद को स्पष्ट करने के लिए तुम्हें ये सात शब्द समझने चाहिए।
पहलाः कुतूहल। कुछ लोग हैं, जो कुतूहली पूछते हैं। ईश्वर है या नहीं? लेकिन इसमें उन्हें कुछ ज्यादा लेना-देना नहीं है। पूछने को पूछ लिया। जैसे छोटे बच्चे पूछते हैं। कुछ भी पूछ लेते हैं। अगर उत्तर न दो मिनट भर, तो वे भूल-भाल गए। मिनट भर बाद तुम अगर उत्तर दो, तो वे कहेंगेः "किस बात का उत्तर दे रहे हो! हमने पूछा कब?"
ऐसे लोग मेरे पास आ जाते है। अगर ईश्वर की बात करते हैं, तो मैं देखता हूंः उनकी आंखों में सिर्फ कुतूहल ही है, तो मैं कुछ और बात पूछ लेता हूं। पूछता हूं। आपकी पत्नी कैसी है? बच्चे कैसे है? वे भूल गए; ईश्वर वगैरह छोड़ दिया। पत्नी-बच्चे की बात करने लगे। फिर वे घंटे भर बैठे रहे, तो फिर दुबारा नहीं पूछते ईश्वर की बात। वह तो बातचीत चलाने के लिए पूछ लिया था। अब मेरे पास आए थे, तो और क्या पूछे? ईश्वर की ही बात उठा ली--शिष्टाचारवश, कुतूहलवश। मगर इसका कोई मूल्य नहीं है।

तो पहली तो दशा है--कुतूहल की। अगर इस पर ही रुक गए, तो कोई मूल्य नहीं है। अगर इससे आगे बढ़े तो सीढ़ी बनती है।
इससे भी नीची दशाएं हैं।
ऐसे लोग हैं, जिनको कुतूहल भी पैदा नहीं होता। वे बिल्कुल ही जड हैं। उनके मन में प्रश्न ही नहीं उठता कि जीवन का अर्थ क्या है; कि ईश्वर क्या है? आत्मा क्या है? हम किसलिए हैं--ये बातें नहीं उठती हैं। अगर उनसे तुम ये बाते करो, तो वे कहेः "कहां की बकवास कर रहे हो? अरे कुछ काम की बात करो!" काम की बात यानी अखबार की बात। काम की बात यानी पास-पड़ोस में किसका झगड़ा हो गया; कौन की स्त्री किसके साथ भाग गई? किसने कितना पैसा बना लिया? काम की बात यानी इस तरह की व्यर्थ कोई बात करो।" कहां की बातें छेड़ दी--ईश्वर, आत्मा!"
उनसे तो बेहतर है वह, जिसमें कुतूहल पैदा हुआ--क्यूरिआसिटी। मगर कोई बहुत बड़ी अवस्था नहीं है--कुतूहल की। कुतूहल के आधार पर तुम कहीं जा न सकोगे। हालांकि यह पहली सीढ़ी है। अगर इससे आगे बढ़ो, तो जिज्ञासा पैदा होती है।
जिज्ञासा का अर्थ होता हैः ऐसे ही नहीं पूछ लिया; मन में वस्तुतः प्रश्न उठा है। मन में एक प्रश्न-चिह्न बनकर खड़ा हो गया है, जो उत्तर मांगता है। यह कुतूहल से बेहतर है।
जिज्ञासु विद्यार्थी बन जाता है। कुतूहली तो विद्यार्थी भी नहीं बनता। उसमें तो हवा के झोंके की तरह प्रश्न आते हैं, चले जात हैं। विद्यार्थी बनने के लिए तो प्रश्न का सातत्य चाहिए। कुछ टिके प्रश्न, कुछ देर टिके, तो कुछ काम शुरू हो।
तो जिज्ञासा से व्यक्ति विद्यार्थी बनता है। मगर जिज्ञासा भी कुछ बहुत दूर नहीं ले जाती।
शास्त्र पढ़ लोगे, विश्वविद्यालय से उपाधि ले आओगे। बस कूड़ा-कर्कट इकट्ठा होगा। इससे ज्ञान पैदा नहीं होगा।
तीसरी बात हैः मुमुक्षा। मुमुक्षा से आदमी शिष्य बनता है।
विद्यार्थी नहीं; शिष्य। सिर्फ विद्या की खोज नहीं करता, सिर्फ शास्त्रों में नहीं तलाशता। जीवंत गुरु को तलाशता है। मुमुक्षा पैदा हुई।
मुमुक्षा का अर्थ होता हैः जिज्ञासा सिर्फ जिज्ञासा नहीं है, जीवन-मरण का सवाल है। कुछ दांव पर लगाने की तैयारी है।
मुमुक्षा से असली यात्रा शुरू होती है। जीवन लगाने की तैयारी है। अभी जीवन लगाया नहीं है।
चौथा शब्द हैः साधक, साधना; जिससे मुमुक्षा के आगे कदम उठाया। जो अब दांव पर लगाता है जीवन को, वह साधक है। उसने कुछ करना शुरू किया।
ध्यान के संबंध में शास्त्र में पढ़ा--तो जिज्ञासा। ध्यान के संबंध में ऐसे ही चलते-चलते कुछ प्रश्न पूछ लिया--तो कुतूहल। ध्यान के संबंध में जीवित गुरु के चरणों में जाकर समझने की चेष्टा की--तो मुमुक्षा। और ध्यान शुरू किया करना--तो साधक बना आदमी; साधना शुरू हुई।
पांचवां शब्द हैः संन्यास--संन्यासी। जब साधक के जीवन में फल आने लगते हैं; जब उसे लगता कि कुछ-कुछ अनुभव मिलने लगे। अब थोड़ा-थोड़ा दांव लगाना जरूरी नहीं; अब पूरा ही दाँव लगाना उचित है।
पहले तो आदमी थोड़े-थोड़े दांव लगाता है। दस रुपये का नोट दांव पर लगाया
और देखा कि बीस हो गए। फिर बीस का लगाया। देखा कि चालीस हो गए। ऐसा कुछ लगा लगा कर देखना है। फिर वह देखता है कि हां, कुछ हो सकता है; होता है। सब लगा दिया--तो संन्यास।
साधक के बाद की अवस्था है--संन्यास। और संन्यास के बाद की अवस्था है-- सिद्ध।
जब सब दांव पर लगा दिया, तो संन्यास। और दांव पर लगाने से जब मिला--तो सिद्ध। फल लगा; सिद्धि हुई।
और सातवी अवस्था है--बुद्ध। यह सिद्ध के बाद की अवस्था है। उस अवस्था
का अर्थ होता हैः जो अपने को मिला, वह दूसरे को बांटने लगे।

सिद्ध पर भी कुछ लोग रुक जाते हैं। सभी सिद्ध बुद्ध नहीं होते। पा लिया। जैसा कबीर ने कहा हैः
हीरा पायो गांठ गाठियायो।
बाको बार-बार क्यों खोले।।
कबीर कहते हैः हीरा मिल गया है, जल्दी से अपनी गांठ में बांधा और भागे। अब इसको बार-बार कया खोलना? किसको दिखलाना? यह सिद्ध की दशा। इसको जैनों ने केवली अवस्था कहा है। बुद्ध ने इस अवस्था को अर्हत अवस्था कहा है। पहुंच गए। बात खतम हो गई।
सिद्ध पर यात्रा पूरी हो जाती है। सिद्ध का अर्थ ही होता है, सिद्धि
हो गई; यात्रा पूरी हो गई।
लेकिन एक और अवस्था है--इससे भी ऊपर--बुद्ध की। बोध देने लगे। खुद जाग गए, अब सोयों को जगाने लगे। जैनों ने इस अवस्था को तीर्थंकर की अवस्था कहा है। बुद्ध ने इस अवस्था को बोधिसत्व की अवस्था कहा है। हिंदू इस अवस्था को सदगुरु की अवस्था कहते है।
ये सात शब्द समझना। कुतूहल से चलना है और बुद्धत्व तक पहुंचना। है। सिद्ध पर भी रुके, थोड़ी कमी रह गई। अपने तईं तो पूरे हो गए; ध्यान तो पूरा हो गया, लेकिन करुणा न फैली।
तो सिद्ध की अवस्था ऐसी है, जैसे फूल खिला, लेकिन फूल निर्गंध था, उसमें कोई वास न थी। फूल तो खिल गया, लेकिन गंध न उड़ी आकाश में।
बुद्ध की अवस्था का अर्थ हैः फूल खिला, हवाओं पर सवार हुई सुगंध, चली यात्रा को। जो भी नासापुट लेने को तैयार होंगे, उन्हीं में प्रवेश करेगी, उन्हीं की सोई हुई आत्मा को जगाएगी।
बुद्ध का अर्थ हैः हम तो पहुंच गए, जो अभी अंधेरे में टटोल रहे हैं, उनके लिए हाथ बढ़ाएंगे।
कुतूहल से चलना और बुद्ध तक पहुंचना। और ए सब पड़ाव है बीच के। और सूत्र इस यात्रा का, जैसा मैंने तुमसे कहाः जो सहज हो--होने देना। और साक्षी बने रहना। सहज में बाधा मत डालना--और साक्षी का सूत्र भूलना मत।
निश्चित पहुंच जाओगे; फिर कोई बाधा नहीं है।

आज इतना ही।

एक-एक पल मृत्यु करीब आती है; एक-एक पल जीवन दूर हुआ जाता है। एक-एक पल सुबह दूर होती है; एक-एक पल सांझ निकट आती है। जिस व्यक्ति को यह ठीक-ठीक दिखाई पड़ जाता है, उसी के जीवन में परमात्मा की खोज शुरू होती है।
जो सोया-सोया सा जीता है, अपने सपनों में खोया-खोया सा, और जिसे जीवन
के इस विराट तथ्य का कोई अनुभव नहीं होता कि जीवन हाथ से जा रहा है; कोई उपाय इसे रोक रखने का नहीं है। धीरे-धीरे यह दिन ढलेगा ही... । धीरे-धीरे ढलता है, लेकिन ढलता निश्चित है। इसे पकड़ रखने में कोई कभी समर्थ नहीं हुआ।
समय पर मुट्ठी नहीं बांधी जा सकती। समय कोई वस्तु नहीं है कि हम उसे बचा लें। और मौत कुछ ऐसी बात नहीं कि जो भविष्य में घटने वाली हो। जो वस्तुतः तो जन्म के साथ ही घट गई है। जो पैदा हुआ, वह मरेगा।
मृत्यु का जिसे ठीक-ठीक स्मरण हो जाए, जिसकी छाती में यह तीर साफ-साफ चुभने लगे, कि मौत आती है, कि हमारे कुछ भी किए से मौत रुकेगी नहीं। कमाओ धन, पद, प्रतिष्ठा, सब धूल में पड़ा रह जाएगा।
इस जीवन में, जहां मौत घटने ही वाली है, सार को पाने का कोई उपाय नहीं है। समय के भीतर सार का कोई अस्तित्व नहीं है। परमात्मा की खोज का अर्थ हैः उसकी खोज जो कालातीत है, जो समय के बाहर है। उसकी खोज ही खोज है। उसका पाना ही पाना है। क्योंकि उसे जिसने पा लिया, फिर कुछ छिनेगा नहीं; फिर कुछ खोएगा नहीं। इसलिए संत उसे ही संपदा कहते हैं। संसार को विपदा; प्रभु- अनुभव को संपदा।
तुम जिसे संपत्ति कहते हो, उसे संतों ने विपत्ति कहा है। और जिस संपत्ति की तुमने कभी कामना ही नहीं की, उसको संपत्ति कहा है।
तुम्हारे मन में स्वप्न भी नहीं उठा अभी, अभी तरंग भी नहीं उठी कि खोजें सत्य को-जो सदा रहेगा। जो खो जाएगा, उसकी खोज में मत गंवाओ क्षण। एक तो पा न सकोगे, और पा भी लिया तो खो जाएगा। हर हाल असफलता है।
सफलता संसार में होती ही नहीं। अब तक संसार में कोई सफल नहीं हुआ। जो विफल हुए-विफल हुए। जो सफल हुए, उनकी विफलता कुछ कम है?
महान सिकंदर ने दुनिया को जीत लिया, पर हाथ क्या लगा? मरते वक्त सिकंदर ने कहा था, "मेरी अरथी के बाहर मेरे दोनों हाथ लटके रहने देना।" उसके वजीरों ने पूछा, "किसलिए? अरथी ऐसे तो निकाली कभी नहीं गई कि हाथ बाहर लटके रहें!" सिकंदर ने कहा, "इसलिए ताकि लोग देख लें कि मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं।"
सिकंदर भी खाली हाथ और भिखारी भी खाली हाथ? फिर कौन सफल है और कौन असफल है? इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः विफलता तो विफलता है ही; सफलता से बड़ी कोई विफलता नहीं।
इस संसार में सफल होने का उपाय ही नहीं। इस संसार में जीना ऐसे ही है, जैसे कोई पानी पर लकीरें खींचे। तुम खींच भी नहीं पाते कि मिट जाती हैं। यहां कुछ ठहरता नहीं। और जहां कुछ भी न ठहरता हो, क्या उसी में सारा समय गंवा दोगे?
दिन तो ढला जाता है, कब सांझ आ जाएगी, कुछ पता नहीं। इसके पहले कि सांझ
आ जाए, उसे जान लो जहां न सांझ होती है, न सुबह होती है। उसे जान लो, न जन्म है जहां, न मृत्यु है जहां। नहीं सांझ नहीं भोर... !
जहां समय शांत हो गया है, जहां शाश्वत विराजमान है, वही संपदा है।
चरणदास कहते हैंः
किसू काम के थे नहीं, कोई न कौड़ी देह।
गुरु सुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह।।
किसू काम के थे नहीं... ।
किस काम के हो? हो तो बिना किसी काम के। लेकिन झूठे भ्रम पाल रखे हैं।
हर आदमी यहां ऐसे जीता है, जैसे उसके बिना दुनिया चल ही न सकेगी। ऐसे भ्रांति पाल लेता है कि मैं बड़े काम का हूं। मेरे बिना क्या होगा? इस भ्रांति के लिए तुम अपने आस-पास प्रमाण भी जुटा लेते हो। मगर तुम्हें पता

हैः तुम नहीं थे, तब भी दुनिया चल रही थी, और मजे से चल रही थी। तुम नहीं होओगे, तब भी ऐसी ही चलती रहेगी। किसी के आने न जाने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारा होना न होना बराबर है। फर्क तो तभी पड़ेगा, जब तुम्हारे होने में परमात्मा का होना सम्मिलित हो जाए। अकेले तो तुम खाली हो; परमात्मा से जुड़ जाओ, तो भर जाओ।
किसू काम के थे नहीं...
क्या काम के थे-चरणदास कहते हैं? किसी मतलब के न थे। दो कौड़ी भी मूल्य
न था।
तुम्हारे पास जो है, वह चरणदास के पास भी था। ख्याल रखना। सुंदर देह थी, स्वस्थ देह थी; संपन्न परिवार में पैदा हुए थे; धन-दौलत थी; पद-प्रतिष्ठा थी; फैला हुआ व्यवसाय था। तुम्हारे पास जो है, सब चरणदास के पास था। जैसी तुम्हारी आकांक्षाएं हैं, उनकी भी आकांक्षाएं थीं। दुनिया को जीत लेने की उनकी भी कामना थी।
उनका पूर्व नाम था-रणजीतसिंह। दुनिया को जीतने की भावना रही होगी। पिता के मन में रही होगी कि मेरा बेटा दुनिया को जीते। यह तो गुरु ने सब बात बदल दी। रणजीतसिंह को चरणदास बना दिया। जीतने चले थे-चरणों का दास बना दिया! सारी दुनिया को चरणों में झुकाने चले थे; गुरु की कृपा से सारी दुनिया के चरणों में झुक गए। सब कहानी बदल दी।
सब था, लेकिन चरणदास कहते हैंः
किसू काम के थे नहीं...
काम के तुम हो ही नहीं, जब तक तुम राम के नहीं हो। राम के हुए कि काम के हुए। राम के बिना बेकाम हो।
तुम्हारे भीतर हजार-हजार कामनाएं हैं, लेकिन काम के तुम बिल्कुल नहीं। एक राम के साथ संग जुड़ जाता है, तो जीवन में अर्थ आता है।
आज की दुनिया में तो जो सर्वाधिक चर्चित शब्द है, वह हैः अर्थहीनता, मीनिंगलेसनेस। सारी दुनिया के विचारशील लोग सोचते हैं कि जीवन में अर्थ क्या? सदा से सोचा है। लेकिन इस सदी में आकर तो बात बड़ी गहरी हो गई। अनेकों को लगता है, कोई अर्थ नहीं है।
कल ही किसी ने प्रश्न पूछा था कि जीवन में अर्थ क्या है? क्यों जीएं? किसलिए जीएं? जीवन में सार क्या है? और प्रश्न को एकदम टाला नहीं जा सकता। प्रश्न अर्थपूर्ण है।
वस्तुतः जीवन में सार नहीं है। वस्तुतः जीवन में अर्थ नहीं है। जैसा जीवन तुम जीते हो, वह किसी भी तो काम का नहीं है। राख ही राख है। इस राख के ढेर में तुम कितना ही उपाय करते रहो, हीरे-जवाहरात मिलने वाले नहीं हैं। वहां हैं ही नहीं तो मिलेंगे कैसे? तो प्रश्न तो ठीक ही है।
जो भी थोड़ा सोचेगा, उसके मन में उठेगा। रोज सुबह उठ आना; वही दुकान, वही बाजार, वही दफ्तर, वही दौड़धाप, वही आपाधापी। फिर थके-मांदे सांझ को घर आकर सो जाना। फिर सुबह वही दौड़ है!
कोल्हू के बैल में और तुममें फर्क क्या है?
अर्थ कहां है? और इस तरह कोल्हू के बैल की तरह जुते-जुते चलते-चलते एक दिन गिर जाओगे राह में। मुख में धूल रह जाएगी, धूल का स्वाद रह जाएगा। थे भी कभी या नहीं थे; कहीं कोई चिह्न न छूट जाएंगे।
तो सवाल तो उठता ही है समझदार को कि जीवन का अर्थ क्या है?
पश्चिम में बहुत विचारक हैं--सार्त्र है, मार्शेल है, जेस्पर है, जो कहते हैं कि कोई अर्थ नहीं है। सार्त्र का प्रसिद्ध वचन है कि जीवन मनुष्य का, एक व्यर्थ कहानी है। मैन इ.ज ए यू.जलेस पैशन। फोकट की धूम-धाम, व्यर्थ का शोरगुल; सार कुछ भी नहीं, अर्थ कुछ भी नहीं। पागल की बकवास। उन्माद में बके गए शब्द, जिनमें से कुछ अर्थ न निकाल सकोगे। और इसके लिए उनके पास प्रमाण भी काफी हैं। तुम सब प्रमाण हो। सारा जगत प्रमाण है।
सार्त्र की बात को सिद्ध करने के लिए कोई तर्क की जरूरत नहीं है। आंख खोलो, सब तरफ तुम्हें लोग दिखाई पड़ेंगे।

शोरगुल मचा है। लोग भागे जा रहे हैं। पूछो, कहां?-उनको पता नहीं। क्यों?-उनको पता नहीं। कहां से आते हो? --उनको पता नहीं। ऐसी अर्थहीन दौड़-धूप, और पसीने-पसीने हुए जा रहे हैं। लहू बहा रहे हैं, लहू को पानी कर रहे हैं, और बड़े सिर पटक रहे हैं। और बड़े संघर्ष में जूझे हैं एक दूसरे से। और सब अंततः कब्र में गिर जाएंगे। और मिट्टी-मिट्टी में मिल कर एक हो जाएगी।
और खूब दौड़े, और खूब परेशान हुए।
जब जिंदगी थी तो सिवाय परेशानी के और कुछ न हुआ। बेचैनी और तनाव... । नींद भी न ले सके चैन से। एक क्षण विश्राम का भी न था।
तो प्रमाण तो सार्त्र को खोजने की जरूरत नहीं; तुम सब प्रमाण हो, सारा जगत प्रमाण है। लेकिन फिर भी सार्त्र की बात सही नहीं है। क्योंकि सार्त्र को राम का कोई पता नहीं है। राम के बिना अर्थ होता नहीं। "नहीं राम बिन ठांव!"
बिना राम के जीवन में ठिकाना नहीं मिलता। बिना राम के जीवन में विश्राम नहीं मिलता। बिना राम के जीवन में शरण-स्थल नहीं मिलता।
तो जिस मित्र ने कल पूछा था कि जीवन में अर्थ क्या है? उनसे मैं कहना चाहूंगाः जीवन में अर्थ बना-बनाया नहीं मिलता, रेडीमेड नहीं मिलता। रेडीमेड मिलता, तो दो कौड़ी का होता। जीवन में अर्थ निर्मित करना होता है। निर्मित करोगे, तो पाओगे। अर्थ वहां पड़ा नहीं है कि गए और उठा लिया। भीतर अपनी अंतरात्मा में जगाना होगा अर्थ; ढालना होगा प्राणों के प्राण में, हृदय की धड़कनों में समाना होगा अर्थ को।
अर्थ एक गीत है; तुम गाओगे, तो गाया जा सकेगा। अर्थ एक नृत्य है; तुम नाचोगे, तो नाचा जा सकेगा। अर्थ एक उत्सव है; तुम तैयारी करोगे, तो फलित होगा।
अर्थ पड़ा नहीं है; मुफ्त नहीं है। गए और उठा लिया राह के किनारे, ऐसा नहीं है। अर्थ दुर्घटनावश नहीं मिल जाएगा, संयोगवश नहीं मिल जाएगा। अर्थ सृजन है; तुम जन्माओगे तो जन्मेगा। तुम्हें अर्थ को जन्म देना पड़ेगा। तुम्हें अर्थ को अपने गर्भ में रखना पड़ेगा। उसको ही संतों ने सुधि कहा हैः अर्थ को गर्भ में रखने को।
उसकी याददाश्त को ऐसे सम्हालना होगा, जैसे गर्भवती स्त्री अपने पेट में भविष्य की संभावना को सम्हालती है।
तुमने देखाः गर्भवती स्त्री कैसे चलती है-सम्हल-सम्हल, फूंक-फूंक कर।
बड़ी जिम्मेवारी है। अकेली नहीं है, एक नये जीवन का उदभव हो रहा है। कुछ जन्मने को है। जैसे-जैसे प्रसव के दिन करीब आने लगते हैं, प्रसूता उतनी ही सम्हल कर चलने लगती है।
तुमने ख्याल कियाः गर्भवती स्त्री के चेहरे पर एक दीप्ति आ जाती है।
स्त्री उतनी सुंदर कभी नहीं होती। एक भीतर जैसे जीवन का नया दीया जल रहा है; जैसे दो आत्माओं ने एक घर में वास किया है। ज्योति बहुत बढ़ जाती है। गर्भवती स्त्री के चेहरे पर एक नई कोमलता, एक नया प्रसाद आ जाता है।
भविष्य झलकने लगता है। नया फूल खिलने को है, उसकी गंध उड़ने लगती है। ऐसी ही दशा उसकी हो जाती है-बहुत बड़े अर्थों में, हजार गुनी ज्यादा-जिसके भीतर राम की याद... ! जो राम की याद में भर गया; जिसने राम को अपने गर्भ में ले लिया; जो उसे अपने पेट में सम्हालने लगता है। तब अर्थ पैदा होता है।
अर्थ राम की छाया है--प्रभु-स्मरण की छाया है।
समय में अर्थ हो ही नहीं सकता, जब तक कि तुम शाश्वत की किरण को समय में
न उतार लाओ। जब तक तुम्हारे समय के अंधकार में शाश्वत की ज्योति न उतर आए, तब तक अर्थ नहीं हो सकता। और शाश्वत भी है, और समय भी है; और दोनों बिल्कुल पास-पास हैं।
देह भी हो तुम, और आत्मा भी हो तुम; और दोनों बिल्कुल पास-पास हैं, पड़ोसी हैं। अब तुम्हारे ऊपर निर्भर है। अगर देह पर ही ध्यान रखा, तो जीवन में कभी कोई अर्थ पैदा न होगा। अगर आत्मा पर ध्यान गया, तो अर्थ की वर्षा हो जाएगी। जैसे आषाढ़ में बादल घिर जाते हैं, धूप-ताप में तपी धरती, प्यासी धरती का हृदय उमगने लगता है। आषाढ़ के बादल घिर गए... ! ऐसी ही तुम्हारी दशा

हो जाएगी; अर्थ के बादल तुम्हारे भीतर घिरेंगे। और जन्मों-जन्मों की सूखी पड़ी धरती आशा कर सकती है फिर कि अब वर्षा होने को है-अब होने को है, तब होने को है। और वर्षा होती है।
जो इस राम की वर्षा में नहा गए, उन्हीं को हम संत कहते हैं। जो राम की वर्षा के बिना रह गए... ।
किसू काम के थे नहीं... ।
जी भी लिए और जीए भी नहीं। चल भी लिए और कहीं पहुंचे भी नहीं। उपद्रव
तो बहुत किया, लेकिन उत्सव नहीं हो सका।
सार्त्र ठीक है। हजार आदमियों में नौ सौ निन्यानबे आदमियों के संबंध में ठीक है। मगर वह जो एक आदमी बाकी रह जाता है-कोई बुद्ध, कोई नानक, कोई कृष्ण, कोई मोहम्मद, कोई चरणदास, कोई कबीर-वह जो एक आदमी बाकी रह जाता है, वही असली आदमी है। वे जो नौ सौ निन्यानबे आदमी हैं, नाममात्र को आदमी हैं। उनकी गिनती करना ही मत। उनसे कुछ हिसाब मत लगाना। वे अभी आदमी हुए कहां? जिनके जीवन में अर्थ ही नहीं है, उनको आदमी कहने से प्रयोजन क्या है? उनमें और पशु में भेद क्या है? इसलिए शास्त्र तो कहते हैंः सभी लोग सिर्फ दिखाई पड़ते हैं कि मनुष्य हैं, हैं तो पशु।
इस पशुता से जब कोई मुक्त हो जाता है, तो मनुष्य का जन्म होता है। और पशुता से मुक्त कैसे होओगे? राम के सहारे के बिना कोई कभी हुआ नहीं।
जहां तुम खड़े हो, इससे पार जाना हो, तो पार की याद तो करनी पड़े। जहां तुम पड़े हो, उससे पार उठना हो, तो कम से कम आंख तो आकाश की तरफ उठानी पड़े। सारे जगत में सदियों-सदियों में, अलग-अलग सभ्यताओं में, अलग-अलग संस्कृतियों में परमात्मा की अलग-अलग धारणा रही है। लेकिन सभी धारणाओं में एक बात सदा से रही है कि जब भी आदमी ने परमात्मा को याद किया, तो आकाश की तरफ आंखें उठाईं। आकाश में कोई परमात्मा नहीं बैठा है। वह सिर्फ प्रतीक है-पार की तरफ आंख उठाने का, दूर की तरफ आंख उठाने का। वह जो अनंत फैला है आकाश, ऐसा ही परमात्मा है।
तुम अपने छोटे से कुएं से निकल न सकोगे, अगर तुमने आंखें आकाश की तरफ न उठाईं। तो कुएं में ही दबे-दबे मर जाओगे। तुम्हें पता ही न चलेगा कि आकाश भी था। और अधिक लोग उस मेंढक की तरह ही व्यवहार करते हैं... ।
ईसप की कहानी तुमने सुनी होगी।
समुद्र का एक मेढक तीर्थ-यात्रा को निकला होगा। राह थक गई, थका-मांदा है; एक कुएं में विश्राम करने को रुका। कुएं के मेढक ने बड़ा स्वागत भी किया और कहा, "मित्र, कहां से आते हो?" उसने कहा, "सागर से।" कुएं के मेढक ने कहा, "सागर? सागर यानी क्या? सागर कहां है? कितना बड़ा है?" कुएं के मेढक ने तो कभी कुएं के बाहर जाकर देखा नहीं। उसकी तो सारी दुनिया वहीं सीमित है, उस छोटे से घेरे में।
सहायता देने को... क्योंकि सागर वाला मेंढक कुछ चुप ही रह गया; कुछ उत्तर न खोज पाया; कुछ ठगा सा रह गया-अवाक! उसकी सहायता के लिए कुएं का मेंढक चौथाई कुएं में छलांग लगाया और कहा, "इतना बड़ा है सागर?" सागर के मेढक ने कहा, "नहीं, नहीं।"
तो कुएं के मेंढक ने आधे कुएं तक छलांग लगाई और कहा, "इतना बड़ा है सागर?" सागर के मेंढक ने कहा, "क्षमा करो। समझाना कठिन है। तुम कुएं के कभी बाहर गए हो?" कुएं के मेढक ने कहा, "कुएं के बाहर कुछ है भी? जाने योग्य रखा क्या है? जो है-यहां है। सब सुख यहां है। सब सार यहां है।" उसने तीन-चौथाई कुएं की छलांग लगाई और कहा, "इतना बड़ा है?" लेकिन अब भी ना की आवाज सुन कर, वह थोड़ा नाराज हुआ। उसने पूरे कुएं का एक चक्कर लगाया और कहा, "इतना बड़ा है?"
लेकिन जब सागर के मेढक ने कहा कि "नहीं मित्र, तुम्हारे कुएं से कोई तुलना नहीं की जा सकती। सागर इतना बड़ा है कि भेद परिमाण का ही नहीं है, गुण का है। ऐसे नहीं कह सकता कि इतना बड़ा है, कि इससे हजार गुना बड़ा है, कि करोड़ गुना बड़ा है। कितना ही गुना कहूं, सागर बहुत बड़ा है।"

कुएं के मेढक ने कहा, "अच्छा, बाहर निकलो। रास्ता पकड़ो। झूठे कहीं के!
यह शिष्टाचार है कि मैंने तुम्हें अपने घर में मेहमान बनाया और तुम मेरे घर की निंदा कर रहे हो! आतिथेय की--अतिथि होकर-निंदा कर रहे हो? निकलो बाहर, रास्ता पकड़ो अपना। कुएं से बड़ी कोई चीज दुनिया में नहीं है।"
जो जहां रहता है, उससे बड़ी कोई चीज मानना नहीं चाहता। तुम अपनी दुकान
से बड़ी चीज मानना चाहते हो? तुम अपने घर से बड़ी चीज मानना चाहते हो? तुम अपनी खोपड़ी से बड़ी चीज मानना चाहते हो? तुम अपने से बड़ी चीज मानना चाहते हो? और जब तक तुम अपने से बड़े की तरफ आंख न उठाओ, प्रभु की खोज शुरू नहीं होती। प्रभु विराट है, विभु है। और हम सब कुओं में बंद हैं।
यह कुएं के मेंढक की कहानी तुम्हारी कहानी है। और फिर एक दिन तुम्हें लगे कि कोई सार नहीं जीवन में, तो जिम्मेवार किसी और को मत ठहराना। सार तो बहुत था, लेकिन कुएं के बाहर निकलना जरूरी था।
सार विराट में है, विराट के संदर्भ में है। क्षुद्र में कहां सार? सार पूर्ण में है। खंड में कहां सार? सार समग्र के संगीत में है।
तो अर्थ पैदा करना होगा। और अर्थ के पैदा करने का पहला कदम हैः आंख उठानी होगी आकाश की तरफ; ऊर्ध्वगामी आंख। ऊपर की तरफ देखती आंख। अपने से बड़े की तरफ देखती आंख। बड़े को देखने में ही आदमी बड़ा होने लगता है। चरणदास कहते हैंः किसू काम के थे नहीं, कोई न कौड़ी देह।
ऐसी अवस्था थी कि एक कौड़ी में भी न बिकती अपनी देह। है भी क्या देह का मूल्य?
आदमी की देह इस जगत में सबसे ज्यादा मूल्यहीन देह मालूम पड़ती है! हाथी मरता है तो सब चीजें काम आ जाती हैं, बिक जाती हैं। जिंदा जितने काम का था, उससे कहीं मर कर ज्यादा काम का हो जाता है।
शेर मरता है, खाल बिक जाती है। आदमी मरता है, कुछ भी नहीं बचता बिकने योग्य। एक कौड़ी भी नहीं मिलती। घर के लोग भी जल्दी करने लगते हैं कि चलो मरघट। पास-पड़ोस के लोग अरथी सजाने लगते हैं! क्योंकि घड़ी भर देर करो तो बदबू उठेगी। दिन-दो दिन लाश रुक जाए तो जिस देह में बड़ा सुख जाना था, देह में रहने वाले ने, और पास-पड़ोस संगी-साथियों ने भी, वे सभी तिलमिला उठेंगे। दुर्गंध बहुत उठेगी; जीना दूभर हो जाएगा। इस लाश को जल्दी निपटाना होता है। फिर तुम कुछ भी करो-गड़ाओ, जलाओ, मगर इसे जल्दी समाप्त करो। इससे छुटकारा पाओ।
आदमी की देह दो कौड़ी की भी नहीं है।
जब तक तुम देह में हो, तब तक तुम्हारा मूल्य दो कौड़ी का भी नहीं है। और मजा ऐसा है कि इसी देह में छिपा पड़ा है-अमृत का खजाना, स्वर्ग का राज्य।
जरा दृष्टि बदले तो तुम अमोलक हो जाओ।
कहते हैं चरणदाः
किसू काम के थे नहीं, कोई न कौड़ी देह।
गुरु सुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह।।
अमूल्य हो गई देह। यह कौन सी देह है, जो अमूल्य है? यह दिखाई पड़ने वाली देह नहीं। इस देह में ही छिपा हुआ अदृश्य है कुछ-वही तुम हो। तत्वमसि-वही तुम हो, वही तुम्हारा असली होना है।
तुम्हारी हालत ऐसी है, जैसे दीये में ज्योति जलती है और ज्योति दीया नहीं है। मिट्टी का दीया-ज्योति कहां है? ज्योति तेल भी नहीं है। ज्योति बाती भी नहीं है। यद्यपि बाती, तेल और दीये के बिना सहारे के ज्योति यहां प्रकट न हो सकेगी, यह सच है। लेकिन ज्योति तो कुछ और है--न बाती, न तेल, न दीया। अगर ज्योति अपने को दीया मान ले, तो दो कौड़ी की हो गई। फिर दीए का जितना मूल्य है, उतना ही मूल्य हो गया। दीए का मूल्य क्या है? ऐसी ही दशा आदमी की है।
तुम्हारे भीतर एक ज्योति है चैतन्य की, इसके लिए प्रमाण की तो जरूरत
ही नहीं है! तुम भलीभांति जानते हो कि तुम हो। इस दुनिया में एक ही तथ्य तो ऐसा है, जो अनुभव सिद्ध है-कि मैं हूं!

पश्चिम में एक विचारक हुआ--देकार्त। वह चाहता था अपने दर्शनशास्त्र
को किसी बहुत सुनिश्चित भित्ति पर आरोपित करना। ऐसी भित्ति पर, जो कभी डिगाई न जा सके। सोचाः परमात्मा पर रखूं अपने दर्शनशास्त्र की नींव। लेकिन परमात्मा पर तो संदेह उठाने वाले लोग हैं। और जो संदेह नहीं उठाते, वे भी अब तक सिद्ध नहीं कर पाए कि-है।
सिद्ध किया जाता रहा, असिद्ध किया जाता रहा। और तर्क करीब-करीब बराबर रहे। कोई विजेता हुआ नहीं; निष्पत्ति कुछ निकल नहीं सकी है। दर्शनशास्त्र के पांच हजार साल की खोज-बीन, कोई परिणाम हाथ में नहीं आया है। जितने तर्क पक्ष में हैं, उतने ही विपक्ष में हैं। तो तुम्हें जो मानना हो मान लो, लेकिन तर्कगत रूप से न तो मानने का उपाय है, न न-मानने का उपाय है। कुछ भी निर्णय नहीं हुआ है। कहानी अधूरी है। और लगता भी नहीं कि पूरी हो सकेगी।
तो फिर किस बात पर... ? पदार्थ पर रखी जाए नींव? परमात्मा छोड़ो--अदृश्य है, दिखाई भी नहीं पड़ता। किसी ने कभी देखा या नहीं-यह भी भरोसे की बात है। मान लो तो ठीक। कौन जाने बुद्ध भ्रम में पड़ गए हों? और कौन जाने कबीर धोखा दे रहे हों? कौन जाने चरणदास को सपना आ गया हो भगवान का और सोचा होः है? बाहर से जानने का उपाय भी तो नहीं है। कोई कसने की व्यवस्था भी नहीं, कोई कसौटी भी नहीं।
तो परमात्मा को छोड़ो, सोचा देकार्त ने। पदार्थ पर भित्ती रखो। लेकिन चकित होकर उसे स्वीकार करना पड़ा कि पदार्थ भी सिद्ध नहीं किया जा सकता है। परमात्मा तो सिद्ध किया ही नहीं जा सकता, पदार्थ भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।
दार्शनिक अर्थों में--पदार्थ भी है--हम कुछ पक्के रूप से नहीं कह सकते। क्योंकि रात सपने में तुम चीजें देखते हो और सुबह उठ कर पाते हो कि नहीं हैं। तो कौन जाने दिन में सपना देखते हो? रात सो जाते हो, तब दिन का सपना खो जाता है। रात अपने घर में सोते हो, घर भूल जाता है। रात भर घर की याद नहीं आती। रात भर न मालूम किन महलों में निवास करते हो; न मालूम किन पहाड़ों पर यात्राएं करते हो; न मालूम किन चांद-तारों में भटकते हो; तब वे सच हो जाते हैं। सुबह उठ कर आंख खुलती है, वे सब चांद-तारे झूठ हो गए; वे महल झूठ हो गए। यह घर फिर सच हो जाता है।
कौन जाने क्या सच है?
च्वांगत्सु का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि मैं रात सोया और सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूं। फिर सुबह उठ कर मुझे विचार आने लगा कि बड़ी मुश्किल हो गई। अब पता नहीं, सच क्या है?
च्वांगत्सु सोचने लगाः रात मैंने सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूं।
अब यह हो सकता है, तितली सो गई हो और सपना देखती हो कि च्वांगत्सु हो गई! जब पहली बात सच हो सकती है, तो दूसरी भी हो सकती है। अगर च्वांगत्सु सपने में तितली हो सकता है, तो अड़चन क्या है, तितली सपने में च्वांगत्सु हो जाए! क्या पताः जब तितली सो जाती है तुम्हारे बगीचे में तो क्या सपना देखती है? शायद सपना देखती होः आदमी हो गई है। तुम तितली होने का सपना देख लेते हो, तो तितली को क्या बाधा है? क्या अड़चन है?
च्वांगत्सु ठीक कह रहा है।
देकार्त को लगाः पदार्थ भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि हम अपने भीतर से कभी बाहर तो गए नहीं। तुम भीतर ही हो, तुम सदा भीतर हो। बाहर से खबर आती है कि पदार्थ है। यह दीवाल, यह खंभा, यह वृक्ष, यह लोग... । मगर ऐसा ही तो सपने में होता है। खंभे होते हैं, दीवाल होती है, लोग होते हैं, वृक्ष होते हैं, और सुबह पाया जाता है, कुछ भी न था!
कौन जाने एक दिन मौत में जब हम जागेंगे, तो हम पाएं कि यहां जो देखा था,
सब एक लंबा सपना था। सपना सात मिनट चले कि सत्तर वर्ष--इससे क्या फर्क पड़ता है? कोई लंबा होने से सपना सच थोड़े ही हो जाएगा। रात भर देखा एक सपना-आठ घंटे देखा-तो भी सच नहीं होता। सपना-सपना है। लंबाई से क्या फर्क पड़ेगा? कौन निर्णय करे? कैसे निर्णय करे?

तो पदार्थ भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।
फिर कभी-कभी जागते में धोखा हो जाता है। रास्ते पर रस्सी पड़ी होती है- दिन की रोशनी में-और तुम डर जाते हो कि सांप है। भाग खड़े होते हो। भागने में गिर पड़ते; हाथ-पैर तोड़ लेते हो। प्लास्टर बंधवाना पड़ता है। और वहां कोई था ही नहीं; वहां रस्सी पड़ी थी।
कभी दिन के जागते में धोखा हो जाता है।
तो जहां धोखे की संभावना है, जहां इंद्रियां धोखा दे सकती हैं, जहां आंख ऐसी चीज देख सकती है-जो नहीं है... । और सांप के ही साथ ऐसा नहीं है, रस्सी के ही साथ नहीं है। तुमने जितनी चीजें देखी हैं-सभी ऐसी हैं।
एक दिन देखा कि स्त्री बहुत सुंदर थी। उसके मोह में पड़ गए, उसके प्रेम में पड़ गए; उससे विवाह कर लिया। और चार दिन में पाते हो कि कुछ भी सौंदर्य नहीं है। था-जब देखा था, तब था? अब संदेह होगा कि शायद धोखा हो गया। शायद मन ने देख लिया--जो नहीं था; सोच लिया--जो नहीं था। अब तो नहीं है। और अब भी किसी और को तुम्हारी पत्नी में सौंदर्य दिखाई पड़ सकता है; तुम्हें न दिखाई पड़ता हो।
एक दिन लगता हैः धन में सब कुछ है। किसको नहीं लगता? धन की भाषा सभी को आकर्षित करती है। और एक दिन धन पाकर पता चलता है कि कुछ हाथ नहीं आया; दौड़-धूप में जिंदगी गंवा दी और ये ठीकरे हाथ लगे। नहीं तो महावीर छोड़ कर न चले जाते। नहीं तो बुद्ध सिंहासन का त्याग न कर देते।
एक दिन लगा कि कुछ भी नहीं है। तो फिर धोखा हुआ था? और इससे उलटी हालत
भी है।
एक जैन मुनि ने मुझे पूछा कि "मुझे चालीस साल हो गए घर छोड़े, और अब मुझे
शक होता है कि मैंने छोड़ कर ठीक किया कि नहीं? पता नहीं सुख वहीं हो? यहां तो नहीं मिला।"
धन पाने वाला धन पा लेता है और अनुभव करता है कि सुख यहां मिला नहीं, शायद जंगल में हो। और जो जंगल में भटकता रहा है, वह चालीस साल बाद अब मरने के करीब सोच रहा है कि भूल तो नहीं हो गई? अब कोई उपाय भी नहीं है फिर जवान होने का, फिर संसार में दौड़ने का। अब तो मौत करीब आ रही है। लेकिन शक उठता है कि पता नहीं, मैंने जो जीवन का विकल्प चुना था, वह ठीक था या नहीं? पदार्थ के संबंध में भी सच नहीं हुआ जा सकता, निर्णीत नहीं हुआ जा सकता।
तो फिर क्या करें? देकार्त सोचने लगाः किस बुनियाद पर रखूं अपने दर्शन का भवन? किस पर खड़ा करूं? और तब उसने एक सत्य खोजा। वह सत्य मैं हूं। इस पर संदेह नहीं किया जा सकता, यह एक असंदिग्ध सत्य है कि--मैं हूं।
कोजीटो इरगो सूं--मैं हूं, यह एक सत्य है, जिस पर संदेह नहीं हो सकता।
क्यों? क्योंकि इस पर संदेह करने के लिए भी मुझे होना पड़ेगा, इसलिए इस पर संदेह नहीं हो सकता। अगर मैं कहूंः मैं नहीं हूं, तो भी मुझे तो होना ही पड़ेगा। "नहीं" कहने के लिए भी होना पड़ेगा।
तुमने प्रसिद्ध कहानी सुनी?
मुल्ला कॉफी हाउस में बैठा था। मित्रों ने जोश चढ़ा दिया कि "मुल्ला, तुम सदा डींग मारते हो-अपनी दान की, दया की। मगर कभी भोजन तक के लिए हमें घर नहीं बुलाया!"
मुल्ला ने कहा, "सभी चलो, उठो। पूरा कॉफी-घर चले।"
तीस-पैंतीस आदमियों का जत्था मुल्ला के साथ हो लिया।
पहले तो मुल्ला अकड़ा रहा, लेकिन जैसे-जैसे घर करीब आया... । जैसे सभी की अकड़ घर के करीब कम हो जाती है, उसकी भी होने लगी।
दरवाजे पर उसने कहा, "भाइयों, चुपचाप रहो। पहले... । अब तुम तो जानते ही हो; सब घर-द्वार वाले हो; तुम्हारी भी पत्नी है। तुम समझते ही हो, पत्नियों का मामला। मैं जरा अंदर जाकर उसे राजी कर लूं। अचानक पैंतीस आदमी देख कर एकदम बिफर जाएगी!"
सबकी समझ में बात आई। उन्होंने कहा, "हम रुकते हैं; अंदर जाकर तुम समझा-बुझा लो।"

मुल्ला अंदर गया, सो बाहर निकला न। घड़ी बीती, दो घड़ी बीती। आखिर लोगों
ने दरवाजा पीटा।
मुल्ला ने अपनी पत्नी से कहा कि "मुझसे भूल हो गई, बड़ी भूल हो गई। कह गया जोश में, तेरी याद न रही। तू जाकर उनको कह दे कि मुल्ला घर में नहीं है।" पत्नी ने कहा, "वे मानेंगे?" उसने कहा, "तू फिकर न कर। तू कहना कि वे घर में हैं ही नहीं। जिद्द पड़ जाना कि हैं ही नहीं घर में। बात खतम।"
पत्नी बाहर आई, उसने लोगों से पूछा कि "क्या चाहते हो?" उन्होंने कहा
कि "मुल्ला नसरुद्दीन... !" पत्नी ने कहा, "वे तो घर में हैं ही नहीं। वे तो आज दिन भर से घर में नहीं हैं।"
लोगों ने कहा, "अरे! यह भी खूब रही! हमने अपनी आंखों से उन्हें भीतर जाते देखा। हमारे साथ ही आए, हमको लिवा कर आए। अभी बाहर भी नहीं निकले।" वे पत्नी से वाद-विवाद करने लगे। अब अपनी पत्नी हो तो आदमी वाद-विवाद नहीं करता; दूसरे की पत्नी में क्या अड़चन! वे वाद-विवाद करने लगे। उन्होंने कहा, "नहीं, वह घर में होना ही चाहिए। यह तो धोखा-धड़ी हो रही है। वह हमको निमंत्रण देकर आए कि भोजन आज यहीं होगा। और हम अपने घर भी नहीं गए। अब तो आधी रात भी हुई जा रही है, हम भूखे भी हैं।"
मुल्ला ने देखा कि विवाद बढ़ता जा रहा है; पत्नी हारती सी लगती है; कुछ झेंपती सी लगती है कि अब क्या करें। तो मुल्ला एकदम ऊपर की खिड़की खोल कर नीचे झांका और कहा कि "जब हजार दफे वह कह रही है कि वे घर में नहीं हैं, तो नहीं होंगे। तुम्हें शर्म नहीं आती पराई स्त्री से विवाद करते? मेरी स्त्री कभी झूठ नहीं बोलती। फिर यह भी हो सकता है कि वह बाहर के दरवाजे से आए हों और पीछे के दरवाजे से चले गए हों!" अब यह मुल्ला खुद ही बोल रहा है! तुम यह नहीं कह सकते कि "मैं घर में नहीं हूं।" यह वक्तव्य झूठा होगा।
यह अपने आप ही अपना खंडन हो जाएगा। तुम यह नहीं कह सकते कि "मैं घर में नहीं हूं।" यह कहने के लिए भी तुम्हारा होना जरूरी होगा।
तो एक तत्व ऐसा है--मैं, मेरा होना, आत्म-भाव--जिस पर संदेह नहीं किया
जा सकता। क्योंकि संदेह से भी वही सिद्ध होता है। यह निःसंदिग्ध तत्व है। इस निःसंदिग्ध को जानते ही आदमी अमोलक हो जाता है। लेकिन गुरु-कृपा के बिना कैसे हो?
कहते हैं चरणदासः
किसू काम के थे नहीं, कोई न कौड़ी देह।
गुरु सुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह।।
कृपा-तत्व को थोड़ा समझो, और गुरु-तत्व को भी।
गुरु का अर्थ होता है वह, जिसने अमोलक को पा लिया। अमोलक तो तुम्हारे भीतर भी है। तुम में और गुरु में फर्क अमोलक तत्व की कमी ज्यादती का नहीं है। ऐसा नहीं कि गुरु के पास अमोलक हीरा है और तुम्हारे पास नहीं। ऐसा फर्क नहीं है। फर्क इतना ही है कि उसे पता है और तुम्हें पता नहीं है। तुम्हारी जेब में भी कोहिनूर पड़ा है। गुरु ने अपनी जेब टटोल ली और उसे कोहिनूर का पता चल गया। और तुमने अपनी जेब नहीं टटोली है। गुरु और तुम अस्तित्व की दृष्टि से बिल्कुल समान हो, लेकिन बोध की दृष्टि से बड़े भिन्न हो।
और जिसने अपने जेब में पड़े कोहिनूर को टटोल लिया हो, वही तुम्हें भी राजी कर सकता है कि तुम भी जरा टटोलो तो। पहले मैं भी ऐसे ही अंधेरे में भटकता था। पहले ऐसी ही चिंता और ऐसी व्यर्थता मुझे भी घेरे रहती थी। पहले मैं भी ऐसे ही दो कौड़ी का था। कोई तुम से यह कह सके कि पहले मैं भी ऐसे ही दो कौड़ी का था। न कुछ सार था, न कोई संगीत था, न कोई सुख था। जीवन उदास था, खाली- खाली था, रिक्त था। पर एक दिन अपने भीतर हाथ डाला और अमोलक पा लिया।
कोई तुमसे यह कह सके कि मैंने पा लिया, तुम भी जरा अपने भीतर टटोलो। एक बार अपनी गांठ तो खोलो। एक बार अपने भीतर तो जाओ। क्योंकि जैसा मुझे हुआ, वैसे ही तुम्हें भी हो सकता है, तुम भी मनुष्य हो। जैसा मैं मनुष्य हूं, वैसे तुम मनुष्य हो।

गुरु का अर्थ हैः जो तुम जैसा है-ठीक तुम जैसा है, लेकिन बोध आ गया और जानता है कि क्या हूं।
तुम भी जानते हो-मैं हूं। गुरु भी जानता है-मैं हूं। फर्क इतना ही है
कि वह जानता है, मैं कौन हूं; तुम नहीं जानते कि मैं कौन हूं। होने में कोई फर्क नहीं है। होना तो बराबर एक जैसा है। संपत्ति बराबर मिली है। संपत्ति सब को बराबर मिली है। तुम्हारी चेतना जरा लौटे, अपने को देखे... ।
तुम दूसरों को देखने में इतने तल्लीन हो कि अपने पर नहीं लौट पाते। तुम बाहर दौड़ने में इतने रस से भरे हो कि भीतर नहीं आ पाते। तुम "पर" में ही उलझे हो कि "स्व" के प्रति नहीं जाग पाते।
गुरु का अर्थ हैः जो स्व के प्रति जाग गया। और स्व के प्रति जो जाग गया, वही तुम्हें जगा सकता है।
गुरु का अर्थ शिक्षक नहीं है। शिक्षक का अर्थ तो होता हैः उसने शास्त्र पढ़े। तुम उससे कुछ प्रश्न पूछो शास्त्रीय, तो जवाब दे देगा; सुसंगत जवाब देगा; शास्त्रयुक्त जवाब देगा। लेकिन जहां तक जागने का संबंध है, वह तुम्हारे जैसा ही सोया हुआ है।
जैसे तुमने सोए-सोए धन कमाया, वैसे सोए-सोए उसने शास्त्र पढ़े। जैसे सोए-सोए तुमने धन कमाया, उसने ज्ञान कमाया। मगर सोने में कोई फर्क नहीं है। सोया वह तुम जैसा ही है।
तुम्हारा ब्राह्मण, तुम्हारा पुरोहित, तुम्हारा मुल्ला, तुम्हारा पादरी-तुम जैसे ही सोए हुए हैं। तुम जैसे ही लोग हैं। फर्क इतना ही है कि उनका व्यवसाय धर्म है। तुम्हारा व्यवसाय कुछ और है, उनका व्यवसाय धर्म है। धर्म उनकी विशेषता है।
कोई आदमी डाक्टर हो गया है--डाक्टरी पढ़-पढ़ करके। कोई आदमी राज हो गया है--राजगिरी कर-कर के। कोई आदमी कुछ और हो गया है। वे पंडित हो गए हैं। मगर चैतन्य में कोई भेद नहीं है।
गुरु-शिक्षक का नाम नहीं है। इसलिए हमारे पास गुरु शब्द है। दुनिया
की किसी भाषा में गुरु शब्द नहीं है। शिक्षक शब्द दुनिया की सभी भाषाओं में है। गुरु अनूठा शब्द है।
गुरु का अर्थ होता हैः जो जाग गया। और जाग कर जिसने अपने जीवन की गुरुता जानी, महत्व जाना। गुरु यानी जिसने गुरुता अनुभव की; जिसके जीवन में सार का उदय हुआ। गुरु तुम जैसा है, लेकिन जागा हुआ; तुम सोए हुए।
गुरु शास्त्र से उत्तर नहीं देता है; गुरु स्वयं से उत्तर देता है। गुरु का अर्थ हैः जो स्वयं शास्त्र है। जो वेद से उत्तर दे-वह पंडित। जो कुरान से उत्तर दे--वह पंडित। जो अपने भीतर के वेद से, अपने भीतर के कुरान से उत्तर दे--वह गुरु। जो स्वयं प्रमाण हो अपने अनुभव का; जो कह सके कि यह मेरा अनुभव है; जो यह न कहे कि ऐसा मैं सोचता हूं कि ईश्वर है। जो कहेः ऐसा मैं जानता हूं कि ईश्वर है। जो यह न कहे कि मेरा विश्वास है कि आत्मा होती है। जो कहे कि मेरा अनुभव है कि आत्मा है। होती है, और विश्वास-यह सब तो सोए हुए आदमियों की बातें हैं। जो कहेः ईश्वर प्रत्यक्ष है... ।
रामकृष्ण से किसी ने पूछाः "ईश्वर है?" रामकृष्ण ने कहा कि "तुम हो कि नहीं, इस पर मुझे शक होता है। मगर ईश्वर है, इस पर मुझे शक नहीं होता। तुम धुंधले-धुंधले मालूम पड़ते हो, ईश्वर बहुत प्रगाढ़ रूप से प्रत्यक्ष है।" जिसने ईश्वर को देखा, उसके लिए सब धुंधला हो ही जाएगा। स्वभावतः जिसने कोहिनूर देख लिया हो-छोटे-मोटे हीरे-जवाहरात फीके हो जाएंगे, कंकड़ पत्थर हो जाएंगे। जिसने उस परम सौंदर्य को देख लिया-इस जगत के सब सौंदर्य फीके हो जाएंगे।
राबिया अपने घर में बैठी थी। एक अदभुत फकीर औरत--रामकृष्ण जैसी औरत।
एक दूसरा फकीर हसन उसके घर मेहमान था। सुबह हुई, हसन बाहर निकला। सूरज उगता था, पक्षी गीत गाते थे, ठंडी हवाएं थीं, बड़ी प्यारी सुहावनी सुबह थी। हसन ने आवाज दी बाहर से कि "राबिया, तू भीतर बैठी क्या करती है? बाहर आ, देख, परमात्मा ने कितना सुंदर सूरज निकाला है। और परमात्मा ने कितना सुंदर सुबह जन्माया है?"

राबिया खिल-खिला कर हंसी और कहा, "हसन, कब तक बाहर देखते रहोगे? भीतर आओ। तुम सूरज को देख रहे हो, मैं सूरज बनाने वाले को देख रही हूं। सूरज बिल्कुल फीका है। यह रोशनी कोई रोशनी है? रोशनी देखनी है तो उसकी देखो, जिसने सूरज बनाया है। एक नहीं हजारों सूरज बनाए, अनंत सूरज बनाए। जिससे अनंत सूरजों का जन्म हुआ, उसकी रोशनी देखो। हसन, भीतर आओ।"
बात तो छोटी थी। हसन ने तो यूं ही मजाक में कही थी, मगर बात बहुमूल्य
हो गई।
राबिया गुरु है; हसन शिक्षक है। हसन भी प्रसिद्ध फकीर था। उसके बहुत शिष्य थे। राबिया से ज्यादा शिष्य थे। राबिया के शिष्य तो हिम्मतवर लोग ही हो सकते हैं। हसन का तो कोई भी हो सकता है।
न गुरु को कुछ पता है; न तुम्हें कुछ पता है। अंधों के साथ अंधों की दोस्ती जल्दी बन जाती है।
आंख वाले के साथ अंधे को दोस्ती बनाने में बड़ी अड़चन होती है। एक तो भाषा अलग होती है। आंख वाला बोलता है रोशनी की बातें, रंगों की बातें; अंधा समझता नहीं। भाषा अलग होती है। और फिर आंख वाले का साथ पकड़ने में भी अंधे के अहंकार को चोट लगती है। इसलिए दुनिया में लोग गुरुओं के पीछे कम जाते हैं, नेताओं के पीछे ज्यादा जाते हैं।
नेता का अर्थ होता हैः जिसको खुद भी पता नहीं कि कहां जा रहा है। वह देखता रहता है लौट-लौट कर पीछे कि जनता कहां जाना चाह रही है, वहीं जाने लगता है। और जनता सोचती हैः नेता तो देखो। जा रहा है, जहां जा रहा है, हम भी वहीं जा रहे हैं। यह बड़ा पारस्परिक संबंध है अंधों का।
नेता लौट-लौट कर देखता है कि जनता की क्या इच्छा है। जनता की जो इच्छा--उसी की आवाज मचा देता है, वह उसी की गुहार मचा देता है। जनता कहती है-समाजवाद; नेता कहता है--समाजवाद जिंदाबाद। जनता जो कहती है... ।
और कई बार ऐसा होता है कि जनता को अपने हित-अहित का तो कुछ पता होता नहीं। अक्सर तो ऐसा होता है कि जनता को अपने हित का कोई पता हो ही नहीं सकता। पता ही अपने हित का होता तो कभी की जिंदगी बदल गई होती। जनता को तो कुछ पता नहीं होता। जनता अपना अहित भी कर लेती है। उसकी आकांक्षाओं के अनुकूल जो कहने वाला मिल जाए--जो कहेः तुम ठीक-जनता उसके पीछे हो लेती है। अब यह बड़े मजे की बात है। नेता कह रहा हैः तुम ठीक। और जनता सोचती है
कि हां, यह आदमी ठीक। इसके पीछे चलो।
गुरु के साथ तो बिरले लोग जाते हैं। हिम्मत चाहिए। क्योंकि पहली हिम्मत तो यह स्वीकार करने की चाहिए कि मैं अंधा हूं। यह बात खटकती है कि मैं और अंधा? यह बात खटकती है कि मैं और अज्ञानी? यह बात खटकती है कि मैंने अब तक कुछ भी नहीं पाया? "कोई न कौड़ी देह।" दो कौड़ी मेरा मूल्य है। यह बात खटकती है! इस खटक के पार हिम्मतवर जा सकते हैं।
गुरु का साथ जोड़ना हो, तो यह स्वीकार करना होता है कि मैं ना-कुछ।
मैंने एक प्राचीन मिस्त्री कथा सुनी है।
एक शिष्य गुरु के पास आया। शिष्य बड़ा प्रख्यात था, गुरु से ज्यादा प्रख्यात था। बड़ा पंडित था; शास्त्रों का ज्ञाता था। सारे शास्त्र आगम-निगम कंठस्थ थे। लेकिन पीछे-पीछे पीड़ा आने लगी होगी। शास्त्र तो कंठस्थ हो गए; सत्य की कोई खबर नहीं मिल रही थी। शब्द तो सब याद हो गए; निःशब्द में जाने का द्वार नहीं मिलता था।
तो जीवन के अंतिम क्षणों में गुरु की तलाश की। देर तो वैसे ही हो गई थी। गुरु मिल भी गया।
गुरु ने देखा इस पंडित की तरफ और कहा, "ऐसा हैः मैं बहुत अड़चनें देखता हूं तुम्हारे भीतर। तुम्हारा ज्ञान भारी है। तुम लिख लाओ कि तुम क्या- क्या जानते हो। तुम जो जानते हो, फिर उसकी क्या बात करनी! उसे हम छोड़ देंगे। तुम जो नहीं जानते हो, वह मैं तुम्हें जना दूंगा।"
शिष्य गया साल भर लग गया, क्योंकि उसे तो बहुत शास्त्र याद थे। वह सब लिखता ही रहा, लिखता ही रहा, लिखता ही रहा! कोई हजार पृष्ठ भर दिए। हजार पृष्ठ की पोथी लेकर आया।

गुरु ने कहा, "तुम आ गए! मुझे तो शक था कि अब तुम न आ पाओगे। क्योंकि इतना कचरा तुम्हारे दिमाग में है! अगर तुम यह सब लिखोगे... ।"
हजार पृष्ठ की पोथी देखी। गुरु ने कहा, "यह बहुत ज्यादा है। मैं बूढ़ा
हो गया। मेरी मौत करीब है। मैं इतना न पढ़ सकूंगा। तुम संक्षिप्त कर लाओ। सार-सार लिख लाओ।"
तीन महीने लग गए। पंडित लौटा। संक्षिप्त कर लाया था। अब केवल सौ पृष्ठ थे। गुरु ने कहा, "यह भी ज्यादा है। मेरे दिन कम हुए जा रहे हैं। अब तो मैं सौ भी नहीं पढ़ सकता, और संक्षिप्त कर लाओ।"
शिष्य लौटा। एक ही पन्ने पर सार-सूत्र लिख लाया था। लेकिन गुरु बिल्कुल मरने के करीब था। उसने कहाः "भाई! यह तो बहुत ज्यादा है, तुम और संक्षिप्त कर लाओ। जल्दी बगल के कमरे में चले जाओ, और संक्षिप्त कर लाओ।" शिष्य एक पंक्ति में सारा सार लिख कर लाया-एक महावाक्य। गुरु की आखिरी सांस अटक रही थी। गुरु ने कहा कि तुम्हारे लिए रुका हूं। तुम्हें समझ कब आएगी? और संक्षिप्त कर लाओ। संक्षिप्त करने में कंजूसी क्या करते हो?"
तब शिष्य को होश आया। भागा दूसरे कमरे में। एक खाली कागज ले आया। गुरु
के हाथ में खाली कागज दिया। गुरु ने कहा, "तुम शिष्य हुए। यद्यपि मैं तो जा रहा हूं, लेकिन तुम शिष्य हो गए। तो मुझसे तुम्हारा संबंध बना रहेगा। मैं जिंदा था, तो भी तुमसे मेरा कोई संबंध न था। क्योंकि ज्ञान बीच में खड़ा था। अब तुम कोरे कागज हो गए। हालांकि मैं जा रहा हूं, मगर कोई फिकर नहीं; संबंध हो गया। मृत्यु भी अब मुझे तुमसे न तोड़ सकेगी। ऐसे तो जीवन भी मुझे तुमसे न जोड़ सकता था!"
गुरु मर गया और उसकी मृत्यु की उस घड़ी में शिष्य ज्ञान को उपलब्ध हो गया। क्या हुआ? यह कहानी बड़ी अनूठी है।
कोरा कागज लाते ही क्या हुआ? कोरा कागज लाने का अर्थ हुआः मुझे कुछ भी पता नहीं, मैं अज्ञानी हूं। जो ऐसा भाव रख सके गुरु के पास, वही शिष्य।
नहीं तो जरा सी भी अड़चन तुम्हें रही ज्ञान की, तो दीवाल बनी रहती है।
तो पहले तो गुरु का अर्थ होता है वह, जो जाग गया अपनी संपदा के प्रति।
तुम्हें जगा सकता है। जगा हुआ ही जगा सकता है।
यहां अगर पांच सौ आदमी सो रहे हों और किसी को जगाना हो, तो कोई जगा हुआ
ही जगा सकता है। एक सोया आदमी, दूसरे सोए आदमी को नहीं जगा सकता। सोचो तोः कैसे जगाएगा? खुद ही सोया है, दूसरे को कैसे जगाएगा? हां, एक सोया आदमी दूसरे आदमी को सुला सकता है।
तुमने कभी देखा। कोई आदमी तुम्हारे पास ही बैठ कर जम्हाई लेने लगे, झपकी खाने लगे, थोड़ी देर में तुम भी जम्हाई लेने लगोगे और झपकी खाने लगोगे।
एक सोया आदमी दूसरे को सुला सकता है। मगर एक सोया आदमी दूसरे सोए को जगा नहीं सकता। जगाने के लिए तो कोई जागा हुआ चाहिए।
गुरु का अर्थ हैः जो जाग गया। इसलिए हमने गुरु शब्द दिया है-जागे हुए को।
गुरु का अर्थ होता हैः गुरुता। जो भारी हुआ; अब छिछला नहीं रहा।
जिसमें वजन आया। जिसमें मूल्य आया। अब ऐसा ही उथला-उथला न रहा; जिसमें गहराई आई। जो गंभीर हुआ--वह गुरु।
जागते ही मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता, परमात्मा हो जाता है। और सोया हुआ मनुष्य भी मनुष्य नहीं होता। सोया हुआ मनुष्य पशु होता है।
तो तुम यह बात ख्याल में रख लेना कि मनुष्य तो सिर्फ बीच का पड़ाव है। यहां कुछ मनुष्य हैं, जो वस्तुतः पशु हैं; सोए हुए हैं। और यहां कुछ मनुष्य हैं, जो वस्तुतः परमात्मा हैं; जागे हुए हैं। मनुष्य तो सिर्फ बीच का पड़ाव है। पशु से परमात्मा में ले जाने वाला सिर्फ एक सेतु है। मनुष्य कोई अवस्था नहीं है, यात्रा है। पशु से परमात्मा तक की जो यात्रा है, वही मनुष्यता है।
गुरु सुकदेव कृपा करी... ।

तो पहले तो गुरु-तत्व, और दूसरा कृपा-तत्व भी समझने जैसा है। क्योंकि संतों का सारा सार वहां है।
कृपा का अर्थ होता हैः अकारण। कृपा का अर्थ होता हैः कार्यकारण के बाहर।
तुमने दो घंटे मेहनत की, तुम्हें दो रुपये मिल गए मजदूरी के। यह कोई कृपा नहीं है। तुमने दो घंटे मेहनत की, तुम्हें दो रुपये मिल गए। तुमने जमीन खोदी, बीज बोए, पानी सींचा; गेहूं की फसल आई, तुमने फसल काटी। यह कोई कृपा नहीं है।
कृपा का अर्थ होता हैः तुमने अपने से कुछ भी न किया था; तुमने ऐसा कुछ
भी न किया था, जिसके कारण तुम दावा कर सकते कि यह मुझे मिलना चाहिए। तुम्हारे पास दावे का कोई उपाय न था और मिला-भेंट, पुरस्कार--अकारण।
जीसस के जीवन में ठीक कहानी है, जो कृपा के सूत्र को समझाती है। जीसस कहते थे, कृपा ऐसी किः एक अंगूर के खेत के मालिक ने मजदूर बुलाए। अंगूर पक गए थे और जल्दी तोड़ लेना जरूरी था अन्यथा सड़ जाएंगे। बहुत मजदूर आए। दोपहर तक उन्होंने काम किया। लेकिन लगा कि सांझ तक पूरे अंगूर तोड़े न जा सकेंगे, आदमी कम हैं। मालिक आया था तो उसने फिर अपने मुकद्दम को भेजा कि कुछ और मजदूर ले आओ। तो मुकद्दम भागा गया। बाजार से कुछ और लोग ले आया।
सांझ होने के करीब-करीब मालिक फिर आया और उसने कहा कि "इससे भी काम नहीं होगा। तुम कुछ और मजदूर लाओ।" तो मुकद्दम फिर भागा गया। लेकिन जब तक वह मजदूरों को लेकर आता, तब तक सूरज भी ढल गया।
तो कुछ मजदूर सुबह आए थे, कुछ दोपहर आए थे, कुछ सांझ को आए। और रात होने
के करीब थी, तो मालिक ने सब को उनका जो-जो जरूरी था-बांटा। सुबह के मजदूरों को भी उतना ही दिया; दोपहर जो आए थे, उनको भी उतना ही दिया; सांझ जो आए थे, जिन्होंने कुछ भी न किया था, जो आकर बस खड़े हुए थे और सूरज ढल गया था, उनको भी उतना ही दिया।
स्वभावतः सुबह के मजदूर नाराज हो गए, भड़क उठे। उन्होंने कहा, "यह अन्याय है। हम सुबह से सिर पटक रहे हैं, दिनभर की धूप हमने सही, और हमको भी उतना? दोपहर जो आए, आधे दिन से, उनको भी उतना? और चलो उनको भी छोड़ दो। मगर ये जो अभी आकर खड़े हुए हैं, जिन्होंने कि एक पत्ता नहीं तोड़ा, यहां से वहां एक पत्ता नहीं रखा; इनको भी उतना?"
वह मालिक हंसने लगा। उसने कहा, "तुम कृपा-तत्व समझते हो? तुम्हें जितना चाहिए था, उतना मिला या नहीं, यह मुझे कहो।" उन्होंने कहा, "हमें तो मिल गया जितना चाहिए था। सुबह से सांझ तक मजदूरी का जो मिलना चाहिए था, हमें पूरा मिल गया।"
तो उस मालिक ने कहा, "फिर तुम्हें क्या फिकर? तुम्हें जो मिलना था, पूरा मिल गया। तुम्हें इसकी क्या चिंता कि मैंने इनको दिया? यह मेरे पास बहुत ज्यादा है, इसलिए देता हूं। मेरे पास है, इसलिए देता हूं। इनकी मजदूरी के कारण नहीं देता हूं। यह मेरे पास है, इसलिए देता हूं। मेरे पास आधिक्य में है, इसलिए देता हूं।"
कृपा का अर्थ होता हैः गुरु के पास कुछ इतना आधिक्य में है कि वह बांट रहा है। बांटना उसे पड़ रहा है। बिना बांटे वह न रह सकेगा। पात्र मिलेंगे तो पात्र को देगा, अपात्र मिलेंगे तो अपात्र को देगा।
एक तिब्बती कहानी है कि एक गुरु जिंदगी भर इनकार करता रहा, शिष्य स्वीकार न करता था। जब भी कोई आकर कहता कि मुझे शिष्य बना लो, वह इतनी बाधाएं खड़ी कर देता कि तुम्हारी पात्रता कहां? सच बोलते हो? ईमानदार हो? हिंसा तो नहीं करते? मांसाहार तो नहीं करते? पर-स्त्री-गमन तो नहीं करते? कभी जिंदगी में चोरी तो नहीं की? यह... वह... । इतनी बातें उठा देता कि कोई पात्र ही सिद्ध न होता। तो वह इनकार कर देता कि जब तक पात्र नहीं, कैसे स्वीकार करूं?
लेकिन एक दिन उसका नौकर, जो उसकी सेवा-टहल करता था... । शिष्य तो उसने स्वीकार कभी किए नहीं थे, क्योंकि पात्र कोई मिला न था। उसने नौकर को

बुलाया और कहा, जा तू बाजार में... । वह हिमालय के पहाड़ में रहता था। भाग नीचे बस्ती में। जो भी शिष्य होना चाहे, जल्दी ले आ।
उस नौकर ने कहा, मालिक, आप शिष्य इतनी साधारणता से स्वीकार नहीं करते! गांव थक गया प्रार्थना कर-कर के। अनेक बार लोग आ कर जा चुके। आपने किसी को कभी स्वीकार नहीं किया। उसने कहा, तू फिकर न कर। तू जा। जो भी मिले, ले आ। कहना, गुरु बदल गए हैं। जो भी मिलेगा, उसको देने वाले हैं।
दस-पंद्रह लोगों को पकड़ लाया। उसमें अजीब-अजीब तरह के लोग थे। किसी से पूछा कि "तुम किसलिए आए हो?" उसने कहा, "मेरी पत्नी मर गई। मैं दुखी था। इस आदमी ने कहा कि गुरु देने को तैयार हैं, तो चला आया।" उसमें एक आदमी ऐसा था, जो कि जुए में हार गया था। उसने कहा, "मैं हार गया हूं; जीवन बड़ा उदास है, इसलिए चला आया।"
उसमें एक आदमी ऐसा भी था, उसने कहा कि मुझे कोई कारण नहीं आने का। मैं
तो ऐसे ही घर के बाहर घूम रहा था। यह आदमी बोला कि "चलते हो?" मैंने कहा, "चलो देखें, क्या हर्जा है!"
उनमें से किसी को भी यह भरोसा नहीं था कि यह गुरु उनको स्वीकार कर लेगा। उसने सब को स्वीकार कर लिया। उन सब ने एक साथ कहा, "आप हमें स्वीकार कर रहे हैं?"
एक जुआरी है; एक की पत्नी मर गई; एक ऐसे ही चला आया है-जिसको कोई कारण
ही नहीं है, जिसे परमात्मा इत्यादि से कुछ लेना-देना नहीं है। सिर्फ खाली बैठा था, काम-धाम नहीं था, घर के बाहर टहल रहा था; चला आया कि चलो, एक चहलकदमी हो जाएगी। "इन सब को स्वीकार कर रहे हैं! और आपने अब तक सभी को इनकार किया?"
उस गुरु ने कहा, "मेरे पास था नहीं। इसलिए मैं बहाना खोज लेता था कि तुम पात्र नहीं हो। अब मेरे पास है; अब मैं कोई बहाना नहीं खोज सकता। अब सवाल यह नहीं है कि अब तुम पात्र हो या नहीं। अब सवाल यह है कि कोई भी लेने को मिले तो मैं देने को तत्पर हो गया हूं।
मेरे भीतर मेघ घना हो गया है, वर्षा होना चाहती है। अब मैं यह न देखूंगा कि कहां हो; सुंदर भूमि हो, स्वच्छ भूमि हो-अब यह मैं कुछ न देखूंगा। अब तो अपवित्र भूमि हो तो भी बरसूंगा। बरसना ही होगा। फूल खिलने के करीब आ गया, सुगंध फैलेगी। अब मैं यह न पूछूंगा, कि पूरब जाएगी, कि पश्चिम, कि उत्तर, कि किनके नासापुटों में जाएगी--पापियों के, पुण्यात्माओं के? अब तो सुगंध को मुक्त करना होगा।
"अब तो दीया जल गया है, रोशनी पड़ेगी। अब रोशनी यह नहीं पूछ सकती कि सिर्फ साधुओं पर पडूंगी और असाधुओं पर नहीं पडूंगी। कि असाधु पास से निकलेगा तो मैं अपने को बंद कर लूंगी, और साधु पास से निकलेगा तो खुल कर बहने लगूंगी!"
इस तत्व का नाम कृपा है।
कृपा का अर्थ होता हैः गुरु के पास है, और इतना है कि उसे बांटना होगा।
नहीं तो बोझ हो जाएगा।
गुरु का अर्थः गुरुता। उसके जीवन में पहली दफा सार्थक का उदय हुआ है।
सार्थक घना हो रहा है। सार सघन हो रहा है, सघनता के कारण गुरुता पैदा हो रही है। उसे अपने को हलका करना होगा, उसे बांटना ही होगा।
जब गीत हृदय में हो, और न गाओ तो बोझ हो जाता है। गाना ही होगा। जब पैर में नाच आ जाए और घूंघर न बांधो और नाचो न, तो दिक्कत में पड़ जाओगे। बांटना ही होता है इस जगत में। वह अनिवार्य तत्व है। इस बात का नाम कृपा है।
गुरु के पास तुम्हें जो मिलता है, वह तुम्हारी पात्रता के कारण नहीं; उसकी कृपा के कारण। इस तत्व का बड़ा मूल्य है भक्ति के मार्ग पर। क्योंकि इसके कारण शिष्य में जरा से भी अहंकार के जन्मने का उपाय नहीं रह जाता। नहीं तो शिष्य सोचता है कि "देखो! मैं यम पालता, नियम पालता; आसन लगाता, प्राणायाम करता, प्रत्याहार साधता; धारणा-ध्यान, सब करता हूं। इसके फल में मुझे मिल रहा है। धन्यवाद देने की भी जरूरत क्या है?"

लेकिन शिष्य कहता है कि मैं कुछ भी साधूं, जो मिल रहा है, उसका इस साधने से कोई संबंध नहीं। इस साधने से भला मैं पवित्र हो गया हूं। और जो मिल रहा है, उसे सम्हाल सकूंगा, झेल सकूंगा। मगर जो मिल रहा है, उसका मेरी पात्रता से कोई संबंध नहीं है। मेरे यम-नियम, मेरे साधन-व्यायाम-मेरे घड़े को सीधा कर गए हैं, यह सच है। लेकिन जो वर्षा आकाश से हो रही है, वह मेरे घड़े को सीधा देख कर नहीं हो रही है। वह तो हो ही रही है। मैं उलटा भी होता तो भी होती। घड़ा उलटा भी पड़ा रहता तो ऐसा थोड़े ही था कि वर्षा नहीं होती। वर्षा तो होनी ही थी।
जिसके पास है, वह तो बरस कर जाएगा। जब ध्यान फलता है, तो उसके साथ ही करुणा भी उपजती है। जो है-वह तो बरस कर जाएगा। आधिक्य है--तो बहेगा।
गुरु तो ऐसा है, जिसमें बाढ़ आ गई; कूल-किनारे तोड़ कर बहेगा। इस तत्व का नाम कृपा।
गुरु सुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह।।
जब तक गुरु न मिल जाए, जब तक गुरु के माध्यम से परमात्मा की कृपा न मिल जाए, जब तक गुरु के द्वार से--गुरुद्वारे से--प्रभु तुम्हारे पास बह कर न आ जाए, तब तक तुम अमोलक न हो सकोगे। तब तक तो तुम एक झूठ हो, एक नाटक।
तुम कहते हो तो अभिनय काशृंगार सभी धो डालूंगी
लेकिन मुझको यह बतला दो, नाटक से पहले क्या थी मैं?
झोली ले अलख जगाती हूं
मैं घूम फिरी द्वारे-द्वारे
पग के कांटे भी ऊब गए
पर घायल पांव नहीं हारे
सुनती हूं सह भी लेती हूं,
अति कड़वे बोल सदाव्रत के
कोई मुझको यह बतला दो, याचक से पहले क्या थी मैं? यह क्या कम है प्यासे मन से
हर पनघट आदर से बोला
परिचय की जिज्ञासा लेकर
पनिहारिन ने घूंघट खोला
गगरी बादल से पूछ रही, बरसा क्यों जेठ दुपहरी में? अब कोई यह तो बतला दो, चातक से पहले क्या थी मैं? कलियों की करुणा जाग गई
उपवन का कण-कण महक गया
भवरों की मोहक गुन-गुन पर
मेरा भावुक मन बहक गया
माला का मोल चुकाने में, माली के द्वारा ठगी गई अब कोई यह भी बतला दो, ग्राहक से पहले क्या थी मैं? जब गीत विरह के गाए तो
जग ने राधा का नाम लिया
हर राधा सुन कर चौंक पड़ी
बोली, किसको उपनाम दिया
राधाओं ने बाधा कह कर, बंशी का गुंजन छीन लिया
अब कोई आकर बतला दे, बाधक से पहले क्या थी मैं?
जब तक गुरु न मिल जाए, तुम एक बाधा हो। जब तक गुरु न मिल जाए, तब तक तुम राधा नहीं।
गुरु के साथ रचे रास चैतन्य का-तो राधा।
यह "राधा" शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। यह राधा शब्द बड़ा सांकेतिक है।
राधा जैसी कोई स्त्री थी, इसका कोई प्रमाण शास्त्रों में मिलता नहीं।
राधा का कोई उल्लेख पुराने शास्त्रों में नहीं है। बहुत बाद में मध्ययुग के भक्तों ने राधा शब्द को जोड़ा।
राधा का कोई ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं मालूम होता। हां, पुराने शास्त्र इतना जरूर कहते हैं कि सारी गोपियों में कोई एक थी, जो बहुत निकट थी। सारी

गोपियों में कोई एक थी, जो छाया की तरह कृष्ण के पीछे लगी रहती थी। लेकिन उसका कोई नाम नहीं था।
मध्य-युग में यह नाम खोजा गया-राधा। इसके पीछे एक बड़ा मूल्यवान संकेत है। राधा शब्द धारा शब्द का उलटा है। धारा का अर्थ होता हैः नीचे की तरफ जाए। वासना की तरफ चेतना बहती है तो उसका सांकेतिक नाम है-धारा। जैसे पहाड़ से गंगा उतरी-तो धारा। चली नीचे की तरफ, मैदान पर आई। छोड़ दिए शिखर सौंदर्य के। छोड़ दिए गौरीशंकर। छोड़ दी ऊंचाइयां। छोड़ दिए वे पवित्र हिमखंड-अछूते, अस्पर्शित, सदा के कुंवारे-और उतरी कीचड़ में-तो धारा।
जब तुम्हारी चेतना वासना की तरफ उतरती है-तो धारा। और जब चेतना ऊर्ध्वगामी होती है, तो धारा के उलटे हो गए तुम-राधा। चले ऊपर की तरफ। छोड़ा कीचड़-कमल बने। उठे ऊपर की तरफ। छोड़ी पृथ्वी-चले आकाश की तरफ। छोड़ी देह-आत्मा की खोज की।
देह है पृथ्वी; आत्मा है-आकाश। देह है मैदान; आत्मा है--गौरीशंकर। इसलिए तो हम कहते हैंः कैलाश पर वास है परमात्मा का। उसका मतलब समझना। कोई कैलाश पहाड़ पर परमात्मा नहीं बैठा है। कैलाश पर वास है शिव का। उसका कुल इतना ही अर्थ है-ऊपर की तरफ चलो, ऊर्ध्वगामी बनो, कैलाश की यात्रा करो।
गुरु के साथ जुड़ते ही धारा, राधा हो जाती है। वह गुरु की कृपा का फल है।
सीधे पलक न देखते, छूते नाहीं छांहिं।
गुरु सुकदेव कृपा करी, चरनोदक ले जाहिं।।
चरणदास कहते हैंः उन लोगों को मैं जानता हूं, जो मुझे कभी सीधी आंख से
भी नहीं देखते थे। जो मेरी छाया भी नहीं छूते थे।
चरणदास तो वणिक थे, ढूसर बनिया थे। तो ब्राह्मण तो उनसे दूर ही दूर रहते होंगे। और फिर ऐसी गुरु कृपा हुई कि अब ब्राह्मण भी आते हैं, चरण धोकर चरणोदक ले जाते हैं!
सीधे पलक न देखते, छूते नाहीं छांहिं।
गुरु सुकदेव कृपा करी, चरनोदक ले जाहिं।।
चरणदास कहते हैंः कैसा अपूर्व घट गया, कैसी क्रांति हो गई! मुझ जैसे क्षुद्र के लोग चरणों का पानी को ले जा रहे हैं-धोकर! मेरा इसमें कुछ भी नहीं। यह गुरु से जो बहा है, यह जो कृपा गुरु की उतरी है, यह उसी का सन्मान है।
किसी अन्य जगह पर भी कहा हैः
ढूसर के बालक हुते, भक्ति बिना कंगाल।
गुरु सुकदेव कृपा करी, हरि-धन किए निहाल।।
वणिक के पुत्र थे। चरणदास कहते हैंः ढूसर के बालक हुते...
ऐसे धन बहुत था। वणिक-पुत्र थे।
... भक्ति बिना कंगाल।
लेकिन धन का क्या होता? भक्ति के बिना कंगाल थे, भिखारी थे।
गुरु सुकदेव कृपा करी, हरि-धन किए निहाल।
दे दिया हरि का धन। परमात्मा की संपत्ति दे दी और निहाल कर दिया।
बलिहारी गुरु आपने, तन मन सदके जावं।
जीव ब्रह्म छिन में कियो, पाई भूली ठावं।।
सुनना यह वचन बड़ा महत्वपूर्ण हैः कि बलिहारी है तुम्हारी गुरु, कमाल
है तुम्हारा कि
जीव ब्रह्म छिन में कियो... !
एक क्षण में बदल दी तुमने कथा। एक क्षण में अर्थहीन को, सार्थक कर दिया! कमाल है! बलिहारी है!
जीव ब्रह्म छिन में कियो...
एक क्षण भी नहीं लगा। और मैं तो समझता थाः देह हूं; और तुमने परमात्मा बना दिया! मैं तो समझता थाः सब असार; और तुमने सार बरसा दिया।

एक क्षण में यह क्रांति घट जाती है, एक पल में; क्योंकि यह संपत्ति कहीं खोजने नहीं जानी है। यह पड़ी ही है। यह तुम लेकर ही आए हो। यह तुम्हारा स्वरूप है।
जीव ब्रह्म छिन में कियो, पाई भूली ठावं।।
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट।
कहते हैंः मेरा गुरु ऐसा है, जैसा कोई शूरवीर; जैसा कोई धनुर्धारी।
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट।
और उसका शब्द चोट करने वाला है। शब्द मलहम करने वाला नहीं है, सांत्वना देने वाला नहीं है; शब्द चोट करने वाला है। फर्क समझ लेना।
पंडित-पुजारी का शब्द सांत्वना देता है, चोट नहीं करता। पंडित-पुजारी
का शब्द तो शामक है; समझा-बुझा देता है, लीप-पोत कर देता है।
घर में कोई मर गया। अगर पंडित-पुजारी आएगा, वह कहेगाः "क्यों रोते हो? अरे, आत्मा अमर है। कहीं कोई मरता है? यह जो तुम्हारा प्यारा मर गया, स्वर्गवासी हो गया।" यह पंडित की वाणी है।
अगर गुरु आएगा और रोते देखेगा, तो कहेगा कि "ठीक से रो लो, क्योंकि जैसे यह मर गया, ऐसे ही तुम भी मर जाओगे।" चोट करेगा। क्योंकि चोट के बिना कोई जागता नहीं। सांत्वना से क्या होगा?
यह मर गया और पंडित समझा रहा है कि "मत घबड़ाओ; स्वर्गवासी हो गया।" सभी स्वर्गवासी हो जाते हैं! यहां जो भी मरा-सब स्वर्गवासी! नरक तो खाली पड़ा होगा। क्योंकि तुम देखते होः कोई भी मरे, नरकवासी तो कोई होता ही नहीं; सब स्वर्गवासी हो जाते हैं!
यह पंडित ने सांत्वना खोजी। भेज देता है सभी को स्वर्ग में। तुम्हें राहत मिलती है कि चलो, कोई हर्जा नहीं। तुम भलीभांति जानते हो अपने पति को, अपनी पत्नी को कि आशा बहुत कम है स्वर्गवासी होने की। मगर हो गए तो अच्छा ही हुआ।
मैंने सुना हैः एक स्त्री ने, एक ईसाई स्त्री ने अपने पति की कब्र के लिए... । पति मर गए, कब्र के लिए पत्थर बनवाया। उस पत्थर पर लिखवाया, "स्वर्ग में विश्राम करो। शांति से स्वर्ग में विश्राम करो। रेस्ट इन पीस।"
इधर पत्थर बन कर तैयार हुआ, तब तक पति के द्वारा की गई वसीयत खोली गई। वसीयत में पति पत्नी के लिए कुछ भी नहीं छोड़ गया। और सब बांट गया। मगर पत्नी के लिए एक पैसा नहीं छोड़ गया।
पत्नी तो एकदम नाराज होकर भागी पत्थर खोदने वाले के पास। कहा कि "बदलो; यह नहीं चलेगा। यह आदमी धोखा दे गया! इसने जिंदगी भर सताया और मर कर भी सता गया। यह मत लिखो इसके पत्थर पर।"
उसने कहा कि "नहीं, पत्थर तो बन गया। अब बदलना मुश्किल है।" तो पत्नी
ने कुछ सोचा और उसने कहा, "फिर ऐसा करो। तुमने लिख दिया-स्वर्ग में शांति में विश्राम करो; जब तक मैं नहीं आ जाती-इतना और जोड़ दो-रेस्ट इन पीस, अनटिल आइ कम।"
हमारा स्वर्गवास, हमारी आत्मा की अमरता, सब सांत्वनाएं, मलहम-पट्टियां हैं। सदगुरु चोट करता है।
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भ्रम्म का कोट।।
और सतगुरु यद्यपि प्रेम बरसाता है, लेकिन उसका प्रेम भी तलवार है।
उसका प्रेम भी ऐसे है, जैसे अग्नि।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भ्रम्म का कोट।।
और ऐसा उसे होना ही पड़ेगा।
सतगुरु की करुणा अपार है, उतना ही उसे कठोर भी होना पड़ता है। नहीं तो तुम्हारे जीवन को रूपांतरण देना संभव नहीं होगा। सतगुरु अगर मीठा ही मीठा हो, तो शिष्य के जीवन में क्रांति की संभावना नहीं; डायबिटीज भला हो जाए! सतगुरु मीठा ही मीठा नहीं हो सकता; कड़वा भी होगा। बहुत बार चोट भी करेगा।
बहुत बार तड़फाएगा भी।

सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भ्रम्म का कोट।।
वह जो भ्रम की दीवाल तुमने उठा रखी है, जब तक गोलों की उस पर वर्षा न हो, तब तक वह गिरेगी भी नहीं।
तो सतगुरु के लिए ठीक-ठीक बात कही गई है कि सतगुरु ऐसे है, जैसे कुम्हार। तुमने देखा, कुम्हार चाक पर घड़ा बनाता। एक हाथ भीतर रखता, उससे सहारा देता। और एक हाथ बाहर रखता, उससे चोट करता। भीतर से सहारा देता है, नहीं तो गिर जाएगा; वह घड़ा बनेगा ही नहीं। अगर चोट ही चोट करे, तो घड़ा नहीं बनेगा। और अगर सहारा ही सहारा दे, तो भी घड़ा नहीं बनेगा। तो एक हाथ से सहारा देता है, एक हाथ से चोट करता है। सहारे को चोट, और चोट को सहारे से संयुक्त करता है। तभी निर्माण हो पाता है। तभी जीवन में अर्थ का उदय हो पाता है।
तो शिष्य को बहुत बार लगेगाः भाग जाऊं, छोड़ दूं; यह चोट ज्यादा हो गई; बरदाश्त के बाहर हो गई। जो कमजोर हैं, वे भाग जाएंगे। जो हिम्मतवर हैं, वे ही टिक पाते हैं।
सतगुरु शब्दी तेग हैं, लागत दो करि देहि।
सतगुरु के शब्द तो तलवार की भांति हैं। एक चोट में दो टुकड़े कर देते हैं। सार को अलग कर देते हैं, असार को अलग कर देते हैं। सच को अलग कर देते हैं, झूठ को अलग कर देते हैं। माया को ब्रह्म से अलग कर देते हैं। देह आत्मा को, एक दूसरे से अलग कर देते हैं।
सतगुरु शब्दी तेग हैं, लागत दो करि देहि।
पीठ फेरि कायर भजै, सूरा सनमुख लेहि।।
तो जिसमें थोड़ी भी कायरता हो, वह तो पीठ फेरकर भाग खड़ा होगा। वह कहेगा, ऐसे पिटने थोड़े ही आए। हम आए थे, स्वर्ग की तलाश में; हम आए थे, सत्य की तलाश में। हम कोई चोट खाने थोड़े ही आए थे? हम अपमानित होने थोड़े ही आए थे? लेकिन सिवाय इसके कि तुम्हारा अहंकार तोड़ा जाए, तुम परमात्मा से और किसी तरह जुड़ न सकोगे।
तुम्हारा अहंकार तोड़ना ही होगा, चाहे कितनी ही पीड़ा हो। इसलिए कायर
तो भाग खड़े होते हैं। कायर तो सांत्वना की तलाश में हैं; सत्य की बातें करते हैं।
सतगुरु शब्दी तेग हैं, लागत दो करि देहि।
पीठ फेरि कायर भजै, सूरा सनमुख लेहि।।
तो जो शूरवीर होगा, वह सामने से लेगा। वह धन्यवाद मानेगा गुरु का कि उसने चोट की। न करता चोट तो क्रांति संभव नहीं थी। चोट करते-करते ही... ।
जैसे छेनी से मूर्तिकार चोट करते-करते पत्थर को तोड़ता है, अनगढ़ पत्थर को एक सुंदर प्रतिमा में बदलता है, वैसी ही सारी प्रक्रिया है।
सतगुरु शब्दी तीर है, कीयो तन मन छेद।
और सदगुरु को तन-मन में छेद करना होगा, तभी तो तुम्हें दर्शन हो सकेंगे आत्मा के-जो तन और मन के पीछे छिपी है।
जैसे कोई कुआं खोदता है, ऐसे सतगुरु को तुम्हारे भीतर ध्यान का कुआं खोदना होगा।
बेदरदी समझै नहीं, विरही पावै भेद।।
जो अन-अधिकारी है, कायर है, हिम्मत नहीं है, कमजोर है, भयभीत है... ।
बेदरदी समझै नहीं...
वह नहीं समझ पाएगा। उसे अभी दर्द ही नहीं उठा परमात्मा को पाने का; अभी प्यास ही नहीं जगी।
प्यास जगे, तो आदमी कुआं खोदने की सारी तकलीफ उठाने को तैयार हो जाता है। लेकिन प्यास ही न हो, तो सोचता हैः इतनी मेहनत किसलिए? किस प्रयोजन से? मुफ्त मिले परमात्मा, तो लोग लेने को तैयार हैं। कुछ श्रम करना पड़े,
तो तैयार नहीं। और कुछ टूटना पड़े, कुछ अपने को बदलना पड़े, तो तैयार नहीं। लोग चाहते हैंः हम जैसे हैं, वैसे ही रहें, और परमात्मा मिल जाए। मुफ्त मिल जाए।

धन पाने के लिए सब कुछ करने को तैयार हैं। पद पाने के लिए सब कुछ करने
के लिए तैयार हैं। परमात्मा पाने के लिए कुछ भी करने को तैयार नहीं! बेदरदी समझै नहीं, विरही पावै भेद।।
लेकिन जिसके हृदय में विरह की अग्नि जलनी शुरू हुई है, जिसे दिखाई पड़ने लगा कि मौत सब छीन लेगी, जल्दी करो; सांझ करीब आती है, जल्दी करो। कुछ करो कि शाश्वत से संबंध जुड़ जाए। जीवन का अवसर ऐसे ही न खो जाए। वे ही समझ पाएंगे-गुरु की चोट को।
सतगुरु शब्दी लागिया नावक का सा तीर।
तीर की तरह हैं सतगुरु के शब्द।
कसकत हैं निकसत नहीं, होत प्रेम की पीर।।
फिर बहुत कसकते हैं, जब तीर लग जाए छाती में।
कसकत हैं, निकसत नहीं... ।
निकाल भी नहीं सकते। तीर ऐसा है कि निकालने का कोई उपाय नहीं। लग गया
तो लग गया। फिर कसकता है, फिर खूब पीड़ा देता है। लेकिन पीड़ा मीठी है।
क्योंकि पीड़ा परमात्मा को पाने के मार्ग पर है।
कसकत हैं निकसत नहीं, होत प्रेम की पीर।।
सतगुरु शब्दी बान हैं, अंग-अंग डारै तोर।
सतगुरु को तुम्हें तोड़ना ही होगा, तुम्हें मिटाना ही होगा। इसलिए जब मुझसे कोई संन्यास लेता है, तो मैं कहता हूं कि मरने की तैयारी है? मिटने की तैयारी है? सिर कटाने की तैयारी है? अगर उतनी तैयारी न हो, तो संन्यास से कुछ लाभ न होगा। तब संन्यास झूठ होगा।
तुम मिटो तो ही परमात्मा हो सकता है। और परमात्मा हो जाए तो ही तुम हो सकते हो। उसके पहले सब झूठ है; नाटक है।
सतगुरु शब्दी बान हैं, अंग-अंग डारै तोर।
प्रेम-खेत घायल गिरै, टांका लगै न जोड़।।
और यह ऐसा युद्ध का मैदान है, जहां गुरु का मारा हुआ जब गिरता है कोई-प्रेम-खेत घायल गिरै...
यह युद्ध प्रेम का है। सतगुरु शत्रु नहीं है। सतगुरु ने तुम्हें चाहा है, प्रेम किया है। इसलिए तुम्हें तोड़ने को उत्सुक हुआ है।
प्रेम-खेत घायल गिरै, टांका लगै न जोड़।।
और कठिनाई ऐसी है कि यह जो चोट सतगुरु की लगती है, फिर इसको जोड़ा नहीं
जा सकता। एक दफे लग भर जाए, तो यह हड्डी टूटी, सो टूटी। फिर इसको जोड़ने की कोई औषधि नहीं। और यह जो घाव हुआ, सो हुआ। फिर यह कभी नहीं भरता। क्योंकि यह घाव घाव थोड़े ही है; यह तो परमात्मा के आने का द्वार है।
पहले घाव जैसा लगता है; जब तक परमात्मा नहीं आया, तब तक घाव जैसा लगता है। जब परमात्मा आएगा, तब तुम समझोगे कि जिसे घाव समझा था, वह तो तुम्हारे भीतर खिलते हुए कमल थे। तुम्हारी समझ खोटी थी। जिसे चोट समझा था, वह तो वरदान था। और जिसे अभिशाप समझा था, वह अनुकंपा थी।
प्रेम-खेत घायल गिरै, टांका लगै न जोड़।।
ऐसी मारी खैंच कर, लगी वार गई पार।
जिनका आपा न रहा, भये रूप ततसार।।
और कहते हैंः गुरु ऐसे सम्हाल कर चोट मारता है, ऐसे निशाने से मारता है-
ऐसी मारी खैंच कर, लगी वार गई पार।
-कि आर-पार हो जाती चोट।
मौके की तलाश करता है गुरु। कब तुम अपने हृदय को असुरक्षित छोड़ देते हो, उस क्षण की तलाश करता है गुरु। कब तुम अपने हृदय को बचाने की तैयारी नहीं रखते हो, उसकी तलाश करता है गुरु। जब वह क्षण आ जाता है, जब भी तुम मौका दे देते हो, जब देखता है कि असुरक्षित तुम्हारा हृदय पड़ा है, अब तुम पहरा नहीं दे रहे हो... ।

तो पहले गुरु तुम्हें खूब प्रेम बरसाता है, तुम्हें करीब लेता है, ताकि भरोसा आ जाए; ताकि तुम अपनी रक्षा करना छोड़ दो, ताकि तुम अपने धनुषबाण रख दो, ताकि तुम अपनी ढाल हटा कर रख दो कि इससे क्या खतरा है; यह तो अपना है।
जिस दिन तुम्हारी ढाल, गुरु पाएगा नहीं ढांके हुए है तुम्हें, उसी दिन... ।
ऐसी मारी खैंच कर, लगी वार गई पार।
जिनका आपा न रहा, भये रूप ततसार।।
और जब तुम्हारा आपा मिट जाएगा, मैं का भाव मिट जाएगा, तब तुम ततसार हो जाओगे। उस परमात्मा के रूप में एक हो जाओगे--तत्वमसि। तब तुम तदाकार हो जाओगे। मगर मिटना होगा। मिटे बिना पाना नहीं है।
जीसस ने कहा हैः जो मिटेगा, वही पाएगा। जो बचाएगा, वही मिट जाएगा। डूबा जो, वही उबरेगा।
तो गुरु से अपने को बचाना मत। तर्क से, विचार से, उपाय से-गुरु से अपने
को बचाना मत। बचाना ही हो, तो गुरु के पास जाना मत। जब तैयारी हो जाए इस बात की कि अपने में कुछ रखा ही नहीं है; मिटने में हर्ज क्या है, खोने को है क्या?
... कोई न कौड़ी देह
किसू काम के थे नहीं...
तो गुरु अगर मिटा भी देगा, तो क्या मिटता है? यह कचरे में कुछ आग भी लगा दी, तो क्या हर्जा है? लगा देने दो आग। इस कचरे में कुछ मूल्य है ही नहीं।
जिस दिन तुम्हें ऐसा दिखाई पड़ने लगेगा कि इस जीवन में कोई सार नहीं, उसी दिन तुम तैयार होओगे कि ठीक है, अब मिटा ही दो। शायद इसी दांव लगाने से कुछ सार्थक बात मिल जाए। निश्चित मिलती है।
इस जगत में दांव लगाने वाले कभी भी हारते नहीं; मगर दांव पूरा चाहिए।
कंजूस और कृपण का दांव नहीं; बच-बच कर नहीं कि थोड़ा सा लगाएं। पूरा दांव चाहिए।
जिनका आपा न रहा, भये रूप ततसार।।
वचन लगा गुरुदेव का, छुटे राज के ताज।
और जब गुरु का वचन समझ में आ जाता है, उसकी वाणी प्रगट हो जाती है, उसका भाव हृदय पर खुल जाता है, उसका रंग तुम्हें रंग लेता है, तब सिंहासन भी व्यर्थ लगते हैं। तब गुरु के हाथ से लगी सूली ज्यादा सार्थक लगती है। तब सूली ज्यादा मूल्यवान है-सिंहासन दो कौड़ी का।
... छुटे राज के ताज।
फिर कोई राज्य पर बिठाना चाहे-सिंहासन पर, साम्राज्य देना चाहे, तो भी तुम कहोगेः क्षमा करो, अब हमने बड़ी संपत्ति पा ली; अब बच्चों के खेल-खिलौने काम के नहीं।"
हीरा मोती नारी सुत, सजन गेह गज बाज।।
फिर तो हीरे हों, मोती हों, सुंदर स्त्रियां हों, सुंदर पति हो, घर हो, हाथी-घोड़े हों; किसी मूल्य के नहीं। सब खिलौने हैं, सब शतरंज के खिलौने हैं।
वचन लगा गुरु ज्ञान का, रूखे लागे भोग।
एक दफा गुरु का स्वाद आ जाए, उसकी कृपा का स्वाद आ जाए, एक दफे गुरु के माध्यम से परमात्मा की एक बूंद भी तुम्हारे अनुभव में आ जाए, तुम्हारे कंठ में उतर जाए-
... रूखे लागे भोग।
फिर कुछ भी नहीं है इस संसार में। सब रूखा लगेगा, सब सूखा लगेगा। और यही समझ लेने की बात है।
इसलिए मैं तुमसे संसार छोड़ने को नहीं कहता। मैं परमात्म-अनुभव करने
को कहता हूं। संसार में छोड़ने योग्य भी क्या है? छोड़ने योग्य भी कुछ नहीं है। इतना सब राख ही राख है।

राख का कोई त्याग करता है? कूड़ा-कर्कट है। इसमें कोई मूल्य ही नहीं है। जो इसे छोड़ कर जाते हैं, वे तो मानते हैं कि इसमें मूल्य है।
जो कहते हैंः हमने लाखों रुपये छोड़ दिए हैं, उनकी बात ही सुनो तो पता चलता है कि लाख उनके लिए अभी भी मूल्यवान है। रुपये रुपये थे। अभी भी रस ले रहे हैं वे; छोड़ कर भी रस ले रहे हैं। अब छोड़ने का मजा ले रहे हैं! अब एक नया अहंकार निर्मित कर रहे हैं कि हमने सब छोड़ दिया।
नहीं, सतगुरु कहते हैं कि संसार में क्या छोड़ने जैसा है? परमात्मा को
चख लो, फिर सब फीका हो जाएगा, सब छूट जाएगा-छोड़ना न पड़ेगा। छोड़ना पड़े तो गलत, छूट जाए तो सही।
वचन लगा गुरु ज्ञान का, रूखे लागे भोग।
इंद्र कि पदवी लौं उन्हें, चरनदास सब रोग।।
अब तो उन्हें तुम कहो कि इंद्र के सिंहासन पर बैठ जाओ, तो चरणदास कहते हैंः वह भी उनको रोग जैसा लगेगा। कि यह कौन से पाप का फल भोगना पड़ रहा है? यह किस झंझट में मुझे डाल रहे हो?
जिसने मस्ती जानी ध्यान की, जिसने रस पाया प्रेम का, जिसने अनुभव की रोशनी परमात्मा की-थोड़ी ही सही-सारा संसार व्यर्थ। संसार ही व्यर्थ नहीं, स्वर्ग में इंद्र का राज्य भी व्यर्थ।
परमात्मा का जरा सा भी अनुभव इस बड़े से बड़े संसार को छोटा कर जाता है। उसकी एक बूंद, इसके सब सागरों से बड़ी है। और उसके सुख की एक किरण, इसके सारे सुखों से बड़ी है।
बड़ी ही कहना ठीक नहीं, क्योंकि भेद परिमाण का नहीं, गुण का है। वह बात
ही और है। उस बात को इस संसार की भाषा में प्रगट करने का कोई भी उपाय नहीं है।
मगर बड़ी पीड़ा से भक्त को गुजरना पड़ता है, टूटना पड़ता है, खंड-खंड बिखरना पड़ता है। बड़ी याद, बड़ी प्यास, बड़े विरह से... । कितना भक्त रोता है। तुम्हारी दीद है, मकसद रहा जिसकी बरसात का
वो चश्म-ए-मुंतजिर पथरा गई, क्या तुम न आओगे
बहुत बार उसे लगता हैः आंखें कितना रो चुकीं; आंखें पथराने लगीं। और
यह आंसुओं की वर्षा तेरे लिए हो रहो थी।
तुम्हारी दीद है, मकसद रहा जिसकी बरसात का
बस, एक ही इच्छा थी कि सब लुटा कर इन आंसुओं में तेरा एक दर्शन हो जाए।
वो चश्म-ए-मुंतजिर पथरा गई, क्या तुम न आओगे
वह आंख अब पथराने लगी, अब उसमें से आंसू भी नहीं गिरते। क्या तुम अब भी
न आओगे?
बहार-ए-सिजा बुलबुल के नग्मे चांदनी रातें
हर एक शय आने वाली आ गई, क्या तुम न आओगे
और सब हो गयाः बसंत भी आ गया; फूल भी खिल गए; बुलबुल के नगमें भी गूंज गए; चांदनी रातें भी उतर आईं-सब हो गया।
हर एक शय आने वाली आ गई... ।
जो भी इस संसार में होना था, हो चुका। देख लिया सब। क्या तुम न आओगे?
बहुत बार भक्त घबड़ाने भी लगता है। रात लंबी लगती है विरह की।
विरह की रात ही बहुत लंबी लगती है। साधारण रात का, विरह की रात से कोई मुकाबला नहीं। दिन कटते नहीं लगते। कब होगा मिलन? कैसे होगा मिलन? बस, एक ही धुन समाई होती है।
न जाना कि दुनिया से जाता है कोई
बहुत देर की मेहरबां आते-आते
भक्त कहने लगता हैः कुछ तो सोचो। यहां दुनिया हाथ से जा रही है; यह सुबह जा चुकी, यह दोपहर गुजरने लगी, यह सांझ आने लगी; जल्दी ही सब ढल जाएगा।
दिन ढलते-ढलते ढलता है।
न जाना कि दुनिया से जाता है कोई
बहुत देर की मेहरबां आते-आते।

तेरी मेहरबानी की बड़ी खबरें सुनी थीं, लेकिन बड़ी देर हुई जा रही है; तू अभी तक नहीं आया!
आने में सदा देर लगाते ही रहे तुम
जाते रहे हम जान से, आते ही रहे तुम
भक्त से कोई पूछो, कितना रोता है। लेकिन ध्यान रखना, रोने में दुख नहीं है। रोने में बड़ी मधुर पीड़ा है। मधुर, बड़ी मीठी पीड़ा है।
कसकत है निकसत नहीं, होत प्रेम की पीर।।
धन्यभागी है। उसके आंसू सिर्फ दुख के आंसू नहीं हैं। उसके आंसू प्रार्थना हैं।
फिर मेरी आंख हो गई नम नाग
फिर किसी ने मिजाज पूछा है!
भक्त की आंख तो क्षण में गीली हो जाती है। जरा सी बात उठाओ कि गीली हो जाती है। आंख में जैसे आंसू तैयार ही रहता है। जैसे अब झलका, अब झलका; जैसे किसी तरह भक्त सम्हाले हुए है।
तुम न आओगे तो मरने की हैं सौ तदबीरें।
मौत कुछ तुम तो नहीं कि बुला भी न सकूं।
बहुत बार भक्त सोचने लगा कि इससे तो मर जाना बेहतर। अगर मर कर ही तुम मिलो, तो वही बेहतर। कितना बुलाते-बुलाते, कितना पुकारते-पुकारते थक गया हूं! नाराज भी हो जाता है कभी। कभी रूठ भी जाता है।
आप का ऐतबार कौन करे।
रोज का इंतजार कौन करे।
मगर रूठने से भी कुछ नहीं होता। फिर-फिर याद करने लगता है।
तआमुल तो था उनको आने में कासिद
मगर यह बता तर्ज-ए-एनकार क्या थी
इस पर भी भरोसा करता है। कहता है कि नहीं आते, कोई हर्ज नहीं, लेकिन तुम्हारे इनकार करने की तर्ज क्या है?
कई बार प्रेमियों को लगता है कि नहीं कही जाती है, लेकिन "नहीं" अर्थ नहीं होता, "हां" अर्थ होता है।
तआमुल तो था उनको आने में कासिद
मगर यह बता तर्ज-ए-एनकार क्या थी
वह पूछने लगता है कि इनकार कर रहे हो, इसमें कहीं तुम्हारा स्वीकार तो नहीं छिपा है! नहीं आ रहे हो, इसमें कहीं आने की तैयारी तो नहीं छिपी है! ऐसे न मालूम कितने भावों में भक्त गुजरता है।
भाव में गुजरने की यह सारी यात्रा का नाम ही भक्ति है। मगर हर हाल याद उसी की। कभी नाराज भी हो जाता है, लेकिन नाराजगी में भी याद उसी की। कभी राजी भी हो जाता है। लेकिन राजी में भी याद उसी की।
और याद तो पहला विरह का रूप है। फिर जब उसे पहली झलक मिलती है, तब और भी भयंकर विरह शुरू होता है। क्योंकि पहली झलक के बाद... ।
जब तक झलक नहीं मिली है, तब तक एक बात है। रो रहा है, पुकार रहा है। लेकिन जब पहली झलक मिल गई, आकाश में बिजली कौंध गई, फिर उसके बाद तो जगत सब रूखा हो गया, बेस्वाद हो गया। फिर अब वह चाहता है कि अब झलक से काम न होगा, अब पूरे मिलो।
तस्कीने दिले महजू न हुई
वो सई-ए-करम फरमा भी गए
इस सई-ए-करम को क्या कहिए
बहला भी गए, तड़पा भी गए।
तस्कीने दिले महजू न हुई-दुखित हृदय शांत नहीं हुआ इससे।
तस्कीने दिले महजू न हुई।
वो सई-ए-करम फरमा भी गए।
और वह आ भी गए, उनकी कृपा बरस भी गई। एक क्षण झलक भी मिली।
इस सई-ए-करम को क्या कहिए!
इस कृपा को क्या कहें?

बहला भी गए, तड़पा भी गए। एक क्षण को लगा कि आ गएः और तड़प और बढ़ गई।
उस रोशनी के बाद फिर और अंधेरा गहरा हो जाता है।
तो एक विरह है--जब तक दर्शन नहीं हुआ प्रभु का। फिर दूसरा विरह--महा विरह है, जब उसकी झलक मिली। और फिर तीसरा विरह है--जब वह मिल भी गया, लेकिन उतने से भी भक्त की तृप्ति नहीं होती। जब तक भक्त उसमें डूब न जाए, उसको अपने में न डुबा ले; जब तक भक्त भगवान न हो जाए, भगवान भक्त न हो... ।
इसलिए भक्त की यात्रा तीन विरह से गुजरती है। लेकिन यह सारा विरह अपूर्व प्रेम से भरा हुआ है। यह सारा विरह प्रेम की ज्योति से जगमग है। इस सूत्र को ध्यान करनाः
किसू काम के थे नहीं, कोई न कौड़ी देह।
गुरु सुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह।।
तुम्हारी भी देह अमोलक हो सकती है। तुम भी हकदार हो, जन्मसिद्ध तुम्हारा अधिकार है। देर अगर हो रही तो इसलिए कि तुमने पुकारा नहीं। देर अगर हो रही तो इसीलिए कि तुम्हारे आंसू अभी गिरे नहीं। देर अगर हो रही तो इसीलिए कि अभी दर्द उठा नहीं।
बेदरदी समझै नहीं, विरही पावै भेद।।
देर अगर हो रही तो इसीलिए कि तीर सदगुरु का अभी लगा नहीं; कि तुम अपने
को बचाए चले जा रहे हो।
अब और न बचाओ।
कसकत है निकसत नहीं, होत प्रेम की पीर।।

आज इतना ही।

नहीं सांझ नहीं भोर
आठवां प्रवचन

प्रश्नोत्तर

• संत क्यों बोलते हैं
• परमात्मा यानी क्या
• भक्त की आकांक्षा
• हृदय की भाषा
• ध्यान और प्रेम
• विरह

पहला प्रश्नः सत्य कहा नहीं जा सकता है, फिर भी संत क्यों बोलते है? इसीलिए, कि उसकी खबर तुम तक पहुंचां दें, जो कहा नही जा सकता है। इसीलिए कि जो कहा जा सकता है, उसी को जीवन मान कर समाप्त मत हो जाना। अनकहा भी है; न कहा जा सके, वह भी है--और वही सार है।
क्षुद्र कहा जा सकता है; विराट कैसे कहा जाए! शब्द इतने छोटे हैं; शब्दों की छोटी-सी सीमा में कैसे असीम समाए! इशारा किया जा सकता है-- अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती।
संत इसीलिए बोलते हैं कि कहीं ऐसान हो कि तुम शब्दों ही शब्दों में समाप्त हो जाओ।
शब्द बहुत क्षुद्र हैं। भाषा की बहुत गति नहीं है; असली गति मौन की है। शब्द तो यहीं पड़े रह जायेंगे; कंठ से उठेहै और कान तक पहुँचते हैं। मौन दूर तक जाता है; अनंत तक जाता है।
नहीं तो तुम्हें यह भी कैसे पता चलता कि सत्य नहीं कहा जा सकता है! कहने से इतना तो पता चला। कहने से इतनी तो याद आई कि कुछ और भी है। भाषा के बाहर, शास्त्र के पार कुछ और भी है। कुछ सौंदर्य ऐसा भी है, जो कभी कोई चित्रकार रंगों में उतार नहीं पाया है। और कुछ अनुभव ऐसा भी है कि गूंगे के गुंड़ जैसा है; अनुभव तो हो जाता है, स्वाद तो फैल जाता है प्राणों में, लेकिन उसे कहने के लिए कोई शब्द नहीं मिलते।
जानते हैं संत; निरंतर स्वयं ही कहते है कि सत्य कहा नहीं जा सकता; और बड़ी जोखिम भी लेते हैं। क्योंकि जो नहीं कहा जा सकता, उसको कहने की कोशिश में खतरा है। गलत समझे जाने का खतरा है। कुछ का कुछ समझे जाने का खतरा है। अनर्थ की संभावना है--और अनर्थ हुआ है।
लोगों ने शब्द पकड़ लिए हैं। शब्दों के पकड़ने के आधार पर ही तो तुम विभाजन किए बैठे हो। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन, है! ये फर्क क्या हैं? ये शब्दों को पकड़ने के फर्क हैं।
किसी ने मोहम्मद के शब्द पकड़े हैं, तो मुसलमान हो गया है। और किसी ने महावीर के शब्द पकड़े हैं, तो जैन हो गया है। मोहम्मद के और महावीर के मौन में जरा भी भेद नहीं है। भैद है, तो शब्दों में है।
अगर मुसलमान मोहम्मद का मौन देख ले, जैन महावीर का मौन देख ले, फिर कहां विवाद है? मौन में कैसा विवाद? मौन तो सदा एक जैसा होता है। किसी हड्डी-मांस-मज्जा में उतरे, मौन तो सदा एक जैसा होता है।
एक कागज पर कुछ लिखा; दूसरे कागज पर कुछ लिखा। लेकिन दो कोरे कागज तो बस, कोरे होते हैं।
अगर मुसलमानो ने मोहम्मद के शब्द के पार झाँका होता, तो मुसलमान होकर बैठ न जाते। फिर हिंदू से लड़ने जाने की कोई जरूरत न थी। गीता और कुरान में होंगे भेद; मोहम्मद और कृष्ण में नहीं हैं।
गीता और कुरान में भेद होंगे ही, क्योंकि गीता एक भाषा बोलती है, कुरान दूसरी भाषा बोलता है। गीता एक तरह के लोगों से कही गई; कुरान दूसरे तरह के लोगों ने दूसरे तरह के लोगों से कहा। संस्कृति, सभ्यता, भूगोल, इतिहास--इन सब का प्रभाव पड़ता है शब्दों पर।

अब कृष्ण अरबी तो बोल नहीं सकते थे--सो कैसे बोलते! संस्कृत ही बोल सकते थे। मोहम्मद तो संस्कृत बोल नहीं सकते थे; जो बोल सकते थे, वही बोले। जो बोल सकते थे, उसी भाषा से इशारे किए। फिर जिनसे बोल रहे थे, उनकी ही भाषा का उपयोग करना होगा; नहीं तो बोलने का अर्थ क्या है!
मगर लोगों ने शब्द पकड़ लिए हैं। इसलिए संत खतरा भी मोल लेता है। यह जान कर कि सत्य तो कहा नहीं जा सकता, फिर भी खतरा लेता है। और खतरा बड़ा है-- कि लोग शब्द को न पकड़ लें!
लोग इतने अंधे हैं, चांद बताओ, अंगुली पकड़ लेते है! और सोचते हैः अंगुली चांद है! अंगुली की पूजा शुरू हो जाती है। अंगुली के आसपास मंदिर-मसजिद बन जाते हैं। अंगुली के पंडित-पुरोहित हो जाते हैं।
फिर अंगुलियों अंगुलियों में बड़ा विवाद चलने लगता है--कि कौन सी अंगुली सुंदर है और कौन सी अंगुली सत्य है! अंगुलियां कहीं सत्य होती हैं! अंगुली के सुंदर और असुंदर से क्या लेना-देना है? कुरूप से कुरूप अंगुली भी चांद को बता सकती है। और सुंदर से सुंदर अंगुली भी बता सकती है। जवान और बूढ़ी अंगुली बता सकती है। काली और गोरी अंगुली भी बता सकती है। छोटी और बड़ी अंगुली भी बता सकती है। अंगुलियों से क्या फर्क पड़ता है? चांद बताया गया--चांद देखी; अंगुली को भूलो, अंगुली को जाने दो।
मगर खतरा तो है। अंधों से बात करनी हो--प्रकाश के संबंध में खतरा तो है; क्योंकि प्रकाश के संबंध में वे जो शब्द सुनेंगे, कहीं उन्हीं को पकड़ कर बैठ न जायें। कहीं "प्रकाश" शब्द को रख कर घर में, बैठ न जायें और सोचें कि रोशनी होगी।
"प्रकाश" शब्द प्रकाश नहीं है और न "परमात्मा" शब्द परमात्मा है।
एक हिंदू से मैं परिचित था। एक दिन मेरे पास आए और कहा कि "मैं थक गया हिंदू-धर्म से। मैं तो मुसलमान हो गया।" मैंने पूछाः "फर्क क्या हुआ? मंदिर जाते थे, मसजिद जाने लगे, कोई हर्जा नहीं। गीता
पढ़ते थे, कुरान पढ़ने लगे; कोई हर्जा नहीं। मगर अगर तुम जिस ढंग से गीता
को पकड़े थे, उसी ढंग से कुरान को पकड़ा, तो फर्क क्या होगा?"
उनका नाम था--रामदास; वे मुसलमान हो गए, उनका नाम हो गया--खुदाबख्श। दोनों का मतलब एक है। चाहे रामदास कहो, चाहे खुदाबख्श कहो--इशारा एक है। लेकिन हम इशारों को जोर से पकड़ लेते हैं और भूल ही जाते हैं कि इशारा किस तरफ है। जैसे कोई मील के पत्थर के पास बैठ जाए। मील के पत्थर पर लिखा है कि दिल्ली इतनी दूर है, और दिल्ली की तरफ तीर बना है और तुम मील के पत्थर को पकड़ कर बैठ गए--कि आ गई दिल्ली। "दिल्ली" लिखा है मील के पत्थर पर और तुम पूजा करने लगे।
वास्तविक धार्मिक व्यक्ति वही है, जो कि शब्द से सदा सावधान रहे।
संत खतरा मोल लेते हैं जान कर; क्योंकि अगर वे चुप रह जायें, तो और भी बड़ा खतरा है। तुम शब्द ही नहीं समझ पाते, तो मौन तो समझोगे कैसे!
ख्याल जो अभी
बना नहीं है
मन जो अभी
मना नहीं है
दुख जो अभी
घना नहीं है
शब्दों में कहना है
और कहना है अभी
शुरू किए देता हूं
तमाम जोखिमें ली हैं,
एक और
जोखिम लेता हूं।
परमात्मा कभी पूरा का पूरा अनुभव में थोड़े ही आता है। पूरा अनुभव में
आ जाए, तो सीमित हो जाए। बस स्वाद मिलता है--स्वाद मिलता चला जाता है। खोज शुरू होती है; प्रवेश होता है; अंत कभी नहीं होता।

तो ऐसा थोड़े ही होता है किसी दिन कि परमात्मा पूरा अनुभव में आ गया--कि
अब कह दो। जैसे-जैसे अनुभव में आता है, वैसे-वैसे पता चलता हैः और अनुभव में आने को शेष है। अभी कहो कैसे!
और एक और अनूठी घटना घटती है कि जैसे-जैसे परमात्मा अनुभव में आना शुरू होता है, वैसे-वैसे तुम विदा होने लगते हो; तुम सिंहासन से उतरने लगते हो--खोने लगते हो। जैसे रोशनी आती है, तो अंधेरा खोने लगता है--ऐसे ही परमात्मा आता है, तो तुम खोने लगते हो।
जिस दिन परमात्मा की रोशनी तुम्हें सब तरफ भर पूर भर देती है, उस दिन तुम नहीं रह जाते; कहने वाला नहीं रह जाता। वह कहने वाला मन, वह जो खोजने चला था, वह जिसने यात्रा शुरू की थी, अब है ही नहीं।
ऐसी घड़ी में मौन रह जाना तो बहुत सुगम है। लेकिन अगर तुम मौन रह जाओगे,
तो वे जो अभी अंधेरों में टटोलते हैं, उनको तुमसे कोई भी खबर न मिलेगी कि तुम पहुंच गए। उन्हें तुमसे कोई इशारा भी न मिलेगा। उन्हें तुमसे कोई सहारा भी न मिलेगा। और सहारा--पहुंचे हुए आदमी से मिलना ही चाहिए। वह उसकी करुणा का हिस्सा है; वह पहुंचा, इसका सबूत है, कि सहारा मिलना शुरू हो जाए। यह कैसे संभव है कि तुमने देख ली हो रोशनी और तुम उनको न बतलाओ जो अभी अंधेरे में टटोल रहे हैं! तुम्हारे ही पास चारों तरफ अंधेर में वे टटोल हैं, खोज रहे हैं।
यह असंभव है कि तुम्हें द्वार मिल जाए, और तुम चिल्लाओ ना! तो जीसस ने अपने शिष्यों से कहा हैः "जाओ, मकानों की मुंडेरों पर चढ़ जाओ और चिल्लाओ, क्योंकि लोग बहरे हैं। शायद कोई सुन ले।" और बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा है कि "दूर-दूर जाओ। जहां जहां खोजी कहीं हो, उसे खोजो। जो हमें मिला है उसकी खबर पहुंचां देनी जरूरी है।" इतना सत्य के प्रति आदर आवश्यक है--कि जब मिलें, तो उसे बाँटो।
इसलिए संत बोलते हैं। उचित भी नही है कि बोलें; जानते हुए--कि सत्य कहा नहीं जा सकता। जानते हुए कि जोखिम है; तुम शब्द को पकड़ लोगे। फिर भी जोखीम लेनी होगी। सौ आदमियों से बोलेंगे, शायद एक समझ पाए। मगर इतना भी क्या कम है! सौ सोयों में एक जाग जाए; सौ मुरदों में एक जिंदा हो जाए! सौ वृक्षो में एक वृक्ष पर फूल खिल जायें, इतना भी क्या कम है! फिर उस एक "वृक्ष" पर से रोशनी उठने लगेगी; फिर उस एक वृक्ष से गंध फैलने लगेगी। वह वृक्ष किसी और को जगाएगा। कोई और दीया उमगेगा। कोई और जीवंतता पैदा होगी। इसको सूफी कहते हैं--सिलसिला। जैसे एक जलते दीये से बुझा
दीया जल जाता है।
इसके पहले कि मेरा दीया विदा हो जाए, मैं चाहूंगा कि तुममें से बहुतों
के दीये जल जाएं। और इसके पहले कि तुम विदा होने लगो, बांट जाना रोशनी। तुम्हें तो बुझना होगा; सभी को बुझना होगा। लेकिन रोशनी चल सकती है--एक दीये से दूसरे दीये में; सिलसिला बन सकता है।
यह "सिलसिला" शब्द प्यारा है। हमारे पास भी ठीक वैसा ही शब्द है, लेकिन खराब हो गया--"परंपरा"। खराब हो गया। उसका मतलब तो कुछ हो गया--जड़, पुराना। उसका मतलब इतना ही होता है कि जो एक से दूसरे को मिला। एक ने दूसरे के कान में फूंका--मंत्र। एक ने अपना प्राण दूसरे प्राण को दिया।
इसके पहले कि जानने वाला विदा हो, कुछ को जगा जाए, कुछ को जला जाए। विदा होने के पहले वे किसी और को जगा देंगे। ऐसा सिलसिला चलता है।
बुद्ध ने जो सिलसिला शुरू किया था, अब भी उसमें दीये जलते हैं।
मोहम्मद ने जो सिलसिला शुरू किया था, अब भी उसमें दीये जलते हैं। रोशनी खो नहीं गई। मोहम्मद गए, महावीर गए, कृष्ण गए, कबीर गए, नानक गए--रोशनी नहीं खो गई है।
इस रोशनी को जलाए रखने का प्रतीक ही परसियों ने बना रखा है--अपने पूजा- गृहों में। मगर वह जड़ हो गया। रोशनी को बुझने नहीं देते; पारसी अपनी अगियारी में रोशनी को बुझने नहीं देते। वही रोशनी जलाए रखते है; मगर बाहर की रोशनी की बात ही न थी। पकड़ लिया शब्द को, संकेत को और चूक गए असली बात।

भीतर की रोशनी जलाए रखनी है। अगियारी बुझे न--भीतर की। मेरा दीया जला तो मैं तुम्हारे दीये को जला जाऊं। रोशनी बुझे न।
रोशनी बहुत कम है। कभी-कभी कोई जलता है। इसलिए जब भी कोई जल जाए, तो वह
सब तरह की चेष्टा करे कि जितने दीये उसके आस-पास जल सकें, उतना अच्छा है।
अंधेरा बहुत है। अंधेरा बड़ा हैं।
दीये बहुत थोड़े है; कभी-कभी जलते हैं; उन्हीं दीयों में सारी संभावना है।
आंसुओं की विकल वाणी
कह गई बीती कहानी
अन्यथा हम मौन रहते।
कल्पना को सच सिखाते
भावना को भव दिखाते
छंद को निर्बंध करते
कुछ नहीं लिखते-लिखाते
पर हृदय का विधुर गायक
बन गया बरजोर नायक
धूम्र की लपटें न मानीं
अन्यथा हम मौन रहते।
सयमित करते स्वरों को
गुनगुनाते मधुकरों को
बेरहम बन कतर देते
गीत विहगों के परों को
क्या पता था शब्द निर्मल
कल करेंगे अर्थ का छल
सह न पाए वचनदानी
अन्यथा हम मौन सहते।
कल शब्द का अनर्थ हो जाएगा। कल कुछ का कुछ समझा जाएगा। कल की छोड़ो, आज
ही समझा जाएगा कुछ का कुछ; अभी समझा जाएगा--कुछ का कुछ।
क्या पता था शब्द निर्मल
कल करेंगे अर्थ का छल
सह न पाए वचनदानी
अन्यथा हम मौन सहते।
लेकिन फिर भी कहना होगा। अर्थ का अनर्थ होगा; कुछ का कुछ समझा जाएगा; कुछ की कुछ व्याख्या होगी--फिर भी कहना होगा। सौ में से निन्यानबे गलत समझ लेंगे, लेकिन कोई एक ठीक समझेगा। हजार में नौ सौ निन्यानबे गलत समझेंगे; कोई एक ठीक समझेगा। उस एक के लिए कहना होगा।
संत जानते हैं--सत्य कहा नहीं जा सकता। नौ सौ निन्यानबे नहीं ही समझेंगे। लेकिन हर्ज क्या है? इन नौ सौ निन्यानबे से नहीं कहा जाता, तो भी ये न समझते; तो भी ये जैसे अंधे की तरह जीते थे, वैसे ही जीते। अब भी ये अंधे की तरह जीयेंगे। अब हिंदू मुसलमान, ईसाई होकर जीयेंगे। मगर इससे क्या फर्क पड़ता है; कुछ न कुछ होकर ये जीते ही। ये किसी न किसी बहाने टकराते-- हिंसा करते, युद्ध करते लड़ते झगड़ते। यह होना था।
लेकिन कोई एक, जो समझ लेगा, जो गह लेगा बात को और चल पड़ेगा--उस एक के लिए सारी जोखिमें लेना उचित है।
फिर संत शब्दों से ही नहीं कहते हैं--यह भी ख्याल में रखना। शब्द तो केवल "एक" उपाय है--कहनें का। संत और भी बहुत तरह से कहते हैं। लेकिन और बहुत तरह से समझना हो, तो संतो के पास आना पड़ता है।
शब्द तो दूर से भी समझ में आ सकते हैं। शब्द में कोई रिश्ता नहीं बनता। सुन लिया; तुम मुक्त हो। लेकिन और समीपता से संवाद करना हो, तो फिर कुछ रिश्ता बनाना होता है।
शब्द तो तुम्हें विद्यार्थी बनाता है। और तरह जानना हो, और तरह सुनना हो--शब्द से ज्यादा--गहनता में उतरना हो, तो फिर शिष्य होना, जरूरी है--फिर

विद्यार्थी होने से नहीं चलता। फिर कुछ दाँव पर लगाना जरूरी है। फिर जिज्ञासु होने से नहीं चलता; फिर मुमुक्षु होना जरूरी है। फिर जल्दी ही पता चलेगाः मुमुक्षु होने से भी नहीं चलता; साधक होना जरूरी है। फिर तुम धीरे-धीरे गहरे में उतरोगे। लेकिन शब्द से यात्रा शुरू हो जाती है।
तुम मेरे पास आए हो; किसी और कारण से नहीं। शब्द ही बुला लाया है। शब्द
से ही पहली पाती तुम्हें मिली।
यहां ऐसे लोग हैं, जो न मालूम किस दूर देश से आए हैं। कोई किताब हाथ लग गई; कहीं कोई शब्द हाथ लग गया। उस शब्द से उनके भीतर कुछ कंपा; उस शब्द से कुछ उनके भीतर रस उमगा। फिर यह शब्द कहां से आया है, उसकी खोज करते चले आए हैं; दूर से चले आए हैं।
अब आगे के संबंध भी बनाए जा सकते हैं। अब भाषा के अतिरिक्त प्रेम का नाता भी बनाया जा सकता है। अब वे मेरी आंखो में भी झांक सकते हैं; मेरे स्पर्श को भी अनुभव कर सकते हैं; मेरी सन्निधि को भी पी सकते हैं। अब इस मौजूदगी में और तरह के फूल खिल सकते हैं। लेकिन शब्द ही ले आया है।
शब्द सत्य तक चाहे न लें जाए, लेकिन संत तक तो ले आता है। यह भी क्या कम है! फिर संत तुम्हें सत्य तक ले जाएगा।
आँसू की तरह गरम-गरम
टपके उसके
दो शब्द
झपके झपके ख्याल
जागे और रूप
मन के आगे
दो शब्द गीले और गरम
दे गए भरम इतना
कि तब से अब तक
खुश हूं
काश-कुश कुछ नहीं गड़ते
गड़ाए
दो आंसू की तरह गरम-गरम
शब्द
मौत तक के आड़े आए
जीवंत शब्द हाथ लग जाए...
खुश हूं
काश-कुश कुछ नहीं गड़ते
गड़ाए
जीवंत शब्द एक बार तुम्हारे भीतर नीड़ बना ले, बसेरा कर ले, तो तुम्हारी जिंदगी का अर्थ बदलना शुरू हो जाता है।
एक शब्द भी मेरा तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो जाए, तुम्हारे हृदय तक पहुंच जाए, हृदय की धड़कन में समा जाए, तुम फिर वही न रह सकोगे--जो तुम थे। यह शब्द काम शुरू कर देगा। यह शब्द तुम्हें रूपांतरित करने लगेगा; यह शब्द तुम्हें नई दृष्टि देने लगेगा। परिस्थितियां वही होंगी, लेकिन तुम्हारा व्यवहार बदलने लगेगा।
कल कोई गाली देगा और शायद मेरा सुना शब्द बीच में आ जाए। और तुम गाली
को ऐसे पी जाओ, जैसे तुमने कभी न पिया था। कल कोई गाली दे और तुम्हारे मन में दंश न हो।
खुश हूं
काश-कुश कुछ नहीं गड़ते
गड़ाए।
एक उमंग भीतर आ जाए, तो जिंदगी बदलनी शुरू हो जाती है। और शब्द मनुष्य
का पहला साधन है।
मनुष्य और पशुओं में एक ही भेद है कि मनुष्य के पास शब्द हैं और पशुओं
के पास शब्द नहीं। शब्द संवाद का उपाय है। हालांकि यह तुम पर निर्भर है।

चाहो तो विवाद कर लो; तो शब्द विवाद बन जाता है। चाहो तो झगड़ा कर लो शब्द से, गाली-गलौच कर लो; और चाहे तो प्रेम कर लो, प्रार्थना कर लो, संबंध बना लो, चाहे संबंध तोड़ लो। यह तुम पर निर्भर है।
तो ऐसे लोग भी हैं, जो मेरा शब्द सुन कर विवाद में पड़ जायेंगे; वे उनकी जानें। अगर उन्हें जीवन के अवसर गंवाने हैं, तो उन्हें पूरी स्वतंत्रता है। लेकिन वे लोग भी हैं, जो शब्द को सुन कर नाच उठेंगे। जिनके भीतर कोई पड़ी वीणा कभी जो नहीं बजी थी, बजने लगेगी।
फिर आगे की बातें भी हो सकती हैं। फिर एक दिन तुम मौन को भी समझ सकोगे। निश्चित ही शब्द से सत्य नहीं कहा जा सकता; मौन से ही कहा जा सकता है। लेकिन मौन तो सब समझोगे, जब बहुत करीब आ जाओ। करीब कौन लाएगा?
मौन तो तब समझोगे, जब प्रेम में पड़ जाओ। लेकिन प्रेम कैसे शुरू होगा? प्रेम की घड़ी कैसे पास आए?
तो शब्द भी सहयोगी हैं। सत्य तक नहीं ले जायेंगे--यह सच है। लेकिन नाव
तक ले आयेंगे, जो सत्य तक ले जा सकती है।
दूसरा प्रश्नः परमात्मा यानी क्या?
ऐसा प्रश्न स्वाभाविक है, क्योंकि परमात्मा के संबंध में हमने जो धारणाएँ बना रखी हैं, वे बड़ी बचकानी हैं। कोई आकाश में बैठा हुआ चला रहा है सारे जगत को! ऐसी हमारी व्यक्तिगत--अनेक-अनेक तरह की धारणाएँ हैं कि परमात्मा व्यक्ति है।
परमात्मा व्यक्ति नहीं है; न परमात्मा शक्ति है। परमात्मा तो समय के जोड़ का नाम है। यह जो सारा अस्तित्व है, इस सारे जोड़ का नाम परमात्मा है। यह सारा अलग-अलग खंड-खंड तो नहीं है--इतना तुम्हें भी समझ में आता है।
सब जुड़ा है। हर एक चीज दूसरी चीज से जुड़ी है। अगर जुड़ी न होती, तो हम बिखर गए होते, गिर गए होते। चाँद-तारे जुड़े हैं। सूरज-पृथ्वी जुड़ी है। वृक्ष जमीन से जुड़े है। हम जमीन से जुड़े हैं; हम हवा से जुड़े हैं। हवा से सारे पशु-पक्षी जुड़े हैं। हम सूरज से जुड़े हैं। सूरज से सारे वृक्ष जुड़े हैं। हम सब जुड़े हैं; हम सब एक साथ हैं। हममें से कोई भी अकेला नहीं हो सकता। अगर जमीन पर एक भी वृक्ष न रह जाए, तो आदमी भी समाप्त हो जायेंगे। क्योंकि वृक्ष पूरे समय--तुम जो श्वास से कार्बन डाय आक्साइड छोड़ते हो, उसको पी जाते हैं। और उसको पीने के बाद शुद्ध कर के आक्सीजन बना कर छोड़ देते हैं। उस आक्सीजन को तुम पीते हो; वह आक्सीजन तुम्हारा जीवन है।
अब यह बड़े मजे की साझेदारी चल रही है! वृक्ष तुम्हारे लिए हवा तैयार
कर देते हैं; तुम वृक्षों के लिए हवा तैयार कर देते हो। तुम्हारे बिना वृक्ष भी न जी सकेंगे। अगर सब पशु पक्षी और मनुष्य मर जायें, तो सभी वृक्ष मर जायेंगे; क्योंकि फिर उनके लिए कोई कार्बन डाइआक्साइड बनाने वाला न होगा। वह उनका भोजन है; कार्बन उनका भोजन है। इसलिए तो लकड़ी को जलाते हैं, तो कोयला बन जाता है; कोयला यानी कार्बन। वह उनका भोजन है।
हमारा भोजन है आक्सीजन, उनका भोजन है कार्बन। खूब दोस्ती चली! इसलिए
तो वृक्षों के पास जा कर तुम ताजा अनुभव करते हो, क्योंकि वहांताजी हवा है। जंगल जा कर, पहाड़ जा कर एक तरंग आ जाती है, स्वच्छता आ जाती है। वृक्ष की हरियाली को देख कर ही आंखे तृप्त होने लगती हैं। क्या हो जाता है?
यह कुछ ऊपर की हरियाली की ही बात नहीं है। वृक्ष के पास ताजी हवा है, स्वच्छ हवा है, जो तुम्हारा प्राण है।
हम वृक्ष से जुड़े हैं; वृक्ष जमीन से जुड़ा है। और हमारी भी जड़े दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन हम भी जमीन से जुड़े हैं। जमीन के बिना तुम न हो सकोगे। इतने चांद-तारे हैं, लेकिन जब तक जमीन जैसी स्थिति न हो किसी चांद-तारे पर, तब तक वहां कोई जीवन नहीं हो सकता। ठीक जमीन जैसी स्थिति होनी चाहिए, तो ही जीवन हो सकता है। यह बड़ा जाल है जीवन का।
भोजन तुम करते हो, वह मिट्टी है। चाहे फल, चाहे गेहूं, चाहे शाक-सब्जी--
वह सब मिट्टी हैं; वह सब मिट्टी से आ रहा है। और इसलिए एक दिन फिर तुम जब मर जाओगे, तो मिट्टी में गिर जाओगे; मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी।

आज तुमने सुबह नाश्ता किया फलों का। लेकिन तुम्हें पता हैः एक दिन तुम जमीन में गिर जाओगे और वृक्ष तुम्हारा नाश्ता करेंगे! वे तुम्हें चूस लेंगे--तुम्हारा रस।
तुम देखते हो कि हड्डी की खाद बनाते हैं। वृक्ष के लिए भोजन बना जा रहा है। आज तुमने वृक्ष से, सेब तोड़ लिया है, हो सकता है कि तुम्हारे बाप-दादे का लहू उसमें हो--हड्डी उसमें हो और किसी दिन तुम्हारे बच्चों के बच्चे, जब फल तोड़ेंगे, तो तुम्हें उसमें पायेंगे।
यहां सब जुड़ा है; सब संयुक्त है।
परमात्मा--अगर तुम मेरे हिसाब से समझना चाहो तो--संयुक्तता का नाम है।
यह जो अंतर्संबंध है, सब चीजों का यह जो जुड़ा होना है, सब का इकट्ठा होना जो है, यह तो समग्रता है, यह जो टोटेलिटी है--इसका नाम परमात्मा है।
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है।
कल
आँसू की तरह
टपक कर फल ने
हलका
कर दिया
पेड़ को
बगीचे की मेड़ को
जाने क्या हुआ
दरक गई
और पेड़ पर बैठी चिड़िया की
बाई आंख
फरक गई।
सब जुड़ा है। इधर फल गिरा, और न मालूम क्या हुआ कि मेड़ दरक गई। और फिर न मालूम क्या हुआ कि वृक्ष पर बैठी चिड़िया की आंख फड़क गई!
कल
आंसू की तरह
टपक कर फल ने
हलका
कर दिया
पेड़ को
बगीचे की मेड़ को
जाने क्या हुआ
दरक गई
पेड़ पर बैठी चिड़िया की
बाईं आंख
फरक गई।
इस संयुक्तता का नाम परमात्मा है। जब तुम जीवन की इस संयुक्तता को देखने लगोगे, तो तुम्हारा मंदिर में प्रवेश हो गया। और कोई मंदिर नहीं चाहिए; इस संयुक्तता का बोध चाहिए--कि यहां हम सब जुड़े हैं, संयुक्त हैं।
यहां अकेला कोई भी नहीं है; अकेला कोई भी नहीं हो सकता।
लाख लोग उपाय करते हैं अकेले होने का, लेकिन अकेले नहीं हो सकते।
अकेले होने का उपाय ही नहीं है।
महावीर जंगल चले जाते हैं, फिर भी भोजन के लिए गांव आना पड़ता है।
महावीर जंगल चले जाते हैं, फिर सत्य का उदय होता है, तो समझाने के लिए लोग खोजने पड़ते हैं। और जंगल में भी अकेले तो नहीं हैं, वृक्ष काम कर रहे हैं; पशु-पक्षी काम कर रहे हैं। झरने पानी ला रहे हैं; सूरज रोशनी डाल रहा है।
चाँद चाँदनी ला रहा है।
अकेले कहां हैं? भागोगे कहां?
तुम सोच सकते होः कोई आदमी बिल्कुल अकेला जी सकता है--एक क्षण भी? यहां अकेलापन हो ही नहीं सकता। यहां हमारा होना ही संयुक्तता में है।

इसलिए मैं संन्यासी को नहीं कहता--भागो। भागने से क्या होगा! कहां जाओगे? जहां जाओगे, वहीं सब मौजूद है। जंगल में रहोगे; रात चांद निकलेगा। और चांद तुम्हें उसी तरह से तरंगित करेगा, जैसे कि बाजार में करता था। तुमने कभी ख्याल कियाः चांदनी रात तुम्हें कितना आंदोलित करती है! उतना ही आंदोलित करती है, जितना सागर के जल को। सागर में कैसी उत्तुंग लहरें उठने लगती हैं--चांदनी रात में! पूरा चांद--और सागर बिल्कुल पागल हो उठता है। नाच उठता है--मस्ती में। तुम्हारे भीतर भी ऐसा ही होता है। वैज्ञानिक से पूछो; वैज्ञानिक कहता हैः आदमी के भीतर अस्सी प्रतिशत पानी है। अस्सी प्रतिशत! और उस पानी का ढग वही है, जो सागर का है। वैसा ही नमकीन, वैसा ही नमक भरा। इसलिए तो बिना नमक के जीना मुश्किल है। जरा नमक भीतर कम हुआ कि तुम एकदम थके, सुस्त हुए; नमक चाहिए। उतनी ही मात्रा में चाहिए, जितना सागर के जल में हैं।
वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी पहले सागर में ही पैदा हुआ। हिंदू भी ठीक
ही कहते हैं कि पहला अवतार मत्स्य है, मछली का अवतार है, वह पहला अवतरण है जीवन का। वैज्ञानिक भी इससे राजी हैं कि सबसे पहले जीवन मछली के रूप में पैदा हुआ। फिर धीरे-धीरे जीवन सागर से बाहर आया। लेकिन कितने ही हम बाहर आ गए, सागर हमारे भीतर है।
जब मां के पेट में बच्चा होता है, तो मां के पेट मे सागर का जल भरा होता है। उसी जल में तैरता है। तुमने विष्णु को देखा ना--क्षीर-सागर में तैरते हुए, ऐसा बच्चा तैरता है सागर में--मां के पेट में इसलिए जब भी स्त्रियां गर्भवती होती हैं, तो ज्यादा नमक खाने लगती हैं। उनको एकदम नमक की तलप चढ़ती है, क्योंकि बच्चे को बहुत नमक की जरूरत है; उसके चारों तरफ पानी चाहिए सागर का। वह फिर सागर में ही पैदा हो रहा है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चा नौ महीनें में, करोड़ों वर्ष में जो विकास हुआ है, वह सभी स्थितियां पूरी करता है--मछली से लेकर मनुष्य तक की। नौ महीने में सारा स्थितियों से गुजरता है। जैसे पूरी मनुष्यता गुजरी हैं; जो हजारों-हजारों, करोड़ों-करोड़ों वर्ष में हुआ है, वह नौ महीने में बच्चा बड़ी तेजी से पूरी करता है। लेकिन शुरू मछली की तरह होता है बच्चा और बढ़ते-बढ़ते नौ महीने में मनुष्य का रूप लेता है, तब बाहर आता है।
वह सागर तुम्हारें भीतर है। तुम चकित होओगे जान कर कि दुनिया में जितने लोग पूर्णिमा की रात पागल होते हैं, उतने किसी रात पागल नहीं होते।
क्योंकि पूर्णिमा की रात में वैसी ही तरंगें तुममें उठने लगती हैं, जैसी तरंगें सागर में उठती हैं।
इसलिए पागलों का एक नाम दुनिया की सारी भाषाओं में चांद से जुड़ा है।
हिंदी में कहते हैं पागल को--चांदमारा। अंग्रेजी में कहते हैं--लूनाटिक।
लूनाटिक का मतलब होता है--चांदमारा। लूनार यानी चांद। ऐसे ही दुनिया की सारी भाषाओं में पागल के लिए जो शब्द हैं, वे चांद से जुड़े हैं। कुछ चांद का हाथ है।
अमावस की रात सबसे कम लोग पागल होते हैं। और यह भी तुम जान कर चकित होओगे कि पूर्णिमा की रात जैसे तुम्हारे भीतर प्रेम का भी ज्वार आता है। पूर्णिमा की रात जितनी कविताएँ पैदा होती हैं और किसी रात पैदा नहीं होती। और पूर्णिमा की रात जितने लोग ज्ञान को उपलब्ध होते हैं, उतने लोग किसी और रात को उपलब्ध नहीं होते।
बुद्ध के जीवन में तो यह कथा है कि बुद्ध पूर्णिमा को ही पैदा हुए; और बुद्ध को पूर्णिमा को ही संबोधि प्राप्त हुई; और बुद्ध पूर्णिमा को ही मरे। ऐसा न भी हुआ हो, क्योंकि इतना तीनों संयोग मिलना जरा कठिन है। हो भी गया हो; न भी हुआ हो। मगर प्रतीक रूप से बात सच है कि जन्म भी बुद्ध का पूर्णिमा को हुआ; ज्ञान भी पूर्णिमा को हुआ; मृत्यु भी पूर्णिमा को हुई। पूर्णिमा के लिए यह इशारा है।
तुम्हें पता भी नहीं चलता; तुम शायद आकाश में चाँद को देखते भी नहीं।
तुम्हें कुछ पता भी नहीं। लेकिन यह काम तो जारी है। यह तुम्हारे भीतर सतत काम चल रहा है।

सुबह देखते होः सूरज उगा; पक्षी जाग जाते हैं। रात भर साए रहते हैं। इधर सूरज जगा; उधर पक्षी जगे। रात भर वृक्ष भी सो जाते हैं। इधर सूरज जगा, वृक्ष जगे। रात भर तुम भी सो जाते हो। इधर सूरज उठा कि तुम भी उठे।
कितना दूर है सूरज! दस मिनट लगते हैं--आने में रोशनी को। और रोशनी की चाल बहुत है--एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड। काफी दूर है सूरज; मगर सूरज के साथ हमारा जागना जुड़ा है; हमारा जीवन जुड़ा है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि इसी तरह दूर दूर के चांद-तारों से भी हम जुड़े हैं। यहां सब संयुक्त है। इस संयुक्तता का नाम परमात्मा है।
यह जो विराट हमें जनमाता है और फिर हमें अपने में समा लेता है, यही परमात्मा है। जिससे हम आते है और जिसमें हम चले जाते हैं, वही परमात्मा है।
परमात्मा की याद का इतना ही अर्थ होता है कि तरंग होने को भूलो और सागर होने को याद करो। जैसे कोई तरंग अपने को समझ ले कि मैं सागर से अलग हूं, तो मुश्किल में पड़ेगी। ऐसे ही जिस दिन हम समझ लेते हैं कि मैं अलग हूं, तो मुश्किल में पड़ जाते हैं।
इसलिए सारे धर्म एक बात कहते हैंः अहंकार छोड़ो। अहंकार का अर्थ होता है--अलग होने का भाव। मैं अलग-अलग; मैं विशिष्ट; मैं सबसे भिन्न; मैं सबसे ऊपर; मैं सबसे अनूठा, अद्वितीय, बेजोड़--ऐसे जो भाव हैं, यही अधर्म हैं।
जिस दिन तुम्हें लगता हैंः मैं अलग हो कहां, तो कैसी विशिष्टता, कैसा बेजोड़पन, कैसी अद्वितीयता? कौन खास, कौन गैर-खास? --यहां सब एक से जुड़े हैं; यहां सब एक ही हैं।
एक ही है; अनेक भ्रांति है--ऐसी प्रतीति का नाम परमात्मा का अनुभव और इसलिए अहंकार सबसे बड़ी बाधा है।
सब कुछ समा जाता है काल के गाल में
द्वापर की अठारह अक्षौहिणी सेना
मिस्त्र की सभ्यता, रोम का साम्राज्य
कल का जन्मा हुआ बच्चा
आज का खिला हुआ फूल
रचता है
सारता संवारता है सृजनपटु हाथों से
ममता भरे मन से
कल्पनाओं को चीजों में
बीजों की बदलता है वृक्षों में
वृक्षों को बीजों में।
यह जो विराट सृजन चल रहा है, यह जो विराट के हाथों में निर्माण चल रहा हैः वृक्षों को बीजों में बदलना और बीजों को वृक्षों में बदलना, मृत्यु को जीवन में बदलना, जीवन को मृत्यु में बदलना; आंख का खुलना और आंख का बंद होना; यह जो विराट उपक्रम चल रहा है--खुलने और बंद होने का; यह जो सृष्टि और प्रलय का रास चल रहा है, इस रास को समस्तता का नाम परमात्मा है।
इसलिए ज्ञानियों ने कहा है कि परमात्मा की कोई मूर्ति मत बनाना; क्योंकि मूर्ति बड़ी छोटी होगी, समस्तता की खबर न ला सकेगी। इसलिए हर मूर्ति झूठ होगी। और हर मूर्ति तुम्हें परमात्मा के संबंध में भ्रांत धारणा देगी। ज्यादा अच्छा यही होगा; उसको जगह देखना; चारों ओर देखना; कण से लेकर विराट तक उसी को देखना।
इस सारे अस्तित्व को, ब्रह्मांड को उसका मंदिर समझना।
मंदिर-मस्जिद के बाहर आओ; गुरुद्वारे-गिरजे के बाहर आओ। परमात्मा का मंदिर सब तरफ मौजूद है। वृक्षों में उसे देखो; पहाड़ों में देखो। झरनों में, सागरों में उसे देखो। लोगों की आंखों में उसे देखो; पक्षियों की चहचहाहट में उसे सुनो। वृक्षों में खिलते फूलों में उसे पहचानो। तो ही तुम उसे पहचान पाओगे; तो ही तुम समझ पाओगे कि परमात्मा क्या है।
परमात्मा कोई सिद्धांत नहीं है। परमात्मा अअपने निरहंकार की दशा और मैं सब के साथ जुड़ा और एक हूं--और सब संयुक्त है; और यहां कोई शत्रु नहीं है;

सभी मित्र हैं; यह परिवार है; अस्तित्व परिवार है--इसकी प्रतीति का नाम परमात्मा है।

तीसरा प्रश्नः भक्त की आधारभूत आकांक्षा क्या है?

बहुत आकांक्षाएं--तो संसार; एक आकांक्षा--तो भक्ति। धन चाहिए, पद भी चाहिए, मान चाहिए, मर्यादा चाहिए, प्रतिष्ठा चाहिए--ऐसी बहुत सी आकांक्षाएं--तो संसार। अनेक आकांक्षाओं में दौड़ता हुआ मनुष्य संसारी है। और जिसने अपनी सारी आकांक्षाओं को एक आकांक्षा में उंडेल दिया--कि मैं उसे जान लूँ, जो सत्य है; उस प्यारे को पहचान लूं, जिससे मैं आया और जिसमें मैं जाऊँगा, जो मेरा शाश्वत स्वरूप है; इस एक आकांक्षा का नाम--भक्ति।
एक ही आकांक्षा है भक्त की--कि रहस्य का परदा उठे; कि ऐसा अज्ञान में न जीऊं, आंख मेरी खुले और जो छिपा है सबके भीतर, वह मुझे दिखाई पड़ जाए। ऐसे ऊपर-ऊपर से पहचान न हो, अंतर से अंतर मिल जाए, हृदय से हृदय मिल जाए। मैं इस जगत की मूलसत्ता को देख लूं; उस सत्ता को देख कर ही मैं अपने को भी देख पाऊंगा, अपने को भी पहचान पाऊंगा। और उसी पहचान से आनंद की शुरुआत होती है।
सुराही आज साकी ने जो महफिल में जरा खम की
न पूछें आप, शामत आ गई तब सागर-ए-जम की
उठा दो, हां उठा दो, बीच में पर्दा-सा यह क्या है
निगह चिलमन से टकराती है आकर सारे आलम की
कहाः धोका है, धोका है सबा ने फूल से आ कर
मोहब्बत आरजी है ऐ गुल-ए-तर तुझसे शबनम की
लहू बहने दो, बहने भी दो जख्मों से लहू मेरे
जरूरत कुछ नहीं वल्लाह मेरे जख्मों को मरहम की
यह चिलमन भी है क्या चिलमन, यह पर्दा भी है क्या पर्दा
तुझे तो ढूंढ लेती है निगाह, पर्दो में आलम की
मेरे गम का वो बायस हैं, मुझी से पूछते हैं फिर
बता ए "अश्क" तू सूरत बनाई है यह क्या गम की!
आदमी का एक ही दुख है--कि उसे पता नहीं कि कहां से है, क्यों है और कहां
जा रहा है!
आदमी का एक ही दुख हैः उसे परमात्मा का कोई अनुभव नहीं।
और जब तक यह परदा न उठे... ।
उठा दो, हां उठा दो, बीज में परदा-सा यह क्या है
निगह चिलमन से टकराती है आकार सारे आलम की।
वह जो छोटीसी, झीनी सी आड़ है... । झीनीसी ही आड़ है। कोई बहुत बड़ी चीन की दीवाल नहीं है--आदमी और परमात्मा के बीच; बड़ी झीनी सी दीवाल है; बड़ा झीनी सा परदा है। और मजा है कि वह परदा भी परमात्मा ने नहीं डाला हुआ है। वह परदा भी हमने डाला हुआ है।
अच्छा तो यही होगा कहना कि परदा परमात्मा पर नहीं है; परदा हमारी आंख
पर हैं। सूरज तो बाहर खड़ा है, लेकिन तुम दरवाजे बंद किए बैठे हो। दरवाजा खोलो--सूरज भीतर आ जाए। तुम जब तक दरवाजा न खोलोगे, सूरज भीतर आएगा भी नहीं; सूरज दस्तक भी न देगा द्वार पर। सूरज तुम्हारी शांति में बाधा न डालेगा। तुम दरवाजा खोलो--और सूरज भीतर आ जाए।
बस, ऐसी ही बात है। तुम जरा आंख खोलो और परमात्मा भीतर आ जाए। यह जो परदा है, तुम्हारी ही आंख पर है। और यह जा परदा है, वह तुम्हारी ही अस्मिता और अहंकार का है। यह जो परदा है, वह तुम्हारे ही तथाकथित थोथे ज्ञान का है। अब यह बड़े आश्चर्य की बात है कि लोगों को कुछ भी पता नहीं--अपना पता नहीं, परमात्मा का पता नहीं--और प्रत्येक ऐसा मान कर चलता है कि उसको पता है। पूछो किसी से ईश्वर है? वह फौरन जवाब देने को तैयार है। यह तो कहेगा कि "हां है।" या रहेगाः "नहीं है।" मगर जवाब हर हालत में देगा।

शायद ही तुम्हें ऐसा आदमी मिले, जो कहेः "मुझे पता नहीं।" और अगर ऐसा आदमी मिल जाए, तो समझना कि इसी को किसी दिन पता होगा; यही दिन पता कर पाएगा। क्योंकि कम से कम ईमानदार तो है।
ईश्वर का तुम्हें पता नहीं है और कहते होः "पता है; मानता हूं कि ईश्वर है।" पता नहीं है और कहते हो कि "मानता हूंः ईश्वर नहीं है, इससे और ज्यादा भ्रांति क्या होगी!
स्पष्ट, इतनी बात तो स्वीकार करो कि मुझे मालूम नहीं है। है या नहीं-- कुछ भी मालूम नहीं। तो खोज पैदा होती है।
किताबों में पढ़ने से ईश्वर नहीं मिलता। किसी की बात मान लेने से ईश्वर नहीं मिलता। विश्वास से काम नहीं चलता; अनुभव चाहिए।
तो भक्त की एक ही आकांक्षा है कि अनुभव हो। "उठा दो... " यह जो छोटा सा परदा है। यह हटा दो। भक्त की एक ही प्यास है। रोता है; तड़फता है; पुकारता है। मगर सारी पुकार, सारी प्रार्थना का एक ही सार है--कि अब परदा और नहीं सहा जाता! अब तुम्हें बिना जाने जीया नहीं जाता। अब जीने में--तुम्हारे बिना--कोई अर्थ नहीं मालूम होता; कोई संगति नहीं मालूम होती। और कब तक भटकाओगे? और कब तक चलाओगे--कोल्हू के बैल में? और कब तक ऐसे ही चक्कर काटता रहूंगा--लट्टू की तरह--व्यर्थ? बहुत काट लिया चक्कर; अब मुझे एक बार देख लेने दो कि मैं कहां से हूं, क्यों हूं और कहां जा रहा हूं! और उस घड़ी के उतरते ही जीवन रूपांतरित हो जाता है। फिर आनंद ही आनंद है, उत्सव ही उत्सव है।
तो भक्त का कहना इतना ही है कि तुम्हें बिना जाने उत्सव नहीं हो सकता। अज्ञान में दुख ही होगा, नर्क ही होना--स्वर्ग नहीं हो सकता। इसलिए सब दांव पर लगा कर मैं तुम्हारी रोशनी चाहता हूं। सब खोने को तैयार हूं; सब अर्पित करने को तैयार हूं; सब समर्पित करने को तैयार हूं; जीवन ले लो, मगर बोध दे दो। तुम्हारे चरण मिल जायें, तुम्हारा स्पर्श हो जाए, फिर कोई भी कीमत महंगी नहीं है, फिर सौदा बुरा नहीं है।

चौथा प्रश्नः मजा जीने का अब तो आ रहा है, पर जिगर का दर्द बढ़ता जा रहा है। यह चक्र थमता नहीं है। जैसे-जैसे आनंद बढ़ता है, दर्द भी साथ-साथ बढ़ता है। और दर्द को थामने की भी चाह नहीं होती; उसमें भी मजा आता है। क्या यह बढ़ते प्रेम का चिन्ह है या पागलपन है कोरा?

पूछा हैः ओमप्रकाश सरस्वती ने।
ओमप्रकाश, तुम्हें ऐसी भ्रांति मालूम होती है कि प्रेम का चिन्ह और पागलपन दो बातें हैं अलग-अलग। नहीं। पागलपन प्रेम का चिह्न है। और प्रेम सदा से पागल है। पागल इस अर्थ में कि बुद्धि का तर्क कहता हैः यह क्या कर रहे हो।
बुद्धि के तर्क में प्रेम नहीं पकड़ आ पाता। बुद्धि के तर्क से प्रेम समझ में नहीं आ पाता, तो बुद्धि कहती हैः पागलपन है।
अब जैसे मुझे सुनते-सुनते अगर एक मस्ती की लहर आ जाए, तो बुद्धि तुम्हारी कहेगीः "यह क्या कर रहे हो? तुम जैसा बुद्धिमान आदमी; करने दो पागलों को, तुम मत करो।" सुनते-सुनते आंख में आँसू आ जायें, तो तुम जल्दी से पोंछ लोगे।" कोई पागल करे, करने दो। बाकी तुम कर रहे हो; कोई देख लेगा, तो क्या होगा?"
बुद्धि कहती है कि पागलपन है; क्योंकि बुद्धि को बात समझ में नहीं आती। हृदय की भाषा अलग, बुद्धि की भाषा अलग। उनमें संवाद नहीं हो पाता। हृदय से पूछोगे, तो हृदय कहेगाः यह क्या कर रहे हो--रुपया-पैसा इकट्ठा
कर रहे हो! पागल हो गए हो? सब पड़ा रह जाएगा। जो हृदय के लिए पागलपन है वह बुद्धि के लिए समझदारी है। जो बुद्धि के लिए समझदारी है, वह हृदय के लिए पागलपन है। जो हृदय के लिए समझदारी है, वह बुद्धि के लिए पागलपन है। और ये दोनों तत्त्व तुम्हारे भीतर हैं।

और ध्यान रखनाः बुद्धि तुम्हारे भीतर बहुत है। क्योंकि हृदय को तो बढ़ने का कोई मौका नहीं मिला। हृदय को सदा दबाया गया।
तुम्हें पहले से, बचपन से समझाया गया है कि हृदय के चक्कर में मत पड़ना;
यह खतरे में ले जाता है।
यह संसार बुद्धि की शिक्षा देता है, हृदय को अवरुद्ध करता है। यहां हृदय के लिए कोई स्कूल नहीं, कोई कॉलेज नहीं, कोई विश्वविद्यालय नहीं है-- जहां हृदय को उकसाया जाता हो; जहां हृदय को जगाया जाता हो; जहां हृदय को उमंगो को सहलाया जाता हो, साथ दिया जाता हो।
यहां स्कूल हैं गणित के; यहां स्कूल हैं व्यवसाय के; यहां स्कूल हैं शोषण के। यहां स्कूल हैं--कि कैसे लूटो; यहां स्कूल है--कि अपने को कैसे लुटने से बचाओ और दूसरे को कैसे लूटने में कुशल हो जाओ।
हृदय की भाषा तो खतरनाक है। हृदय तो लुटाने को उत्सुक होता है; लूटने
को उत्सुक नहीं होता।
नानक के पिता ने नानक से कहा कि "अब तू बड़ा हो गया; अब यह बहुत हो गई यह बकवास--यह राम-राम की धुन, यह इकतारा बजाना, यह रात रात चिल्लाना--प्यारे- प्यारे की रटन--बहुत हो गई, अब कुछ काम-धाम में लग। ये रुपये ले जा; पासे के गांव से जा कर कम्बल खरीद ला। सरदी के दिन आ रहे हैं; बिक्री कर। कम्बल बिकेंगे; मेला भरने को है। लाभ होना चाहिए--इस पर ध्यान रखना।"
नानक गए। दो-चार दिन बाद खाली हाथ लौट आए। और बड़े प्रसन्न आए; बड़े नाचते घर आए। और बाप ने पूछा कि "कम्बल वगैरह कहां हैं?" तो उन्होनें कहाः "लाभ कमा लिया। तुमने कहा था--लाभ होना चाहिए। रास्ते में फकीर मिल गए-- नंगे फकीर; जंगल में बैठे थे। सब कम्बल बांट दिए।"
"इससे बड़ा लाभ और क्या होगा," नानक ने कहा। "मस्त लोग थे; बड़े प्यारे लोग थे। दो दिन उनके साथ रहने में आनंद ही आनंद आ गया। और नंगे थे, और सरदी करीब आ रही है। परमात्मा की तुम पर कृपा होगी; मुझ पर कृपा होगी; इस घर पर परमात्मा की कृपा बरसेगी। परमात्मा के प्यारों को कम्बल दे आया हूं। और तुम क्या चाहते हो लाभ! लाभ कहा था ना; लाभ कमा लाया।"
बाप ने सिर ठोंक लिया। उसने कहाः "यह लाभ हुआ? यह तो हानि हो गई।"
नानक को नौकरी लगा दिया। कहा कि धंधा तो इससे होगा नहीं। धन्धे में खतरा है। नौकरी लगा
दी। नौकरी में ऐसा काम मिला उनको... । गांव के जो बड़े सुबेदार थे, उनके यहां नौकरी लगा दी। वहाँ सिपाहियों को जो अनाज बांटा जाता था रोज, उसको तौलने का काम था। उसमें कुछ खास जरूरत भी न थी। तौलते रहते। मगर उस तौलने में ही घटना घट गई। उस तौलने में ही सिक्ख धर्म का जन्म हुआ।
एक दिन तौलते थे। ऐसे तौलते तो रहते थे दिन भर; भीतर तो राम की ही याद चलती रहती; भीतर तो उसका ही गुण-गान चलता रहता, भीतर तो उसकी ही धुन बजती रहती; ऊपर तौलते रहते। यह काम भी अच्छा मिल गया था। इसमें कुछ ज्यादा खटपट भी न थी। बुद्धि का कोई उपाय भी न था। भीतर हृदय गूँजता रहता; बाहर तौलते रहते।
मगर उस दिन गड़बड़ हो गई। हृदय बुद्धि में आ गया। हृदय इतने जोर से छा गया कि बुद्धि दब गई। तौलते थे; दस पसेरी, ग्यारह पसेरी, बारह पसेरी और तेरह पर आए; तो पंजाबी में तेरह तो "तेरा" ही कहा जाता है। तो "तेरा" की याद आ गई। "तेरा" यानी परमात्मा का।
फिर रुक गए। फिर तौलते ही गए और चौदह पर आगे न बढ़े। अब "तेरा" आ गया; उसके आगे और क्या हो सकता है! आखिरी पड़ाव आ गया। तौलते ही गए। सांझ हो गई और तेरा--और तेरा!
खबर पहुंची सुबेदार तक कि वह आदमी पागल हो गया। वह चौदह पर बढ़ता ही नहीं। वह तौले ही जा रहा है और "तेरा" ही "तेरा" कहे जा रहा है! सुबेदार भी आया। देखः मस्त हो रहे हैं। कहा कि "पागल हो गए हो?"
इस जगत में मस्ती पागलपन समझी जाती है।
"इतनी मस्ती क्या! ये आंसू किसलिए बह रहे हैं? और तेरा पर संख्या खतम नहीं हो जाती। यह क्या तेरा-तेरा लगा रखा है?"

नानक खड़े हो गए। उन्होंने कहाः "फिर तुम सम्हालो। आखिरी पड़ाव आ गया।
अब इसके आगे और कहीं जाने को नहीं है। इसके आगे कोई गिनती नहीं है। अब न मैं पीछे लौट सकता; न आगे जा सकता। अब तो "तेरे" पर हो गया; अब तो "तेरे-में" हो गया। अब तो "उसी का" हो गया। अब मैं चला।"
परिवार परेशान हुआ। रिश्तेदार प्रियजन परेशान हुए--कि यह लड़का पागल
हो गया। लेकिन इसी पागल लड़के से एक अपूर्व धर्म का जन्म हुआ। एक अपूर्व धारा बहीं।
इस दुनिया में पागलों से ही आकाश की गंगा नीचे उतरी है। इस दुनिया में पागल ही कुछ खबर लाए हैं--परलोक की।
तो तुम यह मत पूछो कि "क्या यह बढ़ते प्रेम का चिन्ह है या पागलपन है कोरा?" यह दोनों है एक साथ।
और पागलपन कोरा नहीं होता--ख्याल रखना। "कोरा" तो बुद्धि है। "कोरी"-- बिल्कुल, निपट--व्यर्थ, असार--राख ही राख है।
पागलपन--और कोरा? "पागलपन" तो बहुत भरा हुआ होता है। बहुत फूल खिलते हैं पागलपन में।
तुम धन्यभागी हो, अगर प्रेम में पागल हो जाओ। इससे बड़ा धन्यभाग नहीं है।
बुद्धि की बुद्धिमत्ता किसी काम नहीं आती; अन्तक व्यर्थ हो जाती है।
अंततः तो हृदय का पागलपन ही काम आता है।
तो तुमसे मैं यह नहीं कह रहा हूं कि संसार छोड़ दो; और तुमसे यह भी नहीं
कह रहा हूं कि तुम भी तेरा पर अटक जाओ। चौदह, पंद्रह--चलने दो। वह बाहर ठीक है; वह औपचारिकता ठीक है। संसार का काम है; उसे संसार की तरह चलने दो। लेकिन तुम्हारे भीतर "पागलपन" की धारा बहे। जितने दिन गंवाए बिना इसके-- व्यर्थ गए। अब गीले होओ; अब गुनगुनाओ। अब नाचो।
अब यह मस्ती बढ़ने दो। और हालांकि दुनिया इससे राजी न होगी, तो दुनिया
को बताने की भी कोई जरूरत नहीं है। थोड़ी घड़ियां एकान्त की खोज लो, द्वार दरवाजे बन्द करके अपने पागलपन में डूब जाओ।
प्रार्थना का कोई प्रदर्शन करना आवश्यक भी नहीं है। अगर कभी कोई तुम्हारे जैसे ही "मनचले" मिल जायें, तो उनके साथ बैठ कर सत्संग कर लेना लेकिन बुद्धिमानों को बताने की कोई जरूरत ही नहीं। वे समझेंगे भी नहीं; वे उलटा ही समझेंगे।
प्रार्थना को एकांत में, अकेले में मौन में होने दो। हां, कभी तुम्हारे जैसे ही पागलों का समूह मिल जाए, तो फिर वहां डरना मत, फिर वहां रोकना मत; फिर वहां बहने देना।
जहां चार दीवाने मिल कर बैठ जाते है, वहां परमात्मा की बड़ी कृपा बरसती है।
नहीं तो प्रार्थना अकेले-अकेले चलने दो। रात के एकांत में द्वार-दरवाजा बंद करके रो लेना। उन आंसुओं से तुम्हारी आंखे बड़ी शुद्ध होंगी।
निर्मल होंगी। उन्ही निर्मल आंखों से परमात्मा देखा जा सकता है।
जिन आंखों में बुद्धि की धूल बहुत जमी है, उन आंखो का दर्पण नष्ट हो गया; उन आंखों से कुछ नहीं दिखाई पड़ता; वे पथरा गई हैं।
यह प्रेम का चिह्न भी है--और पागलपन भी। और तुम सौभाग्यशाली हो।

पांचवां प्रश्नः मैं जैन संस्कारों में पली हूं। मेरा मार्ग प्रेमी
का है--ऐसा मुझे कभी नहीं लगा। लेकिन ध्यान में उतरने पर मैं अकसर कृष्णमय रास में डूब जाती हूं। ऐसा क्यों होता है?

पूछा हैः इंदिरा ने।
ऐसी अड़चन है। क्योंकि हम जिन घरों में संयोग से पैदा होते हैं, जरूरी नहीं है कि उन घरों के संस्कार हमारे काम के हों। कभी-कभी ऐसा हो जाता हैः जैन घर में कोई पैदा होता है, लेकिन उसकी भीतर मनोदशा महावीर से ज्यादा मीरा के करीब होती है; तब अड़चन हो जाती है। संस्कार तो महावीर के पड़ते है

और भीतर उसका खुद का अन्तर्भाव मीरा के करीब होता है। उसे पता भी नहीं चलेगा। क्योंकि जैन हैं, तो कोई कृष्ण के मंदिर में तो जाएगा भी नहीं। जैन शास्त्र कहते हैं कि भूल कर भी मत जाना हिंदू मंदिर में। अगर पागल हाथी भी रास्ते में मिल जाए और हिन्दू मंदिर में छिप कर शरण मिलती हो, बचना हो जाता हो, तो भी मत जाना। पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना बेहतर है; मगर हिंदू मंदिर में शरण मत लेना।
ऐसा ही हिंदू भी कहते हैं। कोई फर्क नहीं है इसमें। हिंदू शास्त्र भी यही कहते है कि जैन मंदिर में शरण मत लेना--पागल हाथी के नीचे दब कर मर जाना।
तो जाने का तो उपाय नहीं है। तो संस्कारों में दबा हुआ प्राण--पता ही नहीं चलेगा तुम्हें कि तुम्हारा व्यक्तित्व किस तरफ रुझान से भरा था।
और इससे उलटी बात भी होती है। कोई हिंदू घर में पैदा हुआ है और हो सकता
है कि महावीर से उसके प्राणों का संबंध जुड़ जाए। लेकिन महावीर से कोई संबंध न जुड़ेगा। महावीर का उसे पता ही न चलेगा। वह जाता रहेगा कृष्ण के मंदिर में और कृष्ण से उसका कोई संबंध जुड़ नहीं सकता।
तुम्हारी अंतर्दशा निर्णायक होनी चाहिए--संस्कार नहीं। संस्कारों
का क्या मूल्य है? मगर संस्कार ही निर्णायक होते हैं।
इसलिए अक्सर यहां आ कर तुम्हें कई दफा हैरानियां होंगी।
इंदिरा को ऐसा ही होता होगा। यहां तो सब एक साथ हैं। यहां कभी महावीर
की धारा बहती है, तो लोग महावीर में नहाते हैं। कभी मीरा की धारा बहती है, तो लोग मीरा में नहाते हैं।
यहां कोई एक संस्कार की व्यवस्था नहीं है। यहां तो सारे धर्मों को एक साथ उपलब्ध किया जा रहा है। तो जो जिसको रुच जाए; तो जिससे मगन हो जाए, उस पर ही चल पड़े।
तो इंदिरा कहती ठीक है कि "मैं जैन संस्कारों में पली हूं। मेरा मार्ग प्रेमी का है--ऐसा मुझे कभी नहीं लगा।" लगता कैसे? क्योंकि जैन संस्कार में प्रेम का कोई उपाय नहीं है; प्रेम तो पाप है। प्रेम से तो बचना है। प्रेम को तो छोड़ना है।
जैन मार्ग तो विशुद्ध ज्ञान-मार्ग है। ध्यान की प्रक्रिया है-- प्रार्थना की नहीं। जैन संस्कार में तो परमात्मा शब्द ही अर्थ नहीं रखता। जैन संस्कार में तो अपने भीतर जाना है और अकेले हो जाना है; इतने अकेले कि वहाँ कोई दूसरे की धारणा भी न हो--परमात्मा की धारणा भी नहीं।
यह ध्यान का शुद्ध मार्ग है। कुछ लोग ध्यान के मार्ग से पहुंचेंगे, उनके लिए तो यह बड़ा अदभुत है। मगर जो ध्यान के मार्ग से नहीं पहुंच सकते, जिनका हृदय मरुस्थल जैसा सूखा नहीं है, उनको अड़चन हो जाएगी; विशेष कर स्त्रियों को अड़चन हो जाएगी।
पुरुष को शायद यह बात जँच भी जाए, क्योंकि पुरुष के जीवन में प्रेम उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है--जितना ध्यान, जितना ज्ञान। लेकिन स्त्री के जीवन का तो सारा धन ही प्रेम है। ज्ञान में स्त्री को क्या रस है? जानने में स्त्री को उत्सुकता ही नहीं है। उसकी उत्सुकता दूसरे ढंग की है। स्त्री का हृदय ज्यादा सक्रिय है, बजाय बुद्धि के। तो स्त्रियों को तो अकसर यह नुकसान हो जाएगा। स्त्री के लिए तो मीरा और राधा ज्यादा करीब हैं। स्त्री सोच नहीं सकती कि अकेले होने में आनंद हो सकता है। इसे समझने
की कोशिश करना।
स्त्री का सारा आनंद उसके लिए है, जिससे उसका प्रेम है। स्त्री भोजन बनाती है; अगर उसका प्रेम है किसी से, तो भोजन बनाना उसकी पूजा हो जाती है।
वह जिसके लिए भोजन बना रही है, अगर उससे प्रेम है, तो भोजन बनाना अर्चना है; यह उसका मंदिर है। उसका चौका उसका मंदिर हो जाता है।
उसका प्रेमी आ रहा है, तो वह घर साफ कर रही है, बुहार रही है। उसका प्रेमी आ रहा है, तो वह आतुर हो कर आनंद से भरी है; उसका हृदय धड़क रहा है।

अकबर के जीवन में उल्लेख है कि अकबर एक बार जंगल में शिकार खेलने गया था। लौटकर आ रहा था; सांझ हो गई, तो सांझ की नमाज पढ़ने के लिए गांव के बाहर बैठ गया। राजस्थान का कोई गांव।
नमाज पढ़ने का कपड़ा बिछा दिया। उस पर घुटने टेक कर नमाज पढ़ने लगा। और
जब वह नमाज में आधा था, तब एक औरत--एक मस्त राजस्थानी औरत भागती हुई वहां से निकली--उसके कपड़े पर पैर रखती, उसको धक्का मारती--कि वह गिर भी पड़ा। वह चली ही गई भागती। रही होगी रजपूत!
नमाज में था अकबर, तो एकदम से कुछ कह भी नहीं सका। बीच नमाज में बोले
भी क्या! मगर आग बबूला हो गया--कि यह तो हद हो गई--यह तो बदतमीजी को हद हो गई। इसको यह भी होश नहीं है कि कोई नमाज पढ़ रहा है! और कोई साधारण नहीं--खुद सम्राट नमाज पढ़ रहा है।
जल्दी उसने नमाज पूरी की और तैयारी कर रहा था कि उस स्त्री को पकड़, तब
तक वह स्त्री लौटती थी। तो उसने उसे रोका और कहा कि "बदतमीज औरत, तुझे इतना भी पता नहीं कि कौन नमाज पढ़ रहा है? एक तो कोई भी नमाज पढ़ रहा हो, प्रभु का स्मरण करता हो कोई आदमी, उसके पास से इस तरह निकाला जाता है?"
उस स्त्री ने कहाः "मुझे कुछ याद नहीं। कहां की बातें कर रहे है आप? कहां थे आप? मैं अपने प्रेमी से मिलने जाती थी। मेरा प्रेमी वर्षों के बाद आ रहा था, तो मैं राह पर ही उसको पकड़ लेना चाहती थी। तो मैं गांव के बाहर भागी जा रही थी। मुझे कुछ होश नहीं है; क्षमा करें। अग आपके नमाज में मेरे कारण बाधा पड़ गई हो, तो मुझे क्षमा करें; यद्यपि मेरा कोई कसूर नहीं, क्योंकि मुझे पता ही नहीं। मैं उसके प्रेम में दीवानी हूं।"
और उस स्त्री ने कहा, "लेकिन एक प्रश्न मेरे मन में उठता है, मैं पूछूं-- अगर नाराज न हों।"
अकबर ने पूछाः "क्या?"
उसने कहा कि मैं अपने साधारण से प्रेमी से मिलने जा रही थी और मुझे आपका पता नहीं चला, और आप परमात्मा से मिलने जा रहे थे; नमाज पढ़ रहे थे, और आपको मेरे धक्के का पता चल गया? यह कैसी नमाज? यह कैसी प्रार्थना? आपका धक्का भी मुझे लगा होगा, जब मेरा धक्का आपको लगा। लेकिन मुझे आपके धक्के का कोई पता नहीं चला। मैं होश में ही न थी। मेरा प्रेमी आ रहा है। ऐसा न हो कि वह आ जाए और उसका स्वागत गांव के बाहर न कर सकूं। और वर्षों के बाद आ रहा है। और तुम परमात्मा से मिलने चले थे और फिर भी तुम्हें इससे बड़ी अड़चन हो गई! और तुम परमात्मा की प्रार्थना में थे। लेकिन तुम्हारी आंखों से आग निकल रही है? तुम क्षमा भी न कर सके? तुम करुणा भी न कर सके?"
अकबर ने कहा है कि "मेरा सिर झुक गया। मैं उस स्त्री को जवाब न दे सका। मेरी प्रार्थना दो कौड़ी की हो गई। वह ठीक कह रही थी। उसकी बात सच थी। वह मेरे हृदय में काँटे की तरह चुभी रह गई कि अभी मेरा परमात्मा का प्रेम कुछ प्रेम नहीं। अभी एक स्त्री का प्रेम भी उसके साधारण प्रेमी से होता है, उसके मुकाबले भी मेरा प्रेम कुछ भी नहीं है।"
महावीर कहते हैं कि जो परम अवस्था है चैतन्य की, वह कैवल्य है--अकेले
हो जाना--एकदम अकेले हो जाना। स्त्री को यह बात जमेगी ही नहीं। अगर बिल्कुल अकेली हो जाएगी स्त्री, तो यह तो नरक की अवस्था होगी। प्रेमी तो होना ही चाहिए। स्त्री चाहेगी कि प्रेमी से एक हो जाए, मिल जाए, लीन हो जाए--प्रेमी में। यह तो चाहेगी। लेकिन अकेली हो जाए... ? यह चाह पुरुष की है।
तो यह अड़चन हो जाती है। जैन घर में संस्कार तो पुरुष के होते है, इसलिए दिगंबर जैन तो कहते हैं कि स्त्री-पर्याय से मोक्ष ही नहीं हो सकता। स्त्री--और कैसे मोक्ष जाएगी? उसका तो "पर" से लगाव इतना है कि वह मोक्ष जा ही नहीं सकती। उसे तो एक दफा पुरुष की तरह पैदा होना पड़ेगा और फिर मोक्ष जा सकती है। सब मोक्ष पुरुष-पर्याय से होता है।
इस बात में अर्थ है। इसका यह अर्थ नहीं है कि स्त्री मोक्ष नहीं जा सकती। लेकिन इसमें एक अर्थ है कि महावीर के मार्ग से स्त्री मोक्ष नहीं जा सकती। इक्का-दुक्का कोई कभी चला गया हो, उसका हिसाब मत करो। मगर महावीर के

मार्ग से स्त्री मोक्ष नहीं जा सकती। क्योंकि स्त्री के हृदय के अनुकूल ही मार्ग नहीं है।
स्त्री को कृष्ण चाहिए। स्त्री सजाना चाहती है--अपने प्यारे को। कृष्ण जमते हैं--पीतांबर में, मोर-मुकुट बांधे, बांसुरी ओंठ पर रखे--कृष्ण प्यारे लगते है।
महावीर नग्न खड़े हैं; कहां मोरमुकुट रखो? उनके हाथ में बांसुरी दो-- जंचेगी नहीं। ऐसा लगेगा कि किसी का चुरा लाए--कि क्या किया! यह बांसुरी कहां से आ गई? इसमें भरोसा ही न आएगा--कि ये बांसुरी का क्या कर रहे है। गीत से महावीर का क्या लेना-देना? संगीत से महावीर का क्या लेना-देना? उनके पैर में घुंगरू बांध दोगे, तो तमाशा मालूम होगा! नहीं; बात बेमेल हो जाएगी। महावीर का ध्यान से लेना-देना है। वे एकांत में खड़े हैं--सब छोड़ कर। शून्य में डूबे हैं। शून्य में अब संगीत भी बाधा है। शून्य में अब बांसुरी भी व्यर्थ है। अब सब व्यर्थ है। वह परिपूर्ण अनासक्ति है।
कृष्ण का मार्ग पूर्ण आसक्ति का मार्ग है। और मजा यह है कि दोनों से पहुंचा जा सकता है। इसलिए असली सवाल यह नहीं--कि कौन ठीक। दोनों से पहुंचा जा सकता है। असली सवाल यह है कि तुम्हें कौन ठीक।
इसकी फिक्र ही मत करना कि कौन ठीक है। यह बात व्यर्थ है। यह प्रश्न ही संगत नहीं है। तुम सदा यही पूछना कि मुझसे किस बात का तालमेल बैठता है। तुमसे जिसका तालमेल बैठ जाए, वह तुम्हारे लिए ठीक। बस।
मुझसे अगर कोई एक बात तुम्हें सीखनी है, तो इसे सदा याद रखना कि तुम्हारा जिसमे तालमेल बैठ जाए, वह तुम्हारे लिए ठीक। फिर तुम संसार की फिकर छोड़ो। सब उसी मार्ग से मोक्ष जा सकेंगे कि नहीं, तुम इसकी चिंता में ही मत पड़ो। सभी एक मार्ग से नहीं जा सकते।
इतने भिन्न-भिन्न लोग है; इतनी भिन्न-भिन्न चित्त की दशाएं है। और अच्छा ही है कि भिन्न-भिन्न मार्ग हों। दुनिया ज्यादा समृद्ध होती है-- भिन्न-भिन्न मार्गों से।
कोई नाचता हुआ जीना चाहे, तो ऐसी बाधा नहीं होनी चाहिए कि नाचते हुए आदमी को हम मोक्ष में प्रवेश ही न करने देंगे। कि ये कहां चले आ रहे हो-- मोरमुकुट बांधे, बांसुरी लिए हुए! या इससे उलटी जिद्द कर लो कि जब तक मोरमुकुट न बांधोगे, हाथ में बांसुरी न लोगे, तब तक मोक्ष में प्रवेश न करने देंगे! तो महावीर को देख कर ही लोग दरवाजा बंद कर लेंगे कि ये सज्जन कहां चले आ रहे हैं--नंग-धड़ंग! पहले बांसुरी लाओ!
नहीं; ऐसे आग्रह मत करो! मोक्ष की कोई शर्त नहीं है। और अगर कोई शर्त
है तो सिर्फ एक है कि तुम्हारी जो भावदशा है, वह पूरी खुल जाए। तुम्हारी भावदशा पूरी खुल जाए, वही मोक्ष है। जब चमेली का फूल खिलता है, तो चमेली की गंध उठेगी। और जब गुलाब का फूल खिलता है, तो गुलाब की गंध उठेगी। और जब कमल का फूल खिलता है, तो कमल की गंध उठेगी। गंधें भिन्न-भिन्न होंगी, लेकिन तीनों फूल खिल गए; खिलना एक ही जैसा है। खिलने में मजा है; फिर गंध क्या उठती है... । गंध तो तुम्हारी होगी।
कृष्ण की बांसुरी बजी और महावीर में नग्नता की निर्दोषता आई। बुद्ध में कुछ और हुआ--क्राइस्ट में कुछ और; मोहम्मद में कुछ और। और तुममें भी कुछ और होगा।
संस्कार से सावधान। संस्कार खतरनाक होता है। संस्कार का मतलब है कि दूसरों ने कुछ सिखा दिया। उन्होंने कभी इस बात की फिकर ही न की कि तुम्हारे भीतर कौन सी बात का पौधा आरोपित हो सकता है। इसकी फिक्र ही न की। तुम्हारे मां-बाप हिंदू थे, तो उन्होंने हिंदू-धर्म सिखा दिया; अगर ईसाई थे, तो ईसाई धर्म सिखा
दिया। और उनका भी क्या कसूर है! उनको भी इसी तरह सिखा दिया गया है। न उन्हें पता है कि वे क्या कर रहे हैं... । और इसी तरह तुम अपने बच्चों को मत सिखा जाना।
मेरी दृष्टि में, दुनिया बहुत बेहतर हो जाए, अगर हम अपने बच्चों को अपना धर्म जबरदस्ती न दें! सब धर्म के द्वार खुले कर देने चाहिए। बच्चों

को सभी उपाय उपलब्ध होने चाहिए--कि कभी वे रविवार को गिरजे में जा कर सम्मिलित हो जाऐं; देखें--क्या हो रहा है वहाँ। कभी मसजिद में जा कर देखें।
वे रंग अलग-अलग हैं; वे ढंग अलग-अलग हैं।
मसजिद की अपनी शान है--गिरजे की अपनी। कभी गुरुद्वार में जाएं... ।
अगर मां-बाप अपने बच्चे को प्रेम करते हैं, तो उन्हें सब तरफ भेंजेंगे--कि जाओ; सब तरफ खोजो; सब द्वार-दरवाजे खटखटाओ। फिर जहां तुम्हें मौज आ जाए, जहां तुम्हारा तालमेल बैठ जाए, जहां तुम्हें लगे कि हां, इस स्थल ने तुम्हारे हृदय को छू लिया; फिर वही तुम्हारा मार्ग है।
धर्म दिया नहीं जा सकता संस्कार से। धर्म प्रत्येक को अपना खोजना चाहिए। तो दुनिया बहुत धार्मिक हो जाए।
अभी बहुत से लोग हैं, जो धर्म खोजते हैं, और नहीं खोज पाते, क्योंकि वे खोजते अपने ही संस्कार से हैं और वे संस्कार अगर उनसे मेल नहीं खाता, तो वे उदास हो जाते हैं। वे सोचते हैं यह अपने लिए नहीं है।
जैन प्रक्रिया विजय की प्रक्रिया है। वह पुरुष का भाव है। प्रेम की प्रक्रिया--रास की प्रक्रिया, समर्पण की प्रक्रिया है। वह हारने की कला है। बड़े फर्क हैं उनमें।
हार कर मेरा मन पछताता है
क्योंकि हारा हुआ आदमी
तुम्हें पसंद नहीं आता है
लेकिन लड़ाई में मैंने कोताही कब की?
कोई दिन याद है
जब मैं गफलत में सोया हूं?
यानी तीर-धनुष सिरहाने रख कर
कहीं छांह में सोया हूं?
हार आदमी की किस्मत में लिखी है
जीत केवल संयोग की बात है।
ये किसी की पंक्तियां कल मैं पढ़ता था।
"हार कर मेरा मन पछताता है... ।" पुरुष का मन बहुत पछताता है हार कर।
"क्योंकि हारा हुआ आदमी तुम्हें पसंद नहीं आता है।" और पुरुष यह सोचता हैः परमात्मा को हारा हुआ आदमी पसंद नहीं आता है। जीता आदमी चाहिए।
"जिन" शब्द का अर्थ होता हैः जीतना; जिन का अर्थ होता है --जीत, विजय। "क्योंकि हारा हुआ आदमी तुम्हें पसंद नहीं आता है।"
यह किसने कहा तुमसे? --कि परमात्मा को हारा हुआ आदमी पसंद नहीं आता है। मगर पुरुष को ऐसा लगता है--कि हारे तो फिर क्या! हारा हुआ आदमी तो पुरुष को खुद को पसंद नहीं आता, तो वह यह सोच ही नहीं सकता कि परमात्मा को कैसे पसंद आएगा।
"लेकिन लड़ाई में मैंने कोताही कब की है!" और पुरुष लड़ता ही रहता है। "कोई दिन याद है, जब मैं गफलत में खोया हूं?" पुरुष लड़ता ही रहता है! लड़ता ही रहता है। जूझता ही रहता है! धारा के विपरीत संघर्ष करता रहता है। संकल्प पुरुष का लक्षण है।
"हार आदमी की किस्मत में लिखी हैं... ।" और अगर हार जाता है, तो सोचता हैः किस्मत में लिखी थी। "हार आदमी की किस्मत में लिखी है; जीत केवल संयोग की बात है।" फिर अपने को समझा लेता है कि जीत संयोग की बात हैं। नहीं हो पाई। किसकी हो पाती है? हार किस्मत में लिखी है। लेकिन कोई मुझे यह दोष नहीं दे सकता कि मैं कभी गफलत में सोया; कि मैंने कभी तीर-धनुष रख कर कभी... ।
"लेकिन लड़ाई में मैंने कोताही कब की?" लड़ता तो रहा। अगर हार गया, तो संयोग की बात है। लेकिन कोई यह नहीं कह सकता मुझसे--कि लड़ा नहीं।
जैन-धर्म पुरुष का धर्म है। उसका जन्म क्षत्रियों से हुआ। जैनों के चौबीसों तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय का अर्थ होता है--योद्धा, लड़ाके। यहां भी लड़ते थे, वहां भी लड़ कर ही पहुंचते हैं।

भक्त का मार्ग स्त्री का मार्ग है। जीत कर नहीं... । प्रेम में तुमने देखा? --प्रेम में वही जीतता है, जो हारता है। वहाँ गणित ही उलटा है। वहां जो हार जाता है, वही जीतता है। वहाँ जो जीतने की कोशिश करता है, वही हार जाता है।
तो भक्त तो समर्पण करता है। वह कहता हैः मेरी--और जीत? यह बात ही फिजूल है। जीत तेरी हो। तेरी जीत में हमारी खुशी है। हम हार जायें पूरे-पूरे--ऐसी कृपा कर। हम लड़े ही न तुझसे--ऐसी कृपा कर। यह लड़ने का भाव ही चला जाए, क्योंकि यह लड़ने का भाव तो अहंकार है, अस्मिता है। हमें तेरे चरणों की धूल हो जाने दे।
"मैं जैन संस्कारों में पली हूं" पूछा है; "मेरा मन प्रेमी का है--ऐसा मुझे कभीं नहीं लगा।" नहीं लगा इसलिए कि संस्कार की दीवार बनी रही होगी, मौका नहीं मिला होगा।
अब इंदिरा यहां आ गई है। "यहां ध्यान में उतरने पर मैं अकसर कृष्णमय रास में डूब जाती हूं।"
ध्यान से ही पता चलता है कि तुम्हारी असली भावदशा क्या है, तुम्हारे व्यक्तित्व का ढंग क्या है। तो जो ध्यान में प्रगट हो, उसी का अनुसरण करना।
तो कृष्णमय लीला, कृष्ण का रास बड़ा प्यारा है। तुम्हें जिद्द आम गिनने की है कि आम खाने की? तुम्हें कृष्ण से लेना-देना, कि महावीर सें? तुम्हें पहुंचना है परमदशा में। अगर कृष्ण का रास तुम्हें ले जाए, तो उससे चल चलो। अगर महावीर का संघर्ष तुम्हें ले जाए, तो उससे चल चलो। जिद्द इसकी मत करो कि "इस" रास्ते से ही जायेंगे। जिद्द एक ही रखो--कि जाना है, कोई भी रास्ता हो। बैलगाड़ी से हो, तो ठीक; रेलगाड़ी से हो, तो ठीक; और हवाई जहाज से हो, तो ठीक। और पैदल ही चलना पड़े, तो पैदल ठीक। जाना है।
तुम्हें जो रास आ जाए; तुम्हें जिसमें मौज आ जाए; जिसमें तुम्हारी मस्ती हो, जिसमें तुम
आनंदपूर्वक जा सको; जिसमें तुम्हें अपने साथ जबरदस्ती न करनी पड़े; जिसमें तुम्हें अपनी अंतरात्मा का
दमन न करना पड़े--बस, वही तुम्हारे लिए मार्ग है।
तो अब इंदिरा को फिकर छोड़ देनी चाहिए, क्योंकि ध्यान में जो प्रगट हो रहा है, वह तुम्हारे संस्कारों से गहरी आवाज है। ध्यान का मतलब ही यह होता है हटा कर रख दिए संस्कार, विचार, ऊपर-ऊपर की बातें, जो सिखा दी गई हैं--हटा कर रख दीं, ताकि हृदय का मौलिक स्वर प्र्रकट हो जाए।
तो ठीक हैः तुम्हारे लिए कृष्ण ही महावीर हैं।
हारो--ताकि जीत सको।
अब पूछना ही क्या मेरे माजी ब हाल का
अफसाना बन चुका हूं अरुजो-जबाल का
नाजुक मुआमला था मगर ये खबर न थी
दिल टूट जाएगा मेरे दस्ते सवाल का
मुझको अब तक यकीं नहीं आता
लोग कहते हैं मर गया हूं मैं
यह अदम है, हयात है, क्या है?
किससे पूछूंः किधर गया हूं मैं
दौर ये है कि दौरे-मय भी नहीं
और--ऐसी तो और शै भी नहीं
मयकदे बंद हैं तो मसजिद तक
हम से होगी ये राह तय भी नहीं
समझना। "दौर ये है कि दौरे-मय भी नहीं।" ऐसी घड़ी आ गई है कि अब शराब का दौर नहीं चल रहा है, मस्ती का दौर नहीं चल रहा है, मदहोशी का दौर नहीं चल रहा है। "दौर यह है कि दौरे-मय भी नहीं। और ऐसी तो और शै भी नहीं।" और दूसरी कोई बात जंचती भी नहीं।

"मयकदे बंद हैं... मधुशालाएं बंद है।" मयकदे बंद है, तो मस्जिद तक हमसे होगी ये राह तय भी नहीं।" और अगर मधुशालाएं बंद हैं, तो हम मसजिद तक न पहुंच पाएंगे।
कुछ लोग हैं, जो मधुशाला से ही मसजिद पहुंचते हैं। मधुशाला का अर्थः
वह जो प्रेम का मार्ग है, वह जो भक्ति का मार्ग है, जो मस्ती का और पागलपन का मार्ग है। अगर मधुशालाएं बंद हों, तो अनेक लोग तो कभी मसजिद तक नहीं पहुंच पाएंगे।
कुछ हैं, जो मधुशाला के कारण नहीं पहुंच पाते हैं। और कुछ हैं, जो मधुशाला के बिना नहीं पहुंच पाएंगे। और कोई ऐसा नियम नहीं है, जो सभी मनुष्यों के लिए एक जैसा लागू होता हो।
अगर दो मोटे नियम बांटने हों, तो प्रेम और ध्यान के बांटे जा सकते हैं।
शांत हो कर समझने की कोशिश करोः तुम्हारे चित्त में जिस बात से उमंग
भर जाती हो, हृदय खिलने लगता हो--भजन से, कीर्तन से, नृत्य से--तो मधुशाला तुम्हारा मार्ग है।
तो फिर फिकर न करो संस्कारों की। और अगर ये सब बातें तुम्हें जंचती ही
न हों... । मगर एक बात करना ख्याल। करक देख लेना। क्योंकि इंदिरा को भी पता नहीं था, जब तक करके नहीं देखा था।
यहां मेरे पास लोग आ जाते हैं; वे कहते हैंः "और तो सब ठीक। आपकी बात हमें ठीक लगती है। मगर यह नाच, यह कीर्तन, यह ध्यान--यह हमें ठीक नहीं लगता।"
तो मैं उसने कहता हूंः "हो भी सकता है, तुम्हीं ठीक हो। मगर करके देख लेना। किसको पता--ये केवल संस्कार बोल रहे हों तुम्हारे भीतर से--कि हमें यह ठीक नहीं लगता।"
तुम एक दफा करके देख लेना। करके भी ठीक न लगे, तो ठीक। फिर तुम्हारे लिए मार्ग--शांत और मौन ध्यान का है। फिर नृत्य का तुमसे मेल नहीं बैठता। लेकिन मेरे अनुभव में ऐसा आया है कि बहुमत नृत्य से जाएगा, अल्पमत ध्यान से जाएगा। इसलिए जैनों की संख्या बढ़ सकी, यह कोई अकारण बात नहीं है। नहीं बढ़ सकती थी।
बौद्ध भी हिंदुस्तान से विदा हो गए। होना ही पड़ा। क्योंकि शुद्ध ध्यान का मार्ग था। चीन और जापान में फल गए, क्योंकि वहां जाकर उन्होंने अपना पूरा ढंग बदल लिया। वहां उन्होंने जा कर प्रेम को सम्मिलित कर लिया। भारत से जो अनुभव हुआ था, उससे उन्होंने सीख ले ली। एक बात उन्होंने समझ ली कि आदमी की बहुमत संख्या प्रेम से जाएगी।
तो भारत में बुद्ध का जो शुद्ध धर्म था, वह तो नष्ट हो गया। चीन और जापान में जो धर्म है, वह शुद्ध नहीं है। वह मिश्रित है। बुद्ध उससे नाराज होंगे। बुद्ध अगर लौटे, तो वे कहेंगेः "यह मेरा धर्म नहीं है।" क्योंकि जो बुद्ध ने इनकार किया था, वहीं जा कर चीन में बौद्ध भिक्षुओं को स्वीकार कर लेना पड़ा।
बुद्ध ने कहा थाः "कोई भगवान नहीं है। जब भगवान ही नहीं है, तो भजन कैसा, प्रार्थना किसकी? लेकिन बौद्ध भिक्षुओं को अनुभव हुआ कि इसकी वजह से तो भारत से धर्म उखड़ गया।
और तुम्हें पता होना चाहिए कि बुद्ध ने वर्षों तक स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी थी। नहीं देना
चाहते थे। उनको बात साफ थी कि यह मेरा मार्ग प्रेम का नहीं है। स्त्रियां आएंगी, तो उपद्रव आएगा। बहुत मजबूरी में ही उन्हें देना ही पड़ा, क्योंकि बहुत दबाब पड़ा। हजारो स्त्रियां जगह-जगह आने लगीं। और उन्होंने प्रार्थना करनी शुरू की कि हमें स्वीकार करें। और स्त्रियां रोए--और प्रार्थना करें--और चरणों में गिरें। उन्होंने कहाः हमें स्वीकार करें। आखिर हमारा क्या कसूर है?

तो बुद्धयह भी नहीं कह सकते थे कि तुम्हारा कोई कसूर है। यह तो उनको
भी समझ में आता था कि स्त्री होने में किसी का कसूर नहीं है। "तो फिर हमें स्वीकार क्यों नहीं करते?"
वहाँ भी उनकी अड़चन थी। क्योंकि उनका मार्ग ध्यान का है। और स्त्री आई,
तो वह कहीं न कहीं से बांसुरी ले आएगी; घूंघर ले आएगी; कुछ उपद्रव शुरू कर देगी। फिर हाथ के बाहर हो जाएगी बात।
साधारण पुरुष ही स्त्रियों से डरते हैं--ऐसा नहीं; बुद्ध-पुरुष भी भयभीत होते हैं!
जब बहुत आग्रह किया, तो मजबूरी में उन्होंने स्त्रियों को दीक्षा दी। लेकिन जिस दिन दीक्षा दी, उन्होंने जो वचन कहे, वे समझने जैसे हैं।
बुद्ध ने जब पहली दीक्षा दी स्त्रियों को, तो उन्होंने कहा कि "तुम नहीं मानते हो... ।" क्योंकि भिक्षु भी आग्रह करने लगे। और भिक्षुओं ने भी कहा कि यह आपके नाम पर धब्बा रह जाएगा कि आपने स्त्रियों के साथ ज्यादती की। उनके परम शिष्य आनंद ने भी जब कहा कि इससे हमें बेचैनी होती है कि स्त्रियां इतना तड़फती हैं! सिर्फ स्त्री देह में होने के कारण आप भेद करते हैं? आत्मा तो सब एक है--आप खुद ही कहते हैं!
तो बुद्ध ने कहा--कि ठीक। उन्होंने दीक्षा दी। और दीक्षा देनी पड़ी इसलिए भी कि उनकी मां तो बचपन में ही मर गई थी। जिस दिन बुद्ध पैदा हुए, उसके सात दिन बाद मर गई; तो उसकी मां की बहन ने उन्हें पाला था। वह उनकी मां थी असली में, क्योंकि सात दिन में मां तो मर गई। बुद्ध ने उसी को मां की तरह जाना था। जब उसने दीक्षा के लिए प्रार्थना की, तो बुद्ध इनकार न कर सके। अपनी मां को कैसे इनकार करे!
तो उन्होंने कहा कि "ठीक है। मैं दीक्षा देता हूं। दीक्षा तो देता हूं, लेकिन याद रखनाः अगर स्त्रियों को दीक्षा न दी होती, तो मेरा भारत धर्म भारत में कम से कम पांच हजार साल चलता। अब अगर पांच सौ साल भी चल जाए, तो बहुत।"
और यह बात सच साबित हुई। पांच सौ साल भी नहीं चल सका। उखड़ गए। जब चीन में गए बौद्ध भिक्षु--तिब्बत में गए, और सीलोन गए, और बर्मा गए--भारत के बाहर बौद्ध धर्म को पहुंचाया, तो उन्होंने बदल डाला सारा।
बुद्ध ने भगवान के लिए कोई जगह न रखी थी, परमात्मा के लिए कोई जगह न रखी थी; भिक्षुओं ने बुद्ध को ही परमात्मा की जगह रख दिया और बुद्ध की प्रार्थना का उपाय खोल दिया और कहा कि बुद्ध की कृपा से सब हो जाएगा। तो टिका।
बहुमत जगत का भावुक है। अल्पमत ही है जगत का, जो भावशून्य है। इसलिए तुम्हें पता नहीं चलेगा, जब तक तुम प्रयोग न करोगे। प्रयोग करके ही अनुभव होगा। इसलिए कोई मुझसे आकर यह न कहे कि हमें जंचता नहीं। एक दफा अनुभव करके देखो। फिर न जंचे, तो बात ठीक है। लेकिन एक दफा निष्पक्ष अनुभव करके देखो, तो ही तुम्हें पक्का होगा। फिर न जँचे, तो यहां हमारे पास प्रयोग हैं--विपश्यना के, मौन ध्यान के झा-झेन के--जिसके द्वारा तुम यात्रा शुरू कर सकते हो।
अब तक दुनिया में दो ही तरह के धर्म रहे हैं--ध्यान के और प्रेम के। और
वे दोनों अलग-अलग रहे हैं। इसलिए उनमें बड़ा विवाद रहा। क्योंकि वे बड़े विपरीत हैं। उनकी भाषा ही उलटी है।
ध्यान का मार्ग विजय का, संघर्ष का, संकल्प का। प्रेम का मार्ग हार का, पराजय का समर्पण का। उनमें मेल कैसे हो।
इसलिए दुनिया में कभी किसी ने इसकी फिकर नहीं की दोनों के बीच मेल भी बिठाया जा सके।
मेरा प्रयास यही है कि दोनो में कोई झगड़े की जरूरत नहीं है। एक ही मंदिर में दोनों तरह के लोग हो सकते हैं। उनको भी रास्ता हो, जो नाच कर जाना चाहते हैं। उनको भी रास्ता हो; जो मौन हो कर जाना चाहते हैं।
अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल परमात्मा का रास्ता खोजना चाहिए।

आखिरी प्रश्नः भक्त की विरह-पशा के संबंध में कुछ और कहें।

भक्त की विरह-दशा अनूठा काव्य है। भक्त की विरह-दशा इस जगत में सबसे मीठी और प्यारी अनुभूति है। इस जगत में उससे ऊंची कोई दशा नहीं है।
विरह का अर्थ होता है कि प्रभु से बिना मिले अब एक क्षण भी जीने का मन
न रहा। जीवन हो तो उसके साथ, अन्यथा जीवन व्यर्थ है। जीवन हो तो उसके हाथ, अन्यथा जीवन व्यर्थ है। अब जीवन में कोई भी रस है और रंग है, तो सिर्फ एक ही आशा से है कि तुझसे कभी मिलन होने वाला है।
भक्त के लिए यह संसार सिर्फ प्रतीक्षालय हो जाता है। इस संसार में उसे कोई अर्थ नहीं रह जाता। अर्थ तो उसका "ऊपर" है, आकाश में छिपा है।
लेकिन यहां वह प्रतीक्षा कर रहा है कि कब तेरा मेघ घना हो औैर बरसे। वह अपने पात्र को लिए बैठा है।
जब तक उसका मेघ न बरसेगा; तब तक अपने पात्र से अपने आंसू ही भर रहा है।
विरह की दशा का इतना ही अर्थ है।
मगर इस दशा में बड़े ढंग और बड़े रंग होते हैं। इस दशा में बड़े भाव उठते हैं, अलग-अलग तरंगे उठती हैं, अलग-अलग घटनाएँ घटती है।
वो बादल सर पे छाए हैं कि सर से हट नहीं सकते
मिला है दर्द वो दिल को कि दिल से जा नहीं सकता
भक्त जानता है कि यह दर्द आखिरी है। यह दर्द ऐसा है कि इसका कोई इलाज नहीं। यह दर्द ऐसा है कि इसके लिए कोई औषधि नहीं।
कहते हैंः मजनू जब लैला के प्रेम में बिल्कुल पागल हो गया, तो चिकित्सक बुलाए गए। और जब चिकित्सकों ने उसकी नाड़ी हाथ में ली, तो वह खिलखिला कर हंसने लगा। पूछाः "क्या है? किसलिए हंसते हो?" तो उसने कहाः "यह ऐसा दर्द है, जिसकी कोई दवा नहीं। और यह दर्द ऐसा है कि इसे मैं छोड़ना भी नहीं चाहता। यह मेरा प्राण है; यही मेरा सहारा है। यह दर्द अभिशाप नहीं है, यह दर्द वरदान है।"
पर कई बार भक्त रुठ भी जाता है। कितना पुकारता है और कोई उत्तर नहीं आता! आकाश चुप का चुप; कहीं से कोई खबर नहीं आती कि उसकी प्रार्थना पहुंचती भी है या नहीं पहुंचती!
रामकृष्ण अकसर ऐसा करते थे कि दो-चार दिन के लिए बंद ही कर देते थे दरवाजा भगवान का। थे मंदिर के पुजारी और बंद कर देते; ताला मार देते। लोग पूछते भी कि "आप यह क्या करते हो--कभी-कभी पूजा इत्यादि बंद हो जाती है?" तो उन्होंने कहाः "एक सीमा है आखिर बरदाश्त की भी। अगर इसी तरह करेगा, तो हम भी बदला लेंगे। यह नाराजगी में कर देते है।"
उस नाराजगी में प्रार्थना ही है; इस नाराजगी में प्यार ही है।
प्रेमी रुठ जाते हैं। आखिर सीमा होती है। रामकृष्ण कहतेः "ज्यादती की
भी सीमा होती है। मैं रोज-रोज चिल्लाता, रोज-रोज चिल्लाता। सुनते ही नहीं। अब कर दिया ताला बंद। अब रहो बंद। अब न भोग लगेगा, न प्रार्थना होगी; न घंटी बजेगी, न दिया जलेगा। अब तड़फोगे। अब सोचोगे मन ही मन में कि रामकृष्ण आओ। तब आऊंगा।"
अपने गमखाने में बैठा हूं इस अंदाज से आज
जैसे मुझको तिरे आने की जरूरत न रही
ऐसा अकड़ कर भी कभी भक्त बैठ जाता है। मगर वह अकड़ भी प्रेम की ही है। जैसे प्रेमी चाहता है कि मनाए कोई; जैसे प्रेमी चाहता है कि मैं रुठूँ, तो प्रेयसी मनाए। प्रेयसी चाहती है कि मैं रुठूँ, तो प्रेमी मनाए।
तो भक्त का मार्ग तो प्रेम का मार्ग है। और भगवान मनाता है।
रामकृष्ण की पूजा से शायद परमात्मा उतना प्रसन्न न हुआ हो, जितना तब होता होगा, जब वे ताला मार देते होंगे। क्योंकि कितनी गहन आस्था है! परमात्मा के होने पर कितनी गहन श्रद्धा है! ताला मारने की हिम्मत उसे तो नहीं हो सकती, जिसके भीतर संदेह छिपा हो। वह तो करेगा। वह कहेगाः कही नाराज हो जाए! वह तो सोचेगा कि कुछ गड़बड़ हो जाए। वह तो औपचारिक है। उसकी औपचारिकता में इतनी हिम्मत नहीं हो सकती कि ताला मार दे।

रामकृष्ण तो भोग भगवान को लगाते थे, तो पहले खुद चख लेते थे। शिकायत
हो गई थी उनकी। लोग इकट्ठे हो गए कि "यह बात तो ठीक नहीं है; यह तो कभी सुना नहीं; किसी शास्त्र में उल्लेख नहीं है। पहले भगवान को भोग लगाओ, फिर खुद को! तुम पहले खुद को लगा देते हो!"
रामकृष्ण ने कहाः "तो फिर मैं पूजा नहीं करूंगा। क्योंकि मुझे पक्का याद है कि मेरी मां भोजन बनाती थी, तो पहले खुद चख लेती थी, फिर मुझे देती थी। क्योंकि वह कहती थी--अगर स्वादिष्ट ही न हो, तो बेटा, तुझे कैसे दूं! तो मैं तो बिना चखे नहीं भोग लगा सकता।"
लोग कहतेः "यह जूठा है?" वे कहतेः "जूठा हो या कि न हो, लेकिन पहले मैं
चख लूंगा। पहले हो तो मेरे परमात्मा के योग्य। कभी कभी ठीक नहीं होता, तो फिर मैं नहीं लगाता।"
यह बड़ी अनौपचारिक है, आंतरिक है, समीपता की है, प्रेम की है।
सादगी देख, कि बोसे की हवस रखता हूं
जिन लबों से कि मयस्सर नहीं दुशनाम मुझे
जिन ओंठों से मुझे कभी गाली भी नहीं मिलती, उनसे मैं चुंबन की आकांक्षा रखता हूं। मेरी सादगी देख।
भक्त बड़ा भोला है। उसके भोलेपन का ही परिणाम है कि एक दिन परमात्मा उसके प्राणों में उतरता है। उसकी सादगी ही उसे बुला लाती है; उसकी साधना नहीं--उसकी सादगी, उसकी सरलता। उसकी तपश्चर्या कुछ भी नहीं है; उसका निर्दोष भाव, उसका बच्चों जैसा भाव... । जैसे छोटा बच्चा अपनी मां की साड़ी को पकड़े घूमता रहता है--ऐसा भक्त परमात्मा का सहारा पकड़े रहता है।
दफ्न कर सकता हूं सीने में तुम्हारे राज को
और तुम चाहो तो अफसाना बना सकता हूं मैं
और भक्त कहता है कि तुम्हारा जो रहस्य मेरे ऊपर खुल रहा है; "दफन कर सकता हूं सीने में तुम्हारे राज को।" इसको मैं अपने भीतर छिपा कर रख सकता हूं--किसी की कानोंकान खबर न हो, पता न चले। "ओैर तुम चाहो तो अफसाना बना सकता हूं मैं।" लेकिन सब तुम्हारी मरजी। अगर तुम्हारी आकांक्षा हो, तो मैं गीत गुनगुनाऊं; दुनिया को खबर कर दूं कि मेरे भीतर क्या हुआ है। रोऊं जाकर बाजार में, और गाऊं जाकर बाजार में। "और तुम चाहो तो अफसाना बना सकता हूं मैं।"
लेकिन तुम्हारी चाह ही सर्वोपरि है। मेरी चाह कुछ भी नहीं; तुम जैसा चाहो। तुम चाहो तो ऐसा हो गुमनाम, चुपचाप मर जाऊंगा बिना कुछ कहे? किसी को खबर भी न होगी कि तुम मेरे हृदय में उतरे थे। और तुम अगर चाहो तो सारी दुनिया में खबर कर दूं कि परमात्मा से मेरा मिलन हो गया है। मगर तुम्हारी चाह... ।
कैद पीने में नहीं पी कर बहक ना जुर्म है
मैंने सकझा ही नहीं दस्तूर-ए-मैखाना अभी
भक्त को दो दशाएं हैं। एक तो ऐसे भक्त हैं, जो पी तो लेते हैं परमात्मा
की शराब, लेकिन कभी तुम उन्हें बहकते न देखोगे। सम्हले रहते हैं; तुम्हें पता ही नहीं चलेगा--उनकी बहक का। और एक ऐसे हैं कि पीने के बाद बहक जाते हैं। उनसे बड़े गीत उठते हैं, उनसे बड़ा संगीत उठता है। मीरा बहकों में से है! चैतन्य भी बहके हुओं में से हैं। पी गए--और फिर बहक गए।
कुछ हैं, जो पीकर चुप रह जाएंगे। घटना इतनी बड़ी है कि अवाक हो जाएंगे, मौन हो जाएंगे। सन्नाटा हो जाएगा। कुछ हैं कि घटना इतनी बड़ी है कि उनके आंगन में आकाश उतरा है--कि मस्त हो जाएंगे, नाचेंगे, गुनगुनाएंगे।
कभी नकल में मत पड़ना। कभी दूसरे का देख कर अनुकरण मत करना। अपने भीतर
का हृदय का भाव समझना और तुम्हारे भीतर जैसा हो, वैसा ही होने देना। जरा सा भी नकल की--कि चूक जाओगे। जरा-सा किसी और का अनुकरण किया--कि भूल हो जाएगी, पाखंड हो जाएगा।
दूसरे के आंसू बह रहे हैं, इसलिए तुम मत रोने लगना। तुम्हारे जब आंसू बहें, तभी रोना। दूसरा पायल हो रहा है--तुम मत होने लगना। क्योंकि ऐसा होता है। आदमी बड़ा नकलची है; वह हर चीज में नकल कर लेता है। वह विरह की भी नकल कर

लेता है; वह मिलन की भी नकल कर लेता है! नकल से लेकिन कोई संबंध नहीं है।
परमात्मा से जोड़ उसी का है, जो असल है, प्रामाणिक है।
तुम्हारा विरह तुम्हारा हो। तुम्हारा आनंद तुम्हारा हो। तुम्हारे आँसू तुम्हारे हों। तुम्हारी छाप, तुम्हारा हस्ताक्षर होना चाहिए। तुम दूसरे का अनुकरण मत करना।
यहां रोज ऐसा हो जाता है। कोई नाच रहा है, उसे देख कर कोई, जिसको नाच उठता ही नहीं, वह भी सोचता है कि शायद नाचने से कुछ होता होगा। वह भी नाचने लगता है। नाचने से कुछ नहीं होता; कुछ हो; तो नाच होता है। लेकिन कुछ हो तो... ।
देखता है--कोई रो रहा है, तो वह सोचता है कि शायद इसको कुछ हो रहा होगा। चलो, हम कोशिश करें। चेष्टा से आंसू ले आएं। आंसुओं से कुछ नहीं होता; कुछ हो, तो आंसू होते हैं।
या मुझको हाथों-हाथ लो मानिंद-ए-जाम-ए-मै
या थोड़ी दूर साथ चलो, मैं नशे में हूं
भक्त विरह की अवस्था में कहता है: हे परमात्मा, मेरा हाथ सम्हाल ले, क्योंकि मैं नशे की हालत में हूं।
या मुझको हाथों-हाथ लो मानिंद-ए-जाम-ए-मै
या थोड़ी दूर साथ चलो, मैं नशे में हूं
विरह के बहुत रंग हैं, बहुत रूप हैं। जितने विरही हैं, उतने रंग हैं, उतने रूप हैं। तुम्हारा विरह-तुम्हारा होगा। इसलिए तुम किसी भी विरह की भावदशा को आरोपित मत करना।
बहने दो। उठने दो। उठे--तो रोकना मत।
हम दो तरह की भूलें करते हैं। कुछ लोग चेष्टा करके करने लगते हैं। और कुछ लोग होता है, तो होने नहीं देते; उसे रोकते हैं। दोनों ही हालत में चूक हो जाती है।
जो हात है, उसे होने दो। कुछ भी गंवान पड़े--गंवाओ। जो होता है, उसे होने दो। दुनिया कुछ भी कहे, कहने की बहूत फिक्र मत करो। दुनिया से क्या लेना- देना है? दुनिया के मंतव्य का क्या मूल्य है?
लोग अच्छा कहेंगे, बुरा कहेंगे; होशियार कहेंगे, कि ना-समझ कहेंगे, नादान कहेंगे, कि दाना कहेंगे--इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। लोगों के कहने का मूल्य ही कुछ नहीं है। तुम तो अपनी सुनो, अपनी गुनो। तुम तो अपने बीच और परमात्मा के बीच किसी और को न आने दो। तो तुम जल्दी हो पाओगे कि तुम बढ़ने लगे--ठीक मार्ग पर।
अपने हृदय से ही सुन-सुन कर चलोगे, तो धीमी ही आवाज है हृदय की, मगर बड़ी
सच है। हृदय से कभी गलत इशारा नहीं उठता। क्योंकि हृदय से जो इशारे उठते हैं, वे परमात्मा के द्वारा ही उठाए गए होते हैं।
बुद्धि में संसार छाया है; हृदय में परमात्मा छाया है। बुद्धि में संस्कार, समाज, भीड़-भाड़, लोग, परिवार शिक्षा--इन सबका असर है। हृदय इनके बाहर है। हृदय अब भी परमात्मा के हाथ में है।
तुम अपने हृदय की सुनो, अपने हृदय की गुनो और तुम जल्दी पाओगेः जीवन में फूल खिलने की घड़ी करीब आने लगी। तुम जल्दी पाओगेः रोशनी जलने का क्षण करीब आने लगा।
संसार राख ही राख है--सच। लेकिन इस राख के बीच अगर तुम प्रार्थना से भर जाओ, तो फूल खिलते हैं। इस कीचड़ में भी कमल खिलते हैं।

आज इतना ही।

नहीं सांझ नहीं भोर
नौवां प्रवचन

मुक्ति का सूत्र

बहु बैरी घट में बसैं, तू नहिं जीतत कोय।
निस-दिन घेरे ही रहैं, छुटकारा नहिं होय।।
या मन के जाने बिना, होय न कबहूं साध।
जक्त-वासना ना छुटै, लहै न भेद अगाध।।
सरकि जाय बिष ओरहिं, बहुरि न आवै हाथ।
भजन माहिं ठहरै नहीं, जो गहि राखूं नाथ।।
इन्द्री पलटैं मन विषै, मन पलटै बुधि माहिं।
बुधि पलटै हरि-ध्यान में, फेरि होय लय जाहिं।।
तन मन जारै काम हीं, चित कर डांवाडोल।
धरम सरम सब खोय के, रहै आप हिय खोल।।
मोह बड़ा दुख रूप है, ताकूं मारि निकास।
प्रीत जगत की छोड़ दे, जब होवै निर्वास।।
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अम्बुज सर माहिं।
रहै नीर के आसरे, जल छूवत नाहिं।।
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों जिहवा मुख माहिं।
घीव घना भच्छन करै, तो भी चिकनी नाहिं।।
जा घट चिन्ता नागिनी, ता मुख जप नहिं होय।
जो टुक आवै याद भी, उहीं जाय फिर खोय।।
आसा नदिया में चलै, सदा मनोरथ-नीर।
परमारथ उपजै, बहै, मन नहिं पकरै धीर।।
अभिमानी मींजे गए, लूट लिए धन बाम।
निर अभिमानी हो चले, पहुँचे हरि के धाम।।
चरनदास यों कहत हैं, सुनियो संत सुजान।
मुक्तिमूल आधीनता, नरकमूल अभिमान।

अनाहत
एक गीत
मन में है तुम्हारे
एक तार पर सितार के
एक
नदी की लहर में है
एक प्राण में बयार के
एक
घास के मैदान में
हर-हर है
एक
जर्जर है
पीले गिरे पत्ते में
एक बीज में भी है
वैसा ही
जैसा तुम्हारे मन में है फूटेगा उतना ही
बीज के उर से वह अंकुर में निकल कर मन से
लहर रहा है जितना
सितार के तार पर।

मनुष्य एक वीणा है। अपूर्व संगीत की संभावना हे। लेकिन जहां संगीत की संभावना है, वहां विसंगीत की भी संभावना है।
सितार कुशल हाथों में हो, तो गीत पैदा होगा। अकुशल हाथों में हो, तो शोरगुल। सितार वही है, हाथ की कुशलता चाहिए कला चाहिए।
जीवन तो वही है; सभी के पास वही है। बुद्ध के पास वही, तुम्हारे पास वही; कृष्ण के पास वही, क्राइस्ट के पास वही। एक सा वीणा मिली है, और एक सा संगीत मिला है। लेकिन वीणा से संगीत उठाने की कला सीखनी जरूरी है। उस कला का नाम ही धर्म है।
तुम्हारे जीवन को जो संगीतमय कर जाए, वही धर्म। तुम्हारे जीवन में जो फूल खिला जाए, वही धर्म। तुम्हारे जीवन का जो कीचड़ से कमल बना जाए, वही धर्म।
और ध्यान रखना; क्षण भर को भी न भूलनाः बीज तुम में उतना ही है, जितना बुद्ध में। हो तुम भी वही सकते हो। न हो पाए, तो तुम्हारे अतिरिक्त कोई जिम्मेवार नहीं।
संभावना मिली है; संभावना को वास्तविक में बदलना ही साधना हे। और क्या साधना है? जो बीज की तरह पड़ा है तुम्हारे भीतर, वह फूटे, अंकुर बने, बड़ा वृक्ष बने। उसमें फूल आएं, उसमें पक्षी घर बनाएं; आकाश के बादल उसकी उत्तुंग शाखाओं से गुफ्तगू करें; चांद-तारे उसके साथ रास रचाएं।
बीज तो कंकड़ जैसा मालूम होता है। लेकिन मालूम ही होता है कंकड़ जैसा। कंकड़ को बोओगे, तो कुछ पैदा न होगा। बीज कंकड़ जैसा दिखाई पड़ता है, लेकिन एक संसार भीतर छिपा है, एक पूरा विश्व भीतर छिपा है।
वनस्पति शास्त्री कहते हैंः एक बीज मिल जाए, तो सारी पृथ्वी को हरियाली से भरा जा सकता है--इतना उसमें छिपा पड़ा है। एक बीज पर्याप्त है। एक बीज के वृक्ष में हजारों-लाखों बीज होंगे। फिर एक-एक बीज में फिर लाखों बीज होंगे। थोड़े ही दिनों में सारी पृथ्वी--सारी पृथ्वी क्या--सारा ब्रह्मांड--एक बीज, हरियाली और फूलों से भर दे सकता है।
छोटा सा बीज छोटा नहीं है। अण में विराट समाया है, ऐसा ही मनुष्य में परमात्मा छिपा है। तुम छोटे नहीं हो। तुम छोटे दिखाई पड़ते हो। दिखाई पड़ने की भ्रांति में मत पड़ जाना। जो दिखाई पड़ता है, वही सच नहीं होता। जितना दिखाई पड़ता है, उतना ही सच नहीं होता। सच तो वह है, जो तुम हो सकते हो। वही तुम्हारा वास्तविक होना है--जो तुम हो सकते हो। तुम्हारे भीतर अनंत भविष्य छिपा है।
"अनाहत एक गीत, मन में है तुम्हारे।" और ऐसा है यह गीत--अनाहत है; आहत नहीं है। कुंवारा है। सदा से कुंवारा है। सदा से शुद्ध है, शुद्ध है। जरा भी कोई कालिख उस पर न लगी है, न लग सकती है। जरा भी पाप उसे न छुआ है, न छू सकता है। लेकिन अप्रकट पड़ा है। उसकी अभिव्यंजना नहीं हुई। तुमने उसे पुकारा नहीं। तुमने उसका आहवान नहीं किया। तुमने उसे निमंत्रण नहीं दिया। तुमने उसकी तरफ आँख ही नहीं की।
तुम ऐसे ही जीए चले जा रहे हो, जैसे बाहर ही सब है। धन में, पद में, मद में, तुम ऐसे जीए चले जा रहे हो, जैसे बाहर ही सब है। बाहर कुछ भी नहीं है। बाहर तो बस, राख ही राख है। जो है--भीतर है।
सोना भीतर है, मिट्टी बाहर है। और जो बाहर में ही भटका रहा, उसे यह अनाहत गीत कभी सुनाई न पड़ेगा। और जिसने यह अनाहत गीत न सुना, उसने परमात्मा को न सुना। जिससे यह अनाहत गीत न सुना, उसके जीवन में उत्सव आया ही नहीं; वसंत आया ही नहीं। आने को तत्पर था, उसने बुलाया ही नहीं। आ भी गया था, द्वार पर भी खड़ा था, तो द्वार न खोले।
तुम पतझड़ में जाओगे, अगर तुमने भीतर के संगीत को न उठाया, न जगाया।
उस संगीत को कैसे जगाया जाए, उसकी ही कला के सारे सूत्र आज के चरणदास
के पदों में है इन पर ध्यान देना।
बहु बैरी घट में बसैं, तू नहिं जीतत कोय।
निस-दिन घेरे ही रहें, छुटकारा नहिं होय।।

पहली बात, मित्र भी भीतर है और शत्रु भी भीतर है। मित्र एक है, शत्रु अनेक है। इसे समझो।
सत्य तो एक होता है, असत्य अनेक होते है। असत्य तो जितने चाहो गढ़ लो। असत्य तो तुम गढ़ते हो, सत्य को तो गढ़ा नहीं जाता। सत्य को तो केवल अनुभव किया जाता है। सत्य तो है ही; उघाड़ना होता है, आविष्कार करना होता है--गढ़ना नहीं होता।
झूठ गढ़े जाते हैं। झूठ तुम बनाते हो। तो जितने चाहो, बना लो। लेकिन सत्य तो तुम्हारे हाथ के बाहर है; तुम उसे बना नहीं सकते--उघाड़ सकते हो, परदा उठा सकते हो।
और यह बात ख्याल में लेना कि सत्य एक है और असत्य अनेक हैं, जैसे स्वास्थ्य एक और बीमारियाँ अनेक हैं।
तुमने दो तरह के स्वास्थ्यों की बात सुनी? कोई भी स्वस्थ हो, स्वास्थ्य एक है। बच्चा हो कि बूढ़ा, स्त्री हो कि पुरुष, पशु हो कि पक्षी, जो भी स्वस्थ है, स्वास्थ्य का कोई विशेषण नहीं; बस स्वस्थ है। तुम उसे नाम न दे सकोगे। जब एक ही है, तो नाम कैसे दोगे? नाम की जरूरत तो तब पड़ती है, जब अनेक हों। बहुत हों, तो नाम देने पड़ते है, ताकि भेद हो सके। इसलिए तो परमात्मा का कोई नाम नहीं है।
परमात्मा एक है, उसका नाम कैसे हो? बहुत होते, तो नाम हो जाता। बहुत होते, तो नाम रखना ही पड़ता।
तो हम जो परमात्मा के नाम रख लिए हैं, वे तो हमारे कामचलाऊ नाम हैं।
राम कहो, हरि कहो, अल्लाह कहो, खुदा कहो, रहमान कहो, रहीम कहो--जो कहना हो; पर सब नाम हमारे ही ईजाद किए हुए हैं। उसका कोई भी नाम नहीं। वह अनाम है।
सत्य अनाम है, क्योंकि एक है। स्वास्थ्य अनाम है, क्योंकि एक है।
बीमारियों के बड़े नाम हैं। रोज-रोज खोज होती जाती है, नई-नई बीमारियां पकड़ में आती जाती हैं। बीमारियों को याद करना पड़ता है।
चिकित्सक पढ़ता है विश्वविद्यालय में, तो कितनी हजारो बीमारियों के नाम याद रखने पड़ते है! हजारों बीमारियों के लक्षण याद रखने पड़ते हैं। स्वास्थ्य का न तो कोई लक्षण है, न कोई परिभाषा है। स्वास्थ्य की परिभाषा तो बस, इतनी ही है--कि कोई बीमारी न हो। वह जो हजारो-हजारों बीमारियाँ हैं, वे न हों तो आदमी स्वस्थ होता है।
स्वास्थ्य की सीधी परिभाषा भी नहीं है। स्वास्थ्य की परिभाषा यही है
कि क्षयरोग न हो, कैंसर न हो, मलेरिया न हो--यह न हो, वह न हो--जब नहीं हो कोई बीमारी, तो जो शेष रह जाता है, वही स्वास्थ्य है।
स्वास्थ्य तो ऐसे है, जैसे शून्य। कमरे में कुछ भी न हो, फर्नीचर न हो, दीवाल घड़ी न हो, कपड़े-लते न हों, आलमारी न हो--कुछ भी न हो, तो शून्य होता है। ऐसे ही तुम्हारे भीतर जब कोई भी बीमारी नहीं होती, तो जो शून्य रह जाता है, वही स्वास्थ्य है।
और ऐसे ही जब तुम्हारे चित्त में कोई भी विचार नहीं रह जाता, तो जो शून्य रह जाता है, वही बुद्धत्व है। आत्मिक-स्वास्थ्य का नाम बुद्धत्व है। आत्मिक-स्वास्थ्य का नाम परमात्म-स्थिति है।
पहला सूत्र चरणदास काः "बहु बैरी घट में बसै, तू नहीं जीतत कोय।" और बहुत शत्रओं का वास है भीतर। जन्मों-जन्मों मे न मालूम कितने रोग पाल लिए हैं। न मालूम कैसे-कैसे रोगों से दोस्ती बना ली है। न मालूम कैसे-कैसे रोग आदत के हिस्से बन गए हैं। तोः "बहु बैरी घट में बसै, तू नहीं जीतत कोय।" और वह जो तू है, वही एक मित्र है। वह जो भीतर चैतन्य है, वही एक मित्र है। और वह चैतन्य न मालूम कितने शत्रुओं में घिरा है। काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, ईर्ष्या, मद-मत्सर--और न मालूम क्या-क्या। उन सब में घिरा है।
मित्र तो तुम्हारा एक ही है--चैतन्य, चेतना, बोध, साक्षी। लेकिन साक्षी बहुत रोगों में घिरा है। जहाँ भी तादात्म्य हो जाता है, वहीं साक्षी खो जाता है, वहीं रोग पकड़ गया।
क्रोध की लहर उठी, तुम क्रोध नहीं हो। तुम कभी क्रोध नहीं हो सकते।
तुम तो जानने वाले हो,

देखने वाले हो, जिसके सामने क्रोध उठता है, क्रोध का धुआं जिसके सामने फैलता है। जैसे आकाश में
बादल उठे। आकाश बादल नहीं है। या जैसे सूरज को चारों तरफ से काली बदलियों ने घेर लिया। सूरज
बदलियां नहीं है। ऐसे ही तुम क्रोध की बदलियां से घिर जाते हो।
लेकिन जब तुम क्रोध से घिरते हो, तो तुम यह भूल ही जाते हो कि मैं अलग-थलग, भिन्न हूं, कि मैं चैतन्य हूं। क्रोध के साथ एक ही हो जाते हो। तुम मान ही लेते हो कि यही मैं चैतन्य हूं। तुम क्रोध हो जाते हो। क्रोधमय हो जाते हो। तुम पर क्रोध की छाया ऐसी पड़ती है कि तुम्हें स्मरण ही नहीं रह जाता-- अपने अलग-थलग होने का, अपने भिन्न होने का। तादात्म्य हो जाता है क्रोध से। यही रोग है। रोग अनेक हैं। लेकिन सभी रोगों से जुड़ने का ढंग एक है। चाहे क्रोध से जुड़ो, चाहे मोह से, चाहे अहंकार से, चाहे किसी और बीमारी को पकड़ो, लेकिन पकड़ने का ढंग एक है। वह ढंग है--तादात्म्य।
जिस रोग के साथ तुम्हारा संबंध बन जाता है, तुम समझते हो--यही मैं हूं। बस, इस तादात्म्य को तोड़ने लगो, तो जीत शुरू हो जाती है। तादात्म्य बढ़ता जाए, तो हार होती चली जाती है।
"बहु बैरी घट में बसै, तू नहीं जीतत कोय।" बड़े दुश्मन घर में बसे हैं
और तू बाहर जीतने के लिए चला है! और घर भी हारा हुआ है। घर में ही पराजय छिपी है।
घर में ही विजय नहीं हो सकी है और तुम बाहर जीतने चले हो। संसार पर राज्य करने की आकांक्षा है!
आदमी के पागलपन ऐसे हैं। चाँद को जीतना है; मंगल को जीतना है; तारों पर जाना है। और अभी आदमी अपने भीतर गया नहीं। अभी आदमी ने अपने को जाना नहीं।
अभी यह जो भीतर रोशनी है, यह भी पहचानी नहीं।
लेकिन दूर के ढोल सुहावने लगते हैं, और दूर की यात्रा मन को पकड़ती है।
दूर को यात्रा इसलिए मन को पकड़ती है, क्योंकि मन के बैरी जो तुम्हारे भीतर छिपे हैं, उस यात्रा में जो छिपे हुए रोग हैं, इन सब से छूटना ही होता है।
ये छूट ही जाते हैं।
धीरे-धीरे मन मरने लगता है। एक-एक रोग मरा--कि मन मरा। जब सब रोग मर जाते हैं, तो तुम अ-मन की दशा में पहुंच जाते हो; मनातीत हो जाते हो। अतिक्रमण हो गया। भावातीत अवस्था आ गई। उस भावातीत अवस्था में ही तुम जानोगे कि मित्र कौन है।
महावीर ने कहा हैः "शत्रु भी तुम हो, मित्र भी तुम हो। शत्रु हो तुम--
जब तुमने गलत से अपने को जोड़ दिया। शत्रु हो तुम--जब तुमने अन्य से अपने को जोड़ लिया। शत्रु हो तुम, जब तुम जो नहीं थे, वैसा अपने को मान लिया।
जैसे दर्पण के सामने तुम जा कर खड़े हो गए और दर्पण मान ले कि तुम्हारा चेहरा जो दर्पण में प्रतिफलित हो रहा है, वही मैं हूं। ऐसी भ्रांति हो रही है।
चित्त तो दर्पण है, चैतन्य तो प्रतिफलन है। वहां तो जो भी सामने आ जाता है, उसी की छाया बनती है। लेकिन तुम हर छाया को पकड़ लेते हो। और छाया को पकड़ते रहते हो, इसलिए माया में बने रहते हो। इन छायाओं से जागना होगा।
फिर इन्हीं छायाओं में दबते दबते तुम्हारा चैतन्य बिल्कुल खो जाता है। फिर तुम्हें याद ही नहीं रहती अपनी, सुधि नहीं आती।

वह जिंदगी का अजीब अी गरीब मौसम था।
बहारें टूट पड़ी थी, सुहाने जिस्मों पर।।
नफस नफस में फुसूं था, नजर नजर में जुनू।
तसुव्वरे मए की सीमा में चूर-चूर बदन।।
में िफिकर अी नजर टिमटिमा कर डूब गए,
खुमार जहन पे छाया तो जिस्म जाग उठे।।
अँधेरा गहरा हुआ, कायनात बहरी हुई।
उभर कर सायों ने एक दूसरे को पहचाना।।

वह जिंदगी का अजीब औ गरीब मौसम था।
जब आदमी छायाओं में खो जाता है, जब छायायों को सत्य मान लेता है; वह जिंदगी की बड़ी अजीब घड़ी है। उसी को हम जवानी कहते हैं। उसी को हम संसार कहते हैं। उसी को हम अंधापन कहते हैं। "वह जिंदगी का अजीब औ गरीब मौसम था।" जब कभी जागोगे, तब पाओगे कि वह भी कैसी घड़ी आई थी। कैसे दुर्भाग्य की घड़ी थी और कैसी विचित्र घड़ी थी कि जो मैं वहीं था, वह मैंने अपने को समझ लिया था। कैसा मैं तो गया था--कि छायाओं को सत्य समझ लिया और सत्य मेरे हाथ से छूट गए!
जो जिंदगी का अजीब-औ-गरीब मौसम था।
बहारें टूट पड़ी थी, सुहाने जिस्मों पर।।
तुम कितने मूर्चिछत हो जाते हो, उतने ही तुम्हें सपने दिखाई पड़ने लगते हैं। सपना देखना हो, तो सोना जरूरी है।
सपने की पहली शर्त है--नींद। और जिसे तुम संसार कहते हो, यह सपना है।
इस संसार के सपने को देखने के लिए तुम्हें सोया होना जरूरी है।
बहारें टूट पड़ी थी, सुहाने जिस्मों पर
नफस-नफस में फुसूं था... ।
श्वास-श्वास में जादू छा जाता है, जब कामना का ज्वर पकड़ता है। जब वासना का ज्वर पकड़ता है, जब आँखे अंधी हो जाती है, वासना से तादात्म्य बन जाता है।
"नफस नफस में फुसूं था, नजर-नजर में जुनू।"--और एक उन्माद, एक पागलपन छा जाता है।
"तसुव्वरे मए की सीमा से चूर-चूर बदन।" और फिर पाप की मदिरा में शरीर बिल्कुल डूब गया।
"नजू में फिकर औ नजर टिमटिमा के डूब गए।" और वह जो पाप की मदिरा थी, वह
जो वासना की मदिरा थी, उसमें जब डूब गए, तो स्वभावतः दृष्टि और चिंतन के जो टिमटिमाते तारे थे, फिर दिखाई नहीं पड़ते थे।
तसव्वुरे मए की सीमा से चूर-चूर बदन
में िफिकर और नजर टिमटिमा के डूब गए।
फिर बोध के दिए बुझ गए।
"खुमार जिहनों पे छाया तो जिस्म जाग उट्ठे।" और फिर जब दिमाग, मस्तिष्क, बोध बेहोश हो जाएः "खुमार जिहनों पे छाया तो जिस्म जाग उट्ठे।" जितनी ही आत्मा सो जाती है, उतना ही शरीर जग जाता है; उसी मात्रा में। जिस मात्रा में आत्मा सो जाती है, उसी मात्रा में तुम शरीर हो जाते हो। जिस मात्रा में तुम परमात्मा नहीं रह जाते, उसी मात्रा में तुम पृथ्वी के वासी हो जाते हो।
खुमार जिहन पे छाया तो जिस्म जाग उट्ठे
अंधेरा गहरा हुआ कायनात बहरी हुई
और जैसे-जैसे ये छायाएं घनी होती गई और वासना की मदिरा बढ़ती गई, "अँधेरा गहरा हुआ, कायनात बहरी हुई।" वैसे-वैसे पूरा ब्रह्मांड जैसे बहरा हो गया। सब बहरापन हो गया।
"उभर के सायों ने इक दूसरे को पहचाना।" और फिर छायाएं एक दूसरे के प्रेम में पड़ी। फिर छायाओं ने एक दूसरे से संबंध बनाए। इन्ही को तुम गृहस्थी कहो, घर कहो, प्र्रियजन कहो, परिजन कहो--जो भी तुम नाम देना चाहो। यह छायाओं की दोस्ती है।
तुम अपने को नहीं जानते, अपनी पत्नी को कैसे जानोगे? तुम अभी भीतर बुझे हो, तुम बाहर कैसे देख सकोगे? निकटतम को भी नहीं देख पाए, अपने को नहीं पाए, तो किसको देख पाओगे और? बेटे को कैसे देखोगे? बेटी को कैसे देखोगे? तुम खुद भी अभी छाया हो, क्योंकि तुम खुद अभी सोए हो।
इस नींद में, इस मदिरा में दबे-दबे न तो चिंतन के कोई दीये जलते भीतर, न ध्यान के कोई दीए जलते भीतर। तुम छायाओं के साथ खेल में लग जाते हो।

इस छाया के खेल को हमने माया कहा है। माया का अर्थ हैः जैसा है, वैसा दिखाई नहीं पड़ता। और जैसा नहीं है, वैसा दिखाई पड़ता है। माया यानी भ्रांति।
बहु बैरी घट में बसै, तू नहिं जीतत कोय।
निस दिन घेरे ही रहैं, छुटकारा नहिं होय।।
यह कौन हूं मैं? यह तू कौन है? यह प्रश्न जिस दिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण
हो जाता है, उसी दिन जीत की तरफ पहला कदम उठता है।
सब से पहली खोज, सबसे बुनियादी खोज यही है कि मैं इस प्रश्न का उत्तर
पा लूं कि मैं कोन हूं। इस खोज के पहले तुम जो भी करोगे, गलत होगा। इस खोज के पहले तुम जहां भी जाओगे, गलत जाओगे। इस खोज के पहले कोई यात्रा हो ही नहीं सकती, सिर्फ भटकाव हो सकता है।
अंधेरी रात हो, तो सब से पहला काम हैः दीये को जला लेना। और रात बड़ी अंधेरी है और जिंदगी एकदम अंधेरे में भटक रही है। कुछ सूझता नहीं। दीये को जलाओ। और दीया एक ही काम आएगा--जिंदगी के अंधेरे में, वह तुम्हारे चैतन्य का दीया है।
शरीर तो केवल मिट्टी है। मिट्टी से उठा, मिट्टी में गिर जाएगा। "राख
ही राख है।" लेकिन शरीर को इस राख में संभावना छिपी है--एक ज्योति जगमगा सकती है। मिट्टी के दीये में भी ज्योति उतर सकती है--ऐसी ही तुम्हारे भीतर ज्योति उतर सकती है।
उस ज्योति को खोज लो, तो मित्र को खोज लिया। लेकिन वह ज्योति बड़े शत्रुओं से घिरी है। "निस-दिन घेरे ही रहैं छुटकारा नहिं होय।"
एक क्षण को भी मौका नहीं मिलता। एक से छूटे नहीं कि दूसरा पकड़ लेता है।
अपने चित्त की दशा का जरा ख्याल करना। कभी धन का सोचते, कभी पद का सोचते, कभी क्रोध से भर जाते, कभी लोभ से भर जाते। कभी मोह से भर जाते, कभी काम से भर जाते। खाली कभी होते हो? कभी क्षण भर का आकाश है? कभी थोड़ा विराम देते हो? ये बादल घेरे ही रहते हैं! ऐसा कभी तो हो कि थोड़ी देर के लिए कोई बादल न घिरे या थोड़ी सी संध मिल जाए।
देखते हो न, हिंदू अपनी प्रार्थना को संध्या कहते हैं। संध्या का मतलब होता है--संधि। थोड़ा सी खिड़की खुल जाए; थोड़ी सी संधि मिल जाए, तो संध्या हो गई।
एक बादल आए, दूसरा आए, उसके पहले थोड़ी-सी जगह खाली छूट जाए, चित्त थोड़ी देर के लिए विराम में हो, ताकि अपनी पहचान हो सके।
बादल न हो, तो सूरज अपने को जान ले। बादल होते हैं, तो बादलों को ही जानता रहता है।
दर्पण थोड़ी देर को खाली हो--कोई प्रतिबिंब न बने, तो दर्पण अपने को जान
ले कि मैं कौन हूं? लेकिन प्रतिबिंब का धारा की तरह बहाव चलता है। एक गया नहीं--कि दूसरा आया। रेला-पेल, धक्कम-धक्का मचा है। कोई न कोई दरवाजे पर खड़ा ही है। कोई न कोई छाया बनती ही रहती है।
ध्यान का इतना ही अर्थ है कि चौबीस घड़ी में कभी थोड़ी देर के लिए कुछ क्षण निकाल लो, जब न क्रोध पकड़े, न मोह पकड़े, न माया, न लोभ पकड़े।
कुछ घड़ी निकल लो, जब तुम खाली बैठ जाओ, कुछ भी न करो। बैठते-बैठते किसी दिन वह घड़ी आ जाती है--क्षण भर को ही सही, संध ही सही, छोटी सी संधि--जब तुम पाते होः रास्ता बंद है, रास्ते पर कोई नहीं गुजर रहा। एकदम सन्नाटा है। उसी सन्नाटे में चेतता अपनी करफ लौट आती है। उसी सन्नाटे में अपनी झलक मिल जाती है।
जब कोई सामने नहीं होता, तभी अपनी झलक मिलती है। जब तक कोई सामने होता है, आँखे उससे अटकी रहती हैं। जब कोई विषय भीतर नहीं होता, तब तुम अपने को जानते हो।
जब तक तुम कुछ और जानने को है, तब तक तुम्हारा जानना उसी में उलझा रहता है। जब कुछ भी जानने को नहीं, तो जानना अपने पर लौट आता है।

उस जानने का अपने पर लौट आना ध्यान है। इसलिए महावीर ने ध्यान को प्रतिक्रमण कहा है--अपने पर लौट आना। जीसस ने कनवर्शन कहा है--अपने पर लौटा आना। सुफी "तौबा" कहते हैं--अपने पर लौट आना।
तुम हो, लेकिन बदलियों से धिरे हो। और एक बार तुम्हें इस बात का अनुभव होना ही चाहिए कि बदलियों के अतिरिक्त तुम क्या हो। बदलियां न हों, तो तुम क्या हो। वही अनुभव तुम्हारे भीतर छिपे मित्र को प्रकट करता है।
उस अनुभव के बाद फिर शत्रु तुम्हें धोखा न दे सकेंगे। फिर तुम्हें पहचान आ जाएगी।
बहु बैरी घट में बसै, तू नहिं जीतत कोय।
निस-दिन घेरे ही रहैं, छुटकारा नहिं होय।।
या तो अपने को पा लो, तो शत्रुओं पर विजय हो गई। या शत्रुओं पर विजय पा लो, तो मित्र से मिलना हो गया। यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इन्हें अलग-अलग मत सोचना। ए एक ही साथ घटने वाली घटनाएँ हैं। यह एक ही घटना को दो ढंग से देखना है।
ऐसा समझो कि दीया, जलाया अँधेरा चल गया। अब चाहे तुम ऐसा कहो कि अंधेरा चल गया,
दीया जल गया। या ऐसा कहो कि दीया जल गया, अंधेरा चल गया। मगर दोनों एक साथ घट हैं। ऐसा थोड़े ही होता है कि दीया जला, और फिर थोड़ी देर अंधेरा रुकता है; विचार करता है कि जाऊं कि न जाऊं; कि थोड़ी देर और रुकूं; कि मैं इतने दिन का वासी और यह दीया अभी-अभी आया और कब्जा करने लगा इस स्थान पर! कि अदालत में मुकदमा लडूं; कि शोरगुल मचाऊं कि मेरे घर में कोई कब्जा किए ले रहा है। और मैं इतना पुराना वासी!
नहीं, अंधेरा कुछ भी नहीं कहता। दीया जला, अंधेरा नहीं हुआ। उसी क्षण; तत्क्षण; एक क्षण की भी देरी नहीं होती।
ये एक ही घटना के दो पहलू हैं। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
ऐसा ही भीतर भी होता है। इधर शत्रु गए, इधर मित्र मिला। इधर मित्र मिला, वहां शत्रु गए, दोनों एक साथ कभी नहीं होते--यह तुम याद रखना। काम है, मोह है, लोभ है, क्रोध है--ये हैं, तो तुम्हें मित्र का कोई पता नहीं। मित्र है, तो शत्रु का कोई पता नहीं।
जैसे-जैसे तुम जाओगे--अपने भीतर के असली मित्र में--वैसे-वैसे तुम पाओगेः शत्रु गए।
बुद्ध ने कहा हैः चोर घुसते है उस घर में, जिसमें मालिक सोया होता है।
दिन में चोरी करने नहीं आते, रात में आते है। मालिक का सोया होना जरूरी है।
मालिक सोया हो, तो ही चोरी हो सकती है। मालिक जागा हो, तो फिर नहीं आते। ऐसे ही तुम जब जागे होते हो, तो शत्रु नहीं आते।
तुम्हारे जागरण में ही तुम्हरी जीत है। जागरण ही जीत है। इसलिए "जीत" शब्द से कुछ गलती मत समझ लेना।
"जीत" शब्द में खतरा है। आदमियों के सभी शब्दो में खतरा है। शब्द बोले--कि जोखम। अब जैसे सुन लिया कि जीतता है। लड़ने लगे क्रोध से। भूल हो जाएगी। फिर तुम समझे नहीं। वह जीतने का रास्ता नहीं है।
क्रोध से लड़े, तो क्रोध से और उलझ जाओगे। जिससे लड़ोगे, उसी जैसे हो जाओगे। शत्रु बहुत सोच-विचार कर चुनना। जिससे लड़ते हो, उसी जैसे हो जाओगे। अगर क्रोध से लड़े, तो क्रोधी हो जाओगे। अगर काम से लड़े, तो कामी हो जाओगे।
क्योंकि जिससे लड़ोगे, उसका रंग तुम्हारी देह से लग जाएगा। जिससे जूझागे सतत, उससे भिन्न नहीं रह जाओगे।
यह बड़े मजे की घटना है। तुम अकसर पाओगे कि अगर दो दुश्मन जिंदगी भर एक दूसरे से लड़ते रहे, तो आखिर में उनका चरित्र एक जैसा हो जाता है।
यह तो राजनीति के जगत में रोज घटता है। एक पार्टी सत्ता में होती है; दूसरी पार्टी उसके खिलाफ लड़ती है। वर्षो लग जाते है उसको, सत्ता से हटाने में। लेकिन जब तक हटाने का मौका आता है, तब तक
दूसरी पार्टी उसी जैसी हो गई।

इंदिरा में और मोरारजी में कोई फर्क देखते हो? इन पांच महीनों में कुछ
भी फर्क हुआ? वे ही के वे ही लोग! वैसे के वैसे लोग। और आश्चर्य की बात है कि जयप्रकाश नारायण इसको पूर्ण क्रांति कहते हैं!
यह कैसी पूर्ण क्रांति है? वे ही के वे ही लोग। वैसे के वैसे ढंग। वैसा
का वैसा रंग। वही व्यवस्था--वही सरंजाम। सब वही का वही है और पूर्ण क्रांति हो गई? कहीं कोई पत्ता भी नहीं हिला और पूर्ण क्रांति हो गई?
तीस साल जो लोग कांग्रेस से लड़ते रहे, वे कांग्रेस जैसे हो गए। उनमें कुछ भेद नहीं रहा। ऐसा यहीं हुआ, ऐसा नहीं है।
रूस में क्रांति हुई। वर्षों तक संघर्ष चला। और चमत्कार की बात यह थी
कि जो लोग जार के खिलाफ लड़े--लेनिन, स्टैलिन, ट्राटस्की--जब उनके हाथ में सत्ता आई, तो वे जार जैसे ही सिद्ध हुए। जरा भी फर्क नहीं। जार की ही प्रतिमाएं हैं--प्रतिलिपियां! शायद जार से भी ज्यादा खतरनाक सिद्ध हुए। क्योंकि जार से लड़ते-लड़ते जार का ढंग सीख लिया। उससे लड़ना है, तो उसका ढंग सीखना ही होगा।
जब तुम किसी से लड़ोगे, तो उसके दॉव-पेंच सीखने होंगे; नहीं तो लड़ोगे कैसे? उसकी चालें सीखनी होंगी; नहीं तो लड़ोगे कैसे? धीरे-धीरे तुम उसी जैसे हो जाओगे। इसलिए दुनिया में क्रांति नहीं हो पाती।
कितनी क्रांतियाँ हुई--और सब असफल गईं! आज तक कोई सफल क्रांति नहीं हुई। और कारण? कारण बड़ा मनोवैज्ञानिक हैः जिससे लड़ते हो उसी जैसे हो जाते हो, इसलिए तुम अकसर पाओगे कि जो आदमी अहंकार से लड़ेगा, बड़ा अहंकारी हो जाएगा। हालांकि वह कहेगा कि मैं विनम्र हूं मैं विनीत हूं। लेकिन उसकी विनम्रता की घोषणा में भी अहंकार को ही घोषणा होगी।
और जो आदमी क्रोध से लड़ेगा--और क्रोधी हो जाएगा। जो आदमी अशांति से लड़ेगा--और अशांत हो जाएगा। तुम जानते हो... ।
तुम चारों तरफ आंख खोल कर देखो। जो आदमी जिससे लड़ रहा है, वैसा ही हो जाता है। लड़ने में जुड़ना पड़ता है, पास आना पड़ता है। लड़ना एक तरह का गहरा संबंध है। इसलिए जीत का अर्थः लड़ना मत समझना। जीत का अर्थ है--जागना। लड़ना तो है ही नहीं।
लड़ने का मतलब यह है कि तुमने यह स्वीकार कर लिया कि दुश्मन का तुम पर
बल है, तो ही लड़ना होता है। छाया से तो कोई लड़ता नहीं।
माया से तो लड़ोगे कैसे? जो है ही नहीं, उससे लड़ना क्या है? जागने का अर्थ हैः जानना है--लड़ना नहीं। पहचानना है--लड़ना नहीं। प्रत्यभिज्ञा करनी है कि क्या क्या है।
यह क्रोध वस्तुतः क्या है--इसको जाग कर देखना है। उसी जागने में तुम्हारे भीतर जो शिखर उठता है--होश का--क्रोध का धुआं विसर्जित हो जाता है।
क्रोध के लिए बेहोश होना जरूरी है। होश में तुम क्रोध कर ही न पाओगे।
कोशिश करना। यह असंभव है। कभी अब तक कोई कर नहीं पाया। अगर तुम कर लो, तो तुमने चमत्कार किया।
होशपूर्वक क्रोध होता ही नहीं। जैसे ही होश आएगा, क्रोध सरक जाएगा।
और जैसे ही क्रोध आएगा, होश सरक जाएगा। दोनों साथ नहीं होते। जैसे दीया और अंधेरा दोनों साथ नहीं होते।
इसलिए लड़ना क्या है! होश को जगा लेना है। होशपूर्ण बनना है।
तो मेरे इस शब्द को खूब हृदय में सम्हाल कर रखनाः जागने में जीत है।
लड़ने में तो हार है।
बहु बैरी घट में बसै, तू नहिं जीतत कोय।
निस दिन घेरे ही रहैं, छुटकारा नहिं होय।।
या मन के जाने बिना, होय न कबहूं साध।
जक्त-वासना ना छुटे, लहै न भेद अगाध।।
सुननाः "या मन के जाने बिना"... तो जीतने का सूत्र है--जानना।

"या मन के जाने बिना, होय न कबहूं साध।" कोई साधु नहीं हो सकता--इस मन
को जाने बिना। साधु यानी सरल। साधु यानी सुंदर। साधु यानी निर्दोष। साधु यानी पवित्र। कोई साधु नहीं हो सकता--मन को जाने बिना।
मन से लड़ना नहीं है; जीतना जरूर है। लेकिन जीतना तो तभी हो सकता है, जब जानना हो--जागना हो। लड़ने से नहीं... ।
"जक्त-वासना ना छुटे, लहै न भेद अगाध।" और जब तक जगत की वासना न छूट जाए, तब तक उस अगाध का, अपरंपार का, असीम का कोई भेद पता नहीं चलता।
जगत यानी क्षुद्र की वासना--कि थोड़े पैसे और हो जाएं। कि थोड़ी जमीन और बड़ी हो। कि थोड़ा मकान और बड़ा हो जाए।
क्षुद्र की वासना यानी जगत की वासना। विराट की वासना यानी प्रार्थना--अगाध।
दुनिया में दो ही तरह के लोग हैंः क्षुद्र के चाहने वाले--जिनका प्रेम क्षुद्र से हैं। दस रुपये हैं, तो ग्यारह कैसे हो जाए। जो निन्यानबे के चक्कर में हैं। और यह निन्यानबे का चक्कर कितना ही चलाते रहो, यह कभी पूरा नहीं होता। यह हो ही नहीं सकता। इसीलिए इसको "चक्कर" कहते हैं। यह चाक है, जो घूमता ही चला जाता है। इसका कोई अंत नहीं है।
आज दस रुपये हैं, तो ग्यारह चाहिए। कल दस हजार होंगे, तो ग्यारह हजार चाहिए। और कल दस लाख हो जाएंगे, तो ग्यारह लाख चाहिए। बात वैसी की वैसी बनी रहेगी। तुम्हारी बेचैनी वही की वही बनी रहेगी। तुम्हारा तनाव वैसा का वैसा। तुम्हारी दौड़ वैसी की वैसी। तुम्हारा पागलपन वैसा का वैसा।
यह मत सोचना कि ग्यारह होने से हल हो जाएगा। ग्यारह होने के पहले ही बारह की आकांक्षा आ जाएगी। इसलिए उसको "निन्यानबे की चक्कर" कहते हैं। यह कहानी तुम्हें पता है?
एक सम्राट बड़े सोच-विचार में था कि उसके पास इतना सब कुछ है, लेकिन चैन नहीं। और उसकी मसाज करने, मालिश करने रोज जो नाई आता था, वह बड़ा मस्त आदमी था। उसको एक रुपया मिलता था रोज। उन जमानों में एक रुपया बहुत बड़ी बात थी। खुद खाता था, पड़ोसियों को खिलाता था। मित्रों को निमंत्रण देता था। एक रुपया बहुत था।
रोज एक रुपया मिल जाता था। सुबह घंटे भर आकर सम्राट की मालिश कर जाता
था; एक रुपया लेकर घर चला जाता था। कोई चिंता फिकर न थी। मस्त रहता था। दूसरे दिन फिर आ जाएगा सुबह। फिर मेहनत कर लेगा घंटे भर। फिर एक रुपया मिल जाएगा।
शतरंज जमी रहती उसके घर में। कहकहा लगा रहता। सामने ही रहता था सम्राट के। सम्राट को बड़ी बेचैनी होती थी कि ऐसा कहकहा मैं भी नहीं लगा पाता। ऐसे मित्रों को मैं भी नहीं बुला पाता। चिंता है, हे और इस गरीब के पास कुछ भी नहीं है। बस, एक रुपया इसको मिलता है--वही है। दूसरे दिन के लिए भी कुछ इंतजाम नहीं है।
उसने अपने वजीर से कहा, "इसका राज क्या है--खुशी का?" वजीर ने कहा, "जल्दी जाहिर हो जाएगा।"
वजीर गया और निन्यानबे रुपये एक थैली में रख कर उस गरीब से घर में फेक आया।
दूसरे दिन सुबह जब वह आया, तो वह मस्ती न थी। हाथ-पैर तो दाबे, लेकिन वह ताकत न थी। सम्राट ने पूछा, "आज उदास हो, ऐसी उदासी कभी देखी नहीं। कुछ चिंतित मालूम पड़ते हो। रात सोए नहीं? आंख कुछ लाल-लाल, थकी-थकी... ?" अब आप पूछते हैं, तो बता दूं। बड़ी झंझट में पड़ गया हूं। न मालूम कौन मेरे आंगन में निन्यानबे रुपये, रख कर एक थैली में, फेंक गया। तो रातभर मैं सो न पाया। बार-बार सोचताः निन्यानबे रुपये! आह! मजा आ गया। पर विचार मन में उठता है कि अब निन्यानबे को सौ कैसे कर ले। तो मैंने यही तय किया कि कल सुबह जो एक रुपया मिलेगा, अब कल दावत इत्यादि नहीं देंगे। बचा लेंगे। पूरे सौ तो हो जाए।"
मन की ऐसी आदत है कि निन्यानबे हों, तो सौ करना चाहता है। जैसे सौ होने
से कुछ हो जाएगा!

"इसलिए रातभर सो नहीं पाया और आज थका-थका हूं। सम्राट ने कहाः ठीक।
दो चार दिन में ही वह आदमी तो सूखने लगा। सम्राट ने कहा, "बात क्या है? तुम्हारा सब मौज, तुम्हारा सब रस सूखा जाता है?" उसने कहा, "वह थैली मेरी जान ले रही है। एक रुपया बचा लिया, तो मन में ख्याल उठा कि अब सौ तो हो ही गए। अब मैं भी कोई छोटा-मोटा धनी तो हो ही गया। अब धीरे से एक सौ एक कर लूं। फिर एक सौ दो कर लूं। ऐसे मेरा मन बढ़ता जा रहा है--कि कब दो सौ हो जाए।" महीना पूरा होते-होते तो वह आदमी अधमरा हो गया। सम्राट ने उससे कहा, "पागल, अब तो तेरी हालत मुझसे भी ज्यादा खराब हो गई! अब तो तू मालिश करता है, तो तेरी ताकत का पता हो नहीं चलता। अब तेरे घर से कहकहे नहीं उठते? अब तेरे घर में बांसुरी नहीं बजती? अब रात तेरे घर में दीया भी नहीं जलता?" उसने कहा, "कैसे जलाऊं मालिक। तेल खर्चा हो जाता है--फिजूल का। मित्र
भी नहीं आते, क्योंकि उनको खिलाओ-पिलाओ। बांसुरी भी रख दी है। अब तो फिकर एक ही लगी है--कि कैसे हजार रुपये हो जाए।"
इस कहानी से यह शब्द प्रसिद्ध हो गया--"निन्यानबे का चक्कर।" और सभी निन्यानबे से चक्कर में है।
या मन के जाने बिना, होय न कबहूं साध।
जक्त वासना ना छुटै, लहै न भेद अगाध।।
जो क्षुद्र की वासना में पड़ गया, वह फिर अगाध के भेद को नहीं जान पाता।
वह फिर परमात्मा से अपरिचित रह जाता है। और अभागा है वह, जो परमात्मा से अपरिचित रह जाए। क्योंकि वही है महोत्सव, वही है आनंद; वही है सत्य, वही है सुंदर, वही है अमृत।
चांदी के ठीकरों में, कि कागज के नोटों सें, कि जमीन-जायदाद के झगड़ों में उसे गंवा दोगे? मगर जब तक तुम मन को न समझ लो, मन की चालें न समझो, तब तक गँवा ही दोगे।
तो पहला सूत्र हुआः मन को जानना है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी बेटी की शादी की। बेटी की शादी पूरी हो गई,
तो शादी के बाद उसने अपने दामाद को गले से लगा लिया और बड़े प्रेम से कहा, "आह! बेटे, आज तुम संसार के दूसरे नंबर के सुखी आदमी हो, क्योंकि तुमने मेरी बेटी से शादी करनी चाही और हो गई।"
दामाद थोड़ा चौंका। आश्चर्य से उसने पूछा, "जी, मैं पहले नम्बर का सुखी क्यों नहीं?" मुल्ला ने कहा, "वह तो न पूछो तो अच्छा। क्योंकि पहले नम्बर का सुखी तो मैं हूं, जो यह बला टाल सका।"
इस दुनिया में पहले नंबर के सुखी हो, तो ही सुखी हो। यह संसार की बला
टल सके तो। नम्बर दो का सुखी, तो दुखी ही है। नंबर दो में कुछ मजा नहीं है। यह संसार की वासना, जगत-वासना, मेरे पास ज्यादा हो, यह जगत-वासना है। मैं होऊं--यह जगत-वासना से मुक्ति है।
ज्यादा की दौड़--जगत। और ज्यादा--और ज्यादा। और--और की दौड--जगत। इसका कोई अंत नहीं है। यह बढ़ती ही जाती है। तुम कितना ही इकट्ठा कर लो, यह कम नहीं होती।
इस दौड़ से जो जाग गया, जिसने यह देख लिया कि यह तो मन का ढंग ही है, यह
तो मन की चाल ही है कि वह मांगता है--और। जिसे यह समझ में आ गया कि मन तो और मांगता ही जाएगा; और "और" के कारण मैं दूखी हो होता रहूंगा, उसके जीवन में एक नई क्रांति का सूत्रपात होता है।
चांदी का यह देश, यहां के छलिया राजकुमार,
सोच-समझ कर करना पंथी, यहां किसी से प्यार, हृदय व्यापार
यहां किसे अवकाश, सुने जो तेरी करुणा-कराहें,
तुझ पर करें बयार, यहां खाली हैं किसकी बाहें,
बादल बन कर खोज रहा तू, किसको इस मरुथल में
कौन यहां व्याकुल हो जिसकी, तेरे लिए निगाहें,
फूलों की यह हाट, लगा है मुसकानों का मेला,
कौन खरीदेगा तेरे, घायल आंसू दो चार। सोच-समझ क करना पंथी, यहां किसी से प्यार।।

यहां प्रीति की मांग घृणा से ही पूरी हो जाती है,
हाय हृदय देकर भी दुनिया, अंगारे पाती है,
सर्वस लेकर भी, न शलम को शमा कफन तक देती है
रोज कली के लिए भ्रमर की अरथी अकुलाती है
यहां सूर्य के शव पर दीपावली मनाती संध्या
और सांझ की बुझी चिता पर, करता चांद विहार।
सोच-समझ कर करना पंथी, यहां किसी से प्यार, हृदय व्यापार।।
देख हलाहल बांट रही है, मधु कह कर मधुबाला,
और आग के फूल छिपाए लहरों की हर माला,
बुलबुल का दिल चीर, देख वह छली गुलाब खड़ा है,
लिए निशा की लाश, आ रहा है हंसता उजियाला,
पीने ही को प्यास धरा की, घिरती यहां घटाएं,
लाने को पतझार चमन में, करती नित्य बहार।
सोच समझ कर करना पंथी, यहां किसी से प्यार।।
डाले हुए रूप का घूंघट कड़ी खड़ी यहां निष्ठुरता, पिए प्रणय का रक्त थिरकती इठलाती सुंदरता, अरे कली की भोली चोली में विषधर बैठा है,
और प्यार की सरल गोद में छिप छल अभिनय करता,
एक किरण दे यहां हजारों दीप बुझाती ऊषा
एक बूंद बरसा करता घन सौ सौ वज्र प्रहार
सोच-समझ कर करना पंथी, यहां किसी से प्यार।।
चांदी का यह देश, यहां के छलिया राजकुमार।
सोच-समझ कर करना पंथी, यहां किसी से प्यार हृदय व्यापार।।
मन को समझो। मन की समझ से ही तुम्हें संसार के बाबत समझ पैदा होगी।
क्योंकि वस्तुतः तुम्हारे मन का फैलाव ही संसार है।
संसार की जड़ें तुम्हारे मन में हैं। इसलिए संसार से मत लड़ने लगना। उस भूल में मत पड़ना।
संसार की जड़ें तुम्हारे मन में हैं। संसार से लड़ना ऐसे होगा, जैसे वृक्ष को कोई ऊपर से काट दे और जमीन में जड़ें, तो छिपी पड़ी हैं। फिर नये अंकुर निकलेंगे। फिर नया वृक्ष पैदा होगा।
इसलिए जो लोग संसार से लड़ते हैं, वे मूल से नहीं लड़ते। वे पत्तों से उलझते रहते हैं।
इसलिए मैं अपने संन्यासियों को नहीं कहता कि संसार से छोड़कर भागो। न चरणदास कहते हैं। मैं कहता हूंः छोड़ कर कहीं जाना नहीं है। अपने मन को समझ लेना है।
और संसार में मन को समझने की जितनी सुविधा है, उतनी हिमालय की गुफाओं में नहीं। क्योंकि हिमालय की गुफाओं में मन को प्रकट होने का मोका न रह जाएगा। समझोगे कैसे? समझने के लिए मन की अभिव्यक्ति चाहिए। यहां रोज-रोज मौका है। यहां प्रतिपल मौका है। यहां कदम-कदम मौका है।
कोई गाली दे गया, और मन क्रोध से भर जाता है। एक मौका मिला ध्यान का। अगर तुम में जरा भी समझ हो, तो तुम उस आदमी पर नाराज न होओगे। उसे धन्यवाद देने जाओगे--कि तुने मुझे ध्यान का मौका दिया। क्रोध भीतर पड़ा था, तू गाली न देता, तो मुझे पता ही न चलता। वह भीतर ही पड़ा रहता और सदा-सदा उस जहर का मेरे भीतर फैलाव होता रहता। तूने गाली दे दी; जो भीतर दबा था, बाहर आ गया। मुझे उसका होश आया। मुझे मौका मिला। मैं जाग कर देख सका। और छुटकारे की संभावना बनी।
किसी सुंदर स्त्री को देख कर मन में वासना उठ गई। किसी का बड़ा भवन देख
कर मन में कामना उठ गई। ये अवसर हैं। इन अवसरों को ध्यान में बदलने की कला ही संन्यास है।
या मन के जाने बिना, होय न कबहूं साध।
जक्त वासना ना छुटै, लहै न भेद अगाध।।

और मन समझाएगा कि मुझे समझो मत। समझने में क्या सार है? मुझे जीयो। मन कहेगाः मैं जो कहूं--मानो। मैं जो कहूं--मेरी सुनो। मुझे समझने इत्यादि की झंझट में न पड़ो।
आज वसंत की रात,
गमन की बात न करना!
धूल बिछाए फूल बिछौना,
बगिया पहने चांदी-सोना
कलियां फेके जादू-टोना,
महक उठे सब पात
हवन की बात करना!
आज वसंत की रात
गमन की बात न करना!
मन ऐसे ही समझाएगाः "आज वसंत की रात"... अभी कहां मृत्यु की बात उठा दी। अभी तो जवान हूं, अभी कहां संन्यास की बात उठा दी? अभी तो जिंदगी में बहुत करना है, अभी कहां ध्यान की बात उठा दी?
मन हजार-हजार तरह समझाएगा कि अभी तो भोग लो। थोड़ा तो भोग लो। जागना ही
हो, तो बाद में जाग जाना। इतनी जल्दी भी क्या है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः संन्यास तो लेना है, लेकिन अभी नहीं। अभी तो मेरी उम्र केवल पचास वर्ष है!"
लोग मुझसे आकर कहते हैं कि "शास्त्रों में तो लिखा हैः संन्यास लेना चाहिए अंतिम समय में। आप क्यों युवा लोगों को भी संन्यास दे देते हैं? संन्यास तो लेना चाहिए वृद्धावस्था में। वह तो अंतिम आश्रम है!"
आदमी हजार बहाने खोजता है--सत्य को झुठलाने के।
कल का भरोसा नहीं है। संन्यास लेंगे, जब वे पचहत्तर साल के हो जाएंगे!
कल का भरोसा नहीं है।
इस असुरक्षित जीवन में मन की बातों को मान कर मत रुक जाना।
मन तुम्हारा शत्रु है; मन तुम्हारा मित्र नहीं है। अब तक तुम भटके हो, क्योंकि शत्रु की मान कर चले हो।
मन रोशनी नहीं चाहता। मन अंधेरा है। मन रोशनी से डरता है। मन रोशनी के पास नहीं जाना चाहता। मन रोशनी से भागता है। स्वाभाविक है।
अगर मन अंधेरा है, तो रोशनी से डरेगा। इसलिए मन सब तरह के उपाय करेगा। तर्क देगा, योजनाएं बताएगा। कहेगा--कि ठीक है, संन्यास भी लेना है, तो ले लेना। अभी क्या जल्दी है?
आज वसंत की रात,
गमन की बात न करना!
धूल बिछाए फूल बिछौना,
बगिया पहने चांदी-सोना
कलियां फेके जादू-टोना,
महक उठे सब पात,
हवन की बात न करना!
आज वसंत की रात,
गमन की बात न करना!
लेकिन यह वसंत आ भी नहीं पाएगा और चला जाएगा। और यह वसंत पतझड़ अपने में छिपाए है। और यह जवानी बुढ़ापे को अपने में लिए बैठी है। और यह जिंदगी मौत का आवरण है।
पत्थर पर बिछी हुई
सूरज की किरन
फूल में जाने कहां से आकर
फूटा हुआ रंग
शिवालय के स्वर्ण कलश पर काफी अरसे बैठी
निश्चल चील

और इन सब के साथ
मन में लहराती हुई-सी
एक झील
जी होता है
इन सब को अपना कहूं
या समय के डर के मारे
इन सब को सपना कहूं?
दोनों ही बातें प्रतिपल सामने खड़ी है। या तो इस संसार को अपना कहो।...
मन कहता हैः अपना कहो। या मौत आती है; समय हाथ से छूटा जा रहा है; इन सबको सपना कहो।
अगर अपना कहा, सांसारिक रह जाओगे। अगर सपना कहा, संन्यासी हो जाओगे।
सपना ही है। टूट ही जाएगा। पूरी जिंदगी भी देखोगे, तो भी सत्य न होगा। सत्य को सपना नहीं बनाया जा सकता। सपने को सत्य नहीं बनाया जा सकता।
तुम कितनी देर तक देर तक देखते हो सपना, इससे कुछ भेद न पड़ेगा। सब का सपना टूटता है। धन्यभागी वे हैं; जिनका मौत के पहले टूट जाता है। अभागे वे हैं, जिनका मौत के क्षण में टूटता है। तब कुछ किया नहीं जा सकता। तब अवसर खो गया। तब चूक हो गई; फिर आना पड़ेगा। और जितनी बार चूक करोगे, उतनी ही चूक की आपद बनती जाती है। इसीलिए तो इतनी बार आए और इतनी बार गए, फिर भी कुछ हाथ नहीं लगा। कुछ सम्पदा हाथ नहीं आई।
या मन के जाने बिना, होय न कबहूं साध।
जक्त-वासना ना छुटै, लहै न भेद अगाध।।
सरकि जाय विष ओरहीं, बहुरि न आवै हाथ।
सरक-सरक जाता है यह मन; हाथ में आता नहीं यह मन। लाख समझाओ, फिर मौका मिला, फिर सरक जाता है।
कितनी बार तुमने तय नहीं कियाः अब क्रोध न करेंगे। और फिर किसी ने गाली दे दी। और फिर कोई अपमान कर गया। फिर याद ही नहीं आती--कि कितनी बार तय किया था कि नहीं करेंगे क्रोध। सरक गए। फिर हो जाता है। फिर-फिर हो जाता है। फिर पछताने से क्या होगा?
यह सरकने की व्यवस्था तोड़नी होगी। यह सरकने की व्यवस्था ही मिटानी होगी। अन्यथा तुम पछताते रहोगे--और मन बार-बार सरक जाता रहेगा।
सरकि जाय विष ओरहीं, बहुरि न आवै हाथ।
भजन माहिं ठहरै नहीं, जो गहि राखूं नाथ।।
अगर ठहर जाए, तो पकड़ में भी आ जाए। ठहरता-ही नहीं, तो पकड़ में नही आता।
पकड़ना ही किसी को, तो ठहराना जरूरी है। इसलिए ध्यान की प्रक्रियाओं में मन को ठहराने की व्यवस्था है।
चौबीस घड़ी में एक घड़ी तो निकल ही लेना। इतना गरीब कोई भी नहीं है कि एक घंटा ध्यान न कर सके। और इतना अमीर भी कोई नहीं है कि जिसे एक घंटा ध्यान की जरूरत न हो।
एक घंटा तो निकल ही लेना। एक घंटा बैठ ही जाना--मन को देखने, मन को समझने। मन का खेल, मन का प्रपंच--यह जो मन का नाटक चलता है--इसको दर्शक की भांति, द्रष्टा की भांति देखने बैठ जाना।
और ऐसा नहीं कि एक दिन देखने से बंद हो जाएगा खेल। सच तो यह हैः जब तुम बैठागे देखने, तो मन पूरी ताकत से हमला करेगा। मन यह बरदाश्त नहीं करेगा कि तुम, और मन से छूटने का उपाय कर रहे हो? कौर बरदाश्त करता है?
जब तुम जंजीरें तोड़ते हो, तो जंजीरें भी नाराज होंगी। और जब तुम काराग्रह से बाहर निकलना चाहते हो, तो काराग्रह भी खुश नहीं होता।
तुम जब किसी की गुलामी से छूटना चाहते हो, तो वह क्यों खुश होगा? उसकी ताकत कम हुई जा रही है। उसका अधिकार टूटा जा रहा है। उसका साम्राज्य बिखरा जा रहा है। एक गुलाम और छूटा।
तो मन पूरी कोशिश करेगा तो जब तुम ध्यान करने बैठोगे, तब तुम चकित होओगे कि मन इतना कभी नहीं सताता, जितना ध्यान करने बैठो, तब सताता है। एकदम हमला बोल देता है! चारों दिशाओं से हमला बोल देता है। सब तरह की उधेड़-

187

बुन खड़ी कर देता है। इतना तूफान मचाता है, इतना अंधड़ उठाता है कि तुम्हें सावधान कर देता है कि इस झंझट में पड़ने में कोई सार नहीं। दुबारा बैठने की कोई जरूरत नहीं। यह तो और बुरी हालत हो गई!
मुझसे लोग आ कर कहते हैंः ऐसे मन शांत ही रहता है। ज्यादा कुछ अशांत नहीं होता है। लेकिन जब भी ध्यान करने बैठो, तब एकदम अशांत हो जाता है। ऐसे भी अशांत होता है, लेकिन तुम उलझे हो, पता नहीं चलता। जब ध्यान करने बैठते हो, तब पता चलता है। और जब पता चलता है, और मन को ख्याल में आता है कि तुम छूटने की कोशिश कर रहे हो, तो वह सब तरह के जाल फेंकता है। बिल्कुल स्वभाविक है।
तुम इन जालों को भी देखते रहना। मन के इस प्रपंच को भी देखते रहना। मन में ये जो इतने अंधड़ उठें, इसको भी देखते रहना। तुम देखते ही रहना। तुम निष्पक्ष देखते रहना। यह भी मत कहना कि "बुरा है।" बुरा कहा कि चूक गए। यह भी मत कहना कि "बंद हो जा।" क्योंकि तुम्हारे "बंद हो जा" कहने से मन सुन नहीं लेगा।
अब तक तो मन ने तुम्हें आज्ञा दी है। तुमने कभी आज्ञा नहीं दी। तो आज तुम अचानक आज्ञा
दोगे, तो सुनेगा नहीं। उसका अभ्यास ही नहीं है उसे।
मन यद्यपि तुम्हारा गुलाम है, लेकिन मालिक हो गया है। लंबे अभ्यास से मालिक हो गया है। मन बहुत मुंह-लगा हो गया है। एक दिन में यह न हो जाएगा। लेकिन अगर तुम बैठते ही रहे... । इसकी फिकर ही मत करना कि कुछ परिणाम हो रहा है कि नहीं। चलो, एक घंटा मन की उधेड़बुन ही देखेंगे। एक घंटा मन का उपद्रव ही देखेंगे। देखते ही रहना।
तुम धीरे-धीरे पाओगेः संधियां आने लगीं। कभी-कभार ऐसा अपूर्व क्षण आ जाता है कि एक क्षण को कोई विचार नहीं।
उस सन्नाटे में पहली दफा तुम्हें पता चलेगा--धर्म क्या है। उसी सन्नाटे में तुम्हें पता चलेगा--ईश्वर है। उसी सन्नाटे में प्रमाण मिलेगा--वेद का, कुरान का, बाइबिल का। उसी क्षण में सारे धर्म सत्य हो जाएंगे। क्योंकि धर्म सत्य हो जाएगा।
सरकि जाय विष ओरहिं, बहुरि न आवे हाथ।
भजन माहिं ठहरै नहीं, जो गहि राखूं नाथ।।
इन्द्री पलटै मन विषै, मन पलटै बुधि माहिं।
बुधि पलटे हरि-ध्यान में, फेरि होय लय जाहिं।।
यह सूत्र अपूर्व है; हीरों में तौला जाए--ऐसा है।
"इन्द्र पलटै मन विषै... ।" यह अंतर्यात्रा का पूरा शास्त्र इस सूत्र में छिपा हुआ है।
आंख से तुमने अब तक बाहर देखा है, अब आंख से भीतर देखना शुरू करो।
"इन्द्री पलटै मन विषै।"
अभी तक आंख से संसार देखा है, अब आंख से मन को देखना शुरू करो। अब तक कान से बाहर की ध्वनियां सुनी हैं, अब बाहर की ध्वनियों को छोड़ो; भीतर की धुन सुनो।
"इन्द्री पलटै मन विषै।" अब मन को विषय बनाओ--अपने बोध का।
... "मन पलटै बुधि माहिं।" जब यह घट जाए कि तुम मन को देखने में समर्थ हो जाओ, मन को सुनने मे समर्थ हो जाओ, दूसरा तो कदमः "मन पलटै बुधि माहिं।" फिर मन के भी भीतर छिपा हुआ एक तत्व है--बोध, उसके प्रति जागना।
पहले मन के प्रति जागो। फिर जागा है जो--उसके प्रति जागना। ये तीन बातें हुईं।
संसार है--तुम्हारे बाहर फैला हुआ। और मन है--तुम्हारे भीतर फैला हुआ। संसार तो बाहर है ही तुम से, मन भी तुमसे बाहर है। तुम तो इसके केंद्र पर बैठे हो। तुम तो मन के द्रष्टा हो।
तो एक-एक कदम उठाओ। पहले इंद्रियां--जो बाहर मुड़ी हैं, उन्हें भीतर मोड़ लो। आंख बंद कर लो--और भीतर देखो। कान बंद कर लो--और भीतर सुनो। यह पहला कदम ध्यान का।

धीरे-धीरे धीरे-धीरे तुम पाओगेः बाहर तो भूल गया। बाहर तो मिट ही गया।
बस मन की ही तरंगे रह गयीं--चारों तरफ। इन्हीं को देखते-देखते देखते-देखते मन शांत हो जाएगा।
कुछ करना नहीं पड़ता है। किया तो भूल हो जाएगी। कृत्य का काम ही नहीं है, सिर्फ साक्षी का काम है। कर्ता की जरूरत ही नहीं है। सिर्फ द्रष्टा का काम है। सिर्फ देखते-देखते... ।
यह तुम्हें कठिन लगेगा, क्योंकि संसार में तो बिना कुछ किए, कभी कुछ होता नहीं। संसार में तो कुछ करो, तो कुछ होता है।
संसार का नियम हैः यहां करने वाला जीतता है। यहां आलसी हार जाता है।
जो नहीं करता, वह कैसे जीतेगा?
मन का नियम बिल्कुल उलटा है। वहां कर्मठ हार जाता है--वहां अकर्म जीतता है। वहां करने की कोई जरूरत ही नहीं है। वहां देखना काफी है। वहां देखने से ही क्रांति होती है। वहां कर्ता नहीं--द्रष्टा जीतता है। सिर्फ देखो।
"इन्द्री पलटै मन विषै।" तो पहले देखने की क्षमता को मन पर लगा दो। "मन पलटै बुधि माहिं।" फिर दूसरा कदम आएगा। जब मन शांत होने लगेगा; विचार की तरंगे लीन होने लगेंगी। पहले संसार भूल जाएगा, फिर मन भूल जाएगा। जब मन भूल जाए, तो "मन पलटै बुधि माहिं।" तब बोध की जो क्षमता है, द्रष्टा की जो क्षमता है, साक्षी भाव है--उसपर जागो--उसके प्रति जागो। अब साक्षी को अपना ही साक्षी बनने दो।
ज्ञानी यहीं रुक जाते हैं। भक्त एक कदम और उठाते हैः "बुधि पलटै हरि- ध्यान में।" क्योंकि भक्त कहते हैं कि साक्षी के भी भीतर छिपी हुई एक चीज है। द्रष्टा के भीतर भी छिपी हुई एक चीज है, वही हरि है, वही परमात्मा है। आत्मा का भी एक केंद्र है, वही परमात्मा है।
शरीर का केंद्र है मन। मन का केंद्र है आत्मा। आत्मा का केंद्र है-- परमात्मा।
तो साधारणतः ज्ञानी जहां रुक जाता है, भक्त एक कदम और लेता है। यह चरणदास ने बड़ी अपूर्व बात कही हैः
इन्द्री पलटै मन विषै, मन पलटै बुधि माहिं।
बुधि पलटै हरि-ध्यान में, फेरि हो लय जाहिं।।
और फिर उसी घड़ी लय हो जाती है। फिर विसर्जन हो गया। घर आ गया। विश्राम
आ गया। इसे मोक्ष कहो, निर्वाण कहो; जो नाम देना चाहो--दो।
मगर यही है खोज सब की। यही है, तुम्हारे भीतर छिपे हुए बीज की क्षमता।
यही है स्वर छिपा--तुम्हारी वीणा में। इसे जगाए बिना तुम कृतार्थ न हो सकोगे। यह जगे, तो ही जीवन धन्य है। यह न जगे, तो व्यर्थ गया, असार गया।
"तन मन जारै काम हीं, चित कर डांवाडोल।" देखते होः सागर में लहरें उठती हैं? ये लहरें हवा के झोकों से उठती हैं। हवा दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन दिखाई पड़ने वाले जल की डांवाडोल कर जाती है। ऐसी ही तुम्हारे भीतर जो लहरें उठती हैं--वे काम से उठती हैं।
"तन मन जारै काम हीं।" काम का अर्थ हैः कामना--कुछ पाने की आकांक्षा। कुछ होने की आकांक्षा--वही काम है। जैसा हूं--वैसे में तृप्ति नहीं; कुछ और हो जाऊं। जो है--उसमें तृप्ति नहीं। कुछ और मिल जाऐ। यह जो काम का ज्वर है... । "तन मन जारै काम हीं।" वह तन को भी जराता, मन को भी जराता है। "चित कर डांवाडोल।" और उसके कारण ही सारी तरंगे उठती हैं।
"धरम सरम सब खोय के, रहै आप हिय खोल।" और सब धर्म और सब शर्म उसी कामवासना के कारण खो जाती है।
कामी आदमी को कुछ दिखाई नहीं पड़ता। न उसे यह दिखाई पड़ता है कि क्या ठीक है; न उसे यह दिखाई पड़ता है कि क्या शिष्ट है।
एक आदमी पकड़ा गया अदालत में। क्योंकि वह एक शराफ की दुकान से एक सोने
की ईंट ले कर भागा--भरे बाजार में, भरी दुपहरी में। ग्राहक दुकान पर थे। फौरन पकड़ा गया। पुलिसवाला चौरस्ते पर खड़ा था। मजिस्ट्रेट ने पूछा, "यह भी हद्द हो गई! चोरी तो हमने बहुत सुनी। चोर रोज यहां आते हैं। मगर लोग रात

में, आधी रात में अब सब सोया हो संसार, तब चोरी करते हैं। भरी दुपहरी? भरे बाजार में? दुकार पर ग्राहक; दुकानदार जागा हुआ; नोकर-चाकर सब चल रहे, फिर रहे... । सड़क पर पुलिसवाला खड़ा है। तू ने चोरी करने की हिम्मत की! तुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ता? तू बिल्कुल अंधा है।
वह चोर हंसने लगा। उसने कहा कि "हालत यही है। सोने की मेरे मन में ऐसी वासना है कि जब मुझे सोना दिखाई पड़ता है, तो फिर मुझे कुछ और दिखाई नहीं पड़ता। जब मैंने यह ईंट देखी सोने की--इसकी दुकान पर रखी--फिर मुझे न यह दुकानदार दिखाई पड़ा, न ग्राहक दिखाई पड़े, न पुलिसवाला दिखाई पड़ा। कुछ नहीं दिखाई पड़ा। बस, सोने की ईंट दिखाई पड़ी।
कामी को कुछ दिखाई नहीं पड़ता। कामी को वही दिखाई पड़ता है, जो उसकी नजर में है, जो उसकी वासना में है।
"धरम सरम सब खोय के, रहै आप हिय खोल।" और जहां परमात्मा को बसना चाहिए, वहां हम काम को बसा लेते हैं--अपने हृदय में। जहां राम को बसना चाहिए, वहां काम को बसा लेते हैं। यही हमारी दुर्गति है।
"मोह बड़ा दुखरूप है, यही हमारा दुख है।"
मोह बड़ा दुखरूप है, ताकूं मारि निकास।
प्रीत जगत की छोड़ दे, जब होवै निर्वास।।
अगर वासना रहित होना हो, तो बाहर की वस्तुओं के साथ लगाव लगाना छोड़ दो। और ध्यान रखनाः फिर याद दिला दूँ कि चरणदास यह नहीं कह रहे हैं कि भाग जाओ। चरणदास इतना ही कह रहे हैं कि यह क्रांति तुम्हारे अंतर्जगत में होनी है। तुम जाग जाओ।
"जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अंबुज सर माहिं।" जैसे कमल रहना है सरोवर में, वैसे जगत में रहो।
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यो अंबुज सर माहिं।
रहै नीर के आसरे, जल छूवत नाहिं।।
रहता जल में है और जल छूता नहीं। ऐसे संसार में रहो और संसार न छूए।
जल में कमलवत--यही संन्यास की परिभाषा है। जल छोड़ कर भाग गए, फिर जल न छूए--इसमें क्या गुणतत्ता? जल में रहे और जल न छूए--तो गुणवत्ता।
रहो जगत में और राम तुम्हारे भीतर रहे--तो गुणवत्ता।
जैसे हो वैसे ही, जहां हो वैसे ही। कुछ और करना नहीं है। बाहर तो कुछ चीज भी उठा कर यहां-वहां नहीं रखनी है। पत्नी अपनी जगह है। बच्चे अपनी जगह हैं। काम अपनी जगह है। वह सब होता रहे, जैसा हो रहा है। नाटक समझो।
जैसे अभिनेता काम कर आता है। अभिनेता राम बन जाता है। सीता चोरी चली जाती है, तो रोता है। मंच पर झाड़ों से पूछता है कि मेरी सीता कहां? आंसू बहाता है। लेकिन यह कुछ भी छूता नहीं। क्योंकि सीता से क्या लेना-देना उसे? यह तो नाटक है। परदा गिरेगा, अपने घर चला जाएगा और मजे से सोएगा। एक बार भी ख्याल न आएगा। रात सपना भी नहीं देखेगा कि मेरी सीता खो गई। रात उधेड़बुन में भी नहीं रहेगा--कि क्या करूं, क्या न करूं; कहां से पाऊं? सीता से कुछ लेना-देना नहीं है। यद्यपि नाटक में पूरा-पूरा काम कर आया है। काम पूरी कुशलता से कर दिया है।
मैं उस को संन्यस्त कहता हूं, जो जगत में अभिनय पूर्वक रहे। काम पूरा
कर दे। पति हो, तो पति का अभिनय पूरा कर दो। पत्नी हो, तो पत्नी का अभिनय पूरा कर दो।
और मजा यह है कि अगर अभिनय समझ कर करो, तो ज्यादा कुशलता से पूरा कर सकोगे; क्योंकि कोई चिंता नहीं, कोई फिकर नहीं।
कर्ता बने--कि चिंता-फिकर आती है। असली राम को भी चिंता-फिकर आई होगी।
सीता खो गई, तो चिंतित हुए होंगे, परेशान हुए होंगे। मगर यह जो रामलीला का राम है, इसको कोई चिंता नहीं आती। इसे कोई फिकर ही नहीं। यह तो नाटक ही है। अभिनय सीखो! अभिनय में निष्णात बनो--और तुम जल में कमलवत रह सकोगे।
"रहे नीर के आसरे, जल छूवत नाहिं।"
"जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों जिहवा मुख माहिं।" जैसे जीभ रहती है मुंह में। "घीव घना भच्छन करै, तो भी चिकनी नाहिं।"

कितना घी पीते रहते हो, लेकिन फिर भी जीभ चिकनी नहीं होती; जल में कमलवत रहती है।
"जा घट चिंता नागिनी, ता मुख जप नहिं होय।" और चिंता पकड़ती हो इसलिए है
कि तुमने अपने को कर्ता मान लिया; नहीं तो चिंता क्या है। रामलीला के राम को चिंता नहीं पकड़ती; तुम्हें चिंता पकड़ती है। चिंता पकड़ती है, क्योंकि कर्ता हो गए।
कर्ता हुए--कि चिंता पकड़ी। कर्ता मत बनो। कर्ता तो एक राम है। कर्ता
तो एक भगवान है। कर्ता का का उसी पर छोड़ दो।
तुम तो अपने को इतना ही जानो कि एक अभिनय मिला है, इसे पूरा कर देना है। जो उसने दे दिया है अभिनय, वही पूरा कर देना है। पूरी कुशलता से पूरा कर देना। अपना पूरा कौशल्य, अपनी पूरी प्रवीणता, अपनी पूरी बुद्धि--सब से पूरा कर देना। मगर ध्यान रखना है कि मैं कर्ता नहीं हूं।
तब तुम चकित हो जाओगे। चह जगत फिर पकड़ेगा नहीं। यह जगत पास-पास रह कर
भी दूर-दूर रहेगा। यह जगत सब तरफ से तुम्हें घेरे हुए भी तुम्हें छूएगा नहीं। तुम अस्पर्शित रह जाओगे। तुम इस पर कमलवत तैरने लगोगे।
इस देश ने इससे बड़ी कोई महिमा नहीं मानी--कि मनुष्य जगत में रह कर कमलवत तैर जाए। इसलिए हमने कृष्ण को पूर्णावतार कहा। क्योंकि बुद्ध तो छोड़ कर चले गए।
कृष्ण जगत में ही रहे। सारे खेल में खड़े रहे--भागे नहीं। और जगत में रह
कर भी अछूते रहे। इसलिए कृष्ण को पूर्णावतार कहा है।
बुद्ध तो छोड़ कर चले गए। अवतार तो हैं, लेकिन छोड़ कर चले गए--यह बात थोड़ी सी खटकती है। इसका मतलब यह हुआ कि थोड़े डरे।
रवींद्रनाथ ने एक कविता लिखी है। रवीन्द्रनाथ बुद्ध से राजी नहीं थे। रवींद्रनाथ का मन तो कृष्ण के साथ रंगा था। रवींद्रनाथ को बुद्ध का छोड़ कर जाना खटकता था।
तो रवींद्रनाथ ने एक कविता लिखी है कि बुद्ध जब बुद्धत्व पाकर घर वापस लौटे, तो उनकी पत्नी यशोधरा ने उनसे पूछा है कि "मैं एक ही सवाल पूछना चाहती हूं।"... (वह सवाल यशोधरा ने पूछा या नहीं, यह सवाल नहीं है। रवींद्रनाथ ने पूछवाया है कि) "मैं एक ही सवाल पूछना चाहती हूं कि जो तुम्हें जंगल में जाकर मिला, वह क्या यहीं इसी राजमहल में नहीं मिल सकता था? और बुद्ध चुप खड़े रह गए।
रवींद्रनाथ ने उनसे जवाब नहीं दिलवाया। उनको चुप रखा है। बुद्ध जवाब
भी क्या दें? इसलिए चुप रखा है।
बात तो सच ही है। जो वहां मिला, यहां भी मिल सकता था। सत्य का स्थान से क्या संबंध है? सत्य की कोई शर्त थोड़े ही है कि झोपड़ी में मिलेगा; महल में नहीं मिलेगा। सत्य की कोई शर्त थोड़े ही है कि जंगल में मिलेगा; बस्ती में नहीं मिलेगा। यह भी क्या बात है!
तो बुद्ध चुप रह गए हैं। बुद्ध ने उत्तर नहीं दिया है। रवींद्रनाथ ने जान कर उत्तर नहीं दिलवाया है कि बुद्ध के पास उत्तर नहीं है। यशोधरा ने प्रश्न ऐसा पूछा है कि बुद्ध मौन रह गए। उत्तर नहीं है।
बात तो यशोधरा ठीक ही पूछती हैः कि जो वहां मिला, यहां नहीं मिल सकता था?
अब आज बुद्ध यह भी नहीं कह सकते है कि यहां नहीं मिल सकता था। क्योंकि मिलने के बाद तो यह बात समझ में आ गई कि यहां भी मिल सकता था। कहीं भी मिल सकता था।
जहां हो--उसे ही प्रभु का प्रसाद समझ कर वहीं रहो, और वहीं अपने को अलिप्त करने लगो, तो संसार एक पाठशाला हो जाती है।
संसार पाठशाला है और इसमें जो संन्यासी होकर जी लेता है, वह उत्तीर्ण
हो गया; उसने पाठ सीख लिया। इसलिए इस जगत में जो संन्यस्त हो कर जी लेता है, दुबारा संसार में नहीं आता। जब पाठ ही सीख लिया, तो इसी स्कूल में जाने की दुबारा जरूरत न रही। असफल होते, तो फिर भेजे जाते।

असफल होता है आदमी, तो बार-बार फिर भेजा जाता है। जैसे ही कोई जगत में ठीक-ठीक जी लिया, पूरा-पूरा जी लिया, जान कर जी लिया, और अपने को अलिप्त रख कर जी लिया--पूर्ण हो गया। उसका काम पूरा हो गया। उसने अपनी नियति पूरी कर ली। अब उसका दुबारा आना नहीं।
"जा घट चिंता नागिनी, ता मुख जप नहिं होय।" लेकिन कर्ता के भाव से चिंता पैदा होती है--कि कल सुबह क्या करूं? कैसे दुकान चलाऊं? कैसे पैसा कमाऊं? मिलेगाः नहीं मिलेगा? ऐसा करना है, वैसा करना है?
लेकिन जिसने कर्ता परमात्मा को मान लिया... । और ध्यान रखना, जिसने अपने को अकर्ता माना, उसने परमात्मा को कर्ता मान ही लिया। क्योंकि हो तो रहा ही है। अब मैं कर्ता नहीं हूं, तो कोई तो कर्ता होगा। कृत्य तो हो ही रहा है। परमात्मा कर्ता है।
दो ही स्थितियां हैंः या तो तुम अपने को कर्ता मानो या अपने को साक्षी मानो।
अब ध्यान रखनाः तुमसे बहुत से धर्मों ने यह बात कही है; बहुत से धर्म गुरुओं ने यह बात कहीं है--कि "जो भी करो, सोच समझ कर करना; परमात्मा देख रहा है।" इसका मतलब हुआ कि तुम कर्ता हो, परमात्मा साक्षी है। यह एक दशा है। यह संसारी की दशा है।
दूसरी दशा, जो मैं तुमसे कहता हूंः तुम साक्षी बनो; परमात्मा कर्ता है। तुम देखो--उसे करने दो। यह संन्यासी की दशा है।
मैं पहली बात से राजी नहीं। परमात्मा साक्षी--तो फिर कर्ता कौन है? फिर कर्ता तुम हो जाओगे। और तुम कर्ता हुए कि चिंता आई। हजार चिंताएं आ जाएंगी। दुकान चलेगी कि नहीं! पैसा आएगा कि नहीं? पत्नी बीमार है--ठीक होगी कि नहीं? बेटा परीक्षा दे रहा है--पास होगा कि नहीं? ऐसा होगा कि नहीं; वैसा होगा कि नहीं?
चिंता का अर्थ क्या है? चिंता का अर्थ ही यह है कि बोझ मुझ पर है। पूरा
कर पाऊंगा? नहीं; तुम साक्षी हो जाओ।
कृष्ण ने गीता में यही बात अर्जुन से कही है कि तू कर्ता मत हो। तू निमित्त-मात्र है; वही करने वाला है। जिसे उसे मारना है, मार लेगा। जिसे नहीं मारना है, नहीं मारेगा। तू बीच में मत आ। तू साक्षी भाव से जो आज्ञा दे, उसे पूरी कर दे।
परमात्मा कर्ता है--और हम साक्षी। फिर अहंकार विदा हो गया। न हार अपनी है, न जीत अपनी है। हारे तो वह, जीते तो वह। न पुण्य अपना है, न पाप अपना है। पुण्य भी उसका, पाप भी उसका। सब उस पर छोड़ दिया। निर्भार हो गए। यह निर्भार दशा संन्यास की दशा है।
"जा घट चिंता नागिनी, ता मुख जप नहिं होय।" और जब तक चिंता है, तब तक जप नहीं होगा। तब तक कैसे करोगे ध्यान? कैसे करोगे हरि-स्मरण? चिंता बीच-बीच में आ जाएगी। तुम किसी तरह हरि की तरफ मन ले जाओगे, चिंता खींच-खींच संसार में ले आएगी।
तुमने देखा न कि जब कोई चिंता तुम्हारे मन में होती है, तब बिल्कुल प्रार्थना नहीं कर पाते। बैठते हो, ओठ से राम-राम जपते हो और भीतर चिंता का पाठ चलता है।
चिंता और प्रभु-चिंतन साथ-साथ नहीं हो सकते। चिंता यानी संसार का चिंतन।
व्यर्थ का कूड़ा-कचरा तुम्हारे मन को घेरे रहता है। तो उस कूड़े-कचरे में तुम परमात्मा को बुला भी न सकोगे। उसके आने के लिए तो शांत और शून्य होना जरूरी है। और शांत और शून्य वही हो जाता है, जिसने कर्ता का भाव छोड़ दिया।
जा घट चिंता नागिनी ता मुख जप नहिं होय।
जो टुक आवै याद भी, उन्हीं जाय फिर खोय।।
और कभी क्षणभर को--टुक--जरा सी याद भी परमात्मा की आती है खिसक-खिसक जाती है। फिर मन संसार में चला जाता है। फिर सोचने लगता है कि ऐसा करूं, वैसा करूं? क्या करूं, क्या न करूं? ऐसा होगा--नहीं होगा?

इतना ही नहीं, मन इतना पागल है कि अतीत के संबंध में भी सोचता है कि ऐसा क्यों न किया? ऐसा क्यों कर लिया?
अब अतीत तो गया हाथ के बाहर। अब कुछ किया भी नहीं जा सकता। किए को अनकिया नहीं किया जा सकता। अब अतीत में कोई तरमीम, कोई सुधार, कोई संशोधन नहीं हो सकता। मगर मन उसका भी सोचता है कि फलां आदमी ने ऐसी बात कही थी, काश! हमने ऐसा उत्तर दिया होता!
अब तुम क्यों समय गंवा रहे हो? वक्त जा चुका। जो उत्तर दिया--दिया। जो कहना था--हो गया। जो करना था--हो गया। अब तुम क्या कर सकते हो? अतीत को बदला नहीं जा सकता। लेकिन आदमी अतीत की भी चिंता करता है।
बैठे हैं लोग; सोच रहे हैं कि ऐसा किया होता, वैसा किया होता। इस स्त्री से विवाह न किया होता, उस स्त्री से विवाह कर लिया होता। और उस स्त्री से किया होता, तो भी तुम यही सोचते होते। कोई फर्क न पड़ता।
अतीत की चिंता तो बिल्कुल व्यर्थ है। क्योंकि जो हो ही चुका--हो ही चुका। उसकी क्या चिंता? और भविष्य की चिंता भी व्यर्थ है, क्योंकि जो अभी नहीं हुआ--अभी हुआ ही नहीं--उसकी क्या चिंता? उसकी चिंता से क्या होगा? तुम्हारे हाथ में क्या है? एक श्वास भी तुम्हारे हाथ में नहीं। कल सूरज उगेगा भी कि नहीं उगेगा--इसका भी कुछ पक्का नहीं। कल सुबह होगी भी या नहीं होगी--इसका भी कुछ पक्का नहीं। तुम होओगे कल या नहीं होओगे--कुछ पक्का नहीं। मगर बड़ी योजनाएं, बड़ी चिंताएं, कर्ता के भाव के साथ-साथ चली आती है। "जो टुक आवै याद भी, उन्ही जाय फिर खोय।" बार-बार खो जाती है
"आशा नदिया में चलै सदा मनोरथ-नीर।" और मन की वासनाओं की धारें पर धारें; जल का प्रवाह--आशा की नदिया में बहता चला जाता है।
सपने पर सपने हैं। कतार बंधी हैं। पंक्तिबद्ध चले आते हैं। एक सपना चुकता नहीं कि दूसरा पकड़ लेता है।
आशा नदिया मे चलै, सदा मनोरथ नीर।
परमारथ उपजै बहै, मन नहिं पकरै धीर।।
और कभी कभी अगर उस परमार्थ की याद भी आ जाती हैः "जो टुक आवै याद भी"-- कभी प्रभु का स्मरण भी आ जाता है; कभी सत्संग भी मिल जाता है, कभी शुभ घड़ी भी आ जाती है। कभी ऐसा मुहूर्त आ जाता है कि क्षण भर को उसकी याद घनी होने लगती है। "परमारथ उपजै, बहै। लेकिन उपज भी नहीं पाता, कि यह जो "आशा नदिया में मनोरथ का नीर" बह रहा है, उसमें बह जाता है।
"परमारथ उपजै, बहै, मन नहीं पकरै धीर।" और मन उसमें स्थिर नहीं हो पाता। मन ठहर नहीं पाता।
ऐसा नहीं है कि परमात्मा तुम्हारे भीतर कभी-कभी नहीं उपजता। उपजता है। जो तुम्हारी आत्यंतिक नियति है, वह कैसे न उपजेगा!
तुम्हारे सारे शोरगुल के बाद भी, बावजूद भी कभी-कभी उसकी आवाज तुम्हारे भीतर सुनाई पड़ती है। तुम्हारे सारे अंधकार के बीच भी कभी-कभी उसकी किरण आती है।
तुम उसे भूल गए हो, लेकिन वह तुम्हें नहीं भूला है। वह तुम्हें खोजता आता है। वह अपना हाथ तुम्हारे हाथ की तरफ फैलाता है।
तुम चाहे अपनी मुट्ठी में कूड़ा-कबाड़ रखे हुए हो; और तुम्हारा हाथ तैयार भी नहीं है उसके हाथ को पकड़ने को, लेकिन उसका हाथ कभी-कभी तुम्हें छू जाता है--तुम्हारे बावजूद छू जाता है। तुम नहीं चाहते, तो भी छू जाता है। "परमारथ उपजै बहै, मन नहीं पकरै धीर।" लेकिन यह बीज रुप नहीं पाता। यह परमार्थ का, यह अध्यात्म का बीज रुप नहीं पाता, क्योंकि "आशा नदिया में चलै, सदा मनोरथ-नीर।"
जैसे नदी में कोई फसल उगाने चले, तो फसल टिक नहीं पाएगी। बीज ही नहीं टिक पाएगा। तुम डालोगे नहीं--कि नदिया बहा ले जाएगी। ऐसी ही मन की दशा है। "अभिमानी मीजे गए।" तो जिन-जिन को कर्ता होने का अभिमान है, वे तो मींजे जाएंगे। बुरी तरह टूटेंगे। अपने अभिमान के कारण ही टूटेंगे। "अभिमानी मींजे गए, लूट लिए धन बाम।" और कितना ही धन इकट्ठा करो, और कितनी ही

सुंदरियां इकट्ठी करो, कितने ही मकान बनाओ, कितनी ही पद-प्रतिठा--सब लुट जाएगा। मौत आएगी--सब छीन लेगी।
अभिमानी मींजे गए, लूट लिए धन बाम।
निर अभिमानी हो चले, पहुंचे हरि के धाम।।
और जिसने अहंकार छोड़ा, कर्ता का भाव छोड़ा, जिसने मैं की अकड़ छोड़ी, जो झुका, जिसने समर्पण किया--"निर अभिमानी हो चले, पहुंचे हरि के धाम।" वे ही केवल प्रभु के घर तक पहुंच पाते हैं; प्रभु-मंदिर तक पहुंच पाते हैं--हरि- धाम तक।
"चरनदास यूं कहत हैं, सुनियो संत सुजान।" चरणदास कहते हैं कि वे ही सुन सकेंगे जो शांत हैं, सरल हैं और बोधवान हैं। "सुनियो संत सुजान।" "मुक्तिमूल आधीनता, नरकमूल अभिमान।"
एक ही मौलिक सूत्र है--"मुक्तिमूल आधीनता।" तुम परमात्मा के आधीन हो जाओ, उसके चरण गह लो।
"नरकमूल अभिमान।" कर्ता होने का अहंकार छोड़ो। कर्ता होने का अहंकार
ही नरक ले जाएगा। ले जाएगा--यह कहना भी ठीक नहीं है। ले ही गया।
कर्ता नरक में ही जीता है। कहां सुख? दुख ही दुख है। विक्षिप्त रहता है। पागल की तरह दौड़ा रहता है। हजार बार हारता है, फिर भी उठ-उठ कर दौड़ने लगता है। हार से भी कुछ नहीं सीखता। और जीत से भी कुछ नहीं सीखता। हारता है, तो भी यही सोचता है कि इस बार हार गया, कोई बात नहीं। अगली बार जीत जाऊँगा।
हार से भी कुछ नहीं सीखना। और सब जीत जाता है, तब भी कुछ नहीं सीखता। क्योंकि जीत से भी क्या जीत मिलती है? जीत कर भी तो हार ही होती हैं।
इस जगत में हार ही लिखी है। जीतो--तो हार जाते हो। हारो--तो हार जाते हो।
जीत कर भी क्या मिलेगा? एक दिन सब मिट्टी में मिल जाते हैं, कब्र में मिल जाते है।
"मुक्तिमूल आधीनता, नरक मूल अभिमान।" इसलिए अगर मुक्ति चाहनी हो--परम सौभाग्य स्वातंत्र का, मोक्ष का रस भोगना हो, तो एक बात छोड़ दोः अहंकार छोड़ दो। मैं हूं--यह भाव छोड़ दो।
और भक्ति "मैं" को छोड़ने में जितनी सहयोगी है, ज्ञान का मार्ग उतना सहयोगी नहीं है। क्योंकि ज्ञान के मार्ग पर "मैं" बना ही रहता है। ऐसा लगता ही रहता है कि "मैं जागने वाला"।
तपश्चर्या के मार्ग पर मैं बना ही रहता है। मैं तपस्वी; मैं तप करने वाला; मैंने इतने उपवास किए, इतने व्रत किए, इतना जीवन को अनुशासित किया! लेकिन भक्त यह सब छोड़ देता है। वह कहता हैः मेरा क्या? सब तेरा। तू सम्हाल। बुरा हूं, तो तेरा। भला हूं--तो तेरा। जो काम लेना हो, ले ले। राम बनाना हो तो राम बना दे। और रावण बनाना हो, तो रावण बना दे। मैं कौन चुनने वाला? जो तू दे देगा, आज्ञा, वही पूरी कर दूंगा। तेरी मरजी पूरी हो। मैं नहीं हूं--तू है। मैं तेरी छाया। मैं तेरे पीछे-पीछे डोलूंगा। "मुक्तिमूल आधीनता।"
यह है अर्थ आधीनता का--कि मैं तेरी छाया की तरह डोलूंगा। तू जहां जाएगा, वहीं जाऊंगा।
तुझसे अन्यथा मेरा कोई होना नहीं। तुझसे भिन्न मेरी कोई आवाज नहीं। मेरा अपना कोई स्वर नहीं; मेरा कोई हस्ताक्षर नहीं। मैं बस, तेरी गूंज हूं--तेरी प्रतिगूंज। मैं तो बांस की पोली पोंगरी हूं; तू जो गीत गाएगा-- गाना। न गाना हो--न गाना। बांसुरी बनाना हो, बांसुरी बना देना। और बाँस की पोंगरी ही रहने
देना हो, तो बांस की पोंगरी ही रहने देना। मैं हर हाल राजी हूं।
इस स्वीकृति में मुक्ति है; इस आधीनता में मुक्ति है। "मुक्तिमूल आधीनता, नरकमूल अभिमान।"
चरणदास के ए सूत्र बड़े प्यारे हैं। चरणदास के साथ यह यात्रा अगर तुम्हें करनी हो, तो चरणदास हो जाओ।

और जल्दी करो।
शीत से
वसंत जितना दूर है
बूंद से दूर है जितना
मोती
या कहो
दूर है जितना फूल से फल
उतनी ही दूर है अब
मेरी देह से आग
आग से राख
राख से गंगा-जल
ज्यादा देर नहीं है, गंगाजल में विसर्जित हो जाओगे। इसके पहले जागो। इसके पहले असली गंगा को पुकारो। भगीरथ बनो। असली गंगा को उतारो। "राम की गंगा" को उतारो।
"शीत से वसंत जितना दूर है।" ज्यादा दूर क्या!
शीत से
वसंत जितना दूर है
बूंद से दूर जितना है
मोती
या कहो
दूर है जितना फूल से फल
कितनी दूर? कोई ज्यादा दूर नहीं। आया ही आया है। आ ही रहा है। उतनी ही दूर हैः "अब मेरी देह से आग। आग से राख, राख से गंगाजल।"
इसके पहले कि गंगाजल में तुम्हारी राख विसर्जित हो, अपने को परमात्मा में विसर्जित कर लो।
तुमने कहानी तो सुनी है न। दो गंगाएं हैंः एक तो स्वर्ग में ही है-- स्वर्ग-गंगा। एक पृथ्वी पर उतरी है। इसके पहले कि पृथ्वी पर उतरी है। इसके पहले कि पृथ्वी की गंगा में तुम्हारी राख विसर्जित कर दी जाए, अपने अहंकार को स्वर्ग की गंगा में डूबा लो।
"मुक्तिमूल आधीनता, नरकमूल अभिमान।"
चरणदास तुम्हें पुकार रहे हैं।
लाओ, अपना हाथ मेरे हाथ में दो
नये क्षितिजों तक चलेंगे
हाथ में हाथ डाल कर
सूरज से मिलेंगे
इसके पहले भी
चला हूं, लेकर हाथ में हाथ मगर वे हाथ
किरणों के थे, फूलों के थे सावन के
सरिता में कूलों के थे
मैं तुम्हारा हाथ
अपने हाथ में लेना चाहता हूं
नये क्षितिज
तुम्हें देना चाहता हूं
दो अपना हाथ मेरे हाथ में
नये क्षितिजों तक चलेंगे
साथ-साथ सूरज से मिलेंगे।
सुनो यह पुकार। किसी गुरु के हाथों में हाथ दो, ताकि किसी दिन परमात्मा का हाथ भी तुम्हें मिल जाए।
लांओ, अपना हाथ मेरे हाथ में दो
नये क्षितिजों तक चलेंगे

हाथ में हाथ डाल कर
सूरज से मिलेंगे।
सूरज से मिलना है। प्रकाश से मिलता है। बहुत रह लिए अंधेरे में, अब और कितना? इतना बहुत नहीं है क्या?
बहुत काफी हो चुका। अंधेरे में जी लिए, कुछ पाया नहीं। अब रोशनी मे जीने की आकांक्षा करो।
प्रकाश की अभीसा करो।
मैं तुम्हारे हाथ
अपने हाथ में लेना चाहता हूं
नये क्षितिज
तुम्हें देना चाहता हूं
दो अपना हाथ मेरे हाथ में
नये क्षितिजों तक चलेंगे
साथ-साथ सूरज से मिलेंगे।
यही सदा से सभी सदगुरुओं का आश्वासन रहा है।

आज इतना ही।

नहीं सांझ नहीं भोर
दसवां प्रवचन

प्रश्नोत्तर

• अभिनय अर्थात् अकर्ता-भाव
• पूर्णक्रांतिः आध्यात्मिक क्रांति
• परमात्मा को भोगो

पहला प्रश्नः अभिनय में प्रमाणिकता कैसे बचेगी, जिसकी चर्चा आप हमेशा करते हैं? हम झूठे बेईमान लोग तो वैसे ही अभिनय में कुशल हैं, और यदि संत अभिनय करेंगे, तो क्या उससे भी झूठ नहीं प्रवेश करेगा? चाहे कर्ता रहे, या अकर्ता, अभिनय में झूठ तो समाहित हो ही गया। इस उलझन को सुलझाने की कृपा करें।

मेरी बात तुम्हारी समझ में नहीं आई। अभिनय का अर्थ इतना ही है कि करनेवाला परमात्मा है; मैं करनेवाला नहीं। यही तो सच है। इसमें झूठ कैसे समाहित हो जागा? करनेवाला परमात्मा है।
जब तक हम समझते हैं कि करनेवाला हूँ, तब तक हम झूठ हैं। जैसे ही उसे करनेवाला जाना, वैसे ही झूठ गया।
तो अभिनय में और प्रमाणिकता में विरोध नहीं है। अभिनय ही प्रमाणिक हो सकता है।
और अभिनय का अर्थ तुमने अपना लगा लिया कि भीतर कुछ--बाहर कुछ।
अभिनय का इतना ही अर्थ है कि कृत्य मेरा नहीं है। जैसे बांसुरी समझे
कि जो गीत मुझसे आ रहा है, वह केवल मुझसे "आ रहा" है; गाने वाला कोई और है; होंठ किसी और के हैं; वाणी किसी और की है; स्वर किसी और के हैं। मैं केवल उपकरण मात्र हूं। तो बासुंरी कर्ता से हट गई, अभिनेता हो गई। यहाँ बाहर कुछ, भीतर कुछ--ऐसा भेद नहीं है।
तो अभिनय का अर्थ झूठ नहीं है। अभिनय इस जगत की सब से बड़ी वास्तविकता
है, सब से बड़ी प्रमाणिकता है।
और तुमने पूछा है कि "कर्ता रहें या अकर्ता, अभिनय में झूठ तो समाहित
हो ही गया?" नहीं। कर्ता रहो, तो अभिनेता नहीं हो। कर्ता रहे, यह भाव रहा कि मैं करने वाला हूं, तो फिर कहां अभिनय? फिर तो झूठ समा गया। झूठ यानी अहंकार।
इस जगत में अहंकार से बड़ा कोई और झूठ नहीं है। मैं हूं--यही झूठ है। परमात्मा है--यही सत्य है। मेरा होना परमात्मा के होने से अलग है--यही झूठ है। मेरा होना उसमें समाहित है--मैं उसके ही सागर की तरंग हूँ, तरंग से ज्यादा नहीं--यही प्रमाणिक हैं; यही सत्य है।
जैसे ही कर्ता बने, वैसे ही झूठ आ जाता है। अकर्ता बने कि झूठ गया। झूठ
का संबंध कुछ झूठ बोलने से नहीं है। झूठ का संबंध इसी ही भाव से है कि मैं हूं, फिर सारे झूठ इसी से पैदा होते हैं। यह एक झूठ अहंकार का हजार-हजार झूठों के जन्म का कारण हो जाता है। इस अहंकार के वृक्ष पर ही फिर झूठ के पते लगते हैं, फल लगते हैं।, फूल लगते हैं।
इस अहंकार को जड़ से काट देने का नाम ही अकर्ता-भाव है। अकर्ता-भाव कहो
या अभिनय कहो--एक ही बात है। लेकिन इस प्रश्न ने बहुत लोगों के मन में सवाल उठाए होंगे।
दूसरा सवाल भी इसी से संबंधित है। कल आपने संदेश दियाः अभिनय सीखो, पर कुशल और प्रसिद्ध अभिनेता अभिनय की कला जानते हुए भी चिंतित, दुखी और परेशान हैं। उनका अभिनय उन्हें दुख से मुक्त क्यों नहीं करता? कृपा करके समझाइ।
अभिनय की कला जानना और अकर्ता हो जाने में बड़ा फर्क है। अभिनय की कला जानना एक बात है, और जीवन को अभिनय बना देना बिल्कुल दूसरी बात है।

अभिनेता अभिनय की कला जानता है, जब मंच पर होता है। जैसे ही मंच से नीचे उतरा कि सारी कला भूल जाता है। घर आया कि कर्ता हो जाता है।
वह जो राम बना है, मंच पर, सीता खो जागी, तो अभिनय करेगा; आंसू झूठे होंग; वृक्षों से पूछेगा; सब असत्य होगा। रोगा, पुकारेगा, चिल्लागा, खोजने निकलेगा--वह सब झूठ होगा। लेकिन घर आकर पा कि उसकी पत्नी भाग गई। तब भूल जाएगा कि अब फिर अभिनय करे। तब रोने लगेगा। तब, असली आँसू बहेंगे। मंच पर अभिनय था, घर आते ही कर्ता का भाव हो गया!
मंच का अभिनय काम में नहीं आगा। जीवन पूरा का पूरा मंच बन जाए।
और अकसर ऐसा हो जाता हैः दूसरे को सलाह देनी हो, तो तुम बड़े समझदार हो जाते हो। वह समझदारी किसी काम की नहीं है। उस समझदारी का दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है। समझदारी तो तब काम की है, जब मुसीबत खुद पर हो और समझदारी काम आ। दूसरे को समझाने के लि तो सभी बुद्धिमान हैं, और इन बुद्धिमानों को, इनकी जीवन की समस्या को सुलझाते हुए न पाओगे। वहां इनकी उलझन इतनी की इतनी है, जैसे और की है।
दूसरे को सलह देनी तो बहुत आसान है, क्योंकि तुम्हारा तो कुछ लगता ही नहीं। "हल्दी लगै न फिटकरी रंग चोखा हो जा!" तुम्हारा कुछ खर्च होता ही नहीं। तुम्हें कुछ करना ही नहीं पड़ता। लेकिन जब अपने जीवन में उतारने चलोगे, तो मुश्किल होगी। हजार कठिनाइयां होंगी। क्योंकि हजार-हजार पुरानी आदतें तोड़नी होंगी, संस्कार मिटाने होंगे, रूपांतरण करना होगा। एक क्रांति से गुजरना होगा। वह क्रांति महंगी है--सस्ती नहीं।
धर्म महंगा है--सस्ता नहीं। प्राणों से मूल्य चुकाना होता है।
तो मंच पर अभिनय करना एक बात है। सारा जीवन--सोते-जागते--अभिनय से भर जा, तो बिल्कुल दूसरी बात है। यह तो तभी होगा, जब तुम ध्यान में पगो, यह तो तभी होगा, जब तुम परमात्मा के चरणों में अपने को पूरा छोड़ो। आधीन हो जाओ-- जैसा चरणदास ने कहाः "मुक्तिमूल आधीनता"।
वह मुक्त हो जागा, जिसने अपने को बिल्कुल आधीन कर दिया; जिसने कहाः अब
जो तेरी मरजी--कर; मैं तेरे हाथ में खिलौना हूं। मेरी अपनी अलग से कोई मरजी नहीं। क्योंकि मैं ही नहीं, तो मेरी मरजी कैसी? मैं हूं, तो मेरी मरजी पैदा होती है--छाया की तरह। मैं ही नहीं हूँ, तो छाया नहीं बनती। अब तू जो कराए। अब तू ही है। कृत्य भी तेरा, अकृत्य भी तेरा। इसे समझो। प्रश्न ठीक है। मेरे पास अभिनेता आते हैं, उनकी भी समस्याएं वही हैं, जो तुम्हारी हैं। कुछ भेद नहीं है समस्याओं में। और अभिनय की कला तो जानते हैं। लेकिन इस कला को अपने जीवन में नहीं ला पाए हैं। वह कला केवल व्यवसाय है। वह कला खुद के जीवन में नहीं है। उस कला से खुद का जीवन नहीं रंग गया है। धां है; कर लेते है; कमा लेते हैं। इतने से काफी नहीं होता।
मैं जो कह रहा हूं, इतने ऊपर-ऊपर ओढ़ लेने से नहीं होगा। यह राम-चदरिया
ओढ़ लेने से नहीं होगा। यह राम तुम्हारे प्राणों के प्राण में ऊठे; यह तुम्हारा बोध बने--कि मैं नहीं हूं। तुम अपने को विसर्जित कर पाओ, तो फिर जो शेष रह जाएगा, उसमें अभिनय ही है।
और अभिनय का मतलब फिर तुमसे कह दूंः तुम यह मत समझना कि तुम कुछ कर रहे हो। अगर तुम अभिनय भी "कर" रहे हो, तो कर्ता हो गए। तुमने अगर यह भी भाव ले लिया कि देखो, मैं कितना कुशल अभिनेता हूं, कितने ठीक से अभिनय कर रहा हूं, तो तुम कर्ता हो गए।
यही तुम्हारे अभिनेताओं को हो जाता है। अभिनय करते हैं, लेकिन अभिनय में ही कर्ता हो जाते हैं। जब कोई अभिनेता की प्रशंसा करेगा कि तुम्हारा बड़ा कुशल अभिनय था, तो उसकी छाती फूल जाएगी। वह अभिनय का भी कर्ता है। "मैंने किया है; यह कुशलता मेरी है; यह यश गौरव मेरा है।" वह अभिनय का भी कर्ता बन गया।
कर्ता की पकड़ इतनी दूर तक गई है, अहंकार का रोग ऐसा गहरा समाया है कि अभिनय किया, उसके भी कर्ता बन गए!
संत अपने कृत्य में भी अभिनेता होता है; और अभिनेता अपने अभिनय में भी कर्ता हो जाता है! संत कुछ ऐसा थोड़े ही कहेगा कि "देखो, मैं अभिनय कर रहा

हूं--परमात्मा! कैसा कुशल अभिनय कर रहा हूँ।" तो तो झूठ हो गई बात; तो तो बात समझ में ही नहीं आई। जड़ से चूक हो गई।
अब संत को तो कहने को भी नहीं है कि मैं कर रहा हूं। मैं ही नहीं हूं,
तू जो करवा रहा है, हो रहा है।
लोकोवित है कि उसकी बिना मरजी पता नहीं हिलता। वही हिलाता है। सब उसी
पर सौप दिया। सब--बेशर्त। कुछ बचाया नहीं। ऐसी भाव-दशा को मैंने कहा-- अकर्ताभाव।
और यह अकर्ताभाव तुम सीख लो, तो प्रामणिक हो जाओगे।
अभिनेता हो जाओ, तो सच्चे हो जाओगे। इसमें वक्तव्य विरोधाभासी लगता है, लेकिन वक्तव्य के भीतर झांकोगे, तो तुम्हें संगति दिखाई पड़ेगी।
तुम मिट जाओ, तो तुम हो जाओ। तुम शून्य हो जाओ, कि तुम पूर्ण हो जाओगे।
तुम रहे कि तुम चूकते रहोगे। तुम बाधा हो। तुम ही एकमात्र बाधा हो-- तुम्हारे जीवन के आनंद में। तुम्हारे जीवन के उत्सव में तुम्हारे सिवाय और कोई विसंगति नहीं है।
तुम ही नरक हो अन्यथा स्वर्ग बरस रहा है। तुम्हीं दुख में लिपे-पुते खड़े हो। अन्यथा इस जगत में सब जगह अमृत बह रहा है। और तुम क्यों दूर-दूर खड़े हो? तुमने अपने को "मैं" मान रखा है।
"मुक्तिमूल आधीनता।" तुम उसके आधीन हो जाओ, समर्पण करो।
तीसरा प्रश्न भी इससे संबंधित हैः आपने कहा कि संसार में सफल अभिनेता बनो। तो फिर प्रेम में अभिनय कैसे हो?
प्रेम में तो सब से सुगम है। तुम्हारी अड़चन मैं समझ रहा हूं। तुम सोच रहे हो कि प्रेम में अभिनय किया, तो प्रेम झूठा हो जाएगा। तुम मेरी बात चूक गए। तुम समझ नहीं पाए--मैं क्या कह रहा हूं। बात थोड़ी सूक्ष्म है। चूक जाना, समझ में आता है। बहुत स्थूल नहीं है। तुमने बहुत स्थूल तरह से पकड़ा। अब तुम पूछते होः प्रेम में अभिनय कैसे हो? क्योंकि अगर प्रेम में भी अभिनय किया, तो झूठा हो जाएगा। तो झूठे प्रेम का क्या मूल्य होगा?
दूसरी तरफ से देखो, मेरी तरफ से देखो। जब मैंने कहाः जीवन पूरा अभिनय
हो जाए, तो यह तो प्रेम पर सब से ज्यादा लागू होता। क्योंकि प्रेम में कभी कोई कर्ता हो ही नहीं पाया है। इसलिए तो प्रेम परमात्मा के बहुत निकट है, प्रार्थना के बहुत निकट है।
तुमने प्रेम किया है? या प्रेम हुआ है? --इस पर सोचना। इसे जरा ध्यान देना। तुम्हारा किसी से प्रेम का नाता बना--यह तुमने किया है या हुआ है? करना क्या है इसमें? तुमने किया क्या? तुमने कुछ चेष्टा की? अभ्यास किया? योगासन साधे? तुमने किया क्या?
कोई दिखाई पड़ा; किसी को देखा, और अचानक एक प्रेम की लहर दौड़ गई; रोआं- रोआं पुलकित हो गया। किसी से आंख मिली और बात हो गई। क्षण भर पहले तक प्रेम का ख्याल ही न था। प्रेम की तुम सोच भी न रहे थे। प्रेम की कोई बात ही न थी। किसी से आंख मिली और बात हो गई। बात हुई ही नहीं और "बात" हो गई--और तुम सदा के लिए बंध गए।
इसको तुम कर्तृत्व कहते हो? तुमने किया क्या? इसमें तुम्हारा कर्तापन कहां है? हुआ। प्रेम होता है--किया नहीं जाता।
इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेम में अगर कर्ताभाव बना रहे हो, तब तो तुमने हद्द कर दी। वहां तो कर्ता है ही नहीं। इसलिए तो ज्ञानियों ने कहाः प्रेम ही परमात्मा तक ले जाता है। प्रेम को ही समझ लो कि तुम जीवन की बड़ी गहरी बात समझ गए।
प्रेम किसने किया है? कभी किसी ने नहीं किया है। सब होता है। और होता है, तो फिर कैसे कर्ता? फिर तो अकर्ता का भाव अपने आप गहरा हो जाएगा। उसी अकर्ता में अभिनय है।
तो जब मैं तुमसे कहता हूंः अभिनय समझो, तो तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि अभिनय "करो"। तुमसे यह कह रहा हूं कि समझोगे, तो कर्ता विसर्जित हो जाएगा; जो रह जाएगा, वह अभिनय-मात्र है।

परमात्मा ने प्रेम करवा दिया, तो प्रेम हो गया। नहीं तो तुम्हारे वश में क्या था? तुम कोशिश कर के सफल हो सकोगे? अगर मैं कहूं कि इस व्यक्ति को प्रेम करो। तुम क्या करोग? तुम कहोगेः होता ही नहीं, तो क्या करें?
हो सकता है; इसे तुम गले लगा लो, मगर गले लगाने में तो प्रेम नहीं है। हड्डी से हड्डी लगेगी। चमड़ी से चमड़ी मिल जाएगी, मगर भीरत तुम जानोगे कि प्रेम तो है ही नहीं। कुछ उगम नहीं रहा; कोई गीत जनम नहीं रहा; कोई संगीत नहीं उठ रहा। तुम जल्दी में होओगे कि कब इससे छुटकारा हो! यह आदमी अब कब तक पकड़े रहेगा! कि और ज्यादा न भींच दे! हड्डी-पसली तोड़ देगा--क्या करेगा? अब यह आदमी छोड़े!
तुमसे अगर कहा जाएः प्रेम करो, तो तुम क्या करोगे? तुम कुछ भी न कर पाओगे। इसलिए तो दुनिया में प्रेम झूठा हो गया है। मतलब?
बचपन से तुम्हें समझाया गया है कि प्रेम करो, और प्रेम किया नहीं जा सकता। तो तुम "करना" सीख गए हो।
मां कहती हैः प्रेम करो, क्योंकि मैं तुम्हारी मां हूं। अब मां होने
से क्या प्रेम का लेना-देना? पिता कहता हैः मुझसे प्रेम करो, क्योंकि मैं तुम्हारा पिता हूं।
यह छोटे से बच्चे से हम जो आशाएं रख रहे हैं, ये आशाएं बड़ी भयंकर हैं।
यह छोटा बच्चा क्या करे? पिता हैं आप, ठीक है। लेकिन इसे प्रेम हो तो हो; और नहीं हो रहा है, तो यह क्या करे?
बच्चा इनकार भी नहीं कर सकता है; विरोध भी नहीं कर सकता है; बगावत भी नहीं कर सकता है। यह निर्भर भी है--मां-बाप पर। यह धीरे-धीरे प्रेम का पाखंड रचाने लगेगा। यह धीरे-धीरे, मां आएगी, तो मुस्कुराएगा। अभी और तो कुछ कर नहीं सकता। मां समझेगी कि कितना प्रेम करता है बेटा! यह मुस्कुराहट झूठी है। यह बेटा राजनीति सीख गया। "यह मां खुश होती है; मां के खुश होने में लाभ है।"
बाप घर आता है; बेटा भागा हुआ द्वार पर जाता है; स्वागत करता है। यह वैसे ही समझ गया राज, जैसे तुम घर आते हो, तो कुत्ता पूंछ हिलाने लगता है। तुमसे कुछ प्रेम है कुत्ते का? कुत्ता राजनीति कर रहा है। कुत्ता राजनीतिज्ञ है। कुत्ता एक बात समझ गया कि पूंछ हिलाने से तुम ऐसे बुद्धू हो कि बड़े प्रसन्न होते हो। तो हिला दो; पूँछ हिलाने में हर्ज क्या है? पूंछ हिला देता है, तो तुम मिठाई भी देते हो। खिलौने भी लाते हो; पुचकारते भी हो।
जैसा कुत्ता सीख जाता है कि पूंछ हिला दो; ऐसा बच्चा सीख जाता है कि मुस्कुराओ; दौड़ कर पिता का हाथ पकड़ लो; मां की साड़ी पकड़ लो। मां का पल्लू पकड़ कर घूमते रहो। मां बड़ी खुश होती है। खुश होती है, तो लाभ है, सुरक्षा है।
ऐसे प्रेम शुरू से ही झूठ होने लगा। फिर एक दिन तुम्हारा विवाह हो जाएगा और तुमसे कहा जाएगाः यह तुम्हारी पत्नी है, यह तुम्हारा पति है, अब इसको प्रेम करो। पति परमात्मा है, इनको प्रेम करो। प्रेम कैसे करोगे? प्रेम को झुठला दिया गया है।
प्रेम किया ही नहीं जा सकता। हो जाए, तो हो जाए। यह आकाश से उतरता हैं।
यह किन्हीं अनजान रास्तों से आता है और प्राणों को घेर लेता है। यह हवा के झोंके की तरह आता है।
देखते हैंः वृक्ष हिलते हैं; हवा का झोंका आ गया। नहीं आएगा, तो नहीं हिलेंगे। ऐसा ही प्रेम है। सूरज निकला, तो रोशनी फैल गई। नहीं निकला, तो अंधेरा है। ऐसा ही प्रेम है।
प्रेम तुम्हारे हाथ में नहीं; प्रेम तुम्हारे बस में नहीं; प्रेम तुम्हारी मुट्ठी में नहीं है। तुम प्रेम की मुट्ठी में हो। यह समर्पण का अर्थ होता है।
तो प्रेम तो सब से ज्यादा निकट बात है प्रार्थना के। इसलिए प्रेम को अगर तुमने समझ लिया, तो तुम पाओगेः तुम्हारा किया कुछ भी नहीं; परमात्मा करवा रहा है। यही मेरा अर्थ है--अभिनय से।

अभिनय से मेरा अर्थ नहीं है कि तुम कुछ कर रहे हो। तुमने कुछ किया, तो झूठ हो जाएगा। तुमने यह जाना कि मैं करने वाला नहीं हूं; कराने वाला और करने वाला "वही" है; मैं सिर्फ उपकरणमात्र, उसके हाथ की कठपुतली। "मुक्तिमूल आधीनता... ।"

चौथा प्रश्नः आपके जाने पूर्णक्रांति क्या है? और क्या आप जयप्रकाश नारायण की पूर्णक्रांति के संबंध में कुछ और न कहेंगे?

"क्रांति" शब्द राजनीतिज्ञों ने उपयोग कर कर के बहुत गंदा कर दिया है। शब्दों का बहुत उपयोग हो, तो गंदे हो जाते हैं। जैसे धर्मगुरुओं ने "ईश्वर" शब्द को गंदा कर दिया, वैसे ही राजनीतिज्ञों ने "क्रांति" शब्द गंदा कर दिया है।
कोई भी बात क्रांति हो जाती है! छोटा-मोटा परिवर्तन क्रांति कहला जाता है। छोटा-मोटा सुर क्रांति बन जाता है।
और जयप्रकाश ने तो हद्द कर दी! वे उसको पूर्णक्रांति कहते हैं--जो हुआ है। यह क्रांति ही नहीं है--पूर्ण तो बहुत दूर। क्रांति क्या है इसमें? राजनीतिज्ञों का एक दल हट गया, दूसरा दल सत्ता में आ गया। और दूसरे दल में और पहले दल में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। मौसेरे-ममेरे भाई बहन हैं। इंदिरा बहन हों, कि मोरारजी भाई हों--क्या फर्क है? इसमें क्रांति कहां है? सच तो यह है कि दो कदम पीछे हट गए। इंदिरा से देश नाराज ही इसलिए हो गया कि कुछ क्रांति की कोशिश कर रही थी। क्रांति किसी को बरदाश्त नहीं होती। कुछ क्रांति की चेष्टा चल रही थी, उसी चेष्टा में कुछ ज्यादती हो गई। ज्यादतियों का कारण इंदिरा ही नहीं थी; ज्यादतियों का कारण--लोग क्रांति बरदाश्त नहीं करते--यही था।
इस देश की संख्या बढ़ती जाती थी। यह देश रोज गरीब होता चला जाता है। लेकिन किसी को कहो कि संतति-नियमन करो, तो वह नाराज होता है। क्योंकि यह देश सदा से यही मानता रहा है कि संतान तो भगवान देता है। और किसी को फिकर ही नहीं है कि इस देश की संख्या इतने जोर से बढ़ रही है; यह रोज-रोज गरीब होता जाएगा।
जब लोग गरीब होते हैं, तो चिल्लाते हैं कि गरीबी मिटाओ। यही देश चिल्लाता है कि गरीबी मिटाओ। और जब गरीबी मिटाने की कोशिश की जाती है, तो अड़चन आती है, क्योंकि इसकी धारणाओं के प्रतिकूल पड़ जाती है व्यवस्था। गरीबी मिटाने का पहला कदम ही यही होगा कि इस देश की जनसंख्या पर पूरा नियंत्रण हो। लेकिन लोग नाराज होते हैं!
संतति-नियमन करने को कोई राजी नहीं। लोग समझते हैंः यह उनकी स्वतंत्रता पर हमला हो गया। बच्चे पैदा करने की स्वतंत्रता छिन गई?
और लोग सोचते हैं कि कम से कम यह तो हमारी आजादी होनी चाहिए कि हमें जितने बच्चे पैदा करने हैं--वह हम करें। लोग यह सोचते नहीं कि तुम्हारे बच्चे पैदा करने से गरीबी बढ़ती है।
यही लोग चिल्लाते हैंः गरीबी हटाओ। लेकिन जब गरीबी हटाने लग जाओगे,
तो यही लोग बाधा बन जाएंगे। और जब ये बाधा डालेंगे... ।
इंदिरा ने चेष्टा की कि इनकी बाधा को तोड़े, बाधा को तोड़ा, तो थोड़ी ज्यादती हो गई।
इंदिरा क्रांति की चेष्टा कर रही थी।
पांच महीनों में, जयप्रकाश ने जिस सत्ता को हुकूमत में बिठा दिया है,
यह तो बहुत ही प्रतिक्रांतिवादी मालूम होती है।
मैंने भी इस सत्ता का स्वागत किया था, सिर्फ इस आशा से कि जयप्रकाश जैसा व्यक्ति इसके पीछे है; निष्ठावान व्यक्ति पीछे है, शायद कुछ इनसे हो सकेगा। लेकिन पांच महीनों की कथा बड़ी अदभुत है।
इन पांच महीनों में कुछ भी नहीं हुआ; देश नीचे गिरा। जो इंदिरा ने थोड़ा-बहुत काम किया था, वह भी सब खराब कर डाला।

इन पांच महीनों में इन्हेंने इतना ही किया कि कोई भूल नहीं की। मगर भूल न करना कोई गुणवत्ता है? असल में भूल उससे होती है, जो कुछ करता है। जो कुछ करेगा ही नहीं, उससे भूल भी कैसे होगी?
इंदिरा ने कुछ करने की चेष्टा की थी, तो कुछ भूलें भी हो गई थीं। भूलें निश्चित हो गई थीं। भूलें नहीं होनी चाहिए थी। लेकिन जब कोई कुछ करने की चेष्टा करता है, तो भूल होनी स्वाभाविक है। स्वीकार करना चाहिए कि भूल होना स्वाभाविक है।
परीक्षा में बैठोगे, तो भूल होगी। परीक्षा में ही नहीं बैठोगे, तो भूल कैसे होगी?
इन पांच महीनों में, इस सरकार ने कुछ भी नहीं किया, इसलिए भूल का तो तुम कभी इस पर कोई दोषारोपण नहीं कर सकते। किए ही नहीं, तो भूल कैसी? चले ही नहीं, तो कांटा कैसे गड़े? बैठे हैं--अपनी जगह!
और जो किया, कुल जमा इतना किया कि किस तरह पुरानी सत्ता को बदनाम करो।
यह भी कोई धन्धा है? इसमें इतना समय खराब करने का कोई प्रयोजन नहीं है। जो बात गई--गई।
इस तरह की अभद्रता दुनिया के किसी देश में नहीं होगी। अगर हर सरकार यही काम करे कि जब बदलाहट हो, तो नई सरकार आकर पुरानी सरकार के सारे काले- कारनामों को खोजना शुरू कर दे, तो दुनिया में सब काम ही बंद हो जाए। क्योंकि इनको पांच साल का मौका मिला, यह तो उसी में लग जाएगा। फिर दूसरी सरकार आएगी, वह इसकी खोज-बीन करेगी; और इतनी ही भूलें इसमें मिल जाएंगी। क्योंकि जिनके हाथ में सत्ता है, उनसे भूल होना स्वाभाविक भी है। कुछ न भी करो, तो भूल हो जाएगी। कुछ न करने से भी भूल हो जाती है। कितना ही बचा कर रखो।
और सिर्फ इसलिए तुम्हें थोड़े ही वहां भेजा है कि तुम भूल न करो। और भूल ही नहीं करनी थी, तो अपने घर ही अच्छे थे!
सत्ता में बैठ कर अगर इतना ही करना है कि भूल नहीं करनी है और पुरानी सत्ता की सारी खोजबीन करनी है, तो यह तो बड़ी अजीब-सी बात हो गई।
यह तो ऐसा हुआ कि शिक्षक नया, स्कूल में आए और इसके पहले जो शिक्षक पढ़ता था बच्चों को, सारा समय उसकी भूल खोजने में लगाए। ये बच्चे हैं, इनको शिक्षा मिली नहीं है। पहला कम से कम कुछ शिक्षा तो दे रहा था; भूल भरी दे रहा होगा। ये सज्जन पिछले की भूल में ही सारा समय लगा रहे हैं!
कितने आयोग बिठा दिए हैं! सारा काम ऐसे मालूम पड़ता है कि किस तरह पुरानी सरकार की भूलें खोज ली जाएं। और मैं नहीं कहता कि भूलें नहीं थीं। भूलें निश्चित थीं, मगर उन पर इतना समय देना तो बड़ी भारी भूल हो जाएगी। जयप्रकाश इसको पूर्ण क्रांति कहते हैं! इसमें पूर्ण क्रांति जैसा कुछ भी नहीं। क्रांति जैसा भी कुछ नहीं। इसको छोटा-मोटा सुधार भी नहीं कहा जा सकता। सचाई तो यह है यह पूर्ण क्रांति हो गई। यह क्रांति से नीचे गिरना हो गया।
जो लोग सत्ता में आए हैं, ज्यादा दकियानूस हैं। जो लोग सत्ता में आए है, ज्यादा प्रतिक्रियावादी हैं। जो लोग सत्ता में आए हैं, ज्यादा लकीर के फकीर हैं।
इंदिरा में थोड़ी हिम्मत थी। यही हिम्मत उसे मुश्किल में डाल गई। अगर उसने भी हिम्मत न की होती, तो अभी भी देवी दुर्गा बनी होती। उसने हिम्मत की तो तुमको नाराजगी हो गई। तुम्हें अड़चन आई। क्योंकि तुम्हारी धारणाएं, तुम्हारी परंपराएं, तुम्हारी व्यवस्थाएं, जरा टूटीं कि तुम मुश्किल में पड़े।
रोज लोग चिल्लाते हैं कि बंबई या दिल्ली या कलकत्ता से झुपड़पट्टियां अलग होनी चाहिए। मगर जब अलग करोगे, तो अड़चन है! अलग करोगे, तो वे झुपड़पट्टिओं में जो लाखों लोग रहते हैं, वे नाराज हो जाते हैं। वे हटने से राजी नहीं हैं। उनका मकान छीन रहे हो। उनको बेहतर मकान भी दे दो--गांव के बाहर, तो भी वे नाराज हैं। वे वहीं जम कर बैठे रहेंगे। उनको हटाना है, तो

जबरदस्ती करनी होगी। और उनको न हटाओ, तो वे गंदगी फैला रहे हैं। उनको न हटाओ, तो वे घाव की तरह हैं।
वह तो यही समझो, कि तुम्हारे पैर में घाव हो जाए, तो तुम जाकर आपरेशन करवा लेते हो। वह तो जो कीड़े-मकोड़े तुम्हारे घाव में बैठे हैं, अगर उनसे पूछा जाए, तो बहुत नाराज होंगे। वे कहेंगेः हमको हटाया जा रहा है। हमारा घर छीना जा रहा है।
तुम्हें टी.बी. हो जाती है, तो टी.बी. के जो कीटाणु तुम्हारे प्राणों
को खाए जा रहे हैं, इलाज क्यां है? उनको मार डालो। लेकिन उनसे पूछो, तो वे कहेंगेः बहुत ज्यादती हो रही है। इस एक आदमी को बचाने के लिए करोड़ो कीटाणुओं को मार रहे हो। कुछ तो सोचो! अन्याय कर रहे हो
झुपड़पट्टी में जो बैठा है, उसे हटाओ, तो वह नाराज होता है। और वह नाराज
हो जाए, तो जिनको सत्ता में जाना है, वे उनके साथ खड़े हो जाते हैं। वे कहते हैंः यह जनता के साथ ज्यादती हो रही है।
इस जगत में कुछ भी करना हो, तो ज्यादती तभी बचाई जा सकती है, जब लोग सहज स्वागत से उसे करने को राजी हो जाएं। नहीं तो ज्यादती नहीं बचाई जा सकती। या फिर कुछ किया नहीं जा सकता। न किया जा सके, तो... ।
गरीबी हटानी है, देश को समृद्ध बनाना है। और लोगों की गरीबी की आदतें
पड़ गई हैं। और लोगों को जो जीवनशैली है, वह ऐसी है कि उन्हें गरीब से गरीब बनाए जाती है। उनकी जीवनशैली तोड़नी पड़ेगी, तो क्रांति हो सकती है।
मेरे देखे जो राज्य व्यवस्था जनता के अतीत से राजी न हो और भविष्य के लिए उन्मुख हो, वह क्रांति कर सकती है। जो राज्यसत्ता जनता अतीत के साथ ताल-मेल बिठा रखना चाहे, लोगों को खुश रखना चाहे, वह राज्यसत्ता क्रांति नहीं कर सकती।
पांच महीनों की कथा बहुत अजीब है। आशा निराशा में बदल गई है। और जयप्रकाश ने वही किया जो पहले गांधी कर चुके थे। वही भूल, वही ना-समझी। इसे भी समझ लेना जरूरी है।
गांधी लड़े अंग्रेजों से, और जब सत्ता हाथ में आई, तो सत्ता लेने की जिम्मेवारी नहीं ली; बच गए। क्योंकि इतनी बात गांधी को भी साफ थी कि अगर सत्ता हाथ में ली, तो थोड़े ही दिन में पता चल जाएगा कि जो नारे दिए थे-- लोगों को--वे पूरे नहीं किए जा सकते। जनता कि समस्याएं बड़ी कठिन हैं। अंग्रेजों के कारण नहीं थीं समस्याएं, नहीं तो अंग्रेजों के जाते, सब समस्याएं समाप्त हो जातीं। समस्याएं कठिन हैं, जटिल हैं।
गांधी होशियार राजनीतिज्ञ थे। एक बात उनको साफ समझ आ गई कि सत्ता में बैठे, तो प्रतिष्ठा खो जाएगी। क्योंकि हल तो होने ही वाला नहीं है। समस्याएं ऐसी हैं कि एक हल करोगे, दस उलझ जाती हैं। इतना बड़ा देश है; इतनी बड़ी समस्याएं हैं; इतनी उलझनें हैं। और जनता को खुश रखना है, वह सब से बड़ा उपद्रव है। वही जनता बाधा है। उसके ही हित में बाधा है।
तो गांधी कन्नी काट गए। वह कन्नी काटना भी हम को खूब अच्छा लगया। यही
तो हमारा मजा है। जनता की मूढ़ता ऐसी तो है! हमने कहाः यह है संत; सत्ता हाथ में आई और नहीं ली!
मगर यह तो ऐसा हुआ कि एक मरीज को डाक्टर टेबल पर लिटा दे और पेट खोल दे
और फिर कह दे कि "मैं आपरेशन नहीं करता।" इसको संत कहोगे? यह कहेः "अब आपरेशन हमारा असिस्टेंट कर देगा।" क्योंकि यह पेट काट कर देखे कि इस आदमी की बचने की उम्मीद नहीं है। मैं झंझट क्यों लूं? मैं दूर खड़ा रहा जाऊं। मैं अपने को बचा लूं। असिस्टेंट काट दे। बच गया, तो मैंने बचाया, क्योंकि मैंने ही शुरुआत की, और मेरा ही असिस्टेंट है। और मर गया, तो असिस्टेंट से भूल हो गई!
तो गांधी बच गए; सत्ता में नहीं गए। गांधी को सत्ता में जाना चाहिए था। वह उनकी बेईमानी थी। वह बड़ा कुशल काम कर गए। और जनता खूब प्रसन्न हुई। जनता ने कहाः "महात्मा यह है!"
यह जनता ऐसी मूढ़ है! उसने कहाः "महात्मा यही है।" जनता को जोर देना था
कि "तुम" लड़े; तुमने हमें लड़ाया, अब सत्ता हाथ में आई है, तो तुम जो कहते थे

करके दिखाना, वह करके दिखा दो! अब तो स्वराज्य आ गया, अब सुराज्य भी लाकर दिखा दो। तुम राम-राज्य की बातें करते थे, अब मौका मिला, अब राम-राज्य लाकर दिखा दो।
"तुम जो सारी बातें कहते रहे, पिछले पचास साल तक, अब तुम्हें अवसर मिला है, तो भागते कहां हो!" अगर देश समझदार होता, तो जनता ने जोर दिया होता, कि तुम सत्ता में जाओ। उनसे दो बातें साफ हो गई होतीः या तो गांधी कुछ कर सकते, तो देश को लाभ होता। या कम से कम उनसे छुटकारा हो जाता देश का। मुझे आशा है कि उनमें छुटकारा हो जाता। क्योंकि देश देख लेता कि बाद खतम हो गई। कल मैंने राजनारायण का वक्तव्य पढ़ा। वह वक्तव्य महत्वपूर्ण है। राजनारायण ने इस वक्तव्य में कहा है कि "जब मैं मिनिस्टर नहीं बना था, तब मेरी ज्यादा प्रतिष्ठा थी। अब मेरी प्रतिष्ठा कम हो गई!"
यह आदमी साफ-सुथरा है। ऐसा कोई कहता नहीं। मोरारजी भाई ऐसा न कहेंगे।
यह आदमी साफ-सुथरा है, सीधा-सादा है। इसने सच्ची बात कह दी--कि जब मैं सत्ता में नहीं था, तब मेरी प्रतिष्ठा ज्यादा थी। अब मेरी प्रतिष्ठा कम हो गई।
सत्ता में जाने से प्रतिष्ठा कम होगी ही। सत्ता में तुम जिन समस्याओं
को लेकर गए थे, वे हल तो होती नहीं। लोगों ने तुम्हें प्रतिष्ठा दी थी, क्योंकि तुम शोरगुल मचाते थे--कि ऐसा होना चाहिए और नहीं हो रहा है, और मैं करके दिखा सकता हूं।
लोगों ने तुम्हें भेजा। फिर वहां जाकर तुम बैठ गए। जो हो रहा था, वह भी नहीं हो रहा है। वह भी खतम हो गया। तुमसे तो कुछ हो ही नहीं रहा, तो प्रतिष्ठा तो खतम हो ही जाएगी।
गांधी अगर दो साल सत्ता में रह गए होते, तो जो काम गोडसे नहीं कर पाया,
वह सत्ता ने कर दिया होता; वे सदा के लिए मर गए होते। उनसे इस देश का सदा के लिए छुटकारा हो गया होता। अब कभी छुटकारा नहीं होगा, क्योंकि यह आशा मन में लटकी ही रहेगी कि काश, गांधी की कोई मान कर चलता, तो देश में सुराज्य आ जाता, देश में राम-राज्य आ जाता। और अब? गाँधी तो चूक ही गए। वह तो अब कोई उपाय ही नहीं रहा जांचने का।
वही जयप्रकाश ने फिर किया।
लोग कहते हैंः जयप्रकाश गांधी के वसीयतदार हैं। मैं भी कहता हूं। यह उन्होंने साफ कर दिया--सत्ता से बचकर!
तुम लड़े; तुमने मेहनत की; तुमने पुरानी सत्ता को उखाड़ दिया। अब यह तुम्हें मौका मिला था कि तुम बता देते कर के, कि तुम कुछ कर सकते हो। फिर बच गए!
अब जयप्रकाश की समादि भी वहीं राजघाट में बन जाएगी, जहां गांधी की है। अभी लोग एक पर फूल चढ़ाते हैं, फिर दो पर फूल चढ़ाने लगेंगे। बस, इतनी ही क्रांति हुई, और कुछ न हुआ।
यह बेईमानी है। क्या फर्क हुआ? और फर्क भी ऐसा, जिसका कोई मूल्य नहीं आंका जा सकता। कोई मूल्य है नहीं।
सच तो यह है कि अब सारा जो नया वर्ग सत्ता में गया है, वह इतना ही कर रहा है, कि उन्होंने देश को वह जो संकटकाल की, आपातकाल स्थिति थी, उससे छुटकारा दिलवा दिया। लेकिन मजा यह था कि इनके ही उपद्रव के कारण वह आपातकाल स्थिति डाली गई थी। नहीं तो उसे डालने की कोई जरूरत ही न थी। ए ही कारण हैं।
जयप्रकाश और मोरारजी ने तो उपद्रव मचाने शुरू किए थे, उसके कारण आपातकालीन स्थिति आई--इमरजंसी आई। अब ये कहते हैंः हमने उससे छुटकारा दिलवा दिया! तुम्हीं उसके जन्मदाता थे। तुम उपद्रव न करते, तो इंदिरा कोई आपातकाल स्थिति लाने के लिए उत्सुक नहीं थी। तुमने उपद्रव किया, उसको आपातकाल स्थिति लानी पड़ी। अब तुम्हारा उपद्रव सफल हो गया; तुमने आपातकालीन स्थिति खत्म कर दी। देश जहां के तहां है! कहीं कुछ फर्क नहीं हुआ।

आपातकालीन स्थिति का सारा जिम्मा इंदिरा पर छोड़ना उचित नहीं है। नब्बे प्रतिशत जुम्मा इन पर है--जो अब सत्ता में हैं। यह मजबूरी थी; लानी पड़ी।
जयप्रकाश इस तरह की बात करने लगे कि पुलिस का सैनिक, और फौज का सिपाही
भी बगावत करे। इस तरह की बातें अगर की जाएंगी तो कोई भी सत्ता, देश की सुरक्षा के लिए कुछ करेगी; करना ही पड़ेगा। वह मजबूरी थी।
अब ये सत्ता में आ गए हैं। जयप्रकाश तो बच कर निकल गए, अब उनका कभी दोष पकड़ा न जा सकेगा। और जिनके हाथ में सत्ता चली गई, वे इंदिरा से ज्यादा प्रतिक्रियावादी हैं।
मोरारजीभाई को किसी ने कभी सोचा था कि ए कोई क्रांतिकारी हैं? मुझ से
तो एक सज्जन कह रहे थेः उनका असली नाम मोरारजीभाई नहीं, मगरूरजीभाई! इन्हें कभी किसी ने सोचा ही नहीं था कि ये क्रांतिकारी हैं, इनसे क्रांति हो सकती है!
इंदिरा के हाथ में कम से कम जवानी के हाथ में सत्ता थी। अब ये बिल्कुल मुर्दों के हाथ में सत्ता चली गई।
और ये जो बातें कर रहे हैं, उनसे क्रांति का क्या लेना-देना है? गौहत्या बंद हो जाए इससे क्रांति होगी?
यह देश तो मूढ़ है! यह देश मूढ़तापूर्ण बातों में रस लेता है। अगर यहां गौहत्या बंद हो जाए, तो लोग समझेंगेः हो गई क्रांति! गौहत्या बंद होने से क्या होगा? भूखे का पेट भरेगा? थोड़ा और भूखा हो जाएगा। क्योंकि वह जो गौएं बच जाएंगी, उनको भी खिलना पड़ेगा।
और मैं यह नहीं कर रहा हूं कि गौहत्या होनी चाहिए। मैं यह कह रहा हूंः
यह कोई क्रांति नहीं होगी।
अब मोरारजीभाई दीवाने हैं कि शराबबंदी हो जाए। शराबबंदी से फर्क होगा? शराबबंदी से देश में सुधार हो जाएगा?
असल में वह जो गरीब है, दुखी है, परेशान है, पीड़ित है, जो बिल्कुल मरा
जा रहा है--शराब ही उसका सहारा है। वह उसी के सहारे जी लेता है। किसी तरह अपने को भुला लेता है। वह भी छीन लो उससे! दिन भर की तकलीफें और दिन भर की परेशानियां, सांझ पी लेता है और भूल जाता हैः चलो, कल देखा जाएगा। अब कल जब होगा, तब होगा।
शराबबंदी कर देने से लोगों के दुख न मिटेंगे। हां, लोगों के दुख मिट जाएं, तो शराबबंदी अपने से हो जाएगी।
मैं भी शराबबंदी के पक्ष में हूं, मगर शराबबंदी के सीधे पक्ष में नहीं हूं।
मैं कहता हूंः लोग दुखी हैं; लोग परेशान हैं; लोग इतने परेशान हैं कि शराब इनका सहारा है। नहीं तो कौन जहर पीता है? कोई सोच समझ कर जहर पीता है? कोई खुशहाल आदमी जहर पीता है? लोग चिंतित हैं। और तुम यह मत सोचना कि जिनके पास धन है, वे चिंतित नहीं है। वे भी चिंतित हैं।
यह देश इतना गरीब है कि इस देश में धनी होना और भी चिंता का कारण है। अगर नंगे आदमियों के बीच एक आदमी कपड़ा पहने खड़ा है, तो कितनी देर कपड़ा पहने खड़े रहोगे? कुछ पक्का है; ये जहां हजार नंगे आदमी खड़े हैं और सब तुम से छीने-झपटने को तैयार हैं कि कब तुम्हारे कपड़े चीर-फाड़ कर फेंक देंगे! कपड़ा तो छीनेंगे, तुम्हारी चमड़ी भी छोड़ेंगे कि नहीं... ।
जहां हजार नंगे आदमी खड़े हैं, वहां एक आदमी कपड़ा पहने खड़ा है--इसकी चिंता का तुम्हें अंदाज नहीं है। यह नंगे आदमियों से ज्यादा परेशान है। क्योंकि इनको लग रहा है--ये कपड़े आज नहीं कल छिनने वाला हैं। कोई इधर से खींच रहा है, कोई उधर से खींच रहा है! इसको डर है कि कपड़े तो जाएंगे ही, हाथ-पैर भी बचेंगे--मुश्किल है। गर्दन भी बचेगी--मुश्किल है।
शराबबंदी से कुछ भी न होगा। यह देश को धोखा देना है। यह क्रांति इत्यादि नहीं है। यह असली सवालों को हटा कर नकली सवाल बीच में लाना है। और नकली सवालों के साथ एक मजा है कि लोग उनसे राजी होते हैं। यहां शराब पीने वाला भी, जहां तक कहने का संबंध है, वह भी कहेगाः हां, शराब बुरी चीज है।

शराब बुरी चीज है ही--यह सभी मानते हैं। इसलिए कौन कहेगा कि यह शराबबंदी नहीं होनी चाहिए!
यहां जो आदमी गौ का भक्त नहीं भी है; वह भी यह नहीं कहेगा कि गौ कटनी चाहिए। मुसलमान भी नहीं कहेगा कि कटनी चाहिए, क्योंकि बात तो सीधी-साफ है-- कि हिंसा अच्छी नहीं हो सकती।
तो ए बातें तो हमारी धारणा में ही बैठी हुई हैं कि गौ नहीं कटनी चाहिए; शराब नहीं पी जानी चाहिए। यह लोक-मानस के अनुकूल चलना है। हालांकि इससे कुछ हल नहीं होगा।
जरा सोच लो कि गौ कटना बंद हो गई। मान लो। और शराब-बंदी हो गई। क्या फर्क पड़ेगा? कितना फर्क पड़ेगा? गरीब की गरीबी मिटेगी? अशिक्षित शिक्षित हो जाएगा? जिनके पास मकान नहीं, उनके पास मकान होंगे? क्या होगा? इससे खतरे ही बढ़ेंगे।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि गरीब आदमी के लिए, भूखे-परेशान के लिए अगर शराब न हो तो फिर दूसरा मनोरंजन का एक ही उपाय बचता है सस्ता--और वह हैः संभोग। अगर वह रात शराब पीकर आ गया पति, तो चुपचाप सो जाता है। यह थोड़ा शोरगुल मचाता है; इधर-उधर घूम कर, गिर-फिर कर, आकर सो जाता है। अगर वह शराब पीकर नहीं आया, तो एक ही उपाय है कि संभोग करे।
शराबबंदी इस देश की संख्या को बढ़ा देगी। और शराबबंदी इस देश में लोगों का तनाव और बेचैनियां बढ़ा देगी। और लोग जब ज्यादा तने होते हैं, ज्यादा बेचैन होते हैं, ज्यादा परेशान होते हैं, तो ज्यादा हड़तालें होंगी, ज्यादा दंगे होंगे, ज्यादा छुरेबाजी होगी, हिंदू-मुस्लिम दंगे होंगे; महाराष्ट्रियन गुजराती लडेंगे; ऐसा होगा, वैसा होगा--ये सब उपद्रव होंगे। शराब शामक है। और ख्याल रखना कि मैं शराब का पक्षपाती नहीं हूं। मैं
भी चाहता हूं कि शराब चली जाए, क्योंकि इससे अहित तो होता है। इससे स्वास्थ्य की हानि तो होती है। मगर शराब जाए; उसके मूल कारण हट जाएं--तो जाए। नहीं तो कोई मतलब नहीं है।
गौहत्या जरूर बंद होनी चाहिए। लेकिन जहां आदमी की हत्या हो रही है, वहां गौहत्या बंद नहीं हो सकती।
यहां मेरे पास इतने पश्चिम से आए संन्यासी हैं, वे सभी मुझे कहते हैं
कि यहां की गौएं ऐसी हैं--मरी-मराई--कि हमने कभी पश्चिम में देखी नहीं। पश्चिम की गाय बड़ी शानदार होती है। तीस-चालीस सेर दूध देना गाय के लिए बिल्कुल सहज बात है। रोज साध सेर दूध देने वाली गाएं पश्चिम में आम हैं। यहाँ की गाय? तीन पाव दूध दे दे, तो बहुत है!
आदमी मरा जा रहा है, गौ को खिलाने के लिए कहां है! और तुम गौएं बढ़ा लोगे। पानी पिलाने को नहीं है; घास खिलाने को नहीं है और गौओं की भीड़ बढ़ाने जाओगे।
और मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि गौएं मारी जाएं। मैं किसी के भी मारे जाने के पक्ष में कैसे हो सकता हूँ! इसलिए मेरी अड़चन समझना।
मैं जानता हूं कि गौएं बचनी चाहिए। लेकिन यहां आदमी मरा जा रहा है, तो पहले गाय तो नहीं बचाई जा सकती। पहले आदमी को बचाना होगा। आदमी बचेगा, तो गाय बच सकती है--किसी दिन। गाय के बचने से आदमी नहीं बचेगा। गाय क्या करेगी? जितनी संख्या गाय की हो जाएगी, उतना दूध गायों से कम मिलने लगेगा, क्योंकि भोजन उतना बंट जाएगा।
पश्चिम में गायों की संख्या ज्यादा नहीं है। गाएं कम हैं, लेकिन उनको फिर भोजन पूरा मिलता है।
पचास गाएं हों तुम्हारे घर में और भोजन इतना ही है, तो पचास में बंट जाता है। पचास गायों का मिल कर दूध पचास सेर हो जाता है।
पश्चिम में एक गाय होती है--पचास गाएं नहीं होतीं। मगर एक गाय पचास सेर दूध दे देती है। और एक गाय का खर्चा कम है। पचास गायों का उपद्रवः उनको रखने का इंतजाम, उनकी सेवा-टहल, आदमी--सबकी व्यवस्था चाहिए।
पश्चिम में दूध-दही की नदियां अभी भी बह रही हैं, जिनकी तुम पुराणों में बात करते हो। लेकिन हमारी मूढ़ता ऐसी है कि व्यर्थ की बातें हमें बड़ी

क्रांतिकारी मालूम होती हैं। बिल्कुल दो-कौड़ी की बातें, जिनका कोई मूल्य नहीं है; जिनमें कहीं कोई समझदारी की झलक नहीं है।
लेकिन यह जनता मूढ़ है। इस जनता के नेता तुम्हें बना रहे हैं, तो जो जनता मानती है, वैसा करो।
अब यह चमत्कार की घटना घटी न! यह पहला मौका था कि जनसंघ, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और मुसलमान एक साथ इंदिरा के खिलाफ हो गए। जो सदा के दुश्मन थे, वे साथ हो गए! इंदिरा को हटाने में हिंदू मतवादी और मुसलमान--दानों इकट्ठे हो गए। ये सदा के दुश्मन! इनको मामला क्या हो गया? एकदम से साथ, दोस्ती कैसे बढ़ गई? इसने सदा एक-दूसरे की छाती में छुरा भोंका था। ये एक साथ कैसे हो गए?
वह जो संतति-नियमन का प्रयोग चला--उसके कारण एक हो गए। मुसलमान बहुत नाराज हो गए।
उत्तर प्रदेश में इंदिरा की हार मुसलमान की नाराजगी है--और कुछ भी नहीं। मुसलमान बरदाश्त नहीं कर सका--कि उसकी संतति की स्वतंत्रता पर बाधा डाली जाए।
मुसलमान अजीब सी बातों में पड़ा है। जैसे मुसलमानों का नियम है कि चार औरतों से शादी कर सकते हो! अब जो भी बाधा डालेगा इसमें, मुसलमान उस पर नाराज हो जाएगा। अब यह बात बिल्कुल अनैतिक है--कि एक आदमी चार स्त्रियों से शादी करे। और अगर यह नैतिक है, तो फिर एक स्त्री चार आदमियों से शादी करे--यह अनैतिक क्यों है?
यह तो ज्यादती है। यह शोषण है। लेकिन अगर कोशिश करो, कि हम कानून बनाएंगे कि एक आदमी एक ही स्त्री से शादी कर सकेगा, तो मुसलमान नाराज हो जाता है। उसकी स्वतंत्रता पर बाधा पड़ रही है। स्त्रियों का वह शोषण करता रहा है--सदा से।
स्त्रियों का इसलाम में कोई आदर नहीं है; बड़ा अनादर है। इससे बड़ा अनादर क्या होगा कि तुम चार स्त्रियों के मालिक बन जाते हो! और मुसलमान को उसमें फायदा दिखाई पड़ता है। फायदा यह है कि वह चार स्त्रियों से काम करवाने लगता है। तो उसकी आमदनी चौगुनी हो जाती है।
और इसलिए लोग बच्चे रोकने में भी बाधा डालते हैं। क्योंकि छोटे-छोटे बच्चों को काम में लगा देते हैं। स्कूल वगैरह भेजना नहीं है। अगर स्कूल भेजने की जबरदस्ती करो, तो उनकी स्वतंत्रता में बाधा पड़ती है!
स्कूल भेजना नहीं है; छोटे-छोटे बच्चों को काम में लगा दिया। गाएं चराने जाने लगे; घास काटने लगे; गड्ढा खोदने लगे; लकड़ी फाड़ने लगे। छोटे- छोटे बच्चों को काम में लगा दिया। तो जितने ज्यादा बच्चे हों, उतना ही थोड़ा ज्यादा पैसा आने लगा।
ऐसा व्यक्ति को तो दिखाई पड़ता है, लेकिन पूरे समूह का जीवन रुग्ण होता चला जाता है। अब जो भी इनको छेड़ेगा, वही दुश्मन हो जाएगा।
इंदिरा का गिर जाना इस कारण हुआ कि इंदिरा कुछ क्रांति करने की कोशिश
कर रही थी, और अगर उसे ज्यादती करनी पड़ी, तो उसका कारण इंदिरा नहीं थी। उसका कारण वे लोग थे, जिन्होंने बाधाएं डालीं।
तुम ही बाधा डालोगे, तुम्हारे ही हित में बाधा डालोगे!
ये जो सत्ता में आ गए लोग हैं, मैंने भी इनका स्वागत किया था, इस आशा से
कि जयप्रकाश एक निष्ठावान आदमी हैं। मगर वह भी वैसा ही धोखा दे गए, जैसा पहले गांधी दे गए थे। उन्होंने ठीक वसीयत पाली! अब वे बैठ गए जाकर पटना, और जिन बातों के लिए वे इंदिरा से लड़े थे, वे सब की सब बातें वैसी की वैसी जारी हैं। कहीं कोई फर्क नहीं हुआ।
कल मैं एक गीत पढ़ रहा था। बालकवि वैरागी का गीत है। वह मुझे पसंद पड़ा। उसे समझना।
गंतव्य वही, मंतव्य वही,
आदेश वही, अधिकार वही,
रीति वही, रणनीति वही,
प्रतिशोध वही, प्रतिकार वही

जब घात वही, प्रतिघात वही काजल कुंकुंम की जात वही तो उषा किसे निखार गई
पुरवा को पछुवा मार गई।
कल आग जिन्हें आवश्यक थी वे सिर पर सावन ढोते हैं
जो कल तक सावन ढोते थे
वे आज आग को रोते हैं
ये सब मौसम के तस्कर हैं
सब मिली-जुली चतुराई है
सब सपनों के सौदागर हैं
यह सब मौसेरे भाई है
अंबर के नारे वे के वे
और अंधे तारे वे के वे
घूंघट में डायन मार गई
पुरवा को पछुवा मार गई।
गंतव्य वही, मंतव्य वही
आदेश वही, अधिकार वही,
रीति वही, रणनीति वही,
प्रतिशोध वही, प्रतिकार वही जो क्रांति बताता है इसको उस चिंतन को बलिहारी है
परिवर्तन को क्रांति बताना,
संभवतः लाचारी है
जब चिंतन पर काई जम जाए
विप्लव का भांवर थम जाए
तो समझोः पीढ़ी हार गई
पुरावा को पछुवा मार गई।
कुछ फर्क नहीं हुआ। सब वैसा का वैसा है।
और यह भी मैं तुमसे कहना चाहूंगा कि यह इस घटना में हुआ हो--ऐसा भी नहीं। आज तक जगत में कोई राजनैतिक क्रांति नहीं हुई।
क्रांति का शास्त्र ही व्यर्थ हो गया है। क्रांति की बात ही अब क्रांतिकारी नहीं रही। सब क्रांतियां हार गई हैं। फ्रेंच क्रांति हारी; रूसी क्रांति हारी, चीनी क्रांति हारी--सब क्रांतियां हार गईं। कोई क्रांति जीती नहीं।
इससे एक सार की बात समझ लेनी चाहिए कि सत्ता में परिवर्तन से क्रांति नहीं होती। लोगों के सत्वों में परिवर्तन होना चाहिए। राज्य से क्रांति नहीं होती; समाज से क्रांति नहीं होती; केवल व्यक्ति से क्रांति होती है। केवल व्यक्ति की चेतना में क्रांति का दीया जलता है।
इसलिए मेरी कोई उत्सुकता राज्य में, सत्ता में, समाज में नहीं है। मेरी उत्सुकता तुममें है, व्यक्ति में है। एक-एक व्यक्ति रूपांतरित हो, बड़ी संख्या लोगों की रूपांतरित हो जाए, तो समाज भी बदल जाएगा। लेकिन समाज को सीधे बदलने का कोई उपाय नहीं है। कैसे बदलोगे? क्योंकि जिस समाज को बदलना है, उसी से वोट मांगनी होगी। इस यंत्र को समझो।
जिसको बदलना है, उसी से वोट मांगनी है। वोट वह तभी देता है, जब तुम उसके अनुकूल हो। तुम प्रतिकूल हो गए।, तो वह वोट नहीं देता। और तुम्हें अगर बदलना है, तो तुम्हें प्रतिकूल होना पड़ेगा। तब तो बड़ी झंझट हो गई। यह गणित तो बहुत उलझ गया।
तुमसे आज्ञा लेनी है और तुम्हारे ही खिलाफ काम करना है। तुम आज्ञा ही
न दोगे पहले तो; और अगर तुमने आज्ञा भी दे दी--किसी आश्वासन में, किसी भ्रम में--तो जैसे ही बदलाहट शुरू होगी, तुम नाराज हो जाओगे। तुम कहोगेः धोखा हो गया! हमें कहा कुछ था, किया कुछ जा रहा है।

जनता की यह जो भीड़ है, यह बिल्कुल अंधकार में खोई हुई है। इसे यह भी पता नहीं कि इसके हित में क्या है? इसे यही पता होता, तो हित कभी का हो गया होता। इसे यह भी पता नहीं कि अहित में क्या है? यह अपने ही अहित को किए चली जा रही है। यह अपने ही हाथ से अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारे चली जाती है! इसे तुम रोको, तो यह नाराज होती है।
तो जिसको क्रांति करनी हो, वह जनता से मत न ले पाएगा। और जिसे जनता से
मत लेना हो, उसे क्रांति की बातचीत करनी चाहिए, लेकिन क्रांति का काम नहीं करना चाहिए, क्रांति की झंझट में नहीं पड़ना चाहिए।
इंदिरा उसी झंझट में पड़ी। उसे धीरे-धीरे ऐसा लगा कि अब कुछ हो सकता है; कुछ किया जा सकता है।
मुझे याद आती है, काफी वर्ष हो गए, तब इंदिरा से मेरा मिलना हुआ था। तब मोरारजी इंदिरा के साथ उपप्रधानमंत्री थे। मुझे भलीभांति याद है इंदिरा ने मुझे कहा कि आप जो कहते हैं, वह मैं पढ़ती हूं और आपकी बातें मुझे ठीक लगती हैं। लेकिन आप तो जानते ही हैं, मैं मोरारजी भाई जैसे आदमियों के साथ उलझी हूं। कुछ काम हो नहीं सकता। कुछ भी करना चाहो, अड़चन खड़ी हो जाती है। इन सब को बांध कर चलाना बहुत मुश्किल है। जरा भी कुछ नये करना चाहो कि वे सब ठिठक कर खड़े हो जाते हैं। वे कोई साथ देना नहीं चाहते।
तो मैंने इंदिरा को कहा थाः "जो इस तरह ठिठक कर खड़े होते हैं, उनको धीरे-धीरे विदा करो।" उसने किया भी; धीरे-धीरे उनको विदा भी किया। मगर इतने लोगों को विदा कर दिया कि वे सब इकट्ठे हो गए। उन सब ने इकट्ठे होकर, जो क्रांति की संभावना थी, उसको फिर मार डाला।
इसलिए मैं यह तो देख ही नहीं पाता कि राज्य की सत्ता के आधार पर कोई क्रांति कभी हो सकती है।
स्टैलिन को भी कम से कम एक करोड़ आमी मार डालने पड़े रूस में। और ये जो
एक करोड़ आदमी मारे, ये कोई करोड़पति नहीं थे। इतने करोड़पति कहां पाओगे? इतने करोड़पति होते, तो फिर जरूरत ही क्या थी? ये सब गरीब लोग थे। मगर इन गरीबों ने बड़ी बाधी दी क्रांति में। बड़ी मजबूरियां खड़ी कर दीं। असल में यही असली जड़बुद्धि लोग हैं। इन्होंने इतनी बाधाएं खड़ी कर दीं, कि इनको रास्ते से हटाना पड़ा। लेकिन वह तो अधिनायकशाही थी, तो स्टैलिन कर सका।
आज रूस में जो भी थोड़ा-बहुत धन-वैभव है, वह स्टैलिन की जबरदस्ती की वजह
से है। अगर लोकतंत्र होता, तो यह भी नहीं हो सकता था।
हालांकि मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि एक करोड़ लोग मारे जाएं। यह बड़ा मूल्य हो गया। और मैं इस पक्ष में भी नहीं हूं कि लोगों की सारी स्वतंत्रता नष्ट कर दी जाए; कि उन्हें बिल्कुल काराग्रह में डाल दिया जाए।
माओ भी कर सका चीन में, काफी काम कर सका, लेकिन काम कर सका बंदूक के बल पर।
जिनके हित में काम करना है, उनकी ही छाती पर संगीन लगानी पड़ती है, तब
वे काम करते हैं, नहीं तो वही काम नहीं करते।
माओ ने जो किया, और स्टैलिन ने जो किया... ।
इंदिरा को धीरे-धीरे यह बात समझ में आनी शुरू हो गई थी। अगर कुछ करना है, तो थोड़ी जबरदस्ती करनी होगी। उसी जबरदस्ती के कारण इंदिरा को हट जाना पड़ा, क्योंकि यह लोकतंत्र है। यहां हर पांच-सात साल में तुम्हें जनता में जाकर फिर प्रमाण-पत्र लेना होगा कि जनता तुमसे राजी है। अब पांच साल में दुनिया नहीं बदलती।
हर पांच साल में जनता से जाकर आज्ञा लेनी है। अगर तुमने जरा ही जनता
के खिलाफ कुछ किया, पांच साल बाद तुम सत्ता से उतार दिए जाओगे। और जनता के खिलाफ करना ही होगा, नहीं तो क्रांति नहीं होने वाली है।
इसलिए मेरे देखे सत्ता के माध्यम से तो एक ही उपाय हैः या तो अधिनायकशाही हो--जो कि बड़ा मूल्य ले लेती है; लोगों का प्राण छीन लेती है। रोटी दे देती है, रोजी दे देती है, छप्पर दे देती है, लोगों की आत्माएं मर जाती हैं। रूस, चीन में वही हुआ।

और या फिर लोकतंत्र आजादी तो कायम रखता है, स्वतंत्रता तो कायम रखता है, लेकिन क्रांति नहीं तो पाती। लोकतंत्र और क्रांति का मेल नहीं बैठ पाता है।
तो उपाय क्या है? उपाय एक ही है कि हम व्यक्ति को सीधा पहुंचे। हम व्यक्ति को पकड़े। हम व्यक्ति में ही क्रांति लानी शुरू करें। धीरे-धीरे एक-एक व्यक्ति बदलता जागे, उसकी समझ, धारणा बदलती जाए, तो जो समूह पैदा होगा, वह समूह, क्रांति को स्वीकार कर सकेगा। मैं वही कर रहा हूं।
मेरा राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है। मैं बिल्कुल अराजनैतिक व्यक्ति हूं। मुझे सत्ता से कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन बुनियाद रखी जा रही है क्रांति की। अगर इस देश में मेरे संन्यासियों की संख्या काफी हो, तो जो भी क्रांति आएगी, उसको कोई हिंसा नहीं करनी पड़ेगी। मेरा संन्यासी उसका स्वागत करेगा। वह फूल बरसाएगा--उसके स्वागत में। उसकी धारणाएं ही तब तक बदल चुकी होंगी; वह नई चेतना और नई ज्योति से भरा होगा। नई समझ और नए विचारों की तरंगें उसके मन में होंगी। वह समझ पाएगा कि कहां अड़चनें हैं। कहां से अड़चनें तोड़नी हैं और उनको तोड़ने में सहयोगी हो सकेगा।
इंदिरा ने कोशिश की, लेकिन लोग तैयार नहीं थे। लोगों को तैयार किया जाना था।
स्टैलिन ने कोशिश की, लोग बिल्कुल तैयार नहीं थे, तो लोगों कि हत्या करनी पड़ी। फिर लोगों ने भी बदला लिया। फिर स्टैलिन के मरते ही लोगों ने बदला लिया। स्टैलिन का नाम पोंछ डाला रूस से।
माओ से भी बदला ले रहे हैं। माओ की पत्नी जेल में पड़ी है। हालांकि माओ
की कब्र पर फूल चढ़ाते हैं। लेकिन वे भी ज्यादा दिन नहीं चढ़ेंगे। माओ ने जो किया था--एक साल में, माओ के मरने के बाद--जिनके हाथ में सत्ता आई, उन्होंने उसको पोंछ डाला।
जीवन का जाल काफी उलझा हुआ और जटिल है। जयप्रकाश नारायण चैसा सोचते हैं, उतना सरल नहीं है--कि आदमी बदल दिए; एक ही जगह दूसरे को बैठा दिया; क्रांति हो गई! यह तो सुधार भी नहीं होता ऐसे। क्रांति तो दूर की बात है। क्रांति करनी हो, तो लोगों की आत्माओं में बीज बोने पड़ेंगे। और एक-एक आदमी को सीधा रूपांतरित करना पड़ेगा। हां, एक बड़ी संख्या रूपांतरित लोगों की हो जाए, तो वे क्रांति के अगुआ हो जाएंगे। और जो भी क्रांति आएगी, उसका स्वागत कर सकेंगे। फिर ज्यादती नहीं करनी होगी। लोक-मानस खुद ही स्वागत करने को तैयार होगा।
मेरे देखेः सारी क्रांति वैयक्तिक है। सारा विकास वैयक्तिक है। भीड़
का कोई विकास नहीं होता; व्यक्ति का विकास होता है। और व्यक्ति का ही हो सकता है, क्योंकि भीड़ के पास कोई आत्मा नहीं है। व्यक्ति के पास आत्मा है, चेतना है, बोध है।
क्रांति मात्र बोध की क्रांति होती है। इसलिए असली क्रांतियां, स्टैलिन, माओ, लैनिन, टीटो--इस तरह के लोगों ने नहीं की। असली क्रांतियां कीं बुद्ध ने, महावीर ने, क्राइस्ट ने--असली क्रांतियां कीं। उनकी भी मजबूरी है।
लोग इतने अंधेरे में हैं इतने घिसटते हुए हैं कि कुछ दीए जल जाते हैं, मगर फिर भी अंधेरा थोड़े ही मिट जाता है।
मगर अब संभावना बढ़ती जा सकती है। बुद्ध को गए पच्चीस सौ साल हो गए। पच्चीस सौ साल में काफी रूपांतरण मनुष्य का हुआ है। काफी जड़ताओं से छुटकारा हुआ है।
अगर जड़ताओं से छुटकारा न होता, तो तुम मुझे सुनते ही नहीं; मुझे सुनते
ही सूली पर लटका देते। दो हजार साल पहले तुमने मुझे तत्क्षण सूली दे दी होती। और आज भी जो लोग दो हजार साल पुरानी बुद्धि को लिए बैठे हैं, उनकी तो यह आकांक्षा है कि मुझे सूली लग जानी चाहिए। वे अब भी नाराज हैं। उनकी धारणाएं समकालीन नहीं हैं।
कोई दो हजार साल पुरानी धारणाएं लिए बैठा है, कोई तीन हजार साल पुरानी धारणाएं लिए बैठा है!

समय बदला है। आमी ज्यादा विकसित हुआ है। जो आज घट सकता है, पहले कभी नहीं घट सकता था। यहां तुम ईसाई को पाओगे, मुसलमान को पाओगे, हिंदू को पाओगे--जैन को, बौद्ध को। यहां दुनिया के सारे धर्मों के लोग इकट्ठे हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ था। जैन के मंदिर में जैन को पाओगे। हिंदू के मंदिर में हिंदू को पाओगे। मुसलमान की मस्जिद में मुसलमान को पाओगे।
यह मंदिर परमात्मा का है--न हिंदू का, न मुसलमान का, न ईसाई का, न जैन का। यहां तुम सबको पाओगे।
यहां करीब-करीब दुनिया के सारे देशों से संन्यासी हैं। एक रूस से कमी थी, तो अभी कुछ दिन पहले एक रूसी आकर संन्यास ले गया। अब दुनिया का कोई देश नहीं है, जहां संन्यासी नहीं हैं।
जाति की, देश की, धर्म की--सारी सीमाओं को तोड़ने की आज संभावना है। आज सारे संस्कार तोड़ देने की संभावना है। मनुष्य आज इतना राजी हो सकता है कि अपने सारे छोटे-मोटे घेरों से बाहर निकल आए; खुले आकाश में आ जाए।
इन्हीं लोगों की संख्या बढ़ती जाए, तो दुनिया में क्रांति होगी।
और क्रांति कोई जल्दबाजी की बात नहीं है--कि आज हो जाए। आदमी हजारों साल में धीरे-धीरे विकसित होता है।
इसलिए मेरी समझ व्यक्ति की दिशा में है। राज्य में मुझे रस नहीं है; समाज में मुझे रस नहीं है। लेकिन व्यक्ति में रस है। व्यक्ति में पूर्णक्रांति घट सकती है।
और तुमने पूछा है कि पूर्णक्रांति का क्या अर्थ है! पूर्ण क्रांति का मेरी दृष्टि में अर्थ हैः व्यक्ति के पास किसी तरह की धारणाएं, और पक्षपात न रह जाएं। व्यक्ति की चेतना शुद्ध दर्पण की तरह हो। पूर्णक्रांति यानी समाधि।
समाधिस्थ व्यक्ति जो भी करेगा, वह कल्याण है, मंगल है। ध्यानस्थ व्यक्ति जो भी करेगा, उससे शुभ ही होगा, अशुभ नहीं होगा। क्योंकि ध्यान की ऊर्जा तुम्हें बोधपूर्ण बनाती है। तुम्हारे कृत्य में तुम्हारा बोध समा जाता है। ध्यानहीन व्यक्ति जो भी करेगा, गलत करेगा।
तो मैं तो एक ही क्रांति जानता हूं कि किस तरह तुम्हारे जीवन में ध्यान जुड़ जाए। ध्यान का धन तुम्हें मिल जाए, तो परम धन तुमने पा लिया। और तुम्हें ध्यान मिल जाए, तो परम धन तुमने पा लिया। और तुम्हें ध्यान मिल जाए, तो संभावना बनती है कि तुम्हारे पास-पड़ोसियों की ज्योति को भी तुम जगा सको।
ज्योति से ज्योति जले। और एक-एक से ऐसी ज्योति फैलती जाए, तो मैं सारे संसार को आग से भर दे सकता हूं। इसलिए यह गैरिक वस्त्र चुने हैं। यह आग का रंग है, ये अग्नि के प्रतिक हैं। इनमें तुम्हें भस्म हो जाना है। इनमें तुम्हें अपने अतीत को बिल्कुल राख कर देना है। इसमें सिर्फ शुद्ध चेतना वचे--न हिंदू वचे, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन। इसमें न हिंदुस्तानी, न पाकिस्तानी, न चीनी... । सारी धारणाएं और सारी क्षुद्रताएं जल जाएं, राख हो जाएं। और अंततः इसमें तुम्हारा अहंकार भी जल जाए। इसी को मैं पूर्ण क्रांति कहता हूं।
अहंकार भी जल जाए, तो पूर्ण क्रांति घट गई।
पूर्ण क्रांति व्यक्ति में घटती है। और अगर व्यक्ति में घट जाए, तो उसके आस-पास भी अपने आग चिनगारी फैलने लगती है। एक में घटे, तो दस में घट जाएगी। दस में घटे, तो सौ में घट जाएगी। ऐसे घटते-घटते एक दिन इस सारी पृथ्वी पर क्रांति के फूल खिले सकते हैं।
लेकिन यह क्रांति ऊपर से नहीं थोपी जा सकती। यह क्रांति आध्यात्मिक
हो हो सकती है।

पांच प्रश्नवांः आप कहते हैं कि कल का कोई भरोसा नहीं। लेकिन यही तो "ईट ड्रिंक बी मेरी"--खाओ, पीओ और मौज करो, को मानने वाले भी कहते हैं।
आपमें और उनमें क्या फर्क है?

निश्चित ही, खाओ, पीओ और मौज करो वाले लोग भी यही कहते हैं कि कल का तो कुछ भरोसा नहीं, आज ही खा लो, पी लो, मौज कर लो। मैं भी यही कहता हूं, सारे बुद्धपुरुष भी यही कहते हैं। तर्क तो एक ही है। लेकिन लक्ष्य और गंतव्य अलग-अलग हैं।
खाओ, पीओ और मौज करने वाले दर्शनशास्त्र को मानने वाले लोग कहते हैं
कि कला का भरोसा नहीं है, अभी खा लो, अभी पी लो, अभी मौज कर लो।
बुद्धपुरुष कहते हैंः कल का भरोसा नहीं है, अभी ध्यान कर लो, अभी समाधि कर लो, अभी प्रभु को पा लो। लक्ष्य अलग हैं, गंतव्य अलग हैं। कल का भरोसा नहीं है। कल पर मत टालो।
तो दोनों के तर्क तो एक हैं, लेकिन लक्ष्य बड़े भिन्न हैं।
शराबी कहता हैः "कल का क्या पता? अब कल जो होगा--होगा। तुम शराबी से कहो कि कल भूखे मरोगे; पैसे बचा लो। कल खा-पी लेना।" वह कहता हैः कल का क्या भरोसा। अब कल की कल देखेंगे। यह तो जीसस ने भी कहा ना कि कल की मत सोचो, तो हम कल की क्यों सोचें? यह तो बुद्ध ने भी कहा है ना कि कल पर मत टालो। तो हम कल पर क्यों टालें? अब आज जो हाथ में मिला है, आज तो मजा-मौज कर लें; फिर कल की कल देखेंगे।
बात तो वह भी बड़े पते की कह रहा है। बात तो पते की ही है। लेकिन उससे जो नतीजा निकाल रहा है, वह बिल्कुल गलत है।
बुद्ध भी कहते हैं कि पीओ--परमात्मा को पीओ; क्योंकि कल का पक्का नहीं है। यह तुम शराब ही पीने में आज गंवा दोगे... ।
कल का पक्का नहीं है और आज चला जाएगा--शराब पीने में। फिर परमात्मा कब पीओगे? कल का पक्का नहीं है और आज खाने-पीने और कपड़े सजाने में ही बिताए दे रहे हो, तो फिर परमात्मा को कब निमंत्रित करोगे? आज चला जाएगा व्यर्थ में, और कल अनिश्चित है। जो निश्चित था, वह व्यर्थ में चला गया। और जो अनिश्चित है--वह तो अनिश्चित है।
और फिर कल भी तो तुम तुम ही रहोगे। अगर आज खाने-पीने में ही बिताया, तो
कल भी पूरी संभावना यही है कि तुम खाने-पीने में बिताओगे। क्योंकि लोग अपनी आदतों के गुलाम हो जाते हैं।
तुमने अगर आज क्रोध किया है, तो कल भी क्रोध करने का तुमने बीज बो दिया। आज तुम अगर अहंकार से भरे हो, तो कल भी अहंकार से ही भरोगे, क्योंकि कल तुम्हारे भीतर से ही तो आएगा। आकाश से तो आनेवाला नहीं है! तुम ही तो कल में बढ़ोगे। तुम्हारा जो भी कूड़ा-कर्कट है, उसी को लेकर बढ़ोगे।
आज अगर ध्यान में बिताया, तो कल ध्यान की संभावना और बढ़ेगी। अगर कल आया, तो फिर तुम परमात्मा को धन्यवाद दोगे, कि फिर एक दिन मिला कि प्रार्थना करूं, कि पूजा करूं, कि अर्चना करूं, कि नाचूं... । धन्यवाद! सूफी फकीर कहते हैंः हर रात सोते वक्त धन्यवाद दे दो, इस तरह जैसे आखिरी दिन आ गया, आखिरी रात आ गई, कयामत की रात आ गई। भगवान को धन्यवाद दे दो कि तेरा बड़ा धन्यवाद, एक दिन और तूने दिया था। वह भी हम जी लिए--तेरे आनंद में।
और इस तरह सो जाओ, जैसे मर रहे हो, क्योंकि कौन जाने रात भर ही जाओ, और सुबह उठ ही न पाओ! और बिना धन्यवाद दिए मर जाना तो बड़ा अशोभन होगा। परमात्मा पूछेगाः धन्यवाद भी न दिया मरते वक्त?
तो रोज रात इस तरह सो जाओ, जैसे मर रहे हो। और रोज सुबह जब आंख खुले, फिर धन्यवाद दो, जैसे पुनर्जीवन हुआ, क्योंकि तुम्हारी तरफ से तो तुम रात भर ही गए थे। फिर पुनर्जीवन हुआ। फिर प्रभु ने एक दिन दिया। फिर उसका उत्सव करेंगे। फिर उसका गीत गाएंगे। फिर राम-धुन बिठाएंगे, फिर सत्संग करेंगे, फिर ध्यान में डूबेंगे। एक दिन और दिया उसने। एक अवसर और दिया। रात फिर सो जाना धन्यवाद देकर।
तो फर्क तो एक सा ही लगता है। लेकिन बड़े भेद हैं।
गुलशन की रविश प" मुस्कुराता हुआ चल
बदमस्त घटा है, लड़खड़ाता हुआ चल
कल खाक में मिल जाएगा यह जोरे-शबाब

"जोश" आज तो बांकपन दिखाता हुआ चल
एक तरफ लोग हैं, जो कहते हैंः कल तो खाक में मिल ही जाएंगे, तो आज तो अकड़ लें। अब कल तो मिट ही जाना है, तो आज अकड़ लें, "कल खाक में मिल जाएगा यह जोरे-शबाब।" यह जवानी कल तो खाक में मिल जाएगी, तो आज तो अकड़ लें, आज तो सिर उठा कर चल लें। आज तो शान दिखा लें, "जोश, आज तो बांकपन दिखाता हुआ चल।" संत भी यही कहते हैं कि कल खाक में मिल जाना है। तो क्या वांकपन दिखाना? जब खाक में ही मिल जाना है, जब खाक की नियति है, तो आज भी अकड़ने में क्या सार है?
जब अंततः खाक ही हाथ लगेगा, तो यह व्यर्थ अकड़ने में क्यों समय गंवाते हो? आज ही समझ लो कि सब राख ही राख है।
ऐसी समझ में ही अहंकार गल जाता है। ऐसी समझ में ही तुम मिट जाते हो। और तुम्हारे मिटने में ही परमात्मा का प्रवेश है।
सागरे-बादा-ए निशात तो ला
कभी जोहराबे-गम भी पी लेंगे
वस्ल की शब है, जिक्र-हिज्र न छेड़
यूं भी जीना पड़ा, तो जी लेंगे
भोगी कहता हैः वस्ल की शब है, मिलन की रात है, सुहागरात है, "वस्ल की शब है, जिक्र-हिज्र न छेड़।" अभी मौत की बातें न उठाओ; अभी वियोग की चर्चा मत छेड़ो। अभी तो सब मजा-मौज चल रहा है। अभी तुमने कहां संन्यास का राग उठा दिया! यह संन्यास की बात मत छेड़ो अभी। "वस्ल की शब है जिक्रे-हिज्र न छेड। यह भी जीना पड़ा, तो जी लेंगे।"
भोगी कहता है कि देखेंगे, जब होगा, तब होगा। अगर यूं भी जीना पड़ा, तो जी लेंगे। मगर अभी मत छोड़ो बात। अगर कल खाक में भी मिल जाना पड़ा, तो मिल जाएंगे। मगर अभी तो हैं, अभी यह बात मत छेड़ो।
ज्ञानी कहता हैः जो अंततः होना है, वह हो हो गया है। इसकी बात छेड़ो या
न छेड़ो, वह होने ही वाला है। और जो होने ही वाला है, बेहतर है, उसकी बात छेड लो, तो शायद कुछ बदलाहट हो जाए। अभी से थोड़ा समय हाथ में है।
आज पिला दो जी भर कर मधु
कल का करो न ध्यान सुनयने!
कल का करो न ध्यान!!
संभव है कल तक मिट जाए
मधु के प्रति आकर्षण मन का,
मधु पीने के लिए न हो कल
संभव है संकेत गगन का,
पीने और पिलाने को हम ही न रहें कल संभव है यह भी,
पल-पल पर झकझोर रहा है
काल प्रबल दामन जीवन का,
कौन जानता है कब किस पल
तार तार क्षण में हो जाए,
जीवन क्या सांसों के कच्चे धागों का परिधान सुनयने! कल का करो न ध्यान!!
क्या मालूम घिरी न घिरी कल यह मन भावन घटा गगन में,
क्या मालूम चली न चली कल यह मृदुमंद पवन मधुवन में,
स्वर्ग-नरक को भूल आज जो
गीत गा रही लालपरी के,
क्या मालूम रही न रही कल
मस्ती वह दीवानी मन में
अनमांगे वरदान सदृश जो

ढलक उठा मधु जीवन घट में,
क्या मालूम वहीं कल विषबन,
बने स्वप्न अवसान सुनयने!
कल का करो न ध्यान सुनयने!
भोगी कहता हैः कल की बात ही मत उठाओ; प्रिय, कल की बात ही मत उठाओ। कल
का क्या पक्का? आज भोग लें। आज जो मिला है, इसमें डूब लें, तरबोर हो लें। मगर जिसमें तरबोर हो रहे हो, वह राख ही है। राख में लोट रहे हो।
तुमने देखा न हिंदू, संन्यासी राख लपेट कर बैठ जाता है। इसकी कोई जरूरत नहीं है। सभी राख में लपटे हुए है। राख ही राख है। अब और राख लपेट कर क्या बैठ गए हो?
इस जगत में राख के सिवाय कुछ है नहीं। तुम भला सोचो--कि राख नहीं है, स्वर्ण-धूलि है, और लिपटकर सोने के हुए जा रहे हो। मगर जब आंख खुलेगी, तब पाओगेः सब राख ही राख है।
जितनी जल्दी आंख खुल जाए, उतना अच्छा, क्योंकि खुल जाए आंख तो कुछ किया जा सके। नहीं तो राख में हो लोटते-लोटते बिता दोगे।
वही खाना, वही पीना; वही दफ्तर, वही जीना; वही रोना, वही हंसना--इतना तो
कर चुके। आज तक कुछ हाथ न लगा। हाथ खाली के खाली हैं। अब कुछ ऐसा करो कि हाथ भर जाएं, प्राण भर जाएं। कुछ ऐसा करो कि फूल खिलें। कुछ ऐसा करो कि फल लगें। कुछ ऐसा करो कि जाने के पहले तुम परमात्मा को धन्यवाद दे सको। कुछ ऐसा करो कि उत्सव मना सको जाने के पहले। मृत्यु आए, उसके पहले महोत्सव आ जाए।
नहीं तो जीवन व्यर्थ गया, फिर आना पड़ेगा। फिर फेंके जाओगे। फिर यहीं, फिर इसी गंदगी में, फिर इसी राख के ढेर में।
मैं भी कहता हूं कि कल की फिकर न करो, क्योंकि कल का कुछ पक्का नहीं है। लेकिन मैं यह नहीं कहता कि खा लो, पी लो, मौज कर लो। उतने पर आदमी समाप्त नहीं होता।
खाना, पीना, मौज कर लेना ज्यादा से ज्यादा देह को थोड़ी देर भरमा लेते हैं।
और खाने, पीने, मौज से भी मौज वस्तुतः कहां होगी! नाम मात्र को, कहने मात्र को, बहाना मात्र है। समझा लेते हो कि मौज कर रहे हो। असली मौज करो। मैं भी कहता हूं मौज करो, लेकिन असली मौज करो। असली मौज तो परमात्मा
से जुड़ कर ही होती है। उस प्यारे का हाथ हाथ में आ जाए, तो ही असली मौज होती है।
और असली तृप्ति भी परमात्मा को ही पी जाने से होती है। शराब भी पीनी है, तो उसकी पीओ। अंगूर की क्या पीनी--आत्मा की पीओ।
शराब ही पीनी है, तो ऐसी पीओ कि फिर उतरे ही नशा। जो उतर-उतर जाए, उसमें कुछ बहुत सार नहीं है। कुछ ऐसा पीओ कि चढ़े, तो चढ़ा ही रहे।
वही है असली संपदा, जो मिल जाए, तो सदा के लिए तुम्हारी हो जाए। जब ऐसी शराब मौजूद है, तो फिर तुम क्षुद्र की शराब क्यों पीते हो, जब विराट की शराब मौजूद है!
इसलिए तो सूफी फकीरों ने तो परमात्मा का नाम ही शराब रख लिया है।
सूफियों की तुम कविताएं पढ़ो, तो भूल मत करना। उमर खय्याम को पढ़ो, तो भूल मत करना। उमर खय्याम जहा-जहां शराब की बात करता है, वह समाधि की बात कर रहा है। उमर खय्याम सूफी फकीर है। पहुँचा हुआ संत है; सिद्ध है।
जहां वह मधुशाला की बात कर रहा है, वह परमात्मा के मंदिर की बात कर रहा है। और जहाँ वह मधुबाला की बात कर रहा है, वह परमात्मा की बात कर रहा है। परमात्मा ढाल रहा है मधुबाला की तरह सुराही पर सुराही, और यह सारा जगत उसकी मधुशाला है।
यहां सब तरफ से शराब उंडेली जाएगी--फूल से, पंक्षियों से, चांद-तारों से--सब तरफ से उसकी सुगंध, सब तरफ से उसकी सुवास, सब तरफ से उसका रस झर रहा है। इस रस को पीओ। इस रस को पीओगे, तो सच ही तृप्त हो जाओगे।

जीसस एक कुएं पर गए--थके-मांदे। यात्रा से आ रहे हैं। धूल-धंवास से भरे हैं। और कुएं पर पानी भरती एक स्त्री से उन्होंने कहा कि "मुझे पानी पिला दो।"
उस स्त्री ने देखा। उसने कहाः "क्षमा करें, शायद आप अजनबी हैं, और आपको पता नहीं कि मैं क्षुद्र हूं; मैं बहुत क्षुद्र जाति की हूं, मेरा छुआ जल कोई पीता नहीं। फिर आपकी मरजी।" जीसस हंसे और उन्होंने कहाः "तू उसकी फिकर न कर। तू मुझे पिला, तो मैं भी तुझे कुछ पिलाऊं। तेरा जल तो थोड़ी देर मेरी तृप्ति रखेगा; मेरा जल तुझे सदा के लिए तृप्त कर देगा। और तुझसे जल मांगा है, इसीलिए कि इसके बहाने पहचान हो जाए, तो मैं भी कुछ लिए फिर रहा हूं अपने भीतर, वह मैं तुझ में उंडेल दूं।"
वह स्त्री अनूठी रही होगी। अनूठी थी, शायद इसीलिए जीसस रुक भी गए थे
उस कुएं पर। और भी कुएं रास्ते में पड़े थे, और भी लोग पानी भरते मिले थे। उसने जीसस की आंख में झांका। इस तरह की बात तो किसी आदमी ने कभी कही नहीं थी--कि मैं तुझे ऐसा जल पिला सकता हूं कि तेरी प्यास सदा के लिए मिट जाए!
तो उसने जीसस को आंख में झांका, वे परम शांत आंखें; वे निर्दोष आंखें।
और उसे बात जंच गई। वह भोली-भाली स्त्री; बोली, "तुम रुको, मैं गांव के लोगों को भी बुला लाऊं। वे भी तुम्हारी आंखों में झांक लें। ऐसी आंख हमने कभी देखी नहीं!"
गांव के लोगों से जाकर उसने कहा कि "एक अपूर्व आदमी आया है। क्योंकि ऐसी बात तो कभी किसी ने कही न थी। वह कहता हैः मैं तुझे ऐसा जल पिला सकता हूं कि तेरी प्यास सदा के लिए बुझ जाए। और मुझे पक्का भरोसा आया है कि उसके पास जल है, क्योंकि वह जल उसकी आंखों में मैंने देखा है। वह भरा है लबालब!" बुद्ध या क्राइस्ट या कृष्ण, कबीर या नानक उसी मधु को लेकर आते हैं।
ये सुराहियां हैं परमात्मा की।
अगर परमात्मा मधुबाला है और यह जगत उसकी मधुशाला है और अगर समाधि मधु
है, तो संत मधु-कलश हैं, जिनमें भर-भर के परमात्मा उंडेलता है।
मैं भी कहता हूंः पीओ; और मैं भी कहता हूं--खाओ; और मैं भी कहता हूं-- मौज करो। लेकिन असली मौज की बातें कर रहा हूं जिसको पीने से फिर कभी प्यास नहीं लगती। वह भोजन करो, जिसे कर लेने से आत्मा तृप्त होती है--देह ही नहीं।
जीसस जब मरने लगे, आखिरी दिन आ गया विदा का, तो तुम्हें पता है उन्होंने अपने शिष्यों से क्या कहा! उन्होंने कहा कि "पी लो मुझे, और खा लो मुझे।" बड़े अजीब से शब्द हैंः "पी लो मुझे और खा लो मुझे। पचा लो मुझे। बेना लो मुझे अपनी रक्त की धार।"
और अब भी जीसस को मानने वाले वर्ष में एक उत्सव मनाते हैं। जब वे भोज देते हैं, रोटी तोड़ते हैं, और रोटी को जीसस मान कर उसका भोजन करते हैं।
मगर रोटी तो रोटी है। इस तरह धोखा न दे सकोगे। कोई जीसस खोजना पड़ेगा।
कोई सदगुरु खोजना पड़ेगा।
जीसस के मानने वाले उत्सव मनाते हैं। साधारण सी शराब ढालते हैं--उस याद में, उस असली शराब की याद में, जो जीसस ने ढाली कभी। उसको पी लेते हैं।
लंदन में पिछले वर्ष, मेरे संन्यासियों ने मेरा जन्म-दिन मनाया, तो उन्होंने अपने चित्र भेजे। चित्र देख कर मैं हैरान हुआ। वह तो काफी भोजन तैयार किए बैठे हैं। और शराब की बोतल भी रखे हुए हैं। तो मैंने पूछवाया कि मामला क्या है? तो वे सब ईसाई हैं।
उन्होंने कहा कि हम जैसे जीसस का जन्म-दिन मनाते हैं, तो शराब पीते हैं, क्योंकि जीसस ने कहा हैः कि पीओ मुझे। ऐसा ही हमने आपको पीया!
मैंने कहाः पागलो, मैं अभी जिंदा हूं। अभी तुम मुझको ही पीओ। जब मैं न रहूं, तब ठीक है, फिर किसी और शराब से काम चला लेना। जब असली शराब मिलती हो, तो नकली से क्यों संबंध जोड़ते हो?
मैं भी कहता हूंः खाओ, पीओ, मौज करो। ईट ड्रिंक बी मेरी--मैं भी कहता हूं। लेकिन मेरा अर्थ समझ लेना। और में भी कहता हूं कि कल का भरोसा नहीं,

इसलिए जो भी करना हो, वह आज कर लो। कल न कभी आया है, न आएगा। कल कभी आता ही नहीं। कल पर तो टालना ही मत। जिससे कल पर टाला, उसने सदा के लिए टाला, उसे कभी भी मिलन नहीं होगा। वह चूकता ही चला जाएगा। क्योंकि आज तुम कल पर टालोगे और कल तो आता नहीं। कल जब आएगा, तो आज की तरह आएगा। फिर जब आज की तरह आएगा, तो तुम्हारी कल पर टालने की आदत फिर कहेगीः कल कर लेंगे। ऐसे बहुत लोग हैं यहां।
आज ही किसी ने प्रश्प पूछा हैः मैं संन्यास लेना चाहता हूं, लेकिन क्या घर के लोगों की बिना आज्ञा लिए संन्यास लिया जा सकता है?
संन्यास आज्ञा किसकी लेकर ले सकोगे? जिनकी आज्ञा लेने जाओगे, वे संन्यासी हैं? अगर तुम्हारे संन्यास को वे इतनी प्रसन्नता से आज्ञा दे सकते होते, तो खुद ही संन्यासी हो गए होते। अब तक प्रतीक्षा करते? तुम आज्ञा उनसे कैसे मांगोगे? और उनकी आज्ञा कैसे मिलेगी?
और संन्यास की भी आज्ञा घर वालों से मांग कर लोगे। तो कुछ कभी ऐसा करोगे, तो जुमने किया! या सदा दूसरों की ही आज्ञा मान कर चलते रहोगे?
कुछ तो जीवन में हो, जो तुम्हारा हो। कुछ तो हो, जो निपट तुम्हारा हो। संन्यास को तो किसी की आज्ञा मत बनाओ। इसे तो तुम्हारे ही हृदय का भाव रहने दो। आ गई है मौज, तो उतर जाना।
और घबड़ाना मत। घर के लोग राजी हो जाते हैं। मर भी जाओगे तो भी राजी भी जाते हैं। तो संन्यास में तो क्या रखा है?
अगर मर भी जाओगे तो क्या तुम समझते हो, घर के लोग सदा रोते रहेंगे तुम्हारे लिए?
फिर मेरा संन्यास तो तुम्हें घर से छीनता भी नहीं। मेरा संन्यास तो, तुम पति हो तो तुम्हें और अच्छा पति बना देगा। पत्नी हो, तो और अच्छी पत्नी बना देगा। मां हो, तो और अच्छी मां। क्योंकि मैं संसार के विरोध में नहीं हूं।
मेरा परमात्मा बड़ा है; इतना बड़ा है कि संसार को अपने में समा लेता है। मैं छोटे-छोटे परमात्माओं की बात नहीं कर रहा हूं, जो बड़े क्षुद्र हैं; जो संसार को अपने में नहीं समा पाते हैं।
मेरा परमात्मा सब में समाया हुआ है; सारे संसार में रमा हुआ है। इसलिए कहीं न भागना है, न किसी के विपरीत जाना है। न पत्नी को छोड़ देना है।
उनको मैं कायर कहता हूं, जो छोड़ कर भाग जाते हैं। जो जिम्मेदारियां छोड़ देते हैं, वे नपुंसक हैं। जो अपने छोटे-छोटे दुध-मुंहे बच्चों को छोड़ कर जंगल भाग जाते हैं, ये संन्यासी हैं? जब परमात्मा इन्हें पकड़ेगा, तो इनको दंड मिलेगा।
संन्यास का अर्थ इतना ही हैः जहां हो, वहीं परमात्मा की याद से भर कर रहो। संन्यास का इतना ही अर्थ हैः जहां हो, वहीं परमात्मा को समर्पित होकर रहो। जल में कमलवत।
और आज्ञा की प्रतीक्षा मत करना। कुछ तो अपने से करो?
मस्जिद में मुल्ला नसरुद्दीन बैठा था। पुरोहित ने लंबा व्याख्यान दिया, और व्याख्यान के अंत में पूछा कि जो लोग स्वर्ग जाना चाहते हैं, हाथ ऊपर उठा दें। सब ने हाथ ऊपर उठा दिए। एक मुल्ला ही बैठा रहा। सामने ही बैठा था।
पुरोहित को बड़ी हैरानी हुई। उसने पूछा कि "नसरुद्दीन, सारे लोग स्वर्ग जाना चाहते हैं, एक तुमको छोड़ कर! तुम नहीं जाना चाहते?" उसने कहा, "जाना तो मैं भी चाहता हूं। लेकिन जब घर से चलने लगा, तो पत्नी ने कहा। मस्जिद से सीधे घर आना।"
तुम यहां आ गए; संन्यास का भाव उठा; अब तुम पूछते होः घर के लोगों की आज्ञा? तुम स्वर्ग भी पत्नी से ही पूछ कर जाओगे? मरते वक्त किस-किस से पूछोगे? आज्ञा लोगे? आज्ञा लेने का अवसर मिलेगा?
थोड़ी तो हिम्मत और साहस होना चाहिए! इतने तो अपने को अपमानित मत करो।
और अगर पत्नी तुम्हारी तुम्हें प्रेम करती है, तो तुम्हारे संन्यास
को भी प्रेम करेगी, क्योंकि तुम्हारी स्वतंत्रता और तुम्हारी आत्मा का

समादर करेगी। और अगर तुम्हारा पति तुम्हें प्रेम करता है, तो तुम्हारे संन्यास का भी आदर करेगा। क्योंकि प्रेम स्वतंत्रता के विपरीत नहीं होता। और जो प्रेम स्वतंत्रता के विपरीत है, वह प्रेम ही नहीं है। वह कुछ और है, धोखा-धड़ी है।
जो पत्नी कहती हैः मेरी आज्ञा मान कर चलो, वह पत्नी नहीं है। वह तुम्हें गुलाम बनाने में लगी है। वह एक गुलाम चाहती है, पति नहीं चाहती है। एक मित्र नहीं चाहती है, एक गुलाम चाहती है। और जो पति कहता हैः जैसा मैं कहूं, वैसे उठो, वैसे चलो। वह तुम्हारी आत्मा का खंडन कर रहा है। वह तुम्हें प्रेम कैसे कर सकता है?
प्रेम सदा मुक्त करता है। जो मुक्त करे, वही प्रेम।
तो घबड़ाओ मत। किससे पूछना है? अपने हृदय से पूछ लो। अगर हृदय कहता हो,
तो डुबकी लगा लो।
और कल पर मत टालो, क्योंकि आज्ञा का मतलब है, अब जाएंगे घर; पूछेंगेः विचार करेंगे; पत्नी रोएगी, बच्चे नाराज होंगे, पिता कुछ कहेंगे, भाई कुछ कहेंगे। सारा गांव-पड़ोस समझाएगा कि "पागल हुए जा रहे हो।" और कल का कोई भरोसा नहीं है। कल आए न आए।
क्षण-क्षण जीना चाहिए। और क्षण-क्षण हृदय की स्फुरणा से जीना चाहिए यही सहज-योग है। यही सब संतों की वाणी का सार है।

आज इतना ही।